स्तुतिकदम्ब

हिन्दी अनुवाद सहित

श्रीदक्षिणामूर्ति मठ, प्रकाशन
वाराणसी

श्रीदक्षिणामूर्तिसंस्कृतग्रन्थमाला-१२

स्तुतिकदम्ब

हिन्दी भाषानुवाद सहित

सम्पादक

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ

श्री १०८ स्वामी महेशानन्दगिरि जी

महाराज महामण्डलेश्वर

अनुवादक

श्री थानेशचन्द्र उप्रैती

सांख्य-योग-साहित्याचार्य

श्रीदक्षिणामूर्ति मठ, प्रकाशन

वाराणसी

प्रकाशक :

श्रीदक्षिणामूर्तिमठ, प्रकाशन

डी ४६/६, मिश्रपोखरा, वाराणसी

प्रथम संस्करण सं. २०५१

द्वितीय संस्करण सं. २०६३

मूल्य-

ये

अक्षर टंकण—मानस टाइपसैटर, नयी दिल्ली-110002

ॐ

भूमिका

शिवप्रसादेन विना न सिद्धिः शिवप्रसादेन विना न बुद्धिः।
शिवप्रसादेन विना न युक्तिः शिवप्रसादेन विना न मुक्तिः।।

—शंकर, सर्ववेदान्तसारसंग्रह में

विश्व में जहाँ भी मानव या उसके अवशेष मिलते हैं, वहाँ सर्वत्र किसी देवता की आराधना के संकेत अवश्य मिले हैं। देवता के स्वरूप के विषय में अनेक मतभेद हैं, परन्तु कोई अमानवीय अप्राकृतिक चेतनशक्ति है जिसके साथ प्राकृतिक मानव सम्बन्ध स्थापित कर सकता है, और उससे उसे सहारा मिल सकता है—यह भावना अवश्य मौजूद रहती है। भारत में भी मोहनजोदड़ों से आजतक का अखण्ड प्रवाह भी इसका साक्षी है। वेद के आधार पर प्रतिष्ठित धर्म में उपास्य देवताओं के अनेक रूप व अनेक नाम, कार्य, उपासाविधियों की स्वीकृति के साथ उन सब में एक ही परमात्म-तत्त्व का दर्शन भी मिलता है। विदेशी एकेश्वरवाद में देवभेदों का संहार है, समन्वय नहीं। ग्रामीणों में देवभेदों की स्वीकृति है पर एक परमात्मा का बोध नहीं है। इसीलिये विदेशी धर्म अन्य धर्मों के संहारक होने में गर्व अनुभव करते हैं। वैदिक सभी देवभेदों से, चाहे विदेशी हों चाहे ग्रामीण, परमात्मा की एकता के ज्ञान से, प्रेम करते हैं। ग्रामीण अन्धविश्वासी हो सकता है, पर संहारक नहीं। इसीलिए वेदानुकूल चलने वाला ईश्वराराधना को धर्मरक्षण मानता है, धर्मपरिवर्त्तन के नाम पर लोगों की मानसिक या दैहिक हिंसा को ही आराधना नहीं स्वीकारता है।

आराधना के अनेक प्रकार हैं। द्रव्यों से मूर्त्ति की पूजा, तीर्थाटन, व्रत आदि शरीर से आराधना है। मन से योगाभ्यास, ध्यान, भक्ति आदि करना भी ईशाराधना है। इसी प्रकार जप, वेदपाठ, स्तोत्रपाठ आदि वाणी से

प्रकाशक :

श्रीदक्षिणामूर्तिमठ, प्रकाशन

डी ४६/६, मिश्रपोखरा, वाराणसी

प्रथम संस्करण सं. २०५१

द्वितीय संस्करण सं. २०६३

अक्षर टंकण—मानस टाइपसैटर, नयी दिल्ली-110002

ॐ

भूमिका

शिवप्रसादेन विना न सिद्धिः शिवप्रसादेन विना न बुद्धिः।
शिवप्रसादेन विना न युक्तिः शिवप्रसादेन विना न मुक्तिः।।

—शंकर, सर्ववेदान्तसारसंग्रह में

विश्व में जहाँ भी मानव या उसके अवशेष मिलते हैं, वहाँ सर्वत्र किसी देवता की आराधना के संकेत अवश्य मिले हैं। देवता के स्वरूप के विषय में अनेक मतभेद हैं, परन्तु कोई अमानवीय अप्राकृतिक चेतनशक्ति है जिसके साथ प्राकृतिक मानव सम्बन्ध स्थापित कर सकता है, और उससे उसे सहारा मिल सकता है—यह भावना अवश्य मौजूद रहती है। भारत में भी मोहनजोदड़ों से आजतक का अखण्ड प्रवाह भी इसका साक्षी है। वेद के आधार पर प्रतिष्ठित धर्म में उपास्य देवताओं के अनेक रूप व अनेक नाम, कार्य, उपासाविधियों की स्वीकृति के साथ उन सब में एक ही परमात्म-तत्त्व का दर्शन भी मिलता है। विदेशी एकेश्वरवाद में देवभेदों का संहार है, समन्वय नहीं। ग्रामीणों में देवभेदों की स्वीकृति है पर एक परमात्मा का बोध नहीं है। इसीलिये विदेशी धर्म अन्य धर्मों के संहारक होने में गर्व अनुभव करते हैं। वैदिक सभी देवभेदों से, चाहे विदेशी हों चाहे ग्रामीण, परमात्मा की एकता के ज्ञान से, प्रेम करते हैं। ग्रामीण अन्धविश्वासी हो सकता है, पर संहारक नहीं। इसीलिए वेदानुकूल चलने वाला ईश्वराराधना को धर्मरक्षण मानता है, धर्मपरिवर्त्तन के नाम पर लोगों की मानसिक या दैहिक हिंसा को ही आराधना नहीं स्वीकारता है।

आराधना के अनेक प्रकार हैं। द्रव्यों से मूर्त्ति की पूजा, तीर्थाटन, व्रत आदि शरीर से आराधना है। मन से योगाभ्यास, ध्यान, भक्ति आदि करना भी ईशाराधना है। इसी प्रकार जप, वेदपाठ, स्तोत्रपाठ आदि वाणी से

आराधना है। कर्त्तव्य कर्मों को फलकामना से रहित होकर करना भी आराधना है। बुद्धि से वेदान्तश्रवण-मनन आदि करना बौद्धिक आराधना है। सभी आराधनाओं का उद्देश्य शिवप्रसाद की प्राप्ति ही है। माता-पिता, पति आदि को ईश्वररूप मानकर इनकी सर्वविध सेवा करना भी आराधना है। गुरु तो साक्षात् ब्रह्मरूप प्रत्यक्ष ही हैं। अतः उनकी स्तुति, शरीर की सेवा, उनका उपदेश-मनन करते हुए जीवन में लाना आदि शिव की साक्षात् सेवा ही है, जो भोग व मोक्ष दोनों को सद्यः सिद्ध कर देती है।

वाणी की आराधना द्रव्याराधना की अपेक्षा सरल भी है व सूक्ष्म भी। द्रव्यशुद्धि आज के मिलावट के युग में दुर्लभतर हो गई है। स्वयं बगीचे में फूल लगाकर पूजा में प्रयोग करने की आगमविधि कितनी अव्यवहार्य है यह कहना आवश्यक नहीं है। फिर भिन्न देवताओं के लिए भिन्न-भिन्न पुष्प आदि का प्रयोगज्ञान भी दुःशक है। विधि का ज्ञान भी परम्पराओं के लुप्त होने से कठिन हो गया है। वाणी की पूजा में ये सभी कठिनाइयाँ नहीं हैं। पूजा, श्रवण आदि में अधिकारविचार भी करना पड़ता है। परन्तु सर्वज्ञ शंकर कहते हैं 'जन्तुशब्देन जपार्चनस्तवनादिषु यथायोग्यं सर्वप्राणिनामधिकारं सूचयति।' जप, अर्चना, स्तुति आदि में सभी प्राणियों का स्वसामर्थ्यानुकूल अधिकार शास्त्र ने प्रतिपादित किया है। अन्यत्र वे ही लिखते हैं 'हिंसादिपुरुषान्तरद्रव्यान्तरदेशकालादिनियमानपेक्षत्वं (स्तुतिलक्षणस्यार्चनस्य) आधिक्ये कारणम्' गुणसंकीर्त्तनलक्षण वाली स्तुतिरूप अर्चना में हिंसा, दूसरे की सहायता, देश, काल आदि के नियमों की अपेक्षा न होने से वही श्रेयस्कर है।

विश्व में सर्वत्र अपने देवताओं की अभ्यर्थनारूप में स्तोत्ररचना हुई है। इसमें देवता का स्वरूपप्रतिपादन, उसकी द्रव्यात्मक अर्चना का वर्णन, उसकी महत्ता का प्रतिपादन, उपदेशों का वर्णन करने के साथ साधक की अभिलाषाओं की पूर्त्ति की प्रार्थना एवं स्तव के फल व प्रशंसा का वर्णन मिलता है। परन्तु संस्कृत साहित्य में जिस गौरवमय विस्तृत स्तोत्र साहित्य की उपलब्धि होती है उसका अंश भी अन्यत्र नहीं मिलता। इस स्तोत्र साहित्य में आचार्य शङ्कर के स्तोत्रों का अपना विशिष्ट स्थान है। यह विशाल भी है एवं प्रसादगम्भीर भी है। यद्यपि सारे ही शंकरकृत स्तोत्र आचार्यकृत नहीं हैं, परन्तु शंकर की विशिष्ट शैली में प्रणीत होने से उन्हें शांकरसाहित्य तो माना ही जा सकता है। यद्यपि अधिकतर स्तोत्र तो पारदर्शी हैं व सामान्य हिन्दीज्ञ भी उन्हें समझ सकता है, तथापि कुछ सन्दर्भ व कुछ स्तोत्र इतने सरल नहीं हैं। जब ३५ वर्ष

पूर्व अनेक स्तोत्रों के संग्रह का प्रथम संस्करण निकाला था तभी इसका हिन्दी अनुवाद कराने का विचार था परन्तु कई कारणों से यह कार्य अभी तक अपूर्ण रहा। अब हमारे अपने ही विद्वान् श्री थानेशचन्द्र जी उप्रैती ने यह कार्य पूरा कर दिया है।

स्तुतिकदम्ब में सभी प्रधान शांकरस्तोत्रों का संग्रह किया गया है। सौन्दर्यलहरी आदि कुछ स्तोत्रों को विषयगाम्भीर्य की दृष्टि से छोड़ दिया गया है। प्रथम संस्करण में श्रीदक्षिणामूर्त्तिस्तोत्र का श्रीसुरेश्वराचार्य कृत वार्त्तिक अब हिन्दी में सानुवाद छप गया है अतः उसे भी इसमें नहीं रखा है। भाष्यकार की शैली में निर्गुण जीवात्मा व परमात्मा के अखण्डार्थ के चिन्तनरूप स्तोत्र भी इसमें संगृहीत हैं। इस प्रकार साधक को सभी प्रकार की साधनासम्बन्धी सामग्री इसमें उपलब्ध हो जाएगी। शिवानन्दलहरी सारी ही भक्ति-सम्बन्धी चिन्तनिका को प्रस्तुत कर देती है। इसके अन्त में आचार्य शिव का साक्षात् दर्शन करके आश्चर्य से कहते हैं 'कथं मम वेद्योसि पुरतः' आप पूर्णतः कैसे मुझे दीख रहे हैं! यह एक प्रकार से संकेत है कि इस स्तोत्र के अनुसार जीवन बन जाये तो असंभव भी शिव-दर्शन संभव हो जाता है। इस स्तोत्र के विवेचन के लिये विद्वत्परमहंस स्वामी स्वयम्प्रकाशगिरिजी द्वारा व्याख्यात ग्रन्थ मननीय है। अप्पयदीक्षित की आत्मार्पणस्तुति भी इस प्रकार भक्तिशास्त्र का प्रतिपादक अमूल्य ग्रन्थ है। इस पर शिवानन्द की संस्कृत टीका हिन्दी अनुवादसहित प्रकाशित हो चुकी है। ये दोनों एक प्रकार से स्वतंत्र प्रकरणग्रन्थ ही हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ॐ नमश्शिवाय मंत्र की दीक्षा देने वाले उपमन्यु महर्षि का स्तोत्र भावप्रधान है। वे कहते हैं कि विरह में जैसे संसारी लोगों को सारा संसार रमणीमय दीखता है, वैसे ही मुझे शिवमय दीखता है। भामती में वाचस्पति मिश्र भी कहते हैं कि वियोग की तीव्रता में कान्ता का दर्शन हो जाता है। किंच, शिव का विरोधाभास प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि वे एक साथ विष-अमृत, अशुचि-पवित्र, जगन्मय-जगदधिष्ठान, सम-विषम, रोग-स्वस्थ, राग-विराग, भिक्षु-दाता आदि के समन्वय रूप हैं। उनके विरह में वे लोटना, छाती पीटना, आत्मघात करना चाहते हैं। जगद्धरभट्ट को छोड़कर इतना सुन्दर भाव अन्यत्र दुर्लभ है।

विरह के बाद संदर्शन का वर्णन करने वाला लिंगाष्टक है। इसमें शिव प्रकट हैं एवं उनके सौन्दर्य का तथा विभूति का अनुपम वर्णन है। मूर्त्ति में

शिव साकार हैं, स्वरूप में निराकार हैं, पर लिंग मूर्त्तामूर्त्त है—इसमें न स्फुट साकारता है और न सर्वथा निराकारता। प्रायः शिवभक्त निराकार-प्रेमी होते हैं, अतः उनके आलम्बन के लिए यह मूर्त्तामूर्त्त रूप है। विष्णु के सभी प्रसिद्ध मन्दिरों में साकार मूर्त्ति ही पूज्य है, परन्तु शिवमन्दिरों में प्रायः लिंग ही पूज्य है। लिंग का ही रूप ॐ है। मार्कण्डेय की स्तुति भी बड़ी मनोरम है। इसमें स्वरूपदर्शन का ही वर्णन है। विश्वानर कृत वीरेश्वर स्तोत्र में स्पष्ट ही विवर्त्तकारण रूप से शिव को कहा गया है। रस्सी के ज्ञान से सर्पनिवृत्ति, सींपज्ञान से चांदीनिवृत्ति या बालू के ज्ञान से जलनिवृत्ति की तरह ही शिवज्ञान से संसारनिवृत्ति हो जाती है। आचार्य शंकर ने शिवध्यान की सुविधार्थ केश से पाद तक व पाद से केश तक के स्तोत्रों की रचना की है। ध्यान के अभ्यासी भली प्रकार जानते हैं कि सगुणध्यान में इष्ट के पैरों से केश व पुनः पैरों तक धीरे-धीरे प्रति अंग का ध्यान अत्यन्त लाभप्रद होता है। इस स्तोत्र के अर्थचिन्तन के साथ पाठ करने से यह सरलता से सिद्ध हो जाता है। अन्त में वे स्पष्ट करते हैं कि शिव वस्तुतः सर्वरूप हैं। अतः सभी को नमस्कार करते हैं क्योंकि सभी उनके चरणों के ही आश्रय में हैं। आचार्य भगवत्पाद शंकर साधक के कल्याणार्थ अपराधक्षमापन स्तोत्र में दैन्यभाव की पराकाष्ठा का प्रतिपादन करते हैं। जीवन की सभी अवस्थाएँ जीव को इतना व्यस्त रखती हैं कि शिवस्मृति नहीं हो पाती। अभिगमन, अर्चा, श्रौत स्मार्त कर्म, ज्ञानाभ्यास, योग, त्याग, तप आदि सभी साधनों से रहित केवल शिव की करुणा पर आश्रित रहकर अपराधों को क्षमा कराने के भरोसे ही भवसागर तरना उसके लिए संभव है। इस साधना में शरणागति व श्रद्धा ही अधिकार-प्रदान करती है। भगवान् शंकर के विग्रहों में आत्मज्ञान के लिए सर्वाधिक उपादेय दक्षिणामूर्त्तिविग्रह है। इसमें चिन्मुद्रा प्रधान है जो तत्त्वमसि का अभिनय है। शंकर अद्वैतसम्प्रदाय में पठन-पाठन के पूर्व दक्षिणामूर्त्ति की स्मृति अवश्य की जाती है। परमहंससम्प्रदाय के तो वे आद्याचार्य हैं। आचार्य शंकर ने भी अनेक स्तोत्रों से उनकी स्तुतियाँ की हैं। वे ज्ञानियों के समस्त विघ्न हरण करके योग व मोक्ष दोनों उनको प्रदान करते हैं। इनका स्मरण प्रत्यगात्मरूप से ही प्रधान है इसे भगवान् शंकर 'तं प्रत्यंचं दक्षिणवक्त्रं' से बार-बार कह कर स्पष्ट करते हैं।

देवी की स्तुतियों में कल्याणवृष्टि व आनन्दलहरी का विशेष स्थान है। ह्रीं मंत्र का श्रीचक्र तथा देहचक्र व लिंगचक्र में स्थापन इस स्तुति की

विशेषता है। आनन्दलहरी में देवी के अंगों का ललित वर्णन है। वे वाणी व मन के विषय से अतीत हैं यह भी वहाँ सुन्दर रूप से प्रतिपादित है। अन्नपूर्णास्तोत्र किसी भी अभिलाषा की पूर्त्ति के लिए आगमों में विहित है। इसके प्रत्येक श्लोक का भी भिन्न-भिन्न प्रकार से जप का विधान किया गया है।

आचार्य शंकर की रचनाओं में काशीपंचक का विशेष स्थान है। काशी में मरण से मोक्ष श्रुतिसिद्ध है। पर यह काशी दैशिक भी है व दैहिक भी। प्रथम सब को सुलभ नहीं, द्वितीय प्राणिमात्र को सुलभ है। इसका प्रतिपादन आचार्यपाद ने स्पष्ट रूप से कर सभी प्राणियों के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है। इसी प्रकार प्रातः स्मरणस्तोत्र भी आध्यात्मिक भावों से पूर्ण है। इसमें मानों सारे वेदान्तशास्त्र का सार उंडेल दिया है। सच्चिदानन्देन्द्र ने अपनी व्याख्या में इसको वेदान्त की प्रथम पोथी के रूप में प्रश्नोत्तर से स्पष्ट करने का उत्तम कार्य किया है। इसी प्रकार हरिमीडे में उपनिषदों का संग्रह करने का स्पृहणीय कार्य किया गया है। यह भी वेदान्त के प्रकरणग्रथों का ही स्वरूप है। प्रकरणग्रन्थ वेदान्त में विशेष रूप से सामान्य साधकों के लिए लिखे गये हैं। जो लोग षड्विधलिंग से औपनिषद तात्पर्य निर्णय करने में असमर्थ हैं, पर श्रद्धाधनी हैं, वे इस तात्पर्य पर मनन करके निश्चय पर पहुँच सकते हैं। वेदान्त में निश्चय का वही स्थान है जो योग में समाधि का या भक्ति में इष्टदर्शन का है। हरिमीडे में चूँकि हरि को ब्रह्मरूप से प्रतिपादित किया गया है अतः इष्टदर्शन व निश्चय एक साथ ही सिद्ध हो जाता है। यही एकेश्वरवाद से एकात्मवाद में प्रगत होने का उपाय है। इन ४३ श्लोकों पर प्राचीन संस्कृत टीका में उपनिषद् के उद्धरण देकर मूलोद्धार भी किया है। इसी परम्परा में निर्गुण मानस पूजा भी है। इसी से मिलता जुलता स्तोत्र तंत्र में भी आता है एवं अभिनवगुप्त की ग्रन्थावली में भी। परन्तु दार्शनिक भेद सर्वत्र स्पष्ट है। परमेश्वर के स्वरूप का विचार करने पर पूज्य-पूजकभाव एवं पूजनसामग्री का पूज्य पर चढ़ाना नहीं बनता है। अतः इसे मानस ध्यान से ही करना संभव है। इसी क्रम में आचार्य का सदाचारस्तोत्र भी है। ज्ञानिचर्या का वर्णन जीवन्मुक्तानन्दलहरी में किया है। सभी परिस्थितियों में उसमें मोह का सर्वथा अभाव रहता है। जैसी स्थिति सामने आती है उसमें यथायोग्य आचरण आग्रह से रहित होकर करता है परन्तु उसमें स्थिति की निवृत्ति के बाद कोई संस्कार अवशिष्ट नहीं रहता। इसमें चिच्छक्तियों के मुख में

कमलदान व ग्रहण आगमिक साधना की रहस्यमयी अनुभूति है जिसका वर्णन अच्युतराय मोदक ने इस श्लोक की व्याख्या में किया है। कहीं-कहीं स्तोत्रों में ऐसा रहस्य प्रतिपादन साधकों के कल्याणार्थ ही किया गया है, यद्यपि ज्ञानी को तो यह स्वभावसिद्ध है। **दशश्लोकी** पर मधुसूदन सरस्वती ने प्रसिद्ध व्याख्या लिखी है जिसे गौड ब्रह्मानन्द ने व्याख्यात करके नव्यवेदान्त का प्रौढतर ग्रन्थ बना दिया है। व्याख्या का हिन्दी अनुवाद सुलभ है। ४-५ और टीकाएँ भी प्रकाशित हैं जिनमें एक तो मधुसूदन के शिष्य की ही है। वर्त्तमान में महामहोपाध्याय अभ्यंकर ने भी एक सरल पर विस्तृत टीका लिखी है।

दोनों **प्रश्नोत्तरियाँ** आचार्यपाद के उन विचारों का प्रतिपादन करती हैं जो भाष्य व प्रकरणग्रन्थ में संगृहीत नहीं हैं। वेदान्त के आधार पर जीने वाले के लिए ये मार्गदर्शिका हैं। ये सदा कण्ठ में धारणीय हैं। व्यावहारिक जीवन में गृहस्थ हो या संन्यासी, ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं जहाँ 'क्या किया जाय' का निश्चय केवल प्रौढ ग्रन्थों से नहीं हो पाता, और वेदान्त का साधक जानना चाहता है कि वेदान्त के विचारों के अनुरूप वह क्या करे। स्मृतियों का ऊहापोह भी कठिन होता है। ऐसी परिस्थिति में ये बड़े कम के उत्तर सिद्ध होते हैं। जैसे, पवित्र कौन है? का उत्तर है—जिसका मन शुद्ध है। अथवा, स्व व पर हित के लिए सदा तैयार रहना ही सबका सर्वाधिक लाभदायक कार्य है। अथवा, माँगना ही नर को लघु बनाता है।

इस प्रकार यह संग्रह वेदान्त के जिज्ञासुओं को लाभद होगा। इसका अनुवाद श्रीविश्वनाथ संस्कृत महाविद्यालय के साहित्यविभागाध्यक्ष श्रीथानेशचन्द्र जी उप्रैती ने किया है जो सिद्धहस्त अनुवादक हैं, सांख्यकारिका आदि अनेक ग्रंथों का अनुवाद उनके द्वारा हुआ है। इनकी विद्वत्ता, शालीनता तथा सहृदयता अनुवाद में सर्वत्र मिलेगी। इस संस्करण के प्रकाशन का व्यय-भार हमारे परम भक्त श्री माधवप्रसाद भूत एवं उनके पुत्र राकेश बिहारी ने उठाया है। भगवान् उमारमण-रमामण आपको सपरिवार उन्नत करें तथा आपकी भक्ति इसी जीवन में आपको ज्ञानप्रकाश से आलोकित करे—यह हमारा आशीर्वाद है।

यह ग्रन्थ श्रीदक्षिणामूर्त्ति संस्कृतग्रंथावली के प्रवाह में है। इस अवली में संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ पर संस्कृत में श्रद्धालु लोगों को विषय बनाया गया है। पदच्छेद से ऐसे लोग लाभान्वित हो सकेंगे यह आशा है। भगवान्

दक्षिणामूर्त्ति से प्रार्थना है कि इसका किंचित् भी नित्य पाठ करने वाला उनकी कृपा प्राप्त कर भोग व मोक्ष पा लेवे।

श्री विश्वनाथ संन्यास आश्रम
श्रीराम रोड, दिल्ली—११००५४

भगवत्पादीय
महेशानन्दगिरि

द्वितीय संस्करण

हिन्दी अर्थ समेत स्तुतिकदम्ब के इस दूसरे संस्करण में पूर्व के सभी स्तोत्र हैं ही, अनुबन्ध के रूप में प्रायः पौने-तीन सौ वर्ष पूर्व कावेरी तट पर विचरण करने वाले श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ योगिराज **श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्र** द्वारा रचित कीर्तनों को संकलित कर दिया गया है। ये अत्यन्त वैराग्यवान् एवं आत्माकारवृत्ति में मग्न रहने वाले सन्त थे फिर भी ब्रह्मसूत्रवृत्ति, योगसूत्रवृत्ति, द्वादश उपनिषदों की दीपिका, सिद्धान्तकल्पवल्ली, अद्वैतरसमंजरी आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ इन्होंने रचे तथा जनमानस में अपने सरस, सरल, भावपूर्ण एवं आध्यात्मिक सन्देश से भरे गये कीर्तनों के कारण प्रतिष्ठित हुए। कीर्तन सुगम होने से उनका अनुवाद नहीं दिया गया है।

स्तुतिकदम्ब

हिन्दी भाषानुवादसहित

शिवार्पण

कीर्तन

गणेशपञ्चरत्नम्

मुदाकरात्तमोदकं, सदा विमुक्तिसाधकं,
कलाधरावतंसकं विलासिलोकरक्षकम्।
अनायकैकनायकं विनाशितेभदैत्यकं,
नताशुभाशुनाशकं नमामि तं विनायकम्।।१।।

अन्वय—*मुदा करात्तमोदकम्, सदा विमुक्तिसाधकम्, कलाधरावतंसकम्, विलासिलोकरक्षकम्, अनायकैकनायकम्, विनाशितेभदैत्यकम्, नताशुभाशुनाशकम्, तम् विनायकम् नमामि।*

अर्थ—प्रसन्नतापूर्वक जिन्होंने हाथ में मोदक धारण किया हुआ है, सर्वदा जो मुक्ति के साधक हैं, कलाओं को धारण करने वाले चन्द्रमा को जिन्होंने आभूषण बनाया है, जो देवताओं की रक्षा में तत्पर हैं और नेताहीन जनों के लिए जो (एकमात्र) पथप्रदर्शक हैं, जिन्होंने गजासुर नामक दैत्य का संहार किया है, विनम्र जनों के अमङ्गल को शीघ्र नष्ट करने वाले ऐसे विनायक श्री गणेश जी को मैं प्रणाम करता हूँ।।१।।

नतेतरातिभीकरं नवोदितार्कभास्वरं,
नमत्सुरारिनिर्जरं नताधिकापदुद्धरम्।
सुरेश्वरं निधीश्वरं गजेश्वरं गणेश्वरं,
महेश्वरं तमाश्रये परात्परं निरन्तरम्।।२।।

अन्वय—*नतेतरातिभीकरम्, नवोदितार्कभास्वरम्, नमत्सुरारिनिर्जरम्, नता-धिकापदुद्धरम, सुरेश्वरम्, निधीश्वरम्, गजेश्वरम्, गणेश्वरम्, महेश्वरम्, परात्परम् तम् निरन्तरम् आश्रये।*

अर्थ—जो लोग नमन-नमस्कारादि नहीं करते हैं, उनके लिए अतिभयंकर स्वरूप वाले, नवोदित-सूर्य के समान उज्ज्वल वर्ण वाले, दानव व देवता लोग जिन्हें नमस्कार करते रहते हैं, इस प्रकार विनम्र जनों की भयंकर आपत्तियों को दूर करने वाले, देवताओं के भी ईश्वर, सभी प्रकार की सम्पत्तियों के

अधिष्ठाता, गजों के तथा गणों के स्वामी, महान् ऐश्वर्य-सम्पन्न उस परमात्मा रूप श्री गणेश जी का मैं निरन्तर आश्रय लेता हूँ।।२।।

समस्तलोकशंकरं निरस्तदैत्यकुञ्जरं,
दरेतरोदरं वरं वरेभवक्त्रमक्षरम्।
कृपाकरं क्षमाकरं मुदाकरं यशस्करं,
मनस्करं नमस्कृतां नमस्करोमि भास्वरम्।।३।।

अन्वय—*समस्तलोकशंकरम्, निरस्तदैत्यकुञ्जरम्, दरेतरोदरम्, वरम्, वरेभवक्त्रम्, अक्षरम्, कृपाकरम्, क्षमाकरम्, मुदाकरम्, यशस्करम्, नमस्कृताम्, मनस्करम् (तम्) भास्वरम्, (विनायकम्) नमस्करोमि।*

अर्थ—जो समस्त लोकों का कल्याण करने वाले हैं, जिन्होंने (गजासुर नामक) कुञ्जर दैत्य को समाप्त किया, जो विशाल उदर वाले (लम्बोदर) हैं, तथा सुन्दर हैं, जिनका मुख श्रेष्ठ गजराज की तरह है, ऐसे अविनश्वर, कृपा करने वाले, क्षमा करने वाले, आनन्द-प्रदाता, तथा यश को बढ़ाने वाले, श्रद्धापूर्वक नमस्कार करने वालों की मनःकामना को पूर्ण करने वाले उज्ज्वल स्वरूप श्री गणेश जी को मैं नमस्कार करता हूँ।।३।।

अकिंचनार्तिमार्जनं चिरन्तनोक्तिभाजनं,
पुरारिपूर्वनन्दनं सुरारिगर्वचर्वणम्।
प्रपञ्चनाशभीषणं, धनंजयादिभूषणम्,
कपोलदानवारणं भजे पुराणवारणम्।।४।।

अन्वय—*अकिंचनार्तिमार्जनम्, चिरन्तनोक्तिभाजनम् पुरारिपूर्वनन्दनम्, सुरारिगर्वचर्वणम्, प्रपञ्चनाशभीषणम्, धनञ्जयादिभूषणम्, कपोलदानवारणम्, (एतादृशम्) पुराणवारणम् (अहम्) भजे।*

अर्थ—जो (गणेश जी) निर्धनों की पीडा को दूर करते हैं, तथा प्राचीन (ऋषि तथा महर्षियों) की स्तुति के पात्र हैं, और शंकर जी के सर्वप्रथम (आनन्द देने वाले) पुत्र हैं, दैत्यों के गर्व का चर्वण (नाश) करने वाले हैं और अज्ञान के कार्यरूप इस प्रपञ्च के नाश करने में जिनका अत्यन्त भीषण स्वरूप है, जो धनञ्जय-आदि (अग्नि) से विभूषित हैं, और गण्डस्थलों में जिन्होंने मदजल को रोका हुआ है, ऐसे प्राचीन गजरूप उस गणेश जी का मैं ध्यान करता हूँ।।४।।

नितान्तकान्तदन्तकान्तिमन्तकान्तकात्मजं,
अचिन्त्यरूपमन्तहीनमन्तरायकृन्तनम्।

हृदन्तरे निरन्तरं वसन्तमेव योगिनां,
तमेकदन्तमेव तं विचिन्तयामि सन्ततम्।।५।।

अन्वय—*नितान्तकान्तदन्तकान्तिम्, अन्तकान्तकात्मजम्, अचिन्त्यरूपम्, अन्तहीनम्, अन्तरायकृन्तनम्, योगिनाम् हृदन्तरे निरन्तरम् वसन्तम् एव, तम्, (तादृशम्), तम् एव, एकदन्तम्, सन्ततम्, विचिन्तयामि।*

अर्थ—जिनके दाँतों की स्वच्छ प्रभा नितान्त सुन्दर है, और जो अन्तक मृत्यु के भी समापक शिव के आत्मज (पुत्र) हैं, जिनका रूप अचिन्तनीय है और जिनका कोई अन्त नहीं है, जो विघ्नों के विनाशक हैं, जो हमेशा योगियों के चित्त में रहते ही हैं ऐसे उस एकदन्त श्री गणेश जी का मैं निरन्तर ध्यान करता हूँ।।५।।

महागणेशपञ्चरत्नमादरेण योऽन्वहं,
प्रजल्पति प्रभातके हृदि स्मरन् गणेश्वरम्।
अरोगतामदोषतां सुसाहितीं सुपुत्रतां,
समाहितायुरष्टभूतिमभ्युपैति सोऽचिरात्।।६।।

अन्वय—*यः, अन्वहम्, प्रभातके, हृदि, गणेश्वरम्, स्मरन्, आदरेण, (पूर्वोक्तम्), (इदम्) महागणेशपञ्चरत्नम्, प्रजल्पति, सः, अचिरात् समाहितायुः (सन्) अरोगताम्, अदोषताम्, सुसाहितीम्, सुपुत्रताम्, (तथा च) अष्टभूतिम्, अभ्युपैति।*

अर्थ—जो (भक्त) प्रतिदिन प्रातःकाल अपने हृदय में गणेश्वर जी का स्मरण करते हुए, आदर व श्रद्धा के साथ इस पूर्वोक्त "महागणेशपञ्चरत्न", अर्थात् महान् गणाधिप के स्तुतिस्वरूप इन पाँच श्लोकों का पाठ करता है, वह शीघ्र ही स्वस्थ जीवन जीता हुआ, आरोग्य, निर्दोषता, सुसङ्गति तथा अच्छे पुत्र को प्राप्त करता है, साथ ही साथ (अणिमादि) जो आठ विभूतियाँ हैं, उन्हें भी प्राप्त करता है।।६।।

शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै नकाराय नमः शिवाय।।१।।

अन्वय—*नागेन्द्रहाराय, त्रिलोचनाय, भस्माङ्गरागाय, महेश्वराय, नित्याय, शुद्धाय, दिगम्बराय, तस्मै नकाराय शिवाय नमः।*

अर्थ—जो (शिव) नागराज (वासुकि) का हार पहिने हुए हैं, तीन नेत्रों वाले हैं, तथा भस्म (राख) को सारे शरीर में लगाये हुए हैं, इस प्रकार महान् ऐश्वर्य-सम्पन्न वे (शिव) नित्य-अविनाशी तथा शुद्ध हैं, दिशायें जिनके लिए वस्त्रों का कार्य करती हैं, अर्थात् वस्त्र आदि उपाधि से भी जो रहित हैं, ऐसे निरवच्छिन्न उस नकार-स्वरूप शिव को (मैं) नमस्कार करता हूँ।।१।।

मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय, नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय, तस्मै मकाराय नमः शिवाय।।२।।

अन्वय—*मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय, नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय, मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय, तस्मै, मकाराय, शिवाय, नमः।*

अर्थ—जो (शिव) आकाशगङ्गा मन्दाकिनी के पवित्र जल से संयुक्त (मृष्ट) चन्दन से सुशोभित हैं, और नन्दीश्वर तथा प्रमथनाथादि (गण विशेषों या सत् सम्पत्तियों) से ऐश्वर्यशाली हैं, जो मन्दार-पारिजात आदि अनेक पवित्र पुष्पों द्वारा पूजित हैं, (ऐसे) उस मकार-स्वरूप शिव को (मैं) नमस्कार करता हूँ।।२।।

शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्दसूर्याय, दक्षाध्वरनाशकाय।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय, तस्मै शिकाराय नमः शिवाय।।३।।

अन्वय—*शिवाय, गौरीवदनाब्जवृन्दसूर्याय, दक्षाध्वरनाशकाय, श्रीनीलकण्ठाय, वृषध्वजाय, तस्मै, शिकाराय, शिवाय, नमः।*

अर्थ—जो (शिव) स्वयं कल्याण-स्वरूप हैं, और जो पार्वती के मुख कमलों को विकसित करने के लिए सूर्य हैं, जो दक्ष-प्रजापति के यज्ञ को नष्ट करने वाले हैं, शोभासम्पन्न नील वर्ण का जिनका कण्ठ है, और जो वृष-ध्वज अर्थात् धर्म की पताकावाले हैं (ऐसे) उस शिकारस्वरूप शिव को (मैं) नमस्कार करता हूँ।।३।।

वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्य-मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय, तस्मै वकाराय नमः शिवाय।।४।।

अन्वय—*वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्यमुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय, चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय, तस्मै, वकाराय, शिवाय, नमः।*

अर्थ—वसिष्ठ, अगस्त्य, गौतम आदि श्रेष्ठ मुनीन्द्र वृन्दों से तथा देवताओं से, जिनका मस्तक हमेशा पूजित है, और जो चन्द्र-सूर्य व अग्नि रूप तीन

नेत्रों वाले हैं, (ऐसे) उस वकार-स्वरूप शिव को (मैं) नमस्कार करता हूँ।।४।।

यक्षस्वरूपाय जटाधराय, पिनाकहस्ताय सनातनाय।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय, तस्मै यकाराय नमः शिवाय।।५।।

अन्वय—*यक्षस्वरूपाय, जटाधराय, पिनाकहस्ताय, सनातनाय, दिव्याय, देवाय, दिगम्बराय, तस्मै, यकाराय, शिवाय, नमः।*

अर्थ—जो (शिव) यक्ष के रूप को धारण करते हैं, और लम्बी-लम्बी खूबसूरत जिनकी जटाये हैं, जिनके हाथ में 'पिनाक' धनुष है, जो सत् स्वरूप हैं, या सनातन हैं, दिव्यगुणसम्पन्न, उज्ज्वलस्वरूप होते हुए भी जो दिगम्बर हैं, (ऐसे) उस यकारस्वरूप शिव को (मैं) नमस्कार करता हूँ।।५।।

पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते।।६।।

अन्वय—*यः, शिवसन्निधौ, पुण्यम्, इदम्, पञ्चाक्षरम्, पठेत्, (सः) शिवलोकम्, अवाप्नोति, (तत्र) शिवेन, सह, मोदते।*

अर्थ—जो (भक्त) भगवान् शंकर के सन्निकट, इस पवित्र पञ्चाक्षर-स्तोत्र का पाठ करता है, वह शिवलोक को प्राप्त कर, भगवान् शंकर के साथ आनन्द प्राप्त करता है।।६।।

उपमन्युकृतं शिवस्तोत्रम्

जय शङ्कर पार्वतीपते मृड शम्भो शशिखण्डमण्डन।
मदनान्तक भक्तवत्सल प्रियकैलास दयासुधाम्बुधे।।१।।

अन्वय—*हे शङ्कर, हे पार्वतीपते, हे मृड, हे शम्भो, हे शशिखण्डमण्डन, हे भक्तवत्सल, हे प्रियकैलास, हे दयासुधाम्बुधे, (त्वम्) जय।*

अर्थ—हे शङ्कर! संसार के कल्याण करने वाले शिव जी, हे जगज्जननी पार्वती के पालक (अर्थात् भगवती पार्वती इस संसार की माता हैं, और आप उनके पति हैं तो फिर संसार के पिता हैं); हे मृड—सुख देने वाले, हे शम्भो! हे शशिखण्डमण्डन! अर्थात् चन्द्रमा की कला से सुशोभित सिर वाले, हे मदनान्तक! काम को भस्म करने वाले, हे भक्तवत्सल! हे प्रियकैलास! अर्थात्

कैलासवास को पसन्द करने वाले, हे दयासुधाम्बुधे! दया-रूप अमृत के सागर, आपकी जय हो अर्थात् आप सर्वोत्कृष्ट हैं, आपको नमस्कार है। (यहाँ भक्त का भगवान् के प्रति अपकृष्ट होना अर्थात् सिद्ध है, अतः व्यञ्जनावृत्ति से नमस्कार अभिव्यक्त होता है।)।१।।

सदुपायकथास्वपण्डितो हृदये दुःखशरेण खण्डितः।
शशिखण्डशिखण्डमण्डनं शरणं यामि शरण्यमीश्वरम्।।२।।

अन्वय–*(हे शम्भो) हृदये, दुःखशरेण, खण्डितः (अहम्) सदुपायकथासु अपण्डितः (अस्मि) (अतः) शशिखण्ड-शिखण्डमण्डनम्, शरण्यम्, ईश्वरम्, (त्वाम्), शरणम्, यामि।*

अर्थ–हे शम्भो! मेरा हृदय दुःखरूपी बाण से पीडित है, और मैं इस दुःख को दूर करने वाले किसी उत्तम उपाय को जानता भी नहीं हूँ। अतएव चन्द्रकला व शिखण्ड–मयूरपिच्छ का आभूषण बनाने वाले, शरणागत के रक्षक परमेश्वर आपकी शरण में हूँ। अर्थात् आप ही मुझे इस भयंकर संसार के दुःख से दूर करें।।२।।

महतः परितः प्रसर्पतस्तमसो दर्शनभेदिनो भिदे।
दिननाथ इव स्वतेजसा हृदयव्योम्नि मनागुदेहि नः।।३।।

अन्वय–*(हे शम्भो) नः हृदयव्योम्नि, परितः प्रसर्पतः दर्शनभेदिनः महतः तमसः दिननाथ, इव, स्वतेजसा, भिदे, मनाक्, उदेहि।*

अर्थ–हे शम्भो! हमारे हृदयाकाश में, चारों ओर घिरे हुए, ज्ञानदृष्टि को रोकने वाले, इस घोर अज्ञानान्धकार को सूर्य की तरह अपने तेज से दूर करने के लिए आप थोड़ा तो प्रकट हो जाओ। (सूर्य जिस प्रकार अपने आप प्रकाश से रात्रिजन्य अन्धकार को दूर कर देता है, उसी प्रकार आप भी यदि हमारे हृदय में प्रकट रहेंगे अर्थात् हमारे ध्यान में रहेंगे तो ज़रूर हमारा भी कुछ न कुछ अज्ञानान्धकार दूर हो जायेगा)।।३।।

न वयं तव चर्मचक्षुषा पदवीमप्युपवीक्षितुं क्षमाः।
कृपयाऽभयदेन चक्षुषा सकलेनेश विलोकयाशु नः।।४।।

अन्वय–*हे ईश! वयम्, चर्मचक्षुषा, तव, पदवीम्, अपि, उपवीक्षितुम् न क्षमाः, (अतः) कृपया, अभयदेन, सकलेन, चक्षुषा, नः, आशु, विलोकय।*

अर्थ–हे ईश! हम इन चर्मचक्षु अर्थात् स्थूल नेत्रों से (तुम्हारे धाम तक पहुँचने वाले) रास्ते को भी नहीं देख सकते हैं, अतः कृपा करके आप प्राणियों को अभय प्रदान करने वाली अपनी पूरी दयादृष्टि से हमें अच्छी

तरह शीघ्र देखें। तात्पर्य यह है कि जब हम अपनी स्थूल दृष्टि (सीधे सीधे विचारों) से आपके दर्शन कराने वाले मार्ग तक को नहीं देख सकते, तब साक्षात् आपका दर्शन कैसे कर सकते हैं! अतः हे भगवन्! आप हमें अपनी कृपाभरी पूरी निगाहों से इस प्रकार देखें कि जिससे हमारे में आपके दर्शन करने की क्षमता आ जाय।।४।।

त्वदनुस्मृतिरेव पावनी स्तुतियुक्ता न हि वक्तुमीश सा।
मधुरं हि पयः स्वभावतो ननु कीदृक् सितशर्करान्वितम्।।५।।

अन्वय—*हे ईश! त्वदनुस्मृतिः, एव, पावनी (अस्ति) न हि स्तुतियुक्ता, सा वक्तुम्, हि, स्वभावतः पयः मधुरम्, ननु, (पुनः) सितशर्करान्वितम् (तत्) कीदृक्।*

अर्थ—हे ईश! आपका स्मरण ही परम पवित्र है, तब स्तुति-सहित स्मरण की पवित्रता के बारे में कहना भी संभव नहीं। जैसे दूध स्वभाव से ही मीठा है; यदि उसमें चीनी डाल दी जाय तो फिर कहना ही क्या! तात्पर्य यह है कि आपके स्मरण कीर्तन व ध्यान से ही जब इतना आनन्द मिलता है, तो फिर प्रशंसात्मक पद्यों के द्वारा स्तुति के द्वारा या कविता के रूप में कहा गया आपके गुणों का गान कितना आनन्द प्रदान करेगा, यह कहा नहीं जा सकता है। स्वभावतः मधुर दूध में चीनी डाल देने से जिस प्रकार उसका माधुर्य बढ़ जाता है इसी प्रकार अच्छे शब्दों में कीर्तित भगवन्नाम भी अधिक आनन्द प्रदान करता है।।५।।

सविषोऽप्यमृतायते भवाञ्छवमुण्डाभरणोऽपि पावनः।
भव एव भवान्तकः सतां समदृष्टिर्विषमेक्षणोऽपि सन्।।६।।

अन्वय—*(हे शम्भो) भवान्, सविषः, अपि, अमृतायते, शवमुण्डाभरणः, अपि (भवान्) पावनः, भव, एव, सताम्, भवान्तकः, विषमेक्षणः, सन्, अपि, समदृष्टिः (अस्ति)।*

अर्थ—हे शम्भो! आप विषसहित होते हुए भी अमृत के समान हैं, शवों के मुण्डों से सुशोभित होते हुए भी पवित्र हैं। स्वयं (जगत् के उत्पादक) भव होते हुए भी, सज्जनों के या सन्तों के भव (सांसारिक बन्धन) को दूर करने वाले हैं। विषम संख्या के अर्थात् सूर्य, अग्नि, चन्द्र—तीन नेत्रों वाले होते हुए भी समदृष्टि अर्थात् पक्षपात-रहित हैं।।६।।

अपि शूलधरो निरामयो दृढवैराग्यरतोऽपि रागवान्।
अपि भैक्ष्यचरो महेश्वरश्चरितं चित्रमिदं हि ते प्रभो।।७।।

अन्वय्—*हे प्रभो! (त्वम्), शूलधरः, अपि निरामयः, (असि), दृढवैराग्यरतः, अपि रागवान् (असि), भैक्ष्यचरः, अपि, महेश्वरः, (असि) हि, ते, इदम्, चरितम्, चित्रम् (अस्ति)।*

अर्थ—हे प्रभो! आप शूलधर—त्रिशूल को धारण करने वाले, (शूल नामक रोग विशेष से युक्त) होते हुए भी, निरामय—नीरोग हो अर्थात् आप संसार के जन्म जरा मरणादि रोगों से अथवा आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिकादि द्वन्द्वों से दूर हैं। दृढवैराग्य से युक्त होते हुए भी रागवाले हो, अर्थात् भक्तों पर कृपारूप राग से युक्त हो। इसी लिए जल्दी प्रसन्न हो जाते हो, अन्यथा कठोर दिलवाले का तो जल्दी प्रसन्न होना मुश्किल है। अथवा 'राग' यह भी आनन्द की ही अन्यतम मात्रा है जिससे आप भक्तों को संतुष्ट करते हैं। भगवान् शंकर को आशुतोष कहने का कदाचित् यही रहस्य हो। स्वयं भिक्षावृत्ति वाले होते हुए भी महान् ऐश्वर्य-सम्पन्न आप हैं, आपका यह (विरोधाभासात्मक) जो चरित है, वह बड़ा ही आश्चर्यजनक है।।७।।

वितरत्यभिवाञ्छितं दृशा परिदृष्टः किल कल्पपादपः।
हृदये स्मृत एव धीमते नमतेऽभीष्टफलप्रदो भवान्।।८।।

अन्वय—*कल्पपादपः, दृशा, परिदृष्टः (सन्), अभिवाञ्छितम्, वितरति, किल, (परन्तु) भवान् हृदये, स्मृतः, एव, नमते, धीमते, अभीष्टफलप्रदः (अस्ति)।*

अर्थ—कल्पवृक्ष तो आखों से देखे जाने पर ही किसी मनोवाञ्छित वस्तु को प्रदान करता है, परन्तु आप तो केवल हृदय में स्मरण से ही नमस्कार करने वाले सद्विचारसम्पन्न जन के लिए अभीष्ट फल प्रदान करते हैं।।८।।

सहसैव भुजङ्गपाशवान् विनिगृह्णाति न यावदन्तकः।
अभयं कुरु तावदाशु मे गतजीवस्य पुनः किमौषधैः।।९।।

अन्वय—*भुजङ्गपाशवान्, अन्तकः, यावत्, सहसैव, न विनिगृह्णाति, तावत्, आशु मे अभयम्, कुरु, (अन्यथा) गतजीवस्य, पुनः औषधैः, किम्।*

अर्थ—भुजङ्ग के समान भयंकर पाशवाला यमराज, जब तक अकस्मात् (मुझे) ग्रहण नहीं कर लेता है, अर्थात् मेरे प्राणों का हरण नहीं कर लेता है, तब तक जल्दी ही मेरे लिए आप अभयदान दें, अर्थात् मोक्ष प्रदान करें। नहीं तो फिर जीवन समाप्त होने के बाद तो औषधि से भी कुछ बनने का नहीं।।९।।

सविषैरिव भोगपन्नगैर्विषयैरेभिरलं परिक्षतम्।
अमृतैरिव संभ्रमेण मामभिषिञ्चाशु दयावलोकनैः।।१०।।

अन्वय–*सविषैः, भोगपन्नगैः, इव, एभिः, विषयैः, संभ्रमेण, अलम्, परिक्षतम्, माम्, अमृतैः, इव, दयावलोकनैः, आशु, अभिषिञ्च।*

अर्थ–विषधारी भारी साँपों के समान इन सांसारिक विषयों ने मुझे भयभीत कर रखा है, अतः इनसे मैं परेशान हूँ। कृपया अमृत के समान (जीवनदायक अथवा मुक्तिसाधक) अपने कृपाकटाक्षों के अवलोकन के द्वारा मुझे बचाइए।।१०।।

मुनयो बहवोऽद्य धन्यतां गमिताः स्वाभिमतार्थदर्शिनः।
करुणाकर येन तेन मामवसन्नं ननु पश्य चक्षुषा।।११।।

अन्वय–*हे करुणाकर! स्वाभिमतार्थदर्शिनः, बहवः, मुनयः, येन (अवलोकनेन) धन्यताम्, गमिताः, अद्य, अवसन्नम्, माम्, तेन, चक्षुषा, ननु, पश्य।*

अर्थ–हे करुणानिधान! अपने-अपने अभीष्ट अर्थ (प्रयोजन) को देखने वाले बहुत से मुनियों को आपने अपने जिस कृपावलोकन (दयादृष्टि) के द्वारा धन्यता-पूर्ण बनाया, आज अवसन्न–नाश को प्राप्त हुए मुझको भी, उसी कृपापूर्ण दृष्टि से निश्चित देखिए।।११।।

प्रणमाम्यथ यामि चापरं शरणं कं कृपणाभयप्रदम्।
विरहीव विभो प्रियामयं परिपश्यामि भवन्मयं जगत्।।१२।।

अन्वय–*हे विभो! त्वाम्, अथ, प्रणमामि, कृपणाभयप्रदम्, अपरम्, च, कम्, शरणम्, यामि (हे विभो!) विरही प्रियामयम् इव (अहम्) जगत् भवन्मयम् परिपश्यामि।*

अर्थ–हे प्रभो! अब मैं आपको प्रणाम करता हूँ, और आपकी शरण लेता हूँ। दीनों को अभयदान देने वाले आपको छोड़कर और (अन्य) किसकी शरण में मैं जाऊँ? कोई विरही जिसप्रकार सारे संसार को प्रियामय देखता है, हे विभो! उसी प्रकार मैं भी (आपके विरह में) इस समस्त चराचर जगत् को आपमय अर्थात् शिवमय देखता हूँ। जैसे कोई रागी अपनी प्रिया में अत्यन्त आसक्त होता है, और उस प्रेमास्पद प्रिया के वियोग में फिर वह केवल प्रियामय ही सब कुछ देखता है, अन्य किसी पदार्थ में उसकी रुचि नहीं होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि संसार में उसके लिए प्रिया से उत्कृष्ट वस्तु फिर कोई नहीं है, दर्शन की भाषा में हम जिसे 'प्रियाद्वैत' भी कह सकते हैं; इसी प्रकार शिवभक्त भी जब शिव को ही परमप्रेमास्पद मानता है, एक क्षण भी उससे वियुक्त नहीं होना चाहता है; उसके लिए भी फिर यह संसार तो

नहीं के समान है, अर्थात् सर्वत्र 'शिवाद्वैत' भावना ही है।।१२।।

बहवो भवताऽनुकम्पिताः किमितीशान न माऽनुकम्पसे।
दधता किमु मन्दराचलं परमाणुः कमठेन दुर्धरः।।१३।।

अन्वय—*हे ईशान! भवता, बहवः अनुकम्पिताः, किमिति, मा (माम्) न अनुकम्पसे, मन्दराचलम्, दधता कमठेन, परमाणुः, दुर्धरः, किमु!*

अर्थ—हे शम्भो! आपने बहुतों के ऊपर अनुकम्पा की है, फिर क्यों आप मेरे ऊपर अनुकम्पा नहीं करते हैं? जो कमठ—कच्छुवा अपनी पीठ पर इतने बड़े मन्दराचल को धारण कर सकता है, तो फिर वह एक परमाणु को धारण नहीं कर सकता क्या?

अर्थात् जिस प्रकार बहुत बड़े मन्दराचल को धारण करने वाले कमठ के लिए परमाणु धारण करना कोई कठिन नहीं है, इसी प्रकार इतने बड़े संसार का उद्धार करने वाले आपके लिए भी, परमाणु-तुल्य मेरा उद्धार करना भी आसान है।।१३।।

अशुचिं यदि माऽनुमन्यसे किमिदं मूर्ध्नि कपालदाम ते।
उत शाठ्यमसाधुसङ्गिनं विषलक्ष्मासि न किं द्विजिह्वधृक्।।१४।।

अन्वय—*(हे विभो) यदि मा (माम्) अशुचिम्, अनुमन्यसे, (तर्हि) ते, मूर्ध्नि, इदम्, कपालदाम, किम् (न अशुचि?) उत, शाठ्यम्, असाधुसङ्गिनम्, (माम् अनुमन्यसे) (तदा) द्विजिह्वधृक् (त्वम्) विषलक्ष्मा, न, असि, किम्?*

अर्थ—(भक्त अपने प्रभु को इस पद्य में उलाहना देकर कह रहा है कि)—हे विभो! यदि आप मनुष्य होने के नाते मुझे अपवित्र समझते हैं, तो फिर आपने अपने मस्तक में नरकपालों की यह अपवित्र माला कैसे पहन ली, क्या यह अपवित्र नहीं है? अथवा मुझे शठ और असज्जनों का साथी समझकर मेरा उद्धार नहीं कर रहे हैं, मेरी उपेक्षा कर रहे हैं, तो फिर आप क्या विष से लांछित और द्विजिह्व (साँप)-धारी नहीं हैं।।१४।।

क्व दृशं विदधामि किं करोम्यनुतिष्ठामि कथं भयाकुलः।
क्व नु तिष्ठसि रक्ष रक्ष मामयि शम्भो शरणागतोऽस्मि ते।।१५।।

अन्वय—*हे शम्भो! (अहम्) क्व, दृशम्, विदधामि, किम्, करोमि, भयाकुलः, (सन्) कथम्, अनुतिष्ठामि, अयि! (त्वम्) क्व नु, तिष्ठसि, माम्, रक्ष, रक्ष, (अहम्) ते, शरणागतः, अस्मि।*

अर्थ—हे शम्भो! मैं अब किधर देखूँ (दृष्टि लगाऊँ) क्या करूँ, भयभीत

मैं कैसे यहाँ रहूँ? हे प्रभो! आप कहाँ हैं? मेरी रक्षा करें। मैं (अब) आपकी ही शरण में हूँ।।१५।।

विलुठाम्यवनौ किमाकुलः किमुरो हन्मि शिरश्छिनद्मि वा।
किमु रोदिमि रारटीमि किं कृपणं मां न यदीक्षसे प्रभो।।१६।।

अन्वय–*हे प्रभो ! (अहम्) आकुलः, सन्, किम्, अवनौ, विलुठामि, किम्, उरः हन्मि, वा, शिरः, छिनद्मि, किमु, रोदिमि, किम्, रारटीमि, यत् (त्वम्) कृपणम्, माम्, न ईक्षसे।*

अर्थ–हे प्रभो! इस प्रकार आपके कृपाकटाक्षों के अभाव में, अर्थात् आपकी दयादृष्टि के न मिलने से अब मैं क्या करूँ? क्या व्याकुल होकर ज़मीन में लोट जाऊँ, अथवा अपनी छाती पीटूँ, या शिर को ही काट डालूँ, क्या रोता रहूँ या गिड़गिड़ाता रहूँ? समझ में नहीं आता है कि मैं क्या करूँ। इस प्रकार के दीन मुझको आप क्यों नहीं देखते हैं?

(भगवान् के विरह में भक्त अपने को यहाँ निःसहाय समझकर तड़प रहा है, पद्य के प्रत्येक पद से उसकी वेदना (तड़पन) अभिप्रकट होती है)।।१६।।

शिव सर्वग शर्व शर्मदं प्रणतो देव दयां कुरुष्व मे।
नम ईश्वर नाथ दिक्पते, पुनरेवेश नमो नमोऽस्तु ते।।१७।।

अन्वय–*हे शिव! हे सर्वग! हे शर्व! (अहम्) शर्मदम्, (त्वाम्) प्रणतः, (अस्मि), हे देव! मे, दयाम्, कुरुष्व, हे ईश्वर! हे नाथ! (ते) नमः, हे दिक्पते! हे ईश! पुनः, एव, ते, नमः, नमः, अस्तु।*

अर्थ–हे शिव! (कल्याणकारक) हे सर्वग! (सर्वत्र स्थित व्यापक) हे शर्व! (जगत् के संहारक) मैं सुख देने वाले आपको प्रणाम करता हूँ। हे देव! आप मेरे ऊपर दया करें। हे ईश्वर! हे नाथ! आपको नमस्कार है। हे दिशाओं के स्वामी! मैं बार बार आपको नमस्कार करता हूँ।।

शरणं तरुणेन्दुशेखरः शरणं मे गिरिराजकन्यका।
शरणं पुनरेव तावुभौ शरणं नान्यदुपैमि दैवतम्।।१८।।

अन्वय–*तरुणेन्दुशेखरः, मे, शरणम् (अस्ति) गिरिराजकन्यका (च) मे शरणम् (अस्ति) पुनरेव, तौ, उभौ (मे) शरणम्, (स्तः) (अहम्) अन्यत्, दैवतम्, शरणम्, न उपैमि।*

अर्थ–अर्धचन्द्र के शिरोभूषण वाले अर्थात् जिनकी जटाओं में अर्धचन्द्र या बालचन्द्र सुशोभित है, ऐसे भगवान् शंकर ही मेरे एकमात्र आश्रय (रक्षा करने वाले) हैं। और पर्वतराज हिमालय की कन्या भगवती पार्वती ही मेरी

रक्षा करने वाली हैं। मैं केवल भगवान् शंकर व भगवती पार्वती जी के शरण में (ओट में) हूँ अर्थात् ये दो देवता ही मेरे एकमात्र रक्षक हैं, इनके अतिरिक्त मैं किसी अन्य देवता की शरण में नहीं जाता।।१८।।

उपमन्युकृतं स्तवोत्तमं जपतः शम्भुसमीपवर्तिनः।
अभिवाञ्छितभाग्यसम्पदः परमायुः प्रददाति शङ्करः।।१६।।

अन्वय–उपमन्युकृतम्, (इदम्), स्तवोत्तमम्, शम्भुसमीपवर्तिनः जपतः, (भक्तस्य) अभिवाञ्छितभाग्यसम्पदः, (भवन्ति), शङ्करः, (तस्मै) परमायुः, प्रददाति।

अर्थ–उपमन्यु के द्वारा रचित इस उत्तम स्तोत्र का पाठ शंभु के समीप रहते हुए जो (भक्त) करता है, उसे अभीष्ट भाग्य-सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं, और भगवान् शङ्कर उसे पूर्ण आयु भी प्रदान करते हैं।१६।।

उपमन्युकृतं स्तवोत्तमं प्रजपेद्यस्तु शिवस्य सन्निधौ।
शिवलोकमवाप्य सोऽचिरात्, सह तेनैव शिवेन मोदते।।२०।।

अन्वय–उपमन्युकृतम्, (इदम्), स्तवोत्तमम्, यस्तु, शिवसन्निधौ प्रजपेत्, सः, अचिरात् शिवलोकम् अवाप्य, तेन, एव, शिवेन, सह, मोदते।

अर्थ–उपमन्यु के द्वारा रचित इस उत्तम स्तोत्र का जो (भक्त) भगवान् शङ्कर के सन्निकट पाठ करता है, वह शीघ्र ही शिवलोक को प्राप्त कर, वहाँ उन्हीं भगवान् शङ्कर के साथ आनन्द को प्राप्त करता है।।२०।।

द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्तोत्रम्

सौराष्ट्रदेशे विशदेऽतिरम्ये ज्योतिर्मयं चन्द्रकलावतंसम्।
भक्तिप्रदानाय कृपावतीर्णस्तं सोमनाथं शरणं प्रपद्ये।।१।।

अन्वय–(यः) भक्तिप्रदानाय, अतिरम्ये, विशदे, सौराष्ट्रदेशे, कृपावतीर्णः, तम्, ज्योतिर्मयम्, चन्द्रकलावतंसम्, सोमनाथम्, शरणम् प्रपद्ये।।१।।

अर्थ–जो भगवान् शंकर अपनी भक्ति प्रदान करने के लिए परमरमणीय व स्वच्छ सौराष्ट्र प्रदेश (गुजरात) में कृपा करके, अवतीर्ण हुए, मैं उन्हीं ज्योतिर्मय लिङ्गस्वरूप, चन्द्रकला को आभूषण बनाये हुए, भगवान् श्री सोमनाथ की शरण में जाता हूँ।।१।।

श्रीशैलशृङ्गे विबुधातिसङ्गे तुलाद्रितुङ्गेऽपि मुदा वसन्तम्।
तमर्जुनं मल्लिकपूर्वमेकं नमामि संसारसमुद्रसेतुम्।।२।।

अन्वय–तुलाद्रितुङ्गे विबुधातिसङ्गे, श्रीशैलशृङ्गे, अपि, मुदा, वसन्तम्, एकम्, संसारसमुद्रसेतुम्, तम्, मल्लिकपूर्वम्, अर्जुनम्, (अहम्), नमामि।

अर्थ–ऊँचाई की तुलना में जो अन्य पर्वतों से ऊँचा है, जिसमें देवताओं का समागम होता रहता है, ऐसे श्रीशैल के शिखर पर भी जो प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं, और जो संसार सागर को पार करने के लिए एकमात्र (सेतु) पुल के समान हैं, उन्हीं श्री मल्लिकार्जुन भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।।२।।

अवन्तिकायां विहितावतारं मुक्तिप्रदानाय च सज्जनानाम्।
अकालमृत्योः परिरक्षणार्थं वन्दे महाकालमहासुरेशम्।।३।।

अन्वय–सज्जनानाम्, मुक्तिप्रदानाय, च, अवन्तिकायाम्, विहितावतारम्, महाकाल-महासुरेशम्, अकालमृत्योः परिरक्षणार्थम् (अहम्) वन्दे।

अर्थ–जो भगवान् शङ्कर सन्तजनों को मोक्ष प्रदान करने के लिए अवन्तिकापुरी (उज्जैन) में अवतार धारण किए, अकाल मृत्यु से बचने के लिए उन (देवों के भी देव) महाकाल नाम से विख्यात महादेव जी को मैं नमस्कार करता हूँ।।३।।

कावेरिकानर्मदयोः पवित्रे समागमे सज्जनतारणाय।
सदैव मान्धातृपुरे वसन्तमोंकारमीशं शिवमेकमीडे।।४।।

अन्वय–सज्जनतारणाय, कावेरिकानर्मदयोः, पवित्रे, समागमे, मान्धातृपुरे, सदा, एव, वसन्तम् एकम्, ओंकारम्, ईशम्, शिवम् (अहम्) ईडे।

अर्थ–जो भगवान् शङ्कर! सज्जनों को इस संसार सागर से पार उतारने के लिए कावेरी और नर्मदा के पवित्र सङ्गम में स्थित मान्धाता नगरी में सदा निवास करते हैं, उन्हीं अद्वितीय 'ओंकारेश्वर' नाम से प्रसिद्ध श्री शिव की मैं स्तुति करता हूँ।।४।।

पूर्वोत्तरे प्रज्वलिकानिधाने सदा वसन्तं गिरिजासमेतम्।
सुरासुराराधितपादपद्मं श्रीवैद्यनाथं तमहं नमामि।।५।।

अन्वय–पूर्वोत्तरे, प्रज्वलिकानिधाने, सदा, गिरिजासमेतम्, वसन्तम्, सुरासुराराधितपादपद्मम्, तम्, श्रीवैद्यनाथम्, अहम्, नमामि।

अर्थ–जो भगवान् शङ्कर पूर्वोत्तर दिशा में चिताभूमि (वैद्यनाथ धाम) के अन्दर सदा ही पार्वती सहित विराजमान हैं, और देवता व दानव जिनके चरणकमलों की आराधना करते हैं, उन्हीं 'श्री वैद्यनाथ' नाम से विख्यात शिव को मैं प्रणाम करता हूँ।।५।।

याम्ये सदङ्गे नगरेऽतिरम्ये विभूषिताङ्गं विविधैश्च भोगैः।
सद्भक्तिमुक्तिप्रदमीशमेकं श्रीनागनाथं शरणं प्रपद्ये।।६।।

अन्वय–याम्ये, अतिरम्ये, सदङ्गे नगरे, (दारुकावने) विविधैः, भोगैः, च, विभूषिताङ्गम्, सद्भक्तिमुक्तिप्रदम्, एकम्, श्रीनागनाथम्, ईशम्, (अहम्), शरणम्, प्रपद्ये।

अर्थ–जो भगवान् शङ्कर, दक्षिण दिशा में स्थित, अत्यन्त रमणीय सदङ्ग नामक नगर (दारुकावन) में अनेक प्रकार के भोगों से, अथवा सर्पों से विभूषित हैं, जो एकमात्र सुन्दर (परा) भक्ति तथा मुक्ति को प्रदान करते हैं, उन्हीं अद्वितीय श्री नागनाथ (नागेश) नामक शिव की मैं शरण में जाता हूँ।।६।।

महाद्रिपार्श्वे च तटे रमन्तं सम्पूज्यमानं सततं मुनीन्द्रैः।
सुरासुरैर्यक्षमहोरगाद्यैः केदारमीशं शिवमेकमीडे।।७।।

अन्वय–महाद्रिपार्श्वे, (मन्दाकिन्याः) तटे, च, मुनीन्द्रैः, सततम्, सम्पूज्यमानम्, रमन्तम्, (तथा) सुरासुरैः, यक्षमहोरगाद्यैः, (च) (सम्पूज्यमानम्) एकम्, शिवम्, केदारम्, ईशम्, (अहम्) ईडे।

अर्थ–जो भगवान् शङ्कर पर्वतराज हिमालय के समीप, मन्दाकिनी के तट पर स्थित केदार-शृङ्ग (केदारखण्ड) नामक शिखर पर निवास करते हैं, तथा मुनीश्वरों द्वारा जो हमेशा पूजित हैं; देवता असुर, यक्ष, किन्नर व नाग आदि भी जिनकी हमेशा पूजा किया करते हैं, उन्हीं अद्वितीय, कल्याणकारी, केदारनाथ नामक शिव की मैं स्तुति करता हूँ।।७।।

सह्याद्रिशीर्षे विमले वसन्तं गोदावरीतीरपवित्रदेशे।
यद्दर्शनात् पातकमाशु नाशं प्रयाति तं त्र्यम्बकमीशमीडे।।८।।

अन्वय–गोदावरीतीरपवित्रदेशे, विमले, सह्याद्रिशीर्षे, वसन्तम्, यद्दर्शनात्, पातकम्, आशु, नाशम्, प्रयाति, तम्, त्र्यम्बकम्, ईशम् (अहम्) इडे।

अर्थ–जो भगवान् शङ्कर, गोदावरी नदी के पवित्र तट पर स्थित स्वच्छ सह्यपर्वत के उत्तम स्थल पर निवास करते हैं, जिनके दर्शन से शीघ्र सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, उन्हीं त्र्यम्बकेश्वर भगवान् की मैं स्तुति करता हूँ।।८।।

सुताम्रपर्णीजलराशियोगे निबध्य सेतुं विशिखैरसंख्यैः।
श्रीरामचन्द्रेण समर्पितं तं रामेश्वराख्यं नियतं नमामि।।९।।

अन्वय–सुताम्रपर्णीजलराशियोगे, श्रीरामचन्द्रेण, असंख्यैः, विशिखैः, सेतुम्, निबध्य, समर्पितम्, तम्, रामेश्वराख्यम्, नियतम्, नमामि।

अर्थ–जो भगवान् शङ्कर, सुन्दर ताम्रपर्णी नामक नदी व समुद्र के सङ्गम

में, श्री रामचन्द्र जी के द्वारा, अनेक बाणों से (या वानरों द्वारा) पुल बाँधकर, स्थापित किये गये हैं, उन्हीं श्रीरामेश्वर नामक शिव को मैं नियम से प्रणाम करता हूँ।।९।।

यो डाकिनीशाकिनिकासमाजे निषेव्यमाणः पिशिताशनैश्च।
सदैव भीमादिपदप्रसिद्धं तं शङ्करं भक्तहितं नमामि।।१०।।

अन्वय—यो डाकिनीशाकिनिकासमाजे, पिशिताशनैः, च, सदैव, निषेव्यमाणः, तम्, भक्तहितम्, भीमादिपदप्रसिद्धम्, शङ्करम्, (अहम्) नमामि।

अर्थ—जो भगवान् शङ्कर डाकिनी और शाकिनी समुदाय में प्रेतों के द्वारा सदैव सेवित होते हैं, अथवा डाकिनी नामक स्थान में शाकिनी समुदाय में प्रेतों द्वारा जो सेवित होते हैं, उन्हीं भक्तहितकारी भीमशङ्कर नाम से प्रसिद्ध शिव को मैं प्रणाम करता हूँ।।१०।।

सानन्दमानन्दवने वसन्तमानन्दकन्दं हतपापवृन्दम्।
वाराणसीनाथमनाथनाथं श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये।।११।।

अन्वय—आनन्दवने, सानन्दम्, वसन्तम्, आनन्दकन्दम्, हतपापवृन्दम्, अनाथनाथम्, वाराणसीनाथम्, श्रीविश्वनाथम्, (अहम्), शरणम्, प्रपद्ये।

अर्थ—जो भगवान् शङ्कर आनन्दवन (काशी क्षेत्र) में आनन्दपूर्वक निवास करते हैं, जो परमानन्द के निदान (आदिकारण) हैं, और जो पाप-समूह का नाश करने वाले हैं, ऐसे अनाथों के नाथ, काशीपति श्री विश्वनाथ की मैं शरण में जाता हूँ।।११।।

इलापुरे रम्यविशालकेऽस्मिन् समुल्लसन्तं च जगद्वरेण्यम्।
वन्दे महोदारतरस्वभावं घृष्णेश्वराख्यं शरणं प्रपद्ये।।१२।।

अन्वय—अस्मिन्, रम्यविशालके, इलापुरे, समुल्लसन्तम्, जगद्वरेण्यम्, च, (तम्), (अहम्) वन्दे, (एतादृशम्) महोदारतरस्वभावम्, (तम्) घृष्णेश्वराख्यम् (अहम्) शरणम्, प्रपद्ये।

अर्थ—इलापुर (एलोरा) नामक इस विशाल रमणीय स्थान में जो भगवान् शङ्कर विराजमान हैं, संसार में सर्वश्रेष्ठ उस शङ्कर को मैं प्रणाम करता हूँ, और अत्यन्त उदार स्वभाव वाले उस घृष्णेश्वर नामक ज्योतिर्मय भगवान् की मैं शरण में जाता हूँ।।१२।।

ज्योतिर्मयद्वादशलिङ्गकानां शिवात्मनां प्रोक्तमिदं क्रमेण।
स्तोत्रं पठित्वा मनुजोऽतिभक्त्या फलं तदालोक्य निजं भजेच्च।।१३।।

अन्वय—मनुजः, शिवात्मनाम्, ज्योतिर्मय-द्वादशलिङ्गकानाम्, क्रमेण,

प्रोक्तम्, इदम्, स्तोत्रम्, अतिभक्त्या, पठित्वा, तदा, निजम्, (स्वकीयम्), आलोक्य फलम्, च, भजेत्।

अर्थ—जिन्हें क्रमशः ऊपर कहा जा चुका है, इन ज्योतिर्मय मंगलस्वरूप द्वादश लिङ्गों के इस स्तोत्रका जो मनुष्य अत्यन्त भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह स्वयं द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों के दर्शन के फल को पाठमात्र से प्राप्त कर लेता है।।१३।।

लिङ्गाष्टकम्

ब्रह्ममुरारिसुरार्चितलिङ्गम्, निर्मलभासितशोभितलिङ्गम्।
जन्मजदुःखविनाशकलिङ्गम्, तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम्।।१।।

अन्वय—(अहम्) तत्, सदाशिवलिङ्गम्, प्रणमामि, (यच्च) ब्रह्ममुरारिसुरार्चितलिङ्गम्, निर्मलभासित-शोभितलिङ्गम्, जन्मजदुःखविनाशकलिङ्गम्, (अस्ति)।

अर्थ—मैं भगवान् सदाशिव के उस लिङ्ग को प्रणाम करता हूँ, जो लिङ्ग ब्रह्मा, विष्णु व अन्य देवताओं से भी पूजित है, जो निर्मल कान्ति से सुशोभित है, तथा जन्म, जरा आदि दुःखों को दूर करने वाला है।।१।।

देवमुनिप्रवरार्चितलिङ्गम्, कामदहं करुणाकरलिङ्गम्।
रावणदर्पविनाशनलिङ्गम्, तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम्।।२।।

अन्वय—(अहम्), तत्, सदाशिवलिङ्गम्, प्रणमामि, (यच्च) देवमुनिप्रवरार्चितलिङ्गम्, कामदहम्, करुणाकरलिङ्गम्, रावणदर्पविनाशनलिङ्गम्, (अस्ति)।

अर्थ—मैं उस भगवान् सदाशिव के लिङ्ग को प्रणाम करता हूँ, जो लिङ्ग देवताओं व श्रेष्ठ मुनियों द्वारा पूजित है, जिसने (क्रोधानल से) कामदेव को भस्म कर दिया, जो शिवलिङ्ग दया का सागर है, और जिसने लङ्कापति रावण के भी दर्प का नाश किया है।।२।।

सर्वसुगन्धिसुलेपितलिङ्गम्, बुद्धिविवर्धनकारणलिङ्गम्।
सिद्धसुरासुरवन्दितलिङ्गम्, तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम्।।३।।

अन्वय—(अहम्) तत्, सदाशिवलिङ्गम्, प्रणमामि, (यच्च) सर्वसुगन्धि-सुलेपितलिङ्गम्, बुद्धिविवर्धनकारणलिङ्गम्, सिद्धसुरासुरवन्दितलिङ्गम्, (अस्ति)।

अर्थ—मैं भगवान् सदाशिव के उस लिङ्ग को प्रणाम करता हूँ, जो सभी प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों से लिप्त है, अर्थात् सुगन्धयुक्त नाना द्रव्यों से पूजित है, और जिसका पूजन व भजन बुद्धि के विकास में एकमात्र कारण है, जिसकी पूजा सिद्ध देव व दानव हमेशा करते रहते हैं।।३।।

कनकमहामणिभूषितलिङ्गम्, फणिपतिवेष्टितशोभितलिङ्गम्।
दक्षसुयज्ञविनाशनलिङ्गम्, तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम्।।४।।

अन्वय—(अहम्) तत्, सदाशिवलिङ्गम्, प्रणमामि, (यच्च) कनकमहामणिभूषितलिङ्गम्, फणिपतिवेष्टितशोभितलिङ्गम्, दक्षसुयज्ञविनाशनलिङ्गम्, (अस्ति)।

अर्थ—मैं भगवान् सदाशिव के उस लिङ्ग को प्रणाम करता हूँ, जो लिङ्ग सुवर्ण व महामणियों से भूषित है, और जो नागराज वासुकि से वेष्टित है, जिसने दक्षप्रजापति के यज्ञ का नाश किया है।।४।।

कुंकुमचन्दनलेपितलिङ्गम्, पङ्कजहार-सुशोभितलिङ्गम्।
सञ्चितपापविनाशनलिङ्गम्, तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम्।।५।।

अन्वय—(अहम्), तत्, सदाशिवलिङ्गम्, प्रणमामि, (यच्च) कुंकुमचन्दनलेपितलिङ्गम्, पङ्कजहारसुशोभितलिङ्गम्, सञ्चितपापविनाशनलिङ्गम्, (अस्ति)।

अर्थ—मैं भगवान् सदाशिव के उस लिंङ्ग को प्रणाम करता हूँ, जो लिङ्ग केशरयुक्त चन्दन से लिप्त है, और कमल के पुष्पों के हार से सुशोभित है, जिस लिङ्ग के अर्चन व भजन से सञ्चित अर्थात् एकत्रित हुए पूर्वजन्म या जन्मजन्मान्तरों के पाप नष्ट हो जाते हैं।

देवगणार्चितसेवितलिङ्गम्, भावैर्भक्तिभिरेव च लिङ्गम्।
दिनकरकोटिप्रभाकरलिङ्गम्, तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम्।।६।।

अन्वय—(अहम्) तत्, सदाशिवलिङ्गम्, प्रणमामि, (यच्च) देवगणार्चितसेवितलिङ्गम्, भावैः, भक्तिभिः, (सेवितम्) च, तल्लिङ्गमस्ति, (अन्यच्च) दिनकरकोटिप्रभाकरलिङ्गम्, (अस्ति)।

अर्थ—मैं भगवान् सदाशिव के उस लिङ्ग को प्रणाम करता हूँ, जो लिङ्ग देवगणों से पूजित तथा भावनाओं और भक्ति से सेवित है, और जिस लिङ्ग की प्रभा, कान्ति या चमक करोड़ों सूर्यों की तरह है।

अष्टदलोपरिवेष्टितलिङ्गम्, सर्वसमुद्भवकारणलिङ्गम्।
अष्टदरिद्रविनाशितलिङ्गम्, तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम्।।७।।

अन्वय–(अहम्) तत्, सदाशिवलिङ्गम्, प्रणमामि, (यच्च) अष्टदलोपरिवेष्टितलिङ्गम्, सर्वसमुद्भवकारणलिङ्गम्, अष्टदरिद्रविनाशितलिङ्गम्, (अस्ति)।

अर्थ–मैं भगवान् सदाशिव के उस लिङ्ग को प्रणाम करता हूँ, जो लिङ्ग अष्टदल कमल के ऊपर विराजमान है, और जो सम्पूर्ण जीव-जगत् की उत्पत्ति का कारण है, तथा जिस लिङ्ग की अर्चना से, (अणिमा महिमा आदि के अभाव में होने वाला) आठ प्रकार का जो दारिद्र्य (है, वह) भी नष्ट हो जाता है।

सुरगुरुसुरवरपूजितलिङ्गम्, सुरवनपुष्पसदार्चितलिङ्गम्।
परात्परं परमात्मकलिङ्गम्, तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम्।।८।।

अन्वय–(अहम्) तत्, सदाशिवलिङ्गम्, प्रणमामि, (यच्च) सुरगुरुसुरवरपूजितलिङ्गम्, सुरवनपुष्पसदार्चितलिङ्गम्, परात् परम्, परमात्मकलिङ्गम्, (अस्ति)।

अर्थ–मैं भगवान् सदाशिव के उस लिङ्ग को प्रणाम करता हूँ, जो लिङ्ग बृहस्पति तथा देवश्रेष्ठों से पूजित है, और जिस लिङ्ग की पूजा देववन अर्थात् नन्दनवन के पुष्पों से की जाती है, जो भगवान् सदाशिव का लिङ्ग, स्थूल दृश्यमान इस जगत् से परे जो अव्यक्ता प्रकृति है, उससे भी पर, श्रेष्ठ या सूक्ष्म अथवा व्यापक है, अतः वही सबका वन्दनीय तथा अतिशय प्रिय आत्मा है।

लिङ्गाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ।
शिवलोकमवाप्नोति, शिवेन सह मोदते।।९।।

अन्वय–यः, पुण्यम्, इदम्, लिङ्गाष्टकम् शिवसन्निधौ, पठेत्, (सः) शिवलोकम्, अवाप्नोति, (तत्र), शिवेन, सह, मोदते।

अर्थ–जो (भक्त) पवित्र इस लिङ्गाष्टक का पाठ भगवान् शङ्कर के समीप करता है, वह शिवलोक को प्राप्त करता है, और वहाँ भगवान् शङ्कर के साथ आनन्द को प्राप्त करता है।

चन्द्रशेखराष्टकम्

चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर पाहि माम्।
चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम्।।१।।

अन्वय–हे चन्द्रशेखर! हे चन्द्रशेखर! हे चन्द्रशेखर! माम् पाहि। हे चन्द्रशेखर! हे चन्द्रशेखर! हे चन्द्रशेखर! माम्, रक्ष।

अर्थ–भक्त मार्कण्डेय भवानीपति भालचन्द्र भगवान् शङ्कर को अपना अनन्य शरण मानता हुआ, मस्तक पर जिनके चन्द्रमा विराजमान है, इस प्रकार के चन्द्रशेखर भगवान् शिव को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि हे चन्द्रशेखर प्रभो! मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो, मैं एकमात्र आपकी शरण में हूँ। यहाँ सम्बोधन का पुनःपुनरुच्चारण भक्त की अनन्यशरणागति को सूचित करता है।

रत्नसानुशरासनं रजताद्रिशृङ्गनिकेतनम्
सिञ्जिनीकृतपन्नगेश्वरमच्युतायनसायकम्।
क्षिप्रदग्धपुरत्रयं त्रिदिवालयैरभिवन्दितम्
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः।।२।।

अन्वय–(अहम्) रजताद्रिशृङ्गनिकेतनम्, रत्नसानुशरासनम्, सिञ्जिनीकृतपन्नगेश्वरम्, अच्युतायन-सायकम्, क्षिप्रदग्धपुरत्रयम्, (अत एव) त्रिदिवालयैः अभिवन्दितम्, (एतादृशम्) चन्द्रशेखरम्, आश्रये, वै, यमः, मम, किम्, करिष्यति?

अर्थ–(मैं) हिमाचल में जिनका निवास है, जिन्होंने सुमेरु पर्वत को धनुष और वासुकि सर्प की प्रत्यञ्चा (धनुष की डोरी) तथा भगवान् विष्णु को बाण बनाकर त्रिपुर का दाह किया है, अत एव देवताओं ने भी जिनकी वन्दना की है, ऐसे चन्द्रशेखर भगवान् शिव का आश्रय लेता हूँ, तब यमराज भी मेरा क्या कर लेगा! अर्थात् यह निश्चत है कि चन्द्रशेखर भगवान् का आश्रय लेने पर यमराज मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है।

पञ्चपादपपुष्पगन्धपदाम्बुजद्वयशोभितम्
भाललोचनजातपावकदग्धमन्मथविग्रहम्।
भस्मदिग्धकलेवरं भवनाशनं भवमव्ययम्
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः।।३।।

अन्वय–(अहम्) पञ्चपादपपुष्पगन्धपदाम्बुजद्वयशोभितम्, भाललोचनजातपावकदग्धमन्मथविग्रहम्, भस्मदिग्धकलेवरम्, भवनाशनम्, भवम्, अव्ययम्, (एतादृशम्) चन्द्रशेखरम्, आश्रये।

अर्थ–(मैं) उस भगवान् चन्द्रशेखर का आश्रय लेता हूँ, जिनके चरणकमल मन्दारादि पाँच देवपादपों के पुष्पों से सुगन्धित हैं, और जिनके भाल में

स्थित तृतीय लोचनाग्नि के द्वारा कामदेव का कलेवर भस्म हो गया था, और स्वयं जो भस्म रमाये हुए हैं, इस संसार को प्रलयकाल में जो नष्ट कर देते हैं, अथवा जिनकी आराधना से भक्त को फिर इस संसार में नहीं आना पड़ता है, अर्थात् जो मोक्ष को प्रदान करते हैं, स्वयं जो इस संसार के कारण भी हैं, यह सब होते हुए भी जो अक्षय-अमर व शाश्वत हैं।

मत्तवारणमुख्यचर्मकृतोत्तरीयमनोहरम्
पङ्कजासनपद्मनलोचन पूजितांघ्रिसरोरुहम्।
देवसिन्धुतरङ्गसीकरसिक्तशुभ्रजटाधरम्
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः।।४।।

अन्वय–(अहम्) मत्तवारणमुख्यचर्मकृतोत्तरीयमनोहरम् पङ्कजासन-पद्मलोचन- पूजितांघ्रिसरोरुहम्, देवसिन्धुतरङ्गसीकरसिक्तशुभ्रजटाधरम्, चन्द्रशेखरम् आश्रये।

अर्थ–मैं ऐसे भगवान् चन्द्रशेखर का आश्रय लेता हूँ, जिन्होंने गजराज के चर्म का उत्तरीय (दुपट्टा) बनाया है, इससे भी जो मनोहर ही मालूम पड़ते हैं, और पद्मासन–ब्रह्मा और कमलनयन विष्णु के द्वारा जिनके चरणकमल सर्वदा वन्दनीय हैं, तथा जिनकी जटायें, मन्दाकिनी के तरङ्गों के जलकणों से स्वच्छ दिखाई दे रही हैं।

यक्षराजसखं भगाक्षहरं भुजङ्गविभूषणम्
शैलराजसुतापरिष्कृतचारुवामकलेवरम्।
क्ष्वेडनीलगलं परश्वधधारिणं मृगधारिणम्
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः।।५।।

अन्वय–(अहम्) यक्षराजसखम्, भगाक्षहरम्, भुजङ्गविभूषणम्, शैलराजसुतापरिष्कृतचारुवामकलेवरम्, क्ष्वेडनीलगलम्, परश्वधधारिणम्, मृग-धारिणम्, चन्द्रशेखरम्, आश्रये।

अर्थ–मैं ऐसे भगवान् चन्द्रशेखर का आश्रय लेता हूँ, जो यक्षराज कुबेर के सखा अर्थात् मित्र हैं, और इन्द्र के भगाक्षरूप दोष को दूर करने वाले हैं, भुजङ्ग का भूषण बनाए हुए हैं, और पर्वतराज की पुत्री माता पार्वती से समालिङ्गित है वामभाग जिनका, देवताओं के कल्याणार्थ समुद्रमन्थन के अवसर पर जिन्होंने विषपान कर लिया था, इसी के कारण जिनका कण्ठ नीलवर्ण का हो गया है, जो परशु आदि आयुधों को धारण करते हैं, तथा मृगलाञ्छन चन्द्र को भी धारण करते हैं।

कुण्डलीकृतकुण्डलेश्वरकुण्डलं वृषवाहनम्
नारदादिमुनीश्वरस्तुतिवैभवं भुवनेश्वरम् ।
अन्धकान्तकमाश्रितामरपादपं शमनान्तकम्
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ।।६ ।।

अन्वय–(अहम्) कुण्डलीकृतकुण्डलेश्वरकुण्डलम्, वृषवाहनम्, नारदादि-मुनीश्वरस्तुतिवैभवम्, भुवनेश्वरम् अन्धकान्तकमाश्रितामरपादपम्, शमनान्तकम्, चन्द्रशेखरम्, आश्रये ।

अर्थ–मैं उस भगवान् चन्द्रशेखर का आश्रय लेता हूँ, जिन्होंने कुण्डलाकार वासुकि (सर्पराज) का कर्णाभरण बनाया है, और बूढ़ा बैल जिनका वाहन है, तथा नारदादि मुनीश्वरों के द्वारा जिनके वैभव की स्तुति की गई है, जो सारे भुवनों के ईश्वर हैं, अथवा उड़ीसा में स्थित भुवनेश्वर महादेव के नाम से विख्यात हैं। अन्धकासुर-घाती, सबके द्वारा आश्रित कल्पवृक्ष, यमराज के भी अन्तक चंद्रमौलि की मैं शरण लेता हूँ।

भेषजं भवरोगिणामखिलापदामपहारिणम्
दक्षयज्ञविनाशनं त्रिगुणात्मकं त्रिविलोचनम् ।
भुक्तिमुक्तिफलप्रदं सकलाघसङ्घनिबर्हणम्
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ।।७ ।।

अन्वय–(अहम्) भवरोगिणाम्, भेषजम्, अखिलापदाम्, अपहारिणम्, दक्षयज्ञविनाशनम्, त्रिगुणात्मकम्, त्रिविलोचनम्, भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्, सकलाघसङ्घनिबर्हणम्, चन्द्रशेखरम्, आश्रये ।

अर्थ–मैं उस भगवान् चन्द्रशेखर का आश्रय लेता हूँ, जो इस संसार रूपी रोग के लिए औषध हैं, और समस्त विपत्तियों को दूर करने वाले हैं, जिन्होंने दक्षप्रजापति के यज्ञ का विध्वंस किया है, जो सत्त्व, रजस् व तमो गुणात्मक हैं, अर्थात् स्थिति की अवस्था में जो सत्त्वरूप धारण करते हैं, और उत्पत्ति की अवस्था में जो रजोगुणरूप धारण करते हैं, और संहार की अवस्था में जो तमोगुण का रूप धारण करते हैं। लोकविलक्षण जिनके तीन लोचन हैं, जो भोग व मुक्ति रूप फल को प्रदान करते हैं, और भक्तों के समस्त पापजन्य ताप को दूर कर देते हैं।

भक्तवत्सलमर्चितं निधिमक्षयं हरिदम्बरम्
सर्वभूतपतिं परात्परमप्रमेयमनुत्तमम् ।

सोमवारिदभूहुताशनसोमपानिलखाकृतिम्

चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः।।८।।

अन्वय–(अहम्) भक्तवत्सलम्, अर्चितम्, अक्षयम्, निधिम्, हरिदम्बरम्, सर्वभूतपतिम्, परात्परम्, अप्रमेयम्, अनुत्तमम्, सोमवारिदभूहुताशनसोमपानिलखाकृतिम्, चन्द्रशेखरम्, आश्रये।

अर्थ–मैं उस भगवान् चन्द्रशेखर का आश्रय लेता हूँ, जो भक्तवत्सल हैं, और भक्तों से पूजित हैं, तथा अक्षयनिधि के समान हैं, जो दिगम्बर हैं, सभी भूतों (प्राणियों) के स्वामी हैं, सबसे श्रेष्ठ, अप्रमेय हैं–जिनके विषय में किसी रूप व गुणादि को लेकर इदमित्थंतया निर्णय नहीं किया जा सकता है, जिनको प्राप्त कर फिर आगे किसी पदार्थ को पाने की इच्छा ही नहीं होती है, अर्थात् ये ही प्राप्तव्य वस्तुओं में सर्वश्रेष्ठ हैं, और जो चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी, अग्नि, यजमान, वायु, आकाश (जल इन आठ) मूर्तियों में विराजमान हैं।

विश्वसृष्टिविधायिनं पुनरेव पालनतत्परम्

संहरन्तमपि प्रपञ्चमशेषलोकनिवासिनम्।

क्रीडयन्तमहर्निशं गणनाथयूथसमन्वितम्

चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः।।९।।

अन्वय–(अहम्) विश्वसृष्टिविधायिनम्, पुनरेव, पालनतत्परम्, प्रपञ्चम्, संहरन्तम्, अपि, अशेषलोकनिवासिनम्, अहर्निशम्, क्रीडयन्तम्, (एतादृशम्), गणनाथयूथसमन्वितम्, चन्द्रशेखरम्, आश्रये।

अर्थ–मैं उस भगवान् चन्द्रशेखर का आश्रय लेता हूँ, जो (रजोगुण समन्वित होकर) समस्त संसार की रचना करते हैं, और फिर (सत्त्वगुण का आश्रय लेकर) इस संसार का पालन करते हैं, तथा अन्त में (तमोगुण का आश्रय लेकर) जो अखिल प्रपञ्च का संहार करते हैं, संसार की स्थिति में जो समस्त प्राणियों को (तत्तत् प्राणी के कर्मानुसार) दिन-रात नचाते रहते हैं, तथा श्रेष्ठ गणों के समूह के मध्य विराजमान हैं।

मृत्युभीतमृकण्डसूनुकृतस्तवं शिवसन्निधौ

यत्र कुत्र च यः पठेन्न हि तस्य मृत्युभयं भवेत्।

पूर्णमायुररोगितामखिलार्थसम्पदमादरम्

चन्द्रशेखर एव तस्य ददाति मुक्तिमयत्नतः।।१०।।

अन्वय–यः, (इदम्) मृत्युभीतमृकण्डसूनुकृतस्तवम्, यत्र कुत्र च शिवसन्निधौ, पठेत्, तस्य मृत्युभयम्, न हि भवेत्, (सः) पूर्णम्,

आयुः, अरोगिताम्, अखिलार्थसम्पदम्, आदरम्, (च लभेत), (स्वयम्) चन्द्रशेखरः, एव, तस्य अयत्नतः, मुक्तिम्, ददाति।

अर्थ–जो भक्त, मृत्यु से भयभीत मार्कण्डेय मुनि के द्वारा रचित इस स्तोत्र का जहाँ कहीं भी भगवान् शिव के मन्दिर में, या उसके निकट पाठ करता है, वह पूर्ण आयु, आरोग्य, सभी प्रकार की सम्पत्तियों को, तथा आदर को प्राप्त करता है। स्वयं भगवान् चन्द्रशेखर ही उसको सहज में मुक्ति प्रदान करते हैं।

वीरेश्वरस्तोत्रम्

एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं समस्तम्, सत्यं सत्यं नेह नानास्ति किञ्चित्।
एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे, तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम्।।१।।

अन्वय–एकम्, ब्रह्म, एव अद्वितीयम्, समस्तम्, सत्यम् (अस्ति) इह नाना, किञ्चित्, सत्यम् न, अस्ति। (इह) एकः, रुद्रः, (एव) अवतस्थे, द्वितीयः, न, तस्मात् (अहम्), एकम्, त्वाम्, महेशम्, प्रपद्ये।

अर्थ–एक ब्रह्म ही अद्वितीय, पूर्ण और सत्य है, यहाँ दृश्यमान कुछ भी भेद सत्य नहीं है। क्योंकि आप एक रुद्र ही स्थित हैं, कोई द्वितीय (तत्त्व) नहीं दिखलाई देता है, इसलिए मैं आप अद्वितीय महेश (शिव) की शरण में जाता हूँ।

एकः कर्ता त्वं हि सर्वस्य शम्भो! नानारूपेष्वेकरूपोऽप्यरूपः।
यद्वत् प्रत्यक्पूर्ण एकोप्यनेकः, तस्मान्नान्यं त्वां विनेशं प्रपद्ये।।२।।

अन्वय–हे शम्भो! एकः, त्वम् हि (अस्य) सर्वस्य, कर्त्ता, (असि)। नानारूपेषु, एकरूपः, अपि, (त्वम्) अरूपः (असि), यद्वत्, प्रत्यक्पूर्णः, एकः, अपि, (त्वम्) अनेकः, (असि) तस्मात्, त्वाम्, विना, अन्यम्, ईशम्, न प्रपद्ये।

अर्थ–हे शम्भो! एक अद्वितीय तुम ही इस सारे संसार के स्रष्टा हो, अनेक रूपों में अनुस्यूत एक सद्-रूप होकर भी आप रूपहीन ही हैं अर्थात् निराकार हैं। जिस प्रकार आप अनेकों में अनुगत एक हैं, उसी प्रकार चैतन्यात्मना पूर्ण व एक होते हुए भी जीवरूप में (अपूर्ण व) नाना हैं। (क्योंकि आप ही एक वास्तविक हैं) इसीलिए ईश्वररूप आप के सिवाय और किसकी शरण में जाऊँ?

रज्जौ सर्पः शुक्तिकायां च रौप्यम्, पयः पूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ।
यद्वत्तद्वद् विष्वगेव प्रपञ्चो, यस्मिञ्ज्ञाते तं प्रपद्ये महेशम्।।३।।

अन्वय–यद्वत्, रज्जौ (ज्ञाते) सर्पः (न भासते), शुक्तिकायाम्, (ज्ञातायाम्) रूप्यम्, (न भासते) मृगाख्ये, मरीचौ, (ज्ञातायाम्) पयःपूरः, (न भासते) तद्वत् यस्मिन् (महेशे) ज्ञाते, विष्वक्, एव प्रपञ्चः, (अपि न भासते) तम् महेशम्, प्रपद्ये।

अर्थ–जिस प्रकार रज्जु का ज्ञान हो जाने पर फिर सर्प का भान नहीं होता है, और शुक्तिका का ज्ञान हो जाने पर फिर रजत का भान नहीं होता है, तथा मृगमरीचिका का ज्ञान हो जाने पर जल-प्रवाह की भ्रान्ति नहीं होती है, इसी प्रकार प्रत्यक् आनन्दस्वरूप महेश का ज्ञान हो जाने पर, उसी में कल्पित इस सारे संसार का भी भान नहीं होता है, इसीलिए उस महेश की ही शरण में मैं जाता हूँ।

तोये शैत्यं दाहकत्वं च वह्नौ, तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः।
पुष्पे गन्धो दुग्धमध्ये च सर्पिः, यत्तच्छम्भो त्वं ततस्त्वां प्रपद्ये।।४।।

अन्वय–हे शम्भो! यत् (यद्वत्) तोये, शैत्यम्, वह्नौ, च दाहकत्वम्, भानौ, तापः, शीतभानौ, च, प्रसादः, पुष्पे, गन्धः, दुग्धे च सर्पिः, (ततम् अस्ति) तत् (तद्वत्) त्वम् (सर्वत्र) ततः, (असि) (अतः) त्वाम्, प्रपद्ये।

अर्थ–हे शम्भो! जिस प्रकार जल में शीतलता, वह्नि में दाहकता, सूर्य में ताप, और चन्द्रमा में प्रसन्नता (सुन्दरता), पुष्प में गन्ध, तथा दूध में घी (सर्वत्र) व्याप्त है, उसी प्रकार आप भी इस समस्त संसार में व्याप्त हैं, इसीलिए मैं आपकी शरण में जाता हूँ।

शब्दं गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिघ्रेरघ्राणस्त्वं व्यंघ्रिरायासि दूरात्।
व्यक्षः पश्येस्त्वं रसज्ञोऽप्यजिह्वः, कस्त्वां सम्यग् वेत्त्यतस्त्वां प्रपद्ये।।५।।

अन्वय–हे शम्भो! त्वम्, अश्रवाः, हि (अपि) शब्दं, गृह्णासि, अघ्राणः, (अपि) जिघ्रेः, व्यंघ्रिः, (अपि) दूरात्, आयासि, व्यक्षः, (अपि) पश्येः, अजिह्वः, (अपिः) रसज्ञः (असि) (इत्थम्), कः, त्वाम्, सम्यक्, वेत्ति?, अतः त्वाम्, प्रपद्ये।

अर्थ–हे शम्भो! आप स्वयं अश्रवा–कर्णरहित होकर भी सब कुछ सुन लेते हो, बिना नाक के भी सब कुछ सूँघ लेते हो, चरणरहित होकर भी दूर से पास आ जाते हो, और स्वयं नेत्रहीन होते हुए भी सब कुछ देखते हो, जिह्वारहित होकर भी परम रसज्ञ हो, इस प्रकार के विलक्षण व्यापार वाले

आपको कौन जान सकता है, अर्थात् बिना आपकी कृपा के आपको जानना मुश्किल है, इसीलिए मैं आपकी ही शरण में आता हूँ।

नो वेदस्त्वामीश साक्षाद् विवेद, नो वा विष्णुर्नो विधाताऽखिलस्य।
नो योगीन्द्रा नेन्द्रमुख्याश्च देवा, भक्तो वेदस्त्वामतस्त्वां प्रपद्ये।।६।।

अन्वय–हे ईश! वेदः, त्वाम्, साक्षात्, नो, विवेद, विष्णुः, अखिलस्य, विधाता, (अपि) नो, (विवेद), योगीन्द्राः, अपि, नो, इन्द्रमुख्याः, देवाः, अपि, न, (केवलम्), भक्तः, त्वाम्, वेद, अतः, त्वाम्, प्रपद्ये।

अर्थ–हे भगवान्! आपको वेद, विष्णु व जगद्विधाता ब्रह्मा भी साक्षात् नहीं जानते हैं। श्रेष्ठ योगीजन भी आपको नहीं जानते हैं, इन्द्र है प्रमुख जिनमें ऐसे देवता लोग भी आपको नहीं जान सकते हैं, केवल भक्त ही (निर्मल भक्ति से) आपको जान सकते हैं, अतः मैं भी (आपका भक्त बनकर) आपकी शरण में आता हूँ।

नो ते गोत्रं नेश जन्मापि नाख्या,
नो वा रूपं नैव शीलं न देशः।
इत्थंभूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः,
सर्वान् कामान् पूरयेस्तद् भजे त्वाम्।।७।।

अन्वय–हे ईश! ते, गोत्रम्, नो, जन्मापि, न, आख्या, न, रूपम्, वा, नो, शीलम्, न एव, देशः, न, इत्थम्भूतः, अपि, त्वम्, त्रिलोक्याः, ईश्वरः, (असि) (मम) सर्वान्, कामान्, पूरयेः, तत्, त्वाम्, भजे।

अर्थ–हे भगवन्! आपका कोई न तो गोत्र है, न जन्म और न नाम, रूप आदि ही कुछ है, न शील ही है और न कोई देश ही है, (अर्थात् आप जन्म जाति देश कालादि सीमा से परे हैं)। यह सब होते हुए भी, आप तीनों लोकों के स्वामी हैं, अतः आप मेरे मनोरथों को पूर्ण करने में सर्वथा समर्थ हैं, इसीलिए मैं आपका भजन करता हूँ।

त्वत्तः सर्वं त्वं हि सर्वं स्मरारे
त्वं गौरीशस्त्वं च नग्नोऽतिशान्तः।
त्वं वै शुद्धस्त्वं युवा त्वं च बाल–
स्तत्त्वं यत् किं नास्यतस्त्वां नतोऽस्मि।।८।।

अन्वय–हे स्मरारे, त्वत्तः, सर्वम्, त्वम्, हि सर्वम्, त्वम्, गौरीशः, त्वम्, नग्नः, अतिशान्तः, च, त्वम्, वै, शुद्धः, त्वम्, युवा, त्वम्, बालः च, तत्, किम् यत्, त्वम्, नासि, अतः, त्वाम्, नतोऽस्मि।

अर्थ–हे स्मरहर! महेश, यह सब दृश्यमान जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है, अतः सारा जगत् शिवमय है, आप जगज्जननी पार्वती के पति हैं, आप दिगम्बर तथा शान्त स्वरूप वाले हैं। आप ही विशुद्ध हैं, आप ही युवा व बाल रूप वाले भी हैं, संसार की कौन-सी ऐसी वस्तु है, जो आप न हों, अर्थात् सत्तात्मकरूप से आप सर्वत्र व सभी वस्तुओं में हैं, अतः आपको मैं प्रणाम करता हूँ।

स्तुत्वेति विप्रो निपपात भूमौ, स दण्डवद् यावदतीव हृष्टः।
तावत् स बालोऽखिलवृद्धवृद्धः, प्रोवाच भूदेव वरं वृणीहि।।९।।

अन्वय–सः, विप्रः, इति, स्तुत्वा, अतीव, हृष्टः, सन्, यावत्, दण्डवत्, भूमौ, निपपात, तावत्, सः, अखिलवृद्धवृद्धः, बालः, प्रोवाच, हे भूदेव! वरम् वृणीहि।

अर्थ–वह ब्राह्मण इस प्रकार भगवान् शंकर की स्तुति करके, अत्यन्त प्रसन्न होकर ज्यों ही दण्डवत् प्रणाम करने के लिए ज़मीन पर लेटा, त्यों ही समस्त वृद्धों के भी वृद्ध बालरूप धारण किए हुए भगवान् शंकर प्रकट होकर बोले कि हे भूदेव! ब्राह्मणदेवता, कोई वर माँगो।

तत उत्थाय हृष्टात्मा मुनिर्विश्वानरः कृती।
प्रत्यब्रवीत् किमज्ञातं सर्वज्ञस्य तव प्रभो।।१०।।

अन्वय–ततः, हृष्टात्मा, कृती, मुनिः, विश्वानरः, उत्थाय, प्रत्यब्रवीत्, हे प्रभो! सर्वज्ञस्य, तव, अज्ञातम्, किम् (अस्ति)।

अर्थ–तदनन्तर प्रसन्नमना, कृतकृत्य, मुनि विश्वानर उठकर बोले, हे प्रभो! सर्वज्ञ आप से अज्ञात क्या है? अर्थात् आप जब सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सबके अन्तःकरण में विराजमान हैं, तो फिर आपसे कोई भी बात छिपी नहीं है।

सर्वान्तरात्मा भगवान्, सर्वः सर्वप्रदो भावन्।
याच्ञां प्रति नियुंक्ते मां किमीशो दैन्यकारिणीम्।।११।।

अन्वय–(हे प्रभो!) भवान्, सर्वान्तरात्मा, भगवान्, सर्वः, सर्वप्रदः (अस्ति) अतः ईशः सन् अपि (भवान्) दैन्यकारिणीम्, याच्ञाम् प्रति, माम्, किम्, नियुंक्ते?

अर्थ–हे प्रभो! आप सर्वान्तरात्मा व भगवान् (छह प्रकार के ऐश्वर्यों से सम्पन्न) हैं। आप सुखस्वरूप और सभी को सब कुछ देने वाले हैं, अतः स्वयं समर्थ होकर भी, दीनता प्रकट करने वाली याचना के प्रति मुझे क्योंकि प्रेरित कर रहे हैं।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवो विश्वानरस्य ह।

शुचेः शुचिव्रतस्याथ शुचि स्मित्वाऽब्रवीच्छिशुः।।१२।।

अन्वय–अथ, शिशुः, देवः, शुचेः, शुचिव्रतस्य, तस्य, विश्वानरस्य, इति, वचः, श्रुत्वा, ह, शुचिस्मित्वा, अब्रवीत्।

अर्थ–इसके बाद बालकरूप वाले (देव) भगवान् शंकर, पवित्र तथा पवित्रव्रत वाले उस ब्राह्मण विश्वानर के इस प्रकार के वचन को सुनकर, कुछ हँसकर बोले; इनकी यह मुस्कराहट उस समय अतिरमणीय मालूम पड़ती थी।

बाल उवाच

बालकरूप भगवान् शंकर तब इस प्रकार बोले–

त्वया शुचे शुचिष्मत्यां योऽभिलाषः कृतो हृदि।

अचिरेणैव कालेन स भविष्यत्यसंशयम्।।१३।।

अन्वय–हे शुचे! शुचिष्मत्याम्, त्वया, हृदि, यः, अभिलाषः, कृतः सः, अचिरेण, एव, कालेन, असंशयम्, भविष्यति।

अर्थ–हे पवित्रात्मन् ब्राह्मण देवता! अपनी पत्नी शुचिष्मती में तुमने अपने हृदय में जिस मनोरथ को धारण किया है, वह शीघ्र ही सम्पन्न होगा, इसमें कोई सन्देह न करना।

तव पुत्रत्वमेष्यामि शुचिष्मत्यां महामते।

ख्यातो गृहपतिर्नाम्ना शुचिः सर्वामरप्रियः।।१४।।

अन्वय–हे महामते! शुचिष्मत्याम्, (अहम्), तव पुत्रत्वम्, एष्यामि (तदा) शुचिः, सर्वामरप्रियः, (सन्) गृहपतिःनाम्ना, ख्यातः (भविष्यामि)।

अर्थ–हे महामति, विप्र! शुचिष्मती के गर्भ में (मैं) तुम्हारे पुत्र के रूप में जन्म ग्रहण करूँगा, तब अत्यन्त सुन्दर स्वरूप मैं सभी देवताओं का प्रेमपात्र होता हुआ, गृहपति नाम से प्रसिद्ध होऊँगा।

अभिलाषाष्टकं पुण्यं स्तोत्रमेतन्मयेरितम्।

अब्दं त्रिकालपठनात् कामदं शिवसन्निधौ।।१५।।

अन्वय–मया, ईरितम्, पुण्यम्, अभिलाषाष्टकम्, एतत्, स्तोत्रम्, अब्दम् (यावत्) शिवसन्निधौ, त्रिकालपठनात् कामदम् (भवति)।

अर्थ–मेरे द्वारा कहे गये, इस पवित्र अभिलाषाष्टक का एक वर्ष तक

लगातार भगवान् शङ्कर के सन्निकट पाठ करने से, मनुष्य अपनी कामनाओं को पूरी कर लेता है।

एतत्स्तोत्रस्य पठनं पुत्रपौत्रधनप्रदम्।
सर्वशान्तिकरं वापि सर्वापत्त्यरिनाशनम्।।१६।।

अन्वय—एतत्-स्तोत्रस्य, पठनम्, पुत्रपौत्रधनप्रदम्, सर्वशान्तिकरम्, सर्वापत्त्यरिनाशनम्, वापि (भवति)।

अर्थ—इस स्तोत्र का पाठ पुत्र, पौत्र व धन-धान्य को देने वाला है, सभी प्रकार की शान्ति प्रदान करता है, और सभी प्रकार की आपत्तियों को तथा शत्रुओं को भी नष्ट करता है।

स्वर्गापवर्गसम्पत्तिकारकं नात्र संशयः।
प्रातरुत्थाय सुस्नातो लिङ्गमभ्यर्च्य शाम्भवम्।।१७।।

अन्वय—प्रातः उत्थाय, सुस्नातः, शाम्भवम्, लिङ्गम्, अभ्यर्च्य, (एतत्स्तोत्रस्य पठनम्) स्वर्गापवर्गसम्पत्तिकारकम्, अत्र संशयः, न।

अर्थ—प्रातःकाल उठकर, अच्छी तरह स्नानकर, तदनन्तर शिवलिङ्ग की पूजा करके, जो मनुष्य इस स्तोत्र का पाठ करता है, वह स्वर्ग तथा मोक्षरूप सम्पत्ति को प्राप्त करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

वर्षं जपन्निदं स्तोत्रमपुत्रः पुत्रवान् भवेत्।
वैशाखे कार्तिके माघे विशेषनियमैर्युतः।।१८।।

अन्वय—इदम्, स्तोत्रम्, अपुत्रः, वर्षम्, जपन, पुत्रवान्, भवेत्, वैशाखे, कार्तिके, माघे (च) विशेषनियमैः, युतः स्नानसमये, यः, पठेत्, सः, सकलम्, फलम्, लभेत (इति दूरेणान्वयः)।

अर्थ—इस स्तोत्र को यदि अपुत्री एक वर्ष पर्यन्त पाठ करे, तो पुत्र को प्राप्त करता है। यदि वैशाखमास, कार्तिकमास व माघमास में विशेष नियमों का पालन करते हुए स्नान के समय, इस स्तोत्र का पाठ करे, तो सभी प्रकार के फलों को प्राप्त करता है।

यः पठेत् स्नानसमये स लभेत् सकलं फलम्।
कार्तिकस्य तु मासस्य प्रसादादहमव्ययः।।१६।।

अन्वय—कार्तिकस्य, मासस्य, (पाठस्य) प्रसादात्, अव्ययः, अहम्, तव, पुत्रत्वम्, एष्यामि।

अर्थ—कार्तिक के महीने में यदि स्तोत्र का पाठ तुम करोगे, तो मैं प्रसन्नता से तुम्हारे पुत्र के रूप में जन्म लूँगा।

तव पुत्रत्वमेष्यामि, यस्त्वन्यस्तत् पठिष्यति।
अभिलाषाष्टकमिदं न देयं यस्य कस्यचित्।।२०।।

अन्वय–अन्यः, यस्तु, तत् पठिष्यति, (सोऽपि पूर्वोक्तम्, फलम्, लभेत) इदम्, अभिलाषाष्टकम्, यस्य, कस्यचित् न देयम्, प्रयत्नेन इदम् गोपनीयम् इति उत्तरेणान्वयः।

अर्थ–अन्य जो कोई भी भक्त इस स्तोत्र का पाठ करे, वह भी पूर्वोक्त फल को प्राप्त करेगा, अतः इस अभिलाषाष्टक को जिस किसी को नहीं देना चाहिए, अर्थात् अधिकारी को ही इसका पाठ बताना चाहिए। इस स्तोत्र को सर्वथा गोपनीय रखना चाहिए।

गोपनीयं प्रयत्नेन महावन्ध्याप्रसूतिकृत्।
स्त्रिया व पुरुषेणापि नियमाल्लिङ्गसन्निधौ।।२१।।

अन्वय–प्रयत्नेन, इदम्, स्तोत्रम्, गोपनीयम्, (यतो हि इदम्) महा-वन्ध्या-प्रसूतिकृत्, (अस्ति), शिवसन्निधौ, नियमात्, स्त्रिया, पुरुषेण, वा अब्दम्, (यावत्), जप्तम्, इदम्, स्तोत्रम्, पुत्रदम् (भवति) अत्र संशयः, न।

अर्थ–गोपनीय इस स्तोत्र का पाठ महावन्ध्याओं को भी पुत्र प्रदान करता है। शिवलिङ्ग के समीप, नियमपूर्वक स्त्री या पुरुष यदि एक वर्ष तक इसका पाठ करे, तो पुत्र को प्राप्त करता है, इसमें कोई संशय नहीं है।

अब्दं जप्तमिदं स्तोत्रं पुत्रदं नात्र संशयः।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे बालः सोऽपि विप्रो गृहं ययौ।।२२।

अन्वय–सः, बालः, इति, उक्त्वा, अन्तर्दधे, सः, विप्रः, अपि, गृहम् ययौ।

अर्थ–वह बालरूप शंकर इस प्रकार कहकर अन्तर्धान हो गया, वह ब्राह्मण भी अपने घर को चल दिया।

पशुपत्यष्टकम्

पशुपतिं द्युपतिं धरणीपतिं भुजगलोकपतिं च सतीपतिम्।
प्रणतभक्तजनार्तिहरं परं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्।।१।।

अन्वय–रे, मनुजाः! द्युपतिम्, धरणीपतिम्, भुजगलोकपतिम्, प्रणतभक्तजनार्तिहरम्, सतीपतिम्, परम्, गिरिजापतिम्, भजत।

अर्थ—हे मनुष्यो! स्वर्ग मर्त्य तथा नागलोक के जो स्वामी हैं, और जो शरणागत भक्तजनों की पीडा को दूर करते हैं, एंसे पार्वतीवल्लभ 'पशुपतिनाथ' आदि नामों से प्रसिद्ध, परमपुरुष गिरिजापति शङ्कर भगवान् का भजन करो।

न जनको जननी न च सोदरो न तनयो न च भूरिबलं कुलम्।
अवति कोऽपि न कालवशं गतं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्।।२।।

अन्वय—रे मनुजाः! कालवशम्, गतम्, (मनुजम्) जनकः, न, (अवति) जननी, च न (अवति) सोदरः, च, न अवति, तनयः, न, अवति, भूरिबलम्, कुलम्, च, न, अवति, कोऽपि न, अवति, (अतः) गिरिजापतिम्, भजत।

अर्थ—अरे मनुष्यो! काल के गाल में पड़े हुए इस जीव को माता, पिता, सहोदर भाई, पुत्र, आत्मबल, व कुल—इनमें से कोई भी नहीं बचा सकता है, अतः परमपिता परमात्मा पार्वतीपति भगवान् शिव का भजन करो।

मुरजडिंडिमवाद्यविलक्षणं मधुरपञ्चमनादविशारदम्।
प्रमथभूतगणैरपि सेवितं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्।।३।।

अन्वय—रे मनुजाः! मुरजडिंडिमवाद्यविलक्षणम्, मधुरपञ्चमनादविशारदम्, प्रमथभूतगणैः, अपि, सेवितम्, गिरिजापतिम्, भजत।

अर्थ—रे मनुष्यो! जो मृदङ्ग व डमरू बजाने में निपुण हैं, मधुर पञ्चमस्वर से गाने में कुशल हैं, और प्रमथ आदि भूतगणों से सेवित हैं, उन पार्वतीवल्लभ भगवान् शिव का भजन करो।

शरणदं सुखदं शरणान्वितं शिव शिवेति शिवेति नतं नृणाम्।
अभयदं करुणावरुणालयं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्।।४।।

अन्वय—रे मनुजा! शिव, शिव, इति, शिव इति (उच्चार्य) नृणाम्, (यस्य कृते) नतम्, (अस्ति) (तम्), शरणान्वितम्, शरणदम्, सुखदम्, अभयदम्, करुणावरुणालयम्, गिरिजापतिम्, भजत।

अर्थ—अरे मनुष्यो! 'शिव, शिव, शिव' कहकर मनुष्य जिनको प्रणाम करते हैं, जो शरणागत को शरण, सुख व अभयदान देते हैं, ऐसे करुणासागरस्वरूप भगवान् गिरिजापति का भजन करो।

नरशिरोरचितं मणिकुण्डलं भुजगहारमुदं वृषभध्वजम्।
चितिरजोधवलीकृतविग्रहं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्।।५।।

अन्वय—रे मनुजाः! नरशिरोरचितम्, मणिकुण्डलम्, भुजगहारमुदम्, चितिरजोधवलीकृतविग्रहम्, वृषभध्वजम्, गिरिजापतिम्, भजत।

अर्थ—हे मनुष्यो! जो नरमुण्ड रूपी मणियों का कुण्डल पहने हुए हैं,

और सर्पराज के हार से ही प्रसन्न हैं, शरीर में जो चिता का भस्म रमाये हुए हैं, ऐसे वृषध्वज भवानीपति भगवान् शङ्कर का भजन करो।

मखविनाशकरं शशिशेखरं सततमध्वरभाजिफलप्रदम्।
प्रलयदग्धसुरासुरमानवं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्।।६।।

अन्वय–रे मनुजाः! मखविनाशकरम्, शशिशेखरम्, अध्वरभाजिफलप्रदम्, प्रलयदग्धसुरासुरमानवम्, गिरिजापतिम्, सततम्, भजत।

अर्थ–हे मनुष्यो! जिन्होंने दक्ष के यज्ञ का विनाश किया, जिनके मस्तक पर चन्द्रमा सुशोभित है, जो यज्ञ करने वालों को यज्ञ का फल देते हैं, और प्रलयावस्था में जिन्होंने देवों, दानवों व मानवों को दग्ध कर दिया है, ऐसे पार्वती-वल्लभ भगवान् शिव का निरन्तर भजन करो।

मदमपास्य चिरं हृदि संस्थितं मरणजन्मजराभयपीडितम्।
जगदुदीक्ष्य समीपभयाकुलं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्।।७।।

अन्वय–रे मनुजाः!, मरणजन्मजराभयपीडितम्, समीपभयाकुलम्, जगत्, उदीक्ष्य, हृदि, चिरम्, संस्थितम्, मदम्, अपास्य, गिरिजापतिम्, भजत।

अर्थ–हे मनुष्यो! मृत्यु जन्म व जरा के भय से पीडित, विनाशशीलता अचिर-स्थायिता आदि उपस्थित भयों से व्याकुल, इस संसार को अच्छी तरह देखकर, चिरकाल से हृदय में स्थित अज्ञानरूप अहंकार को छोड़कर, भवानीपति भगवान् शिव का भजन करो।

हरिविरिञ्चिसुराधिपपूजितं यमजनेशधनेशनमस्कृतम्।
त्रिनयनं भुवनत्रितयाधिपं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्।।८।।

अन्वय–रे मनुजाः!, हरिविरिञ्चिसुराधिपपूजितम्, यमजनेशधनेशनमस्कृतम्, त्रिनयनम्, भुवनत्रितयाधिपम्, गिरिजापतिम्, भजत।

अर्थ–हे मनुष्यो! भगवान् विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र जिनकी पूजा किया करते हैं, और यमराज व कुबेर जिनको नमस्कार करते हैं, ऐसे तीन नेत्र वाले, तीनों भुवनों के स्वामी जो पार्वतीपति शिव हैं, उनका भजन करो।

पशुपतेरिदमष्टकमद्भुतं विरचितं पृथिवीपतिसूरिणा।
पठति संशृणुते मनुजः सदा शिवपुरीं वसते लभते मुदम्।।९।।

अन्वय–यः, मनुजः, पृथिवीपतिसूरिणा, विरचितम्, पशुपतेः, अद्भुतम्, इदम् अष्टकम्, पठति, संशृणुते, (वा), सः, शिवपुरीम्, वसते, सदा मुदम्, लभते।

अर्थ–जो मनुष्य पृथिवीपतिसूरि के द्वारा निर्मित भगवान् पशुपतिनाथ के

अद्भुत इस अष्टक का पाठ करता है, अथवा इसको सुनता है, वह शिवलोक में निवास करता है, और हमेशा आनन्द को प्राप्त करता है।

शिवभुजङ्गम्

गलद्दानगण्डं मिलद्भृङ्गषण्डं, चलच्चारुशुण्डं जगत्त्राणशौण्डम्।
कनद्दन्तकान्तं विपद्भङ्गचण्डं, शिवप्रेमपिण्डं भजे वक्रतुण्डम्।।१।।

अन्वय–(अहम्) गलद्दानगण्डम्, मिलद्भृङ्षण्डम्, चलच्चारुशुण्डम्, जगत्त्राणशौण्डम्, कनद्दन्तकाण्डम्, विपद्भङ्गचण्डम्, शिवप्रेमपिण्डम्, (एतादृशम्) वक्रतुण्डम्, भजे।

अर्थ–मैं ऐसे वक्रतुण्ड (टेढ़े मुख वाले) गणेश जी का भजन करता हूँ, जिनके गण्डस्थल से गिरते हुए मदजल में भ्रमरों का समुदाय मंडरा रहा है, निरन्तर हिलता हुआ जिनका शुण्डादण्ड संसार की रक्षा करने में सर्वथा सावधान है, जिनके दाँतों की कान्ति अत्यन्त सुन्दर है, और जो भयंकर विपत्तियों को भी नष्ट करते हैं, इन सब गुणगणों से विशिष्ट ये गणेश जी भगवान् शिव के प्रेमपात्र हैं।

अनाद्यन्तमाद्यं परं तत्त्वमर्थं, चिदाकारमेकं तुरीयं त्वमेयम्।
हरिब्रह्ममृग्यं परब्रह्मरूपं, मनोवागतीतं महः शैवमीडे।।२।।

अन्वय–(अहम्) अनाद्यन्तमाद्यम्, परम्, तत्त्वमर्थम्, चिदाकारम्, एकम्, तुरीयम्, तु अमेयम्, हरिब्रह्ममृग्यम्, परब्रह्मरूपम्, मनोवागतीतम्, शैवम्, महः, ईडे।

अर्थ–मैं भगवान् शंकर-स्वरूप उस परम तेज की स्तुति करता हूँ, जो प्रारंभ व समाप्ति से रहित होते हुए भी जगत्कारण होने से सर्वप्रथम तत्त्व है, और जो चित्स्वरूप अद्वितीय होते हुए भी अज्ञान-माया, जीव व ईश्वर की गणना की दृष्टि से तुरीय अर्थात् चतुर्थ तत्त्व है, यह सब होते हुए भी अमेय अर्थात् ज्ञान का विषय नहीं हो सकता है। ब्रह्मा व विष्णु भी जिस तत्त्व का अनुसंधान करते हैं, ऐसा परब्रह्मस्वरूप यह तत्त्व मन व वाणी का विषय नहीं है।

स्वशक्त्यादिशक्त्यन्तसिंहासनस्थं, मनोहारिसर्वाङ्गरत्नोरुभूषम्।
जटाहीन्दुगङ्गास्थिशश्यर्कमौलिं, पराशक्तिमित्रं नुमः पञ्चवक्त्रम्।।३।।

अन्वय–(वयम्) स्वशक्त्यादिशक्त्यन्तसिंहासनस्थम्,

मनोहारिसर्वाङ्गरत्नोरुभूषम्, जटाहीन्दुगङ्गास्थिशश्यर्कमौलिम्, पराशक्तिमित्रम्, पञ्चवक्त्रम्, नुमः।

अर्थ—हम पञ्चाननरूप उस भगवान् शंकर को नमस्कार करते हैं, जो अपनी ही सर्वकारणशक्ति की सीमारूप सिंहासन पर अपनी शक्ति के द्वारा ही स्थित हैं, जिनके सुन्दर सब अङ्ग, रत्नें के सुघड़ आभरणों से सुशोभित हैं, और जिनके मस्तक पर जटा, सर्प, अर्धचन्द्र व गङ्गा, अस्थि, शशिवर्ण के अर्कपुष्प विराजमान हैं, जो हमेशा पराशक्ति से समन्वित रहते हैं।

शिवेशानतत्पूरुषाघोरवामादिभिर्ब्रह्मभिर्हन्मुखैः षड्भिरङ्गैः।
अनौपम्यषट्त्रिंशतं तत्त्वविद्यामतीतं परं त्वां कथं वेत्ति को वा।।४।।

अन्वय—हे भगवन्!, शिवेशानतत्पूरुषाघोरवामादिभिः, हृन्मुखैः, ब्रह्मभिः, षड्भिः, अङ्गैः, (सहितम्), अनौपम्यषट्त्रिंशतम् तत्त्वविद्याम्, अतीतम्, परम्, त्वाम्, कः, (वा) कथम्, वेत्ति।

अर्थ—हे भगवन्! हृदय के पाँच द्वारों पर स्थित शिव, ईशान, तत्पूरुष, अघोर वामदेव—इन पाँच ब्रह्मरूपों से युक्त तथा सर्वज्ञता, तृप्ति आदि छै अङ्गों से युक्त, शैवागम प्रसिद्ध निरुपम छत्तीस तत्त्व रूप, तत्त्वबोध से भी परे ऐसे परमश्रेष्ठ आपको कोई साधक या य़ोगी कैसे जान सकता है, अर्थात् परम दुर्ज्ञेय आपका स्वरूप सर्वसाधारण को सुलभ नहीं है।

प्रवालप्रवाहप्रभाशोणमर्धं, मरुत्वन्मणिश्रीमहःश्याममर्धम्।
गुणस्यूतमेतद्वपुः शैवमन्तः, स्मरामि स्मरापत्तिसंपत्तिहेतोः।।५।।

अन्वय—हे भगवन्!, प्रवालप्रवाहप्रभाशोणमर्धम्, मरुत्वन्मणिश्रीमहःश्यामम-र्धम्, गुणस्यूतम्, एतत्, शैवम्, वपुः, स्मरापत्तिसम्पत्तिहेतोः, अन्तः, स्मरामि।

अर्थ—हे भगवान्! आपका आधा शरीर तो प्रवालमणि की चञ्चल प्रभा के समान लाल है, (अर्थात् आधे शरीर में आदिशक्तिस्वरूपा जगज्जननी पार्वती जी विराजमान हैं) और आधा शरीर मरकतमणि की सुन्दर कान्ति के समान नील वर्ण का है, इस प्रकार रक्त व श्याम दो गुणों से समन्वित आपके शरीर का (मैं) कामादिसन्ताप की शान्ति के लिए हृदय से स्मरण करता हूँ।

स्वसेवासमायातदेवासुरेन्द्राऽऽनमन्मौलिमन्दारमालाभिषिक्तम्।
नमस्यामि शम्भो पदाम्भोरुहं ते, भवाम्भोधिपोतं भवानीविभाव्यम्।।६।।

अन्वय—हे शम्भो! (अहम्) स्वसेवासमायातदेवासुरेन्द्रानमन्मौलिमन्दार-मालाभिषिक्तम्, भवाम्भोधिपोतम्, भवानीविभाव्यम्, ते, पदाम्भोरुहम्, नमस्यामि।

अर्थ—हे शम्भो! (मैं) आपके उन चरणकमलों को नमस्कार करता हूँ, जो (चरण) अपने-अपने सेवा-अवसर में आए हुए देवता, असुर व इन्द्रादि के कुछ झुकी हुई मस्तक में स्थिति मन्दार मालाओं के पराग से अभिषिक्त हैं, इस संसाररूपी सागर को पार करने के लिए जो चरण जहाज के समान हैं, तथा जगज्जननी भवानी जिन चरणकमलों का ध्यान करती रहती हैं।

जगन्नाथ मन्नाथ गौरीसनाथ, प्रपन्नानुकम्पिन्, विपन्नार्तिहारिन्।
महःस्तोममूर्ते समस्तैकबन्धो, नमस्ते नमस्ते पुनस्ते नमोऽस्तु।।७।।

अन्वय—जगन्नाथ! मन्नाथ! गौरीसनाथ! प्रपन्नानुकम्पिन्! विपन्नार्तिहारिन्! महःस्तोममूर्ते! समस्तैकबन्धो! ते नमः, ते नमः पुनः, ते नमः, अस्तु।

अर्थ—हे जगत् के नाथ! हे मेरे स्वामी! हे गौरीसनाथ (आप से गौरी सनाथ हैं)! हे शरणागतों पर अनुकम्पा करने वाले! हे विपत्ति से ग्रस्तों के दुःख को दूर करने वाले! हे समस्त संसार के एकमात्र बन्धु! तुम्हारे लिए नमस्कार है, तुम्हारे लिए नमस्कार है, बारम्बार तुम्हारे लिए नमस्कार करता हूँ।

विरूपाक्ष विश्वेश विश्वादिदेव, त्रयीमूल शम्भो शिव त्र्यम्बक त्वम्।
प्रसीद स्मर त्राहि पश्यावमुक्त्यै, क्षमां प्राप्नुहि त्र्यक्ष मां रक्ष मोहात्।।८।।

अन्वय—विरूपाक्ष! विश्वेश! विश्वादिदेव! त्रयीमूल! शम्भो! शिव! त्र्यम्बक! त्वम्, प्रसीद, (माम्) स्मर, (माम्) त्राहि, अवमुक्त्यै, (माम्) पश्य, क्षमाम्, प्राप्नुहि, त्र्यक्ष, मोहात्, माम्, रक्ष।

अर्थ—हे विषमलोचन! हे विश्वेश! हे विश्व के आदिदेव! हे वेदत्रयी के मूलकारण-स्वरूप! हे शम्भो! हे शिव! हे त्रिलोचन! आप प्रसन्न होवें, ज़रा मेरा भी ध्यान रखें, मुझे बचायें, मुक्ति के लिए थोड़ा मेरी ओर भी निहारें, आप मेरे लिए क्षमाशील हो जायें, हे त्रिलोचन, मोह, अज्ञान से मेरी रक्षा करें।

महादेव देवेश देवाधिदेव स्मरारे पुरारे यमारे हरेति।
ब्रुवाणः स्मरिष्यामि भक्त्या भवन्तम् ततो मे दयाशील देव प्रसीद।।९।।

अन्वय—महादेव! देवेश! देवाधिदेव! स्मरारे! पुरारे! यमारे! हर! इति, ब्रुवाणः (अहम्) भक्त्या, भवन्तम्, स्मरिष्यामि, ततः, दयाशील! देव! मे, प्रसीद।

अर्थ—हे महादेव! हे देवेश! हे देवाधिदेव! हे काम के शत्रु! हे त्रिपुरासुर के शत्रु! हे यम के शत्रु! हे सम्पूर्ण पापों को हरण करने वाले हर! इत्यादि

नामों का उच्चारण करता हुआ मैं, भक्ति पूर्वक आपका स्मरण करूँगा, तब हे दयालु भगवन्! आप मेरे लिए प्रसन्न हो जायें।

त्वदन्यः शरण्यः प्रपन्नस्य नेति, प्रसीद स्मरन्नेव हन्यास्तु दैन्यम्।
न चेत्ते भवेद् भक्तवात्सल्यहानिस्ततो मे दयालो सदा सन्निधेहि।।१०।।

अन्वय–शम्भो! प्रपन्नस्य, (मे) त्वदन्यः, (कश्चन), शरण्यः, न, इति, स्मरन्, एव (त्वम्) प्रसीद, (मदीयम्), दैन्यम्, तु, हन्याः, हे दयालो! न, चेत्; ते, भक्तवात्सल्यहानिः, भवेत्, ततः, त्वम्, सदा, मे, सन्निधेहि।

अर्थ–हे शम्भो! शरणागत मेरे लिए आपके सिवाय अन्य कोई भी (देवी देवतादि) शरण देने वाले नहीं हैं, अतः आप प्रसन्न हो जायें, यह सब समझते हुए आप मेरी मोहजन्य इस दीनता को दूर करें, हे दयालो! यदि आपने ऐसा न किया तो आपकी भक्तवत्सलता में कमी प्रकट होगी, अतः आप हमेशा मेरे मानस में सन्निहित रहें।

अयं दानकालस्त्वहं दानपात्रं,
भवानेव दाता त्वदन्यं न याचे।
भवद्भक्तिमेव स्थिरां देहि मह्यं,
कृपाशील शम्भो कृतार्थोऽस्मि तस्मात्।।११।।

अन्वय–भगवन्! अयम्, दानकालः, अहम्, दानपात्रम्, भवान्, एव, दाता, त्वदन्यम्, न, याचे, कृपाशील! शम्भो! मह्यम्, स्थिराम, भवद्भक्तिम्, एव देहि, तस्मात्, अहम्, कृतार्थः, अस्मि।

अर्थ–हे भगवन्! यही उचित दान का समय है, और दानपात्र (दानयोग्य) मैं भी यहाँ उपस्थित हूँ। इस संसार में आपके सिवाय और दाता ही कौन है! इसलिए आपको छोड़कर किसी अन्य देवता या महाराज से मैं याचना भी नहीं करता। हे कृपाशील भगवन्! मुझे अपनी दृढभक्ति ही प्रदान करें, जिससे मैं कृतार्थ हो जाऊँ।

पशुं वेत्सि चेन्मां तमेवाधिरूढः,
कलङ्कीति वा मूर्ध्नि धत्से तमेव।
द्विजिह्वः पुनः सोऽपि ते कण्ठभूषा,
त्वदङ्गीकृताः शर्व सर्वेऽपि धन्याः।।१२।।

अन्वय–हे भगवन्! चेत्, माम् (त्वम्), पशुम्, वेत्सि, (तदा) (त्वम्) तमेव, अधिरूढः, (असि); (यदि) (त्वम्) माम्, कलङ्की, इति, वा (वेत्सि) (तदा) त्वम्, तमेव, मूर्ध्नि, धत्से, यदि माम् द्विजिह्वः, इति,

वेत्सि, तदा, सोऽपि, ते कण्ठभूषा, अस्तिः। अतः, हे शर्व! त्वदङ्गीकृताः, सर्वे, धन्याः सन्ति।

अर्थ—हे भगवन्! यदि आप मुझे पशु समझते हैं, तो आप स्वयं पशु पर—बूढ़े बैल पर आरूढ हैं अर्थात् वाहनरूप से आप पशु को भी अपनाये हुए हैं। यदि आप मुझे कलङ्की—दोषयुक्त समझते हैं, अर्थात् सदोष समझकर मेरी उपेक्षा करते हैं, तो स्वयं आपने कलङ्कयुक्त चन्द्रमा को शिरोभूषण बनाया है! यदि द्विजिह्व अर्थात् बात बदलने वाला समझकर आप मेरी उपेक्षा करते हैं, तो स्वयं द्विजिह्व अर्थात् सर्पराज को आपने अपने गले लगाया है! अतः आपने जिस किसी रूप में भी जिसको अपनाया है, वह धन्य हो जाता है इसलिए हे भगवन्! आप मुझे अवश्य अपनायें।

न शक्नोमि कर्तुं परद्रोहलेशम्, कथं प्रीयसे त्वं न जाने गिरीश।
तथाहि प्रसन्नोऽसि कस्यापि कान्तासुतद्रोहिणो वा पितृद्रोहिणो वा।।१३।।

अन्वय—हे गिरीश! (त्वम्) कस्यापि, कान्तासुतद्रोहिणः, (कृते), वा, पितृद्रोहिणः, (कृते), वा प्रसन्नः, असि, तथाहि, (अहम्-तु) परद्रोहलेशम्, कर्तुम्, (अपि), न, शक्नोमि, त्वम् कथम्, प्रीयसे, इति, न जाने।

अर्थ—हे गिरीश! सुना जाता है कि आप कान्ताद्रोही, सुतद्रोही और पितृद्रोहियों के लिए तक प्रसन्न होते हैं, परन्तु मैं तो किसी के साथ लेशमात्र भी द्रोह नहीं कर सकता हूँ, तब आप कैसे मेरे लिए प्रसन्न होंगे? अर्थात् आपको प्रसन्न करने के उपाय भी विलक्षण ही हैं, मैं तो उन सभी उपायों को अपना भी नहीं सकता हूँ। अथवा, जब आप द्रोह—जो कि एक प्रकार का दुर्गुण है, उससे भी प्रसन्न हो जाते हैं, तो फिर निरन्तर भक्तिभाव वाले मुझ पर क्यों न प्रसन्न होंगे?

स्तुतिं ध्यानमर्चां यथावद् विधातुं, भजन्नप्यजानन् महेशावलम्बे।
त्रसन्तं सुतं त्रातुमग्रे मृकण्डोर्यमप्राणनिर्वापणं त्वत्पदाब्जम्।।१४।।

अन्वय—हे महेश! यथावत्, स्तुतिम्, ध्यानम्, अंर्चाम्, अजानन्, अपि, (अहम्), त्वाम्, भजन्, अग्रे, त्रसन्तम्, मृकण्डोः, सुतम्, त्रातुम्, यमप्राण-निर्वापणम्, त्वत्पदाब्जम्, अवलम्बे।

अर्थ—हे महेश! मैं शास्त्रविधि के अनुसार आपकी स्तुति, आपका ध्यान, व आपकी पूजा को न जानता हुआ भी, केवल आपका भजन करता हुआ, आपके उन चरणकमलों का अवलम्बन ले रहा हूँ जो आपके समाने उपस्थित मार्कण्डेयकी रक्षा करने के लिये यमराज के प्राणघाती बन गये थे।

शिरोदृष्टिहृद्रोगशूलप्रमेहज्वरार्शोजरायक्ष्महिक्काविषार्तान्।
त्वमाद्यो भषग् भेषजं भस्म शम्भो, त्वमुल्लाघयास्मान् वपुर्लाघवाय।।१५।।

अन्वय—हे शम्भो! त्वम्, आद्यः, भिषक् (त्वदीयम्), भस्म, भेषजम्, अतः, त्वम्, वपुर्लाघवाय, शिरोदृष्टिहृद्‌रोगशूलप्रमेहज्वरार्शोजरायक्ष्महिक्कविषार्तान्, अस्मान्, उल्लाघय।

अर्थ—हे शम्भो! आप इस भवसागर के आदिवैद्य हैं, और आपकी भस्म सांसारिक व्याधि के लिए महौषधि है, अतः आप हमारे स्वास्थ्य-लाभ के लिए शिर, नेत्र, हृदयादि संबंधी, प्रमेह, ज्वर, अर्श, जीर्ण यक्ष्मा, हिचकी, विषप्रयुक्त आदि समस्त रोगों को दूर कीजिए।

दरिद्रोऽस्म्यभद्रोऽस्मि भग्नोऽस्मि दूये,
विषण्णोऽस्मि सन्नोऽस्मि खिन्नोऽस्मि चाहम्।
भवान् प्राणिनामन्तरात्मास्ति शम्भो,
ममाधिं न वेत्सि प्रभो रक्ष मां त्वम्।।१६।।

अन्वय—हे शम्भो! अहम्, दरिद्रः, अस्मि, अभद्रः, अस्मि, भग्नः, अस्मि, विषण्णः, अस्मि, सन्नः, अस्मि, खिन्नः, अस्मि, दूये, च, भवान् प्राणिनाम्, अन्तरात्मा, अस्ति, (तथापि, त्वम्), मम, आधिम्, न वेत्सि, हे प्रभो! माम्, त्वम्, रक्ष।

अर्थ—हे शम्भो! मैं दरिद्र हूँ, अभद्र—अच्छा नहीं हूँ, गिरा हुआ हूँ, दुःखी तथा नष्टप्राय हूँ, अत एव पश्चात्ताप से पीडित हूँ। आप सभी प्राणियों के अन्तरात्मा हो, फिर भी मेरी मनोव्यथा को नहीं जानते हैं क्या? अतः हे प्रभो मेरी रक्षा करें।

त्वदक्ष्णोः कटाक्षः पतेत् त्र्यक्ष यत्र, क्षणं क्ष्मा च लक्ष्मीः स्वयं तं वृणीते।
किरीटस्फुरच्चामरच्छत्रमालाकलाचीगजक्षौमभूषाविशेषैः।।१७।।

अन्वय—हे त्र्यक्ष, यत्र त्वदक्ष्णोः, कटाक्षः, पतेत्, तम्, च, किरीटस्फुरच्चामरच्छत्रमालाकलाचीगजक्षौमभूषाविशेषैः, क्षणम्, क्ष्मा, लक्ष्मीः, च, स्वयम्, वृणीते।

अर्थ—हे त्रिलोचन! जिस मनुष्य के ऊपर आपका कृपाकटाक्ष गिरता है, उसको मुकुट चामर छत्र व मालादि बहुमूल्य आभूषणों गजआदि वाहनों व रेशमी आदि वस्त्रों सहित पृथिवी व लक्ष्मी तत्काल वरण करती हैं, अर्थात् आपके कृपादृष्टिमात्र से ही मनुष्य असामान्य वैभव-सम्पन्न-राज्य को प्राप्त कर लेता है।

भवान्यै भवायापि मात्रे च पित्रे, मृडान्यै मृडायाप्यघघ्न्यै मखघ्ने।
शिवाङ्ग्यै शिवाङ्गाय कुर्मः शिवायै, शिवायाम्बिकायै मनस्त्र्यम्बकाय।।१८।।

अन्वय–वयम् मात्रे, भवान्यै, पित्रे, भवाय, अपि च मृडान्यै, मृडाय, अपि, अघघ्न्यै, मखघ्ने, शिवाङ्ग्यै, शिवाङ्गाय, च, शिवायै, शिवाय, (च), अम्बिकायै, त्र्यम्बकाय, (च), नमः, कुर्मः।

अर्थ–हम माता भवानी, तथा पिता भव के लिए, सुख देने वाली मृडानी के लिए, तथा सुख देने वाले मृड के लिए, पाप को नाश करने वाली पार्वती के लिए, तथा दक्ष प्रजापति के यज्ञ को नष्ट करने वाले शंकर के लिए, सुन्दर अंगों वाली माँ पार्वती के लिए, तथा सर्वांग सुन्दर शिव के लिए नमस्कार करते हैं।।१८।।

भवद्गौरवं मल्लघुत्वं विदित्वा, प्रभो रक्ष कारुण्यदृष्ट्यानुगं माम्।
शिवात्मानुभावस्तुतावक्षमोऽहं, स्वशक्त्या कृतं मेऽपराधं क्षमस्व।।१९।।

अन्वय–हे प्रभो! भवद्गौरवम्, मल्लघुत्वम्, (च) विदित्व, कारुण्यदृष्ट्या, अनुगम्, माम्, रक्ष, हे शिव (स्वयम्), आत्मानुभावस्तुतौ, अहम्, अक्षमः, स्वशक्त्या, कृतम्, (यत् किञ्चिदपि स्तुत्यादिकम् तत्) मे, अपराधम्, क्षमस्व।

अर्थ–हे प्रभो! आप स्वयं अपने गौरव को, तथा मेरे लघुत्व (छोटेपने) को जानकर, करुणापूर्ण दृष्टि से शैवपथका अनुसरण करने वाले मेरी रक्षा करें। हे शिव! मैं स्वयं अपने आत्मस्वरूप आपकी स्तुति करने में असमर्थ हूँ, अतः अपनी शक्ति के मुताबिक जो कुछ भी कर सका हूँ, या आपके गौरव के अनुकूल जो कुछ स्तुति आदि नहीं कर सका हूँ, इस अपराध के लिए मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।

यदा कर्णरन्ध्रं व्रजेत् कालवाहद्विषत्कण्ठघण्टाघणात्कारनादः।
वृषाधीशमारुह्य देवौपवाह्यं, तदा वत्स मा भीरिति प्रीणय त्वम्।।२०।।

अन्वय–हे शम्भो! यदा, कालवाहद्विषत्कण्ठघण्टाघणात्कारनादः, कर्णरन्ध्रम्, व्रजेत्, (तदा), देवौपवाह्यम्, वृषाधीशम्, आरुह्य, हे वत्स! मा भीः, इति, त्वम्, प्रीणय।

अर्थ–हे शम्भो! जिस समय यमराज के वाहनभूत भैंसे के कण्ठ में लगे हुए भयानक विशाल घण्टे की भयानक आवाज मेरे कानों में आये, उस समय आप देवोपवाहन वृषभराज पर आरूढ होकर (मेरे समीप में आकर) 'हे वत्स! मत डरो', इस प्रकार से धैर्य-वचनों से मुझे आश्वस्त करें।

यदा दारुणाभाषणा भीषणा मे, भविष्यन्त्युपान्त कृतान्तस्य दूताः।
तदा मन्मनस्त्वत्पदाम्भोरुहस्थं, कथं निश्चलं स्यान्नमस्तेऽस्तु शम्भो।।२१।।

अन्वय—हे शम्भो! यदा, कृतान्तस्य, दारुणाभाषणा भीषणा, दूताः, मे, उपान्ते, भविष्यन्ति, तदा, मन्मनः, कथम्, निश्चलम्, त्वद्पदाम्भोरुहस्थम्, स्यात्, (अतः) ते, नमः, अस्तु।

अर्थ—हे शम्भो! जिस समय यमराज के भयानक बातें बोलने वाले एवं घोररूप वाले दूत मेरे सन्निकट आ जायेंगे, और मैं उनके कठोर वचनों से भयभीत हो जाऊँगा, उस समय मेरा मन आपके चरणकमलों में निश्चल कैसे लगा रहेगा? यमदूतों के उस भयानक भाषण से कहीं विचलित न हो जाय, अतः उस समय इसी मन की स्थिरता के लिए मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

यदा दुर्निवारव्यथोऽहं शयानो, लुठन्निश्वसन्निःसृताव्यक्तवाणिः।
तदा जह्नुकन्याजलालंकृतं ते, जटामण्डलं मन्मनोमन्दिरं स्यात्।।२२।।

अन्वय—हे शम्भो! यदा अहम्, दुर्निवारव्यथः, शयानः, (इतस्ततः) लुठन्, निश्वसन्, निःसृताव्यक्तवाणिः, (स्याम्) तदा, (एतत्-प्रार्थये यत्) जह्नुकन्याजलालंकृतम्, ते जटामण्डलम्, मन्मनोमन्दिरम्, स्यात्।

अर्थ—हे शम्भो! उस समय जब कि मैं किसी असह्य पीडा से पीडित होऊँ, जिसका कि कोई इलाज ही न हो, इस प्रकार के रोग से ग्रस्त हुआ, लेटा हुआ इधर उधर लुढ़कते हुए, स्पष्ट वचन बोलने में भी असमर्थ रहूँ, तो उस समय के लिए मेरी यही प्रार्थना है कि गङ्गाजल से अलङ्कृत आपका जटामण्डल मेरे मन के ध्यान का विषय बने, अर्थात् ऐसे समय में गंगा से अलंकृत आपका जटामण्डल वाला स्वरूप मेरे मन मन्दिर में बना रहे।

यदा पुत्रमित्रादयो मत्सकाशे, रुदन्त्यस्य हा कीदृशीयं दशेति।
तदा देवदेवेश गौरीश शम्भो, नमस्ते शिवायेत्यजस्रं ब्रवाणि।।२३।।

अन्वय—हे शम्भो! यदा, पुत्रमित्रादयः मत्सकाशे, हा, अस्य, इयम्, कीदृशी, दशा, इति (कृत्वा), रुदन्ति, तदा, हे देवदेवेश! हे गौरीश! हे शम्भो! (अहम्), 'ते, नमः, शिवाय' इति, अजस्रम्, ब्रवाणि।

अर्थ—हे शम्भो! जब मेरे पुत्र मित्र आदि मेरे पास में आकर 'बड़े कष्ट की बात है कि इस बेचारे की कितनी यह दयनीय दशा हो गई है' यह कहकर रोवें, उस समय हे देवाधिदेव! गौरीनाथ! शम्भो! मेरी यही प्रार्थना है, कि उस समय भी मैं आपको नमस्कार करता हुआ 'नमः शिवाय' यह वचन निरन्तर बोलता रहूँ।।२३।।

यदा पश्यतां मामसौ वेत्ति नास्मान्, अयं श्वास एवेति वाचो वदेयुः।
तदा भूतिभूषं भुजङ्गावनद्धं, पुरारे भवन्तं स्फुटं भावयेयम्।।२४।।

अन्वय—हे शम्भो! यदा, पश्यताम् (जनानां मध्ये), माम्, असौ, वेत्ति, न, अस्मान्, (वेत्ति), अयम्, एव, श्वासमात्रः, (अवशिष्टः) इति, वाचः, वदेयुः, तदा, हे पुरारे, भूतिभूषम्, भुजङ्गावनद्धम्, भवन्तम्, स्फुटम्, भावयेयम्।

अर्थ—हे शम्भो! ऐसी स्थिति में जब मुझे देखने वाले लोगों में से कोई यह कहे कि 'यह तो अब केवल मुझको ही जानता है, और किसी को नहीं पहिचानता है' 'अरे! इसका तो अब केवल यही श्वासमात्र अवशिष्ट है'; ऐसी दशा में हे शम्भो, मेरी यही प्रार्थना है, कि मैं आपके भस्म रमाये हुए और भुजङ्गों से भूषित स्वरूप का अच्छी तरह ध्यान कर सकूँ।

यदा यातनादेहसंदेशवाही, भवेदात्मदेहे न मोहो महान्मे।
तदा काशशीतांशुसंकाशमीश, स्मरारे वपुस्ते नमस्ते स्मरामि।।२५।।

अन्वय—हे शम्भो! यदा, (अयं मम देहः), यातनादेहसंदेशवाही, भवेत्, आत्मदेहे, मे, महान्, मोहः, न भवेत्, तदा, हे ईश! काशशीतांशुसंकाशम्, ते, वपुः स्मरामि, हे स्मरारे! ते नमः।

अर्थ—हे शम्भो! ऐसी स्थिति में, जब मेरा यह पाञ्चभौतिक शरीर केवल यातना देह का संदेशवाहक बन जाय, अर्थात् यह स्थूल कलेवर शुभाशुभ को भोगने के लिए सूक्ष्म रूप धारण कर ले, और इस पार्थिव देह में जब कोई ममता न रह जाय, उस स्थिति में हे भगवन्! मैं केवल काश-कुसुम व चन्द्रमा के समान स्वच्छ आपके स्वरूप का ही स्मरण करूँ, अतः हे स्मरारे! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

यदाऽपारमच्छायमस्थानमद्भिर्जनै र्वा विहीनं गमिष्यामि मार्गम्।
तदा तं निरुन्धन् कृतान्तस्य मार्गं, महादेव मह्यं मनोज्ञं प्रयच्छ।।२६।।

अन्वय—हे शम्भो! यदा, (अहम् पूर्वोक्तेन यातनादेहेन) अच्छायम्, अस्थानम्, अद्भिः, जनैः, वा, विहीनम्, अपारम्, मार्गम्, गमिष्यामि, हे महादेव, तदा, (तादृशम्) तम्, कृतान्तस्य, मार्गम्, निरुन्धन्, (त्वम्), मह्यं, मनोज्ञम् (मार्गम्) प्रयच्छ।

अर्थ—हे शम्भो! जब मैं पूर्वोक्त यातनाशरीर द्वारा छाया-रहित व भयानक, जल व जनों से शून्य, परलोक के उस विषम अतिदीर्घ मार्ग पर चलूँगा, हे महादेव! उस समय यमराज के उस भयंकर मार्ग को रोककर, गन्तव्य स्थान में पहुँचने के लिये आप मुझे सुन्दर मार्ग प्रदान करें।

यदा रौरवादि स्मरन्नेव भीत्या, व्रजाम्यत्र मोहं महादेव घोरम्।
तदा मामहो नाथ कस्तारयिष्य-त्यनाथं पराधीनमर्धेन्दुमौले।।२७।।

अन्वय—हे महादेव! यदा, (अहम्), रौरवादि, स्मरन्, एव, भीत्या, अत्र, घोरम्, मोहम्, व्रजामि, अहो, तदा, हे नाथ, हे अर्धेन्दुमौले, अनाथम्, पराधीनम्, माम् कः तारयिष्यति।

अर्थ—हे महादेव! उस समय जबकि मैं रौरवादि नरकों के स्मरणमात्र से भयभीत होकर, घने मोह को प्राप्त होऊँ, अहो ऐसे घने मोह के अवसर पर हे नाथ! हे चन्द्रशेखर! अनाथ व पराधीन मुझको कौन तारेगा? अर्थात् सिवाय आपके उस घोर नरक से दूसरा कोई भी पार नहीं लगा सकता है।

यदा श्वेतपत्रायतालङ्घ्यशक्तेः, कृतान्ताद् भयं भक्तवात्सल्यभावात्।
तदा पाहि मां पार्वतीवल्लभान्यं, न पश्यामि पातारमेतादृशं मे।।२८।।

अन्वय—हे शम्भो! यदा, श्वेतपत्रायतालङ्घ्यशक्तेः, कृतान्तात्, मे, भयम्, स्यात्, हे पार्वतीवल्लभ! तदा, भक्तवात्सल्यभावात् (त्वम्), माम्, पाहि, (यतो हि त्वत्तः) अन्यम्, एतादृशम्, पातारम्, न, पश्यामि।

अर्थ—हे भगवन्! जब विशाल श्वेतच्छत्र व अलंघ्यशक्ति से सम्पन्न यमराज से मैं भयभीत हो जाऊँ, हे पार्वतीनाथ! उस समय अपनी भक्तवत्सलता के भाव से आप मेरी रक्षा करें, क्योंकि ऐसे विपत्ति के समय में, आपके सिवाय अन्य किसी को भी इस प्रकार का अपना रक्षक नहीं देख रहा हूँ।

इदानीमिदानीं मृतिर्मे भवित्रीत्यहो संततं चिन्तया पीडितोऽस्मि।
कथं नाम मा भून्मृतौ भीतिरेषा, नमस्तेऽगतीनां गते नीलकण्ठ।।२९।।

अन्वय—हे शम्भो! मे, इदानीम्, इदानीम्, मृतिः, भवित्री, इति, चिन्तया, (अहम्), सततम्, पीडितः, अस्मि, अहो, हे नीलकण्ठ! मृतौ, एषा, भीतिः, कथम्, नाम, मा भूत्, अगतीनाम्, गते, ते, नमः।

अर्थ—हे भगवन्! जब मैं यह सोचता हूँ कि अब सन्निकट ही मेरी मृत्यु होने वाली है, तब इस चिन्ता से मैं एकदम दुःखी हो जाता हूँ। हे नीलकण्ठ! मृत्यु के बारे में यह भय कैसे दूर होगा? अर्थात् मुझे कोई ऐसा उपाय बताईए जिससे उस बारे में यह भय न आ सके, क्योंकि आप तो जिनकी और कोई गति नहीं उन सभी को शरण देने वाले हैं, इसलिए आपको नमस्कार है।

अमर्यादमेवाहमाबालवृद्धं, हरन्तं कृतान्तं समीक्ष्यास्मि भीतः।
मृतौ तावकाङ्घ्र्यब्जदिव्यप्रसादाद् भवानीपते निर्भयोऽहं भवानि।।३०।।

अन्वय—हे शम्भो! अहम्, अमर्यादम्, एव, आबालवृद्धम्, हरन्तम्, कृतान्तम्,

समीक्ष्य, भीतः, अस्मि, हे भवानीपते! मृतौ, तावकाङ्घ्र्यब्जदिव्यप्रसादात्, अहम्, निर्भयः भवानि।

अर्थ—हे भगवान् ! मैं नियमरहित या क्रमरहित यमराज की इस बालक युवा व वृद्ध की हरण क्रिया को देखकर अत्यन्त भयभीत हूँ, अर्थात् मृत्यु के यहाँ ज्येष्ठ व कनिष्ठ का, निर्गुण व गुणी का, धनी व गरीब के विषय में कोई विचार नहीं है, जब चाहे जिस-किसी का भी हरण कर ले; अतः हे भवानीपते! ऐसे निर्विवेक मृत्यु के अवसर पर आपके चरणकमलों के दिव्य प्रसाद से मैं निर्भय हो जाऊँगा।

जराजन्मगर्भाधिवासादिदुःखान्यसह्यानि जह्यां जगन्नाथ देव।
भवन्तं विना मे गतिर्नैव शम्भो, दयालो न जागर्ति किं वा दया ते।।३१।।

अन्वय—हे जगन्नाथ! हे देव! (भवतः कृपया) अहम् असह्यानि जराजन्मगर्भाधिवासादिदुःखानि, जह्याम्, हे शम्भो! भवन्तम् विना, मे गतिः, न, एव; हे दयालो! (एतत् सर्वं समीक्ष्यापि) ते, (मनसि) दया, वा न, जागर्ति, किम्?

अर्थ—हे जगन्नाथ! हे शम्भो! आपकी कृपा से मैं जरा, जन्म, गर्भवासादि असह्य दुःखों से छूट जाऊँगा। हे शम्भो! आपके बिना मेरी कोई गति (शरण) नहीं है। हे दयालो! यह सब देखते हुए भी (इस शरणागत के प्रति) आपके चित्त में दयाभाव नहीं आता क्या?

शिवायेति शब्दो नमः पूर्व एष, स्मरन् मुक्तिकृन्मृत्युहा तत्त्ववाची।
महेशान मा गान्मनस्तो वचस्तः, सदा मह्यमेतत्प्रदानं प्रयच्छ।।३२।।

अन्वय—हे शम्भो! नमः पूर्वः, शिवाय, इति, एष, शब्दः, स्मरन् (स्मरण-विषयीभूतः) मुक्तिकृत्, मृत्युहा, तत्त्ववाची (अस्ति)। हे महेशान! (त्वम्), मह्यम्, सदा, एतत्, प्रदानम्, प्रयच्छ, (यत्), (नमः शिवाय इति एष शब्दः मे), मनस्तः, वचस्तः, (च), मा गात्।

अर्थ—हे शम्भो! नमः पूर्वक शिवाय अर्थात् 'नमः शिवाय' यह शब्द यदि किसी की स्मृति का विषय बनता है तो मुक्ति प्रदान करने वाला है, और मृत्यु को दूर करने वाला है, तथा परमार्थ तत्त्व का वाचक भी है। हे महेश्वर! आप मेरे लिए सदा ऐसा वरदान दें कि 'नमः शिवाय' यह शब्द मेरे मन से व वाणी से कभी भी दूर न रहे

त्वमप्यम्ब मां पश्य शीतांशुमौलिप्रिये भेषजं त्वं भवव्याधिशान्तौ।
बहुक्लेशभाजं पदाम्भोजपोते, भवाब्धौ निमग्नं नयस्वाद्य पारम्।।३३।।

अन्वय–हे अम्ब! त्वम्, अपि, माम्, पश्य, हे शीतांशुमौलिप्रिये, त्वम्, भवव्याधिशान्तौ, भेषजम्, (असि), बहुक्लेशभाजम्, भवाब्धौ, निमग्नम्, माम्, अद्य, पदाम्भोजपोते, (स्थापयित्वा), पारम् नयस्व।

अर्थ–हे अम्बे! आप भी मेरी ओर देखें। हे शंकरप्रिये! आप इस संसार रूप व्याधि की शान्ति के लिए औषधि हैं। अनेक प्रकार के क्लेशों से सन्तप्त, व भवसागर में डूबे हुए मुझे अपने चरणकमलों की शरण में रखकर संसार सागर के उस पार कर दो।

अनुद्यल्ललाटाक्षिवह्निप्ररोहै-रवामस्फुरच्चारुवामोरुशोभैः।
अनङ्गभ्रमद्भोगिभूषाविशेषै-रचन्द्रार्धचूडैरलं दैवतै र्नः।।३४।।

अन्वय–हे शम्भो! अनुद्यल्ललाटाक्षिवह्निप्ररोहैः, अवामस्फुरच्चारुवामोरुशोभैः, अनङ्गभ्रमद्भोगिभूषाविशेषैः, अचन्द्रार्धचूडैः, दैवतैः, नः, अलम्।

अर्थ–हे शम्भो! जिनके ललाट के मध्य स्थित नेत्र में अग्नि का प्ररोह न हो, और जिनके बाँये भाग में सुन्दरी न विराजमान हो, तथा जिनका शरीर सर्पों से भूषित न हो, जो अर्धचन्द्र के शिरोभूषण से भी रहित हों, ऐसे देवताओं से हमारा प्रयोजन ही क्या है?

अकण्ठेकलङ्कादनङ्गेभुजङ्गाद् अपाणौ कपालादफालेऽनलाक्षात्।
अमौलौ शशाङ्कादवामेकलत्रादहं देवमन्यं न मन्ये न मन्ये।।३५।।

अन्वय–हे शम्भो! अकण्ठेकलङ्कात्, अनङ्गेभुजङ्गात्, अपाणौकपालात्, अफालेनलाक्षात्, अमौलौशशाङ्कात्, अवामेकलत्रात्, अहम्, (कञ्चनापि), अन्यम्, देवम्, न मन्ये, न मन्ये।

अर्थ–हे शम्भो! कण्ठ में कलङ्क से रहित, अङ्ग में भुजङ्ग से रहित, और पाणि में कपाल से रहित, भाल में नेत्राग्नि से रहित, मस्तक पर चन्द्रमा से रहित, तथा वामभाग में वामा से रहित, जो अन्य देव हैं वे हमें मान्य नहीं हैं, कदापि मान्य नहीं हैं। अर्थात् उक्त कलङ्क भुजङ्ग कपालादि सहित देव शंकर ही हमें अभीष्ट हैं।

महादेव शम्भो गिरीश त्रिशूलिं-
स्त्वदीयं समस्तं विभातीति यस्मात्।
शिवादन्यथा दैवतं नाभिजाने,
शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं।।३६।।

अन्वय–हे महादेव! हे शम्भो! हे त्रिशूलिन्! यस्मात्, (इदम्), समस्तम्, (जगत्) त्वदीयम्, विभाति, इति, (तस्मात्), शिवात्, अन्यथा, दैवतम्,

(अहम्), नाभिजाने, (अतः) अहम्, शिवः, (अस्मि), अहम्, शिवः, (अस्मि), अहम्, शिवः (अस्मि) अहम् शिवः अस्मि।

अर्थ—हे महादेव! हे शम्भो! हे त्रिशूलिन्! क्योंकि यह समस्त जगत् आपका है, अर्थात् यह सारा संसार शिवमय ही प्रतीत होता है, इसीलिए मेरे मत में तो शिव से अतिरिक्त कोई देवता ही नहीं है। अतः शिवाद्वैत भावना से मैं भी शिव ही हूँ, अपने को मैं शिव से पृथक् नहीं मानता हूँ, जिसका स्वरूप है 'शिवोऽहं'।

यतोऽजायतेदं प्रपञ्चं विचित्रं,
स्थितिं याति यस्मिन् यदेकान्तमन्ते।
स कर्मादिहीनः स्वयं ज्योतिरात्मा,
शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं।।३७।।

अन्वय—यतः, इदम्, विचित्रम्, प्रपञ्चम्, अजायत, यस्मिन्, स्थितिम्, (च) याति, अन्ते, यत्, एकान्तम्, (याति), सः, कर्मादिहीनः, स्वयंज्योतिः, आत्मा, अस्ति, (अतः) अहम्, शिवः (अस्मि), अहम्, शिवः (अस्मि) अहम् शिवः (अस्मि), अहम् शिवः, अस्मि।

अर्थ—जिस परम शिव से यह विचित्र प्रपञ्च उत्पन्न हुआ, और जिस परमशिव में ही इसकी स्थिति है, तथा अन्त में जिस परमशिव तत्त्व में ही इसका अवसान है, ऐसे कर्म कर्तृत्वादि व्यांपारविहीन शिव स्वयंप्रकाश स्वरूप परमात्मा हैं, जब शिव ही सबकी परम आत्मा हैं, तो मैं भी शिवरूप ही हूँ, जिसको 'शिवोऽहम्' इस वाक्य से कहा जाता है।

किरीटे निशेशो ललाटे हुताशो, भुजे भोगिराजो गले कालिमा च।
तनौ कामिनी यस्य तत्तुल्यदेवं, न जाने न जाने न जाने न जाने।।३८।।

अन्वय—यस्य, किरीटे, निशेशः, (अस्ति), ललाटे (च) हुताशः, (अस्ति) भुजे, भोगिराजः, (वर्तते), गले, कालिमा, च, (विराजते), तनौ, कामिनी, (विद्यमाना अस्ति), तत्तुल्यदेवम्, (तु) अहम्, न जाने, न जाने, न जाने, न जाने।

अर्थ—जिस भगवान् शिव के शेखर में चन्द्रमा है, तथा भुजाओं में सर्पराज वासुकि है, कण्ठ में विष की कालिमा सुशोभित है, और अर्धनारीश्वर होने से शरीर में सुन्दरी (पार्वती) विराजमान है, ऐसे शिव के समान कोई अन्य देवता हमें नहीं दीखते हैं, अतः शिव से अतिरिक्त किसी अन्य देवता को मैं नहीं जानता हूँ।

अनेन स्तवेनादरादम्बिकेशं, परां भक्तिमासाद्य यं ये नमन्ति।
मृतौ निर्भयास्ते जनास्तं भजन्ते, हृदम्भोजमध्ये सदासीनमीशम्।।३९।।

अन्वय—ये, जनाः, पराम्, भक्तिम्, आसाद्य, अनेन, स्तवेन, आदरात्, यम्, अम्बिकेशम्, नमन्ति, ते जनाः, मृतौ, निर्भयाः, सन्तः, हृदम्भोज-मध्ये, सदासीनम्, तम्, ईशम्, भजन्ते।

अर्थ—जो मनुष्य पराभक्ति को प्राप्त कर इस स्तोत्र के द्वारा आदरपूर्वक जिस भगवान् शंकर को नमस्कार करते हैं, वे मृत्यु के बाद निर्भर होते हुए अपने हृदयरूपी कमल में हमेशा विराजमान उसी शंकर का भजन करते हैं।

भुजङ्गप्रियाकल्प शम्भो मयैवं, भुजङ्गप्रयातेन वृत्तेन क्लृप्तम्।
नरः स्तोत्रमेतत् पठित्वोरुभक्त्या, सुपुत्रायुरारोग्यमैश्वर्यमेति।।४०।।

अन्वय—हे भुजङ्गप्रियाकल्प! हे शम्भो! मया, एवम्, भुजङ्गप्रयातेन, वृत्तेन, क्लृप्तम्, एतत्, स्तोत्रम, उरुभक्त्या, पठित्वा, नरः सुपुत्रायुरारोग्यम् ऐश्वर्यम् एति।

अर्थ—हे भुजङ्गप्रियाभूषण! हे शम्भो! मेरे द्वारा 'भुजङ्गप्रयात' नामक छन्द में रचे गये इस स्तोत्र को अत्यन्तभक्तिपूर्वक यदि कोई मनुष्य पढ़ता है, तो वह सुन्दर पुत्र, प्रशस्त आयु, आरोग्य व ऐश्वर्य को प्राप्त करता है।

शिवानन्दलहरी

कलाभ्यां चूडालंकृतशशिकलाभ्यां निजतपः-
फलाभ्यां भक्तेषु प्रकटितफलाभ्यां भवतु मे।
शिवाभ्यामस्तोक -त्रिभुवनशिवाभ्यां हृदि पुन-
र्भवाभ्यामानन्दस्फुरदनुभवाभ्यां नतिरियम्।।१।।

अन्वय—भक्तेषु, प्रकटितफलाभ्याम्, निजतपःफलाभ्याम्, चूडालंकृत-शशिकलाभ्याम्, कलाभ्याम्, अस्तोकत्रिभुवनशिवाभ्याम्, शिवाभ्याम्, पुनः, हृदि, आनन्दस्फुरदनुभवाभ्याम् भवाभ्याम्, मे, इयम्, नतिः, भवतु।

अर्थ—भक्तों के विषय में (भक्तवात्सल्य रूप) स्पष्ट है फल जिनका, अर्थात् भक्तों की कामनाओं को जो सद्यः सफल बना देते हैं; जिनकी तपस्या के फल के समान शेखर में सुशोभित चन्द्रकला विराजमान है; स्वयं जो

(स्थित्युत्पत्तिप्रलयादि) कलाओं से सम्पन्न हैं; स्वयं कल्याणस्वरूप समस्त संसार के कल्याणकारक; पुनः हृदय में जो आनन्द व अनुभव के रूप में स्फुरित होते रहते हैं, ऐसे जगज्जननी माता पार्वती व जगत्-पिता परमेश्वर शिव के लिए मेरा यह प्रणाम है।

गलन्ती शम्भो त्वच्चरितसरितः किल्बिषरजो
दलन्ती धीकुल्यासरणिषु पतन्ती विजयताम्।
दिशन्ती संसारभ्रमणपरितापोपशमनं
वसन्ती मच्चेतोहृदभुवि शिवानन्दलहरी।।२।।

अन्वय—हे शम्भो! त्वच्चरितसरितः, (सकाशात्) गलन्ती, किल्बिषरजः, दलन्ती, धीकुल्यासरणिषु, पतन्ती, संसारभ्रमणपरितापोपशमनम्, दिशन्ती, मच्चेतो-हृदभुवि, वसन्ती, शिवानन्दलहरी, विजयताम्।

अर्थ—हे शम्भो! आपके (विचित्र) चरित्ररूपी सरिताओं से निकलने वाली, पापरूपी धूलि को नष्ट करने वाली, अथवा पापरूप दुःखात्मक जो रजोगुण है, उसको दूर करने वाली, विभिन्न बुद्धि-वृत्तियों में प्रतिफलित होने वाली, तथा संसार-जन्य जो परिताप है, उसको शान्त करने वाली, मेरे मन रूपी मानसरोवर में निरन्तर बसने वाली यह शिवानन्दलहरी (शिवस्वरूप-आनन्द की तरङ्ग) सर्वोत्कृष्ट है, अर्थात् मेरे लिए तथा सभी के लिए नमस्करणीय है।

त्रयीवेद्यं हृद्यं त्रिपुरहरमाद्यं त्रिनयनं
जटाभारोदारं चलदुरगहारं मृगधरम्।
महादेवं देवं मयि सदयभावं पशुपतिं
चिदालम्बं साम्बं शिवमतिविडम्बं हृदि भजे।।३।।

अन्वय—त्रयीवेद्यम्, हृद्यम्, त्रिपुरहरम्, आद्यम्, त्रिनयनम्, जटाभारोदारम्, चलदुरगहारम्, मृगधरम्, मयि, सदयभावम्, महादेवम्, देवम्, पशुपतिम्, साम्बम्, चिदालम्बम्, अतिविडम्बम्, शिवम्, हृदि, भजे।

अर्थ—वेद व वेदान्त के द्वारा जानने योग्य, सुन्दर, त्रिपुरासुर को मारने वाले, चिरन्तन, तीन नेत्रों वाले, घनी जटाओं से सुशोभित, जिनके गले में सर्प रूपी हार लटक रहा है, मृग को धारण करने वाले, मेरे लिए परम दयालु, देवताओं में महान्, पशु अर्थात् जीवों के स्वामी, पार्वतीसहित, चैतन्यस्वरूप, अतिविलक्षण स्वरूप वाले, भगवान् शिव का मैं हृदय में भजन करता हूँ।

सहस्रं वर्तन्ते जगति विबुधाः क्षुद्रफलदा
न मन्ये स्वप्ने वा तदनुसरणं तत्कृतफलम्।

हरिब्रह्मादीनामपि निकटभाजामसुलभं
चिरं याचे शम्भो शिव तव पदाम्भोजभजनम् ।।४।।

अन्वय—हे शम्भो! जगति, क्षुद्रफलदाः सहस्रं, विबुधाः, वर्तन्ते, (अहम्) स्वप्ने, वा (अपि), तदनुसरणम्, तत्कृतफलम्, न, मन्ये। हे शिव! निकटभाजाम्, हरिब्रह्मादीनाम्, अपि, असुलभम्, तव, पदाम्भोजभजनम्, चिरम्, याचे।

अर्थ—हे शम्भो! संसार में क्षुद्रफलों को देने वाले, हज़ारों देवता हैं, मैं तो स्वप्न में भी उनका अनुसरण तथा उनके द्वारा अनन्त फलों की कामना नहीं करता। हे शिव! मैं तो केवल, समीपस्थ ब्रह्मा व विष्णु के लिए भी दुष्प्राप आपके चरणकमलों के भजन को ही सदा के लिए चाहता हूँ।

स्मृतौ शास्त्रे वैद्ये शकुनकवितागानफणितौ
पुराणे मन्त्रे वा स्तुतिनटनहास्येष्वचतुरः।
कथं राज्ञां प्रीति र्भवति मयि कोऽहं पशुपते
पशुं मां सर्वज्ञ प्रथितकृपया पालय विभो।।५।।

अन्वय—हे पशुपते! स्मृतौ, शास्त्रे, वैद्ये, शकुनकवितागानफणितौ, पुराणे, मन्त्रे, स्तुतिनटनहास्येषु, वा, अचतुरः, (अहम्) क्व, राज्ञाम्, मयि, प्रीतिः, कथम्, भवति। अहं कः! (तस्मात्), हे सर्वज्ञ, हे विभो!, पशुम्, माम्, प्रथितकृपया, पालय।

अर्थ—हे शम्भो! हे पशुपते! मैं तो स्मृति, शास्त्र, वैद्यकविद्या, शकुनविज्ञान, कवितापाठ, पुराणप्रवचन, मन्त्र, तन्त्र, स्तुति, नाटक व हास्य कथाओं को विनोदपूर्वक कहने में अचतुर हूँ, तब बड़े-बड़े राजा महाराजाओं की मेरे उपर कृपा कैसे हो सकती है? उनके लिये मैं हूँ ही कौन ! हे सर्वज्ञ! शम्भो! आप सर्वज्ञ हैं और पशुपति हैं। अतः कृपा करके अल्पज्ञ पशुरूप इस जीव की रक्षा कीजिए। उक्त पद्य में पशुपति व सर्वज्ञ ये सम्बोधन साभिप्राय भी हैं, क्योंकि पशुपति—पशुओं का जो मालिक होता है, उसका तो यह कर्तव्य ही है कि पशुओं की देखभाल करना; इसमें भी सर्वज्ञ यदि वह पशुपति हुआ तो फिर कहना ही क्या! अर्थात् एक जानकार पशुओं का मालिक क्या अपने पशुओं की उपेक्षा कर सकता है? समय-समय में खाना-पानी देकर वह तो उन्हें सुखी रखेगा। इसी प्रकार भक्त कहता है कि मैं तो अल्पज्ञ हूँ अतः पशु के समान हूँ, चूँकि आप सर्वज्ञ हैं, और पशुपति मेरे मालिक भी हैं, अतः इस गहन संसार में सर्वथा मेरी रक्षा करेंगे ही, मेरी उपेक्षा तो आप कभी नहीं कर

सकते हैं।

घटो वा मृत्पिण्डोऽप्यणुरपि च धूमोऽग्निरचलः
पटो वा तन्तुर्वा परिहरति किं घोरशमनम्।
वृथा कण्ठक्षोभं वहसि तरसा तर्कवचसा
पदाम्भोजं शम्भो र्भज परमसौख्यं व्रज सुधीः।।६।।

अन्वय—हे सुधीः! घटः, वा, मृत्पिण्डः, वा, अणुरपि, धूमः, वा, अग्निः, वा, अचलः, वा, (अथवा) पटः, तन्तुः, वा, किम् घोरशमनम्, परिहरति? (त्वम् तु) वृथा, तरसा, तर्कवचसा, कण्ठक्षोभम्, वहसि। (तस्मात्), शम्भोः, पदाम्भोजम् भज, परमसौख्यम्, व्रज।

अर्थ—हे विद्वान्! आप न्यायशास्त्र के घट, पट, कपाल, तन्तु, धूम, अग्नि व पर्वत इत्यादि पदार्थों को ही निरन्तर क्यों रट रहे हो? क्या इन पदार्थों के रटने से अन्तिम समय में भयानक उस यमराज का परिहार हो जाएगा? कदापि नहीं। व्यर्थ के इन कर्कश तर्क वचनों से अपना गला क्यों सुखा रहे हो? इस प्रकार के व्यर्थ के परिश्रम से क्या कोई सांसारिक ताप शान्त हो सकता है! तस्मात् इस घटपटादि के व्यर्थ जञ्जाल को छोड़कर भगवान् शंकर के चरणकमलों का भजन करो, जिसके द्वारा ही परमसौख्य की प्राप्ति हो सकती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि नैय्यायिक लोग (न्यायशास्त्र के अध्येता) अपना सारा जीवन न्यायशास्त्र के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को, घटपटादि दृष्टान्तों को सामने रखकर कार्य-कारण-भाव दिखलाया करते हैं जैसे—'समवायेन कार्यं प्रति तादात्म्येन द्रव्यं कारणम्', के बारे में घट व कपाल में परस्पर कार्यकारण-भाव दिखाते हैं—समवायसम्बन्धावच्छिन्ना घटत्वावच्छिन्ना घटनिष्ठा कार्यता, तन्निरूपिता तादात्म्य-सम्बन्धावच्छिन्ना कपालनिष्ठा कारणता; कपालत्वावच्छिन्ना या कारणता सा किञ्चिद्धर्मावच्छिन्ना कारणतात्वात्'। इत्यादि प्रकार से घट व कपाल के, पट व तन्तु के कार्यकारण-भाव को सिद्ध करने में, तथा 'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' इत्यादि अनुमान वाक्यों में पक्ष साध्य व हेतु के विचार में ही अपना सारा जीवन बिता देते हैं। ऐसे शुष्क नैय्यायिकों को लक्ष्य करके शम्भुभक्त कह रहा है, कि हे विद्वन्! क्या 'घटोऽनित्यः कृतकत्वात् पटवत्' इत्यादि घटपटादि विषयक अनुमान वाक्यों को ज़ोर-ज़ोर से रटकर ही अपनी ज़िन्दगी बिता दोगे? इससे अन्त में कुछ भी सारवस्तु तुम्हारे हाथ में नहीं आनी। शंकर जी के चरणकमलों का भजन कर लो,

जिससे इस त्रिविध ताप से तो मुक्त होकर, परमपुरुषार्थ को प्राप्त कर लोगे।

मनस्ते पादाब्जे निवसतु वचः स्तोत्रफणितौ
करौ चाभ्यर्चायां श्रुतिरपि कथाकर्णनविधौ।
तव ध्याने बुद्धिर्नयनयुगलं मूर्तिविभवे
परग्रन्थान् कैर्वा परमशिव जाने परमतः।।७।।

अन्वय—हे शम्भो! ते, पादाब्जे, (मम), मनः, निवसतु, ते, स्तोत्रफणितौ, (मम), वचः, निवसतु, ते, अभ्यर्चायाम्, (मम) करौ, (निवसताम्) (मम) श्रुतिः, अपि, कथाकर्णनविधौ, निवसतु, तव, ध्याने, (मम), बुद्धिः निवसतु, (मम) नयनयुगलम्, (तव) मूर्तिविभवे, निवसतु, हे परमशिव! अतः, परम्, (अहम्) कैः, (करणैः), वा, परग्रन्थान्, जाने।

अर्थ—कोई शंकरभक्त स्वयं अपनी दिनचर्या बतलाते हुए कह रहा है कि हे शम्भो! मेरा मन हमेशा आपके चरणकमलों में रहता है, मेरी वाणी आपकी स्तुतिगान करती है, मेरे हाथ आपकी पूजा में ही व्यस्त रहते हैं, और मेरे कान आपकी कथा का पान करते हैं, मेरी बुद्धि आपके ध्यान में मस्त रहती है, और ये नयनयुगल आपके स्वरूप के सौन्दर्य को निहारते हैं, बस अब कोई ऐसी इन्द्रिय बाकी नहीं कि जिससे मैं अन्य ग्रन्थों को पढ़ सकूँ। कहने का अभिप्राय यह है कि मेरी सारी इन्द्रियाँ तो आपकी तत्तत् सेवा में संसक्त हैं, तब फुरसत ही कहाँ है बाह्य विषयों के ग्रन्थों के अध्ययन की!

यथा बुद्धिः शुक्तौ रजतमिति काचाश्मनि मणि-
र्जले पैष्टे क्षीरं भवति मृगतृष्णासु सलिलम्।
तथा देवभ्रान्त्या भजति भवदन्यं जडजनो
महादेवेशं त्वां मनसि च न मत्वा पशुपते।।८।।

अन्वय—यथा, शुक्तौ, रजतम्, इति, बुद्धिः भवति, काचाश्मनि, मणिः, इति, पैष्टे, जले, क्षीरम्, इति, मृगतृष्णासु, सलिलम्, इति, बुद्धिः, भवति, तथा, एव, हे पशुपते! जडजनः, महादेवेशम्, त्वाम्, मनसि, न, मत्वा, देवभ्रान्त्या, च, भवदन्यम्, भजति।

अर्थ—जिस प्रकार भ्रान्तिवश, शुक्ति में रजत का ज्ञान होता है, काँच में मणि का ज्ञान, आटा मिले जल में (पावडर युक्त जल में) दुग्ध का ज्ञान होता है, और मृगतृष्णा में जल-बुद्धि होती है, उसी प्रकार हे पशुपते! यह मन्दमति जन, मन में महादेव आप ईश्वर को न मानकर, भ्रान्तिवश किसी अन्य को महादेव समझकर भजता है।

गभीरे कासारे विशति विजने घोरविपिने
विशाले शैले च भ्रमति कुसुमार्थं जडमतिः।
समर्प्यैकं चेतःसरसिजमुमानाथ भवते
सुखेनावस्थातुं जन इह न जानाति किमहो।।९।।

अन्वय–हे उमानाथ! इह, जडमतिः, कुसुमार्थम्, गभीरे, कासारे, विशति, विजने, घोरविपिने, विशाले, शैले, च भ्रमति, अहो! एकम्, चेतःसरसिजम्, भवते, समर्प्य, जनः, इह, सुखेन, अवस्थातुम्, न, जानाति, किम्।

अर्थ–हे उमानाथ! इस संसार में मन्दमति, पुष्प के लिए कभी तो गहरे तालाब में प्रवेश करता है तो कभी निर्जन व घनघोर जंगल में भ्रमण करता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि लोग केवल एक अपने हृदयरूपी कमल को आपको समर्पण कर, इस संसार में सुख से रहना नहीं जानते हैं।

नरत्वं देवत्वं नगवनमृगत्वं मशकता
पशुत्वं कीटत्वं भवतु विहगत्वादिजननम्।
सदा त्वत्पादाब्जस्मरणपरमानन्दलहरी
विहारासक्तं चेद्धृदयमिह किं तेन वपुषा।।१०।।

अन्वय–हे शम्भो! इह, (अस्माकम्), हृदयम्, सदा, त्वत्पादाब्जस्मरण-परमानन्दलहरीविहारासक्तम्, अस्ति, चेत् (तदा) नरत्वम्, देवत्वम्, नगवनमृगत्वम्, मशकता, पशुत्वम्, कीटत्वम्, विहगत्वादिजननम्, (वा), भवतु, तेन, वपुषा, किम्।

अर्थ–हे शम्भो! इस संसार में यदि हमारा हृदय हमेशा आपके चरणकमलों के स्मरणरूप परमानन्दलहरी के विहार में आसक्त है, तो फिर हमारा जन्म भले ही देव योनि, नर योनि, पर्वतीय वन के मृग की योनि में, अथवा पशु, कीट, मशक, पक्षी आदि योनियों में ही क्यों न हो, इससे हमारा कुछ नहीं बिगड़ता अर्थात् चाहे किसी भी शरीर में रहें, यदि आपके चरणारविन्द-मकरन्द का पान होता हो, तो फिर कोई बड़ी हानि नहीं है।

बटुर्वा गेही वा यतिरपि जटी वा तदितरो
नरो वा यः कश्चिद् भवतु भव किं तेन भवति।
यदीयं हृत्पद्मं यदि भवदधीनं पशुपते
तदीयस्त्वं शम्भो भवसि भवभारं च वहसि।।११।।

अन्वय–हे भव! (इह संसारे), बटुः, गेही, वा, यतिः, अपि, (भवेत्), जटी,

(भवेत्) तदितरः, नरः, वा, यः, कश्चिदपि, भवतु, तेन, किमु, भवति, हे पशुपते! यदीयम्, हृत्पद्मम्, यदि, भवदधीनम् (भवति) तर्हि, त्वम्, तदीयः, भवसि, हे शम्भो! (तस्य) (त्वम्) भवभारम्, च वहसि।

अर्थ—हे शङ्कर! इस संसार में मनुष्य चाहे किसी वर्ण या आश्रम में हो, वह ब्रह्मचारी हो, गृहस्थी हो, संन्यासी हो, चाहे जटाधारी हो, अथवा इनसे अतिरिक्त कोई भी हो, इसमें कोई बड़ी बात नहीं है। हे पशुपते! असली बात तो यह है कि जिसका हृदयकमल आपके अधीन हो जाता है, निश्चित आप उसके हो जाते हैं। हे शम्भो! इसीलिए आप उसकी जीवनयात्रा के सारे भार या ज़िम्मेदारी को भी सम्हाल लेते हो।

गुहायां गेहे वा बहिरपि वने वाद्रिशिखरे
जले व वह्नौ वा वसतु वसतेः किं वद फलम्।
सदा यस्यैवान्तःकरणमपि शम्भो तव पदे
स्थितं चेद्योगोऽसौ स च परमयोगी स च सुखी।।१२।।

अन्वय—हे शम्भो! (इह संसारे मनुजः), गुहायाम्, गेहे, वा, बहिः, अपि, वने, अद्रिशिखरे, वा, जले, वह्नौ, वा वसतु (तस्याः) वसतेः, वद, किमु, फलम्, अस्ति, (न किमपीत्यर्थः)। हे शम्भो! यस्य, अन्तःकरणम्, अपि, सदा, एव, तव पदे, स्थितम्, चेत्, असौ, योगः, स, च, परमयोगी, स, च, सुखी (अस्ति)।

अर्थ—हे शम्भो! इस संसार में मनुष्य चाहे गुहा में रहे, या घर में, बाहर, अथवा वन में, या पर्वतशिखर में, जल में या अग्नि के समीप, चाहे कहीं भी रहे, किसी स्थानविशेष में रहने का कोई महत्त्व नहीं है, महत्त्व की बात तो यह है कि जिसका अन्तःकरण भी सर्वदा अपके चरणकमलों में लगा रहता है, वस्तुतः वही ध्यानी, परमयोगी और सबसे अधिक सुखी है।

असारे संसारे निजभजनदूरे जडधिया
भ्रमन्तं मामन्धं परमकृपया पातुमुचितम्।
मदन्यः को दीनस्तव कृपणरक्षातिनिपुण-
स्त्वदन्यः को वा मे त्रिजगति शरण्यः पशुपते।।१३।।

अन्वय—हे पशुपते! जडधिया, असारे, संसारे, निजभजनदूरे, (स्थितम्), अत एव भ्रमन्तम्, अन्धम्, माम्, परमकृपया, पातुम्, उचितम्, (अस्ति) तव, मदन्यः, कः, दीनः, (अस्ति), त्रिजगति, कृपणरक्षातिनिपुणः, त्वदन्यः, कः, वा, मे, शरण्यः, (अस्ति)।

अर्थ—हे पशुपते! अपनी मन्दमति के कारण, इस असार संसार में मैं आपका भजन नहीं कर सका, अत एव अन्धों की तरह भटकता ही रहा। ऐसी दशा में कृपा पूर्वक मेरी रक्षा करना उचित ही है, क्योंकि आपके भक्तों में मेरे से बढ़कर दीन कोई नहीं है, और तीनों लोकों में दीनों की रक्षा में तत्पर आपके समान शरण देने वाला भी कोई नहीं है।

प्रभुस्त्वं दीनानां खलु परमबन्धुः पशुपते
प्रमुख्योऽहं तेषामपि किमुत बन्धुत्वमनयोः।
त्वयैव क्षन्तव्याः शिव मदपराधाश्च सकलाः
प्रयत्नात् कर्तव्यं मदवनमियं बन्धुसरणिः ।।१४।।

अन्वय—हे पशुपते! प्रभुः, त्वम्, दीनानाम्, परमबन्धुः, खलु, अहम्, अपि, तेषम्, प्रमुख्यः, (अस्मि), अतः अनयोः, बन्धुत्वम्, किमुत, हे शिव! त्वया, एव, सकलाः, मदपराधाः, च, क्षन्तव्याः, प्रयत्नात्, मदवनम्, अपि, कर्तव्यम्, इयम्, बन्धुसरणिः, अस्ति।

अर्थ—हे पशुपते! आप प्रभु, सबके स्वामी होते हुए भी, विशेषकर दीनों के परमबन्धु हो, और उन दीनों में मेरा स्थान सबसे पहले है, अर्थात् मैं तो प्रथम श्रेणी का दीन हूँ; तब आपकी और मेरी बन्धुता में (दोस्ती में) सन्देह ही क्या है? इसलिए हे शिव! आप मेरे जाने-अनजाने सारे अपराधों को क्षमा करें, इतना ही नहीं, बड़ी सावधानी से मेरी रक्षा भी करें, संसार में बन्धुओं का यही आदर्श व्यवहार भी है।

उपेक्षा नो चेत् किं न हरसि भवद्ध्यानविमुखां
दुराशाभूयिष्ठां विधिलिपिमशक्तो यदि भवान्।
शिरस्तद् वैधात्रं न नखलु सुवृत्तं पशुपते
कथं वा निर्यत्नं करनखमुखेनैव लुलितम्।।१५।।

अन्वय—हे पशुपते! चेत्, (तव) उपेक्षा, न (तर्हि) भवद्ध्यानविमुखाम्, दुराशाभूयिष्ठाम्, विधिलिपिम्, किम्, न, हरसि, यदि (तत्रापि) भवान् अशक्तः, (तर्हि) कथम्, वा निर्यत्नम्, करनखमुखेन, एव, लुलितम्, तद्, वैधात्रम्, शिरः (भवता) न, खलु, सुवृत्तम्, न।

अर्थ—हे पशुपते! यदि (मेरे विषय में) आपकी उपेक्षा नहीं है, तो फिर आप अपने ध्यान से विमुख, निराशाप्रधान, ब्रह्मा की लिखी हुई ललाट पर अक्षर पंक्ति को लुप्त क्यों नहीं कर देते? अर्थात् यदि मेरे भाग्य में ब्रह्मा ने ईश्वरभजन से शून्य कोई पदावली अङ्कित की है, तो आप में तो इतना

सामर्थ्य है कि आप इस प्रकार की विधाता से निर्मित ललाटाक्षर पदावली को भी बदल सकते हैं। जब आप स्वयं अपने करकमलों के नखाग्रभाग से ही अनायास उस विधाता के शिर का तक निर्माण कर सकते हैं, और ऐसा भी नहीं कि वह शिरोरचना अच्छी न हुई हो; तब उसके द्वारा रचित पदपंक्ति को बदलने में कौन-सा प्रयास है!

विरिञ्चिर्दीर्घायुर्भवतु भवता तत्परशिर-
श्चतुष्कं संरक्ष्यं स खलु भुवि दैन्यं लिखितवान्।
विचारः को वा मां विशदकृपया पाति शिव ते
कटाक्षव्यापारः स्वयमपि च दीनावनपरः।।१६।।

अन्वय—भवता, तत्परशिरश्चतुष्कम् संरक्ष्यम्, (यतो हि) भुवि, सः, (जनानां ललाटे) दैन्यम्, लिखितवान्, (एतादृशः), सः, खलु, विरिञ्चिः, दीर्घायुः, भवतु, हे शिव! विशदकृपया, माम्, पाति (अथवा), कः, वा, विचारः, ते, कटाक्षव्यापारः, स्वयम् अपि, दीनावनपरः, (अस्ति)।

अर्थ—हे शम्भो! आप ब्रह्मा जी के बाकी चारों शिरों की रक्षा खूब सावधानी से करें, ब्रह्माजी की आयु दीर्घ हो क्योंकि वे संसार में सभी जनों के शिरों (ललाटों) में दीनता का उल्लेख करते हैं। एक तरह से भक्त यहाँ भगवान् को मीठा उपालम्भ (उलाहना) दे रहा है कि जो विधाता दुनिया के शिरों को दुर्भाग्यग्रस्त कर देता है, आप उसके शिरों की रक्षा बड़ी तत्परता से कर रहे हैं, क्या यह उचित है? भगवन्! ऐसी स्थिति में आपकी निर्मल दया ही मुझे बचा सकती है। अथवा मुझे चिन्ता करने की भी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि दीनों की रक्षा करना आपके कटाक्षों का स्वभाव है।

फलाद् वा पुण्यानां मयि करुणया वा त्वयि विभो
प्रसन्नेऽपि स्वामिन् भवदमलपादाब्जयुगलम्।
कथं पश्येयं मां स्थगयति नमःसंभ्रमजुषां
निलिम्पानां श्रेणिर्निजकनकमाणिक्यमुकुटैः।।१७।।

अन्वय—हे विभो! पुण्यानाम्, फलात्, वा, मयि, करुणया, वा, हे स्वामिन्! त्वयि, प्रसन्नेऽपि, (अहम्), भवदमलपादाब्जयुगलम्, कथम्, पश्येयम् (यतो हि) नमःसंभ्रमजुषाम्, निलिम्पानाम्, श्रेणिः, निजकनकमाणिक्यमुकुटैः, माम्, स्थगयति।

अर्थ—हे भगवन्! किन्हीं पूर्वोपार्जित पुण्यों के द्वारा, अथवा आपकी ही परमकृपा से, आपके प्रसन्न हो जाने पर भी, मैं आपके निर्मल चरणकमलों

का दर्शन कैसे करूँ? क्योंकि प्रणाम करने की जल्दी मचाते निरन्तर भीड़ लगाये हुए देवताओं की पंक्ति, अपने सुवर्ण व माणिक्य खचित मुकुटों से मेरी दृष्टि को ढक देती है। तात्पर्य यह है कि जब-जब भी मैं आपके चरणकमलों का दर्शन करना चाहता हूँ, तब-तब अर्थात् हमेशा, मैं देवताओं के मणिमयमुकुटों से आपके चरणकमलों को घिरा हुआ ही पाता हूँ। अतः स्वच्छन्दतापूर्वक आपके चरणकमलों का दर्शन मैं नहीं कर पाता हूँ।

त्वमेको लोकानां परमफलदो दिव्यपदवीं
वहन्तस्त्वन्मूलां पुनरपि भजन्ते हरिमुखाः।
कियद् वा दाक्षिण्यं तव शिव मदाशा च कियती
कदा वा मद्रक्षां वहसि करुणापूरितदृशा।।१८।।

अन्वय—हे शिव! लोकानाम्, त्वमेकः, परमफलदः, (असि) त्वन्मूलाम्, दिव्यपदवीम्, वहन्तः, हरिमुखाः, पुनः, अपि, (त्वाम्) भजन्ते, कियत्, वा, तव, दाक्षिण्यम् (वर्णयामि), मदाशा, च कियती, (अस्ति) (हे शिव!) कदा, वा, (त्वम्) करुणापूरितदृशा, मद्रक्षाम्, वहसि।

अर्थ—हे शिव! लोगों के लिए एकमात्र आप ही परमफल देने वाले हो, क्योंकि आपकी ही दी हुई दिव्य पदवी (दैवी-उपाधि) को धारण करने वाले हरि ब्रह्मादि भी आपका ही भजन करते हैं। हे शम्भो! आपकी उदारता का वर्णन हम कहाँ तक करें, और अपनी तुच्छ इन आशाओं के विषय में क्या कहें! सिर्फ इतना ही कहना है, कि आप कब हमें अपनी करुणापूर्ण दृष्टि से हमारा त्राण करेंगे।

दुराशाभूयिष्ठे दुरधिपगृहद्वारघटके
दुरन्ते संसारे दुरितनिलये दुःखजनके।
मदायासं किं न व्यापनयसि कस्योपकृतये
वदेयं प्रीतिश्चेत्तव शिव कृतार्थाः खलु वयम्।।१९।।

अन्वय—शिव! दुराशाभूयिष्ठे, दुरधिपगृहद्वारघटके, दुरन्ते, दुरितनिलये, दुःखजनके, (अस्मिन्), संसारे, वद, कस्य, उपकृतये, तव, इयम्, प्रीतिः, मदायासम्, किम् न, व्यपनयसि (येन) वयम्, कृतर्थाः, खलु।

अर्थ—हे शम्भो! एक क्रूर स्वामी के घर के द्वार के समान, जिसमें सिवाय दुःख के और कुछ भी हासिल न हो सके, ऐसे पाप के भण्डार के समान दुःखजनक एवं दुराशा, कुत्सित-वासनाओं से परिपूर्ण इस संसार में, कहिए आपकी यह प्रसन्नता किस काम की, जो कि मेरे सन्ताप को भी दूर नहीं कर

सकती है? हे स्वामिन्! यह सब जानते हुए भी, आप क्यों इस सन्ताप को दूर नहीं करते, यदि यह त्रिविध सन्ताप दूर हो जाय तब तो हम सब कृतार्थ हो जायें।

सदा मोहाटव्यां चरति युवतीनां कुचगिरौ
नटत्याशाशाखास्वटति झटिति स्वैरमभितः।
कपालिन् भिक्षो मे हृदयकपिमत्यन्तचपलं
दृढं भक्त्या बद्ध्वा शिव भवदधीनं कुरु विभो।।२०।।

अन्वय—हे शिव! (मम हृदयकपिः), सदा, मोहाटव्याम्, चरति, युवतीनाम्, कुचगिरौ, नटति, आशाशाखासु, झटिति, स्वैरम्, अभितः अटति, हे कपालिन्! भिक्षो! मे, अत्यन्तचपलम्, हृदयकपिम्, भक्त्या दृढम्, बद्ध्वा, हे विभो! भवदधीनम्, कुरु।

अर्थ—हे शिव! मेरा यह हृदयरूपी कपि (बन्दर) हमेशा मोह रूपी जङ्गलों में सञ्चरण करता है, और युवतियों के कुचरूपी पर्वतों में नाचता है, तथा अनेक प्रकार की आशारूपी शाखाओं के चारों ओर जल्दी-जल्दी स्वच्छन्दतापूर्वक घूमता है। हे विभो! हे कपालिन्! आप मेरे इस अत्यन्त चञ्चल हृदयरूपी कपि को भक्ति रूपी रस्सी से अच्छी तरह बाँधकर अपने अधीन कीजिए।

धृतिस्तम्भाधारां दृढगुणनिबद्धां सगमनां
विचित्रां पद्माढ्यां प्रतिदिवससन्मार्गघटिताम्।
स्मरारे मच्चेतःस्फुटपटकुटीं प्राप्य विशदां
जय स्वामिन् शक्त्या सह शिवगणैः सेवित विभो।।२१।।

अन्वय—हे स्मरारे! हे स्वामिन्! धृतिस्तम्भाधाराम्, दृढगुणनिबद्धाम्, सगमनाम्, विचित्राम्, पद्माढ्यां, प्रतिदिवससन्मार्गघटिताम्, (अतएव) विशदाम्, मच्चेतःस्फुटपटकुटीम्, प्राप्य, हे विभो! शक्त्या सह, शिवगणैः, सेवित! त्वम्, जय।

अर्थ—हे स्मरारे! हे स्वामिन्! धैर्यरूपी स्तम्भों के आधार वाली, मजबूत सत्त्वादि गुण रूपी रस्सियों से बांधी गई, चलती फिरती, विचित्र कमलों से सुशोभित, निरन्तर सन्मार्ग की ओर अग्रसर होने से अत्यन्त स्वच्छ, मेरे इस चित्तरूपी पटकुटीर (छावनी) को प्राप्त कर, आप अपनी शक्ति व गणों के साथ होकर इसको जीतें।

प्रलोभाद्यैरर्थाहरणपरतन्त्रो धनिगृहे
प्रवेशोद्युक्तः सन् भ्रमति बहुधा तस्करपते।

इमं चेतश्चोरं कथमिह सहे शंकर विभो
तवाधीनं कृत्वा मयि निरपराधे कुरु कृपाम्।।२२।।

अन्वय—हे तस्करपते! (मदीयः, अयम्, चेतश्चोरः), प्रलोभाद्यैः, अर्थाहरणपरतन्त्रः, धनिगृहे, प्रवेशोद्युक्तः, सन्, बहुधा, भ्रमति, इह, कथम्, अहम्, इमम्, चेतश्चोरम्, सहे, तव, अधीनम्, इमम्, कृत्वा (अहम् सुखी भवामि) हे शंकरविभो! निरपराधे, मयि, कृपाम्, कुरु।

अर्थ—हे चोरों के अनुशासक शम्भो! मेरा यह चित्तरूपी चोर, अनेक प्रलोभनों से या दुर्वासनाओं से धन की चोरी करने के लिए धनिकों के घरों में प्रवेश पाने के लिए इधर-उधर बहुत चक्कर काटता ही रहता है। जब मैं इसको चोरी करने के मामले में साफ देख रहा हूँ, तो फिर कैसे सहन कर सकता हूँ! अतः मैं इस चित्तरूपी चोर को आपके हवाले कर देना चाहता हूँ। क्योंकि आप तस्करपति, चोरों के अनुशासक अर्थात् नगर कुतुवाल हैं, अतः आप इस चोर को अपने अधीन कीजिए, तभी मैं सुखी हो सकता हूँ। मेरा इसकी चोरी के साथ कोई संबंध नहीं है, अतः मैं निरपराध हूँ, इसलिए मेरे उपर कृपा कीजिए। [वेद में भगवान् शंकर को 'तस्कराणां पतये' भी कहा गया है, अर्थात् भगवान् चोरों के सरदार भी हैं। तदनुसार भक्त भगवान् से कह रहा है कि हे भगवन् यदि यह चित्त रूपी चोर आपके गिरोह का कोई व्यक्ति होय, तो आप शीघ्र इसे अपने गिरोह के अन्दर कर लीजिए, अन्यथा बाहरी व्यक्तियों की नजर में यह आयेगा तो फिर आपके गिरोह का भेद खुल जायेगा। इसके साथ लेन देन का मेरा अपना कोई भी ताल्लुक नहीं है, इसलिए मैं निरपराध हूँ। वस्तुतः विषयप्रदेश में चित्त के सञ्चरण करने से, वासनाजन्य मालिन्य चित्त में ही रहता है, उसका जीवात्मा से कोई संबंध नहीं है, अतः जीवात्मा का कथन है कि मैं तो आपका ही अंश हूँ, मेरा इस चित्त के व्यापारों से कोई मतलब नहीं है, अतः निरपराध शुद्ध बुद्ध स्वच्छ स्वभाव वाले मुझको तो आपके साथ ही एक होना है। इसी प्रकार की कृपा को मैं चाहता हूँ।]

करोमि त्वत्पूजां सपदि सुखदो मे भव विभो
विधित्वं विष्णुत्वं दिशसि खलु तस्याः फलमिति।
पुनश्च त्वां द्रष्टुं दिवि भुवि वहन् पक्षिमृगताम्
अदृष्ट्वा तत्खेदं कथमिह सहे शंकरविभो।।२३।।

अन्वय—*हे विभो! (अहम्) त्वत्पूजाम्, करोमि (त्वम्), मे, सपदि, सुखदः, भव, तस्याः (पूजायाः) फलम्, (त्वम्) विधित्वम्, विष्णुत्वम्, (वा) दिशसि, खलु, पुनश्च, त्वाम् द्रष्टुम्, दिवि, भुवि, पक्षिमृगताम्, वहन् (तथापि), त्वाम्, अदृष्ट्वा, हे शंकरविभो! इह, तत्खेदम्, कथम्, सहे।*

अर्थ—हे विभो! मैं निरन्तर आपकी पूजा करता हूँ, आप मुझे सुख प्रदान करें। आपकी पूजा का फल साधारण नहीं होता है, वह तो कभी ब्रह्मा व विष्णु तक के पदों की प्राप्ति करा देता है। हे प्रभो! आपके दर्शन के लिए मैं तो स्वर्ग व मर्त्यलोक में पक्षी व मृगादि के रूपों में विचरण करता ही हूँ। यह सब कुछ होते हुए भी, जब आपका दर्शन नहीं मिलता है, तो फिर इस दुःख को मैं कैसे सहन कर सकता हूँ।

कदा वा कैलासे कनकमणिसौधे सह गणै-
र्वसन् शम्भोरग्रे स्फुटघटितमूर्धाञ्जलिपुटः।
विभो साम्ब स्वामिन् परमशिव पाहीति निगदन्
विधातॄणां कल्पान् निमिषमिव नेष्यामि सुखतः।।२४।।

अन्वय—*हे शम्भो! (अहम्) कनकमणिसौधे कैलासे, शम्भोः, अग्रे, गणैः, सह, वसन्, स्फुटघटितमूर्धाञ्जलिपुटः, सन्, हे विभो! हे साम्ब! हे स्वामिन्! हे परमशिव! (माम्) पाहि, इति, वदन्, विधातॄणाम्, कल्पान्, निमिषम् इव, सुखतः, कदा, वा नेष्यामि।*

अर्थ—हे शम्भो! सुवर्ण व मणिमय भवनों से युक्त कैलास में भगवान् शंकर के सामने उनके गणों के साथ रहता हुआ, मस्तक-नमनपूर्वक नमस्काराञ्जलि समर्पण करता हुआ, और 'हे विभो! हे साम्ब! हे स्वामिन्! हे परमशिव! मेरी रक्षा करो' इस प्रकार के शब्दों का उच्चारण करता हुआ, विधाता ब्रह्मा के कल्पों को एक निमेष के समान सुखपूर्वक कब बिता दूँ? अर्थात्, ऐसा पुण्यमय समय कब आएगा?

स्तवैर्ब्रह्मादीनां जयजयवचोभिर्नियमिनां
गणानां केलीभिर्मदकलमहोक्षस्य ककुदि।
स्थितं नीलग्रीवं त्रिनयनमुमाश्लिष्टवपुषं
कदा त्वां पश्येयं करधृतमृगं खण्डपरशुम्।।२५।।

अन्वय—*हे विभो! ब्रह्मादीनाम्, जयजयवचोभिः, स्तवैः (युक्तम्), तथा च, नियमिनाम्, गणानाम्, केलीभिः, (युक्तम्), मदकलमहोक्षस्य, ककुदि,*

स्थितम्, नीलग्रीवम् त्रिनयनम्, उमाश्लिष्टवपुषम्, करधृतमृगम्, खण्डपरशुम्, त्वाम्, (अहम्) कदा पश्येयम्।

अर्थ—हे प्रभो! ब्रह्मादिकों के जय-जय ध्वनियुक्त स्तुतियों से तथा संयमी गणों की क्रीडाओं से समन्वित, मदमस्त सुन्दर बैल के पीठ में विराजमान, नीलग्रीव, त्रिनयन, उमा से संयुक्त, हाथ में मृग व खण्डपरशु को धारण किए हुए आपको, मैं कब देखूँ? अर्थात् ऐसा सौभाग्यमय अवसर कब आयेगा जबकि मैं पूर्वोक्त आकार प्रकारों से संयुक्त आपको देख सकूँ?

कदा वा त्वां दृष्ट्वा गिरिश तव भव्यांघ्रियुगलं
गृहीत्वा हस्ताभ्यां शिरसि नयने वक्षसि वहन्।
समाश्लिष्याघ्राय स्फुटजलजगन्धान् परिमलान्
अलभ्यां ब्रह्माद्यैर्मुदमनुभविष्यामि हृदये।।२६।।

अन्वय—हे गिरिश! त्वाम् दृष्ट्वा, तव, भव्यांघ्रियुगलम्, हस्ताभ्याम्, गृहीत्वा, शिरसि, नयने, वक्षसि, च वहन्, समाश्लिष्य, स्फुटजलजगन्धान्, परिमलान्, आघ्राय, ब्रह्माद्यैरपि, अलभ्याम्, मुदम्, हृदये, कदा, अनुभविष्यामि?

अर्थ—हे गिरिश! आपको देखकर आपके भव्य चरणयुगलों को हाथों से ग्रहण कर, शिर में, नेत्रों में, व हृदय में, धारण कर, उन चरणों का आलिङ्गनकर खिले हुए कमलों के गन्धयुक्त पराग वाले उन चरणों को सूँघकर, ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी दुर्लभ प्रसन्नता को अपने हृदय में मैं कब प्राप्त करूँगा?

करस्थे हेमाद्रौ गिरिश निकटस्थे धनपतौ
गृहस्थे स्वर्भूजामरसुरभिचिन्तामणिगणे।
शिरःस्थे शीतांशौ चरणयुगलस्थेऽखिलशुभे
कमर्थं दास्येऽहं भवतु भवदर्थं मम मनः।।२७।।

अन्वय—हे गिरिश! (त्वदीये) करस्थे हेमाद्रौ (विद्यमाने), निकटस्थे धनपतौ (विद्यमाने), गृहस्थे स्वर्भूजामरसुरभिचिन्तामणिगणे च (समीपे सुलभे सति), शिरःस्थे शीतांशौ (विद्यमाने), चरणयुगले, च, अखिलशुभे, (विद्यमाने सति), अहम् भवदर्थम्, कम्, (पदार्थविशेषम्) दास्ये, (तस्मात्), मम, मनः, भवदर्थम्, भवतु।

अर्थ—हे गिरिश! जब आपके हाथ में ही सुमेरु पर्वत है, और समीप में ही धनपति कुबेर है, घर में ही स्वर्गापगा-गङ्गा जी हैं, और कामधेनु व चिन्तामणि आदि आपके समीप में ही सुलभ हैं, चन्द्रमा शिर में ही जब

विराजमान हैं, सभी प्रकार के सौख्यों को प्रदान करने वाले जब आपके चरणयुगल हैं ही, तो फिर कौन-सी ऐसी उत्कृष्ट वस्तु बची है, जिसको कि मैं आपको दे सकूँ? मेरे पास तो एक अपना मन है, अब उसी को मैं आपको समर्पण करता हूँ।

सारूप्यं तव पूजने शिव महादेवेति संकीर्तने
सामीप्यं शिवभक्तिधुर्यजनतासांगत्यसम्भाषणे।
सालोक्यं च चराचरात्मकतनुध्याने भवानीपते
सायुज्यं मम सिद्धमत्र भवति स्वामिन् कृतार्थोऽस्म्यहम्।।२८।।

अन्वय—हे शिव! हे भवानीपते! अत्र, तव, पूजने, मम, सारूप्यम्, सिद्धम्, भवति, हे शिव! हे महादेव! इति संकीर्तने, मम, सामीप्यम्, सिद्धम्, भवति, शिवभक्तिधुर्यजनतासांगत्यसम्भाषणे, मम, सालोक्यम्, सिद्धम्, भवति, हे भवानीपते! भवतः, चराचरात्मकतनुध्याने, मम, सायुज्यम्, सिद्धम्, भवति, हे स्वामिन्! (अतः परम्) अहम्, कृतार्थः, अस्मि।

अर्थ—हे शिव! हे भावनीपते! इसी लोक में आपके पूजन से मेरा 'सारूप्य' (समानरूपता) सिद्ध हो जाता है। क्योंकि यह नियम है 'देवो भूत्वा देवान् यजेत्' स्वयं देवता जैसा बनकर ही देवता की पूजा करे, अतः जब मैं आपका पूजन करता हूँ तो फिर मैं भी आपके समान रूप वाला होता हूँ। केवल आपकी पूजा मात्र से मैं आपका सारूप्य प्राप्त कर लेता हूँ। और हे शिव! हे महादेव! इस प्रकार के शब्दों के संकीर्तन से मेरा आपके साथ सामीप्य भी सिद्ध हो जाता है, क्योंकि संकीर्तन भी तभी हो सकता है जबकि कोई देवता की मूर्ति समीप में हो, अतः संकीर्तन में मुझे आपका सामीप्य सुलभ हो जाता है। तथा शिवभक्ति में अग्रणी जनता की संगति तथा सम्भाषण से मुझे सालोक्य भी सुलभ है, क्योंकि जिस समय शिवभक्तों के बीच में अपने को पाता हूँ, तो फिर मेरे मन में यही विचार आता है कि मैं इस समय साक्षात् शिवलोक में ही हूँ। अतः शिवभक्तों की संगति से आपका सालोक्य भी मेरे लिए सहज में मिल जाता है। हे भवानीपते! आपका यह जो चित्-अचित् स्वरूपवाला अर्थात् स्थावरजङ्गमात्मक चराचर रूपवाला विराट् स्वरूप है, इसके निरन्तर ध्यान से मुझे 'सायुज्य' भी अनायास ही प्राप्त हो जाता है, अर्थात् जब मैं आपके विराट् स्वरूप का ध्यान करता हूँ, तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं आपके ही इस लीला विग्रह रूप विराट् स्वरूप में

लीन हूँ, अर्थात् फिर मेरी अलग से कोई स्थिति नहीं है। अतः केवल आपके ध्यानमात्र से ही मुझे परमपुरुषार्थ रूप 'सायुज्य' भी प्राप्त हो जाता है। हे स्वामिन्! इस प्रकार मैं अपने को कृतार्थ समझता हूँ।

वैष्णवों के वेदान्त ग्रन्थों में यही बतलाया गया है कि ईश्वरानुग्रह से भक्त को मोक्ष प्राप्त होता है जिसका स्वरूप है उस आनन्दात्मक दिव्य लोक का भोग। यही परममोक्ष माना जाता है। यह भी चार प्रकार का होता है, सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य और सायुज्य । संक्षेप में इनका अर्थ इस प्रकार है–

१. भगवद्रूपताप्राप्तिः सारूप्यम्, अर्थात् अर्चा पूजा आदि द्वारा परमाभक्ति से तद्रूप होना।
२. भगवत्समीपे स्थितिः सामीप्यम्, अर्थात् कीर्तन भजनादि से प्राप्त अनुग्रह से उनके समीप में रहना।
३. भगवल्लोके निवासः सालोक्यम्, अर्थात् सन्त समागम द्वारा प्राप्त अनुग्रह से उनके लोक में निवास करना।
४. भगवद्विग्रहे विलयः सायुज्यम्; अर्थात् निरन्तर भगवद्-ध्यान से प्राप्त परम भक्ति के द्वारा भगवान् के स्वरूप में ही लीन होना।

यह 'सायुज्य' ही परमपुरुषार्थ माना जाता है जहाँ भक्त को समग्र दिव्य आनन्दों का अनुभव होता है। आचार्य कहते हैं कि इतना तो शिव भक्त को ध्यान मात्र से ही मिल जाता है, शिवज्ञान से प्राप्य कैवल्य वैष्णवों की समझ के बाहर है।

त्वत्पादाम्बुजमर्चयामि परमं त्वां चिन्तयाम्यन्वहम्
त्वामीशं शरणं व्रजामि वचसा त्वामेव याचे विभो।
वीक्षां मे दिश चाक्षुषीं सकरुणां दिव्यैश्चिरं प्रार्थितां
शम्भो लोकगुरो मदीयमनसः सौख्योपदेशं कुरु।।२६।।

अन्वय–हे शम्भो! (अहम्) त्वत्पादाम्बुजम्, अर्चयामि, अन्वहम्, परमम्, त्वाम्, चिन्तयामि, ईशम्, त्वाम्, शरणम्, व्रजामि, हे विभो, वचसा, त्वाम्, एव, याचे, हे शम्भो! दिव्यैः चिरम्, प्रार्थिताम्, सकरुणाम्, चाक्षुषीम्, वीक्षाम्, मे, दिश, हे लोकगुरो! मदीयमनसः (कृते) सौख्योपदेशम्, कुरु।

अर्थ–हे शम्भो! मैं हमेशा आपके चरणकमलों का पूजन करता हूँ, और प्रतिदिन परात्पर स्वरूप आपका ही ध्यान करता हूँ। संसार के स्वामी, आपकी ही शरण में जाता हूँ। हे विभो! वाणी से भी केवल आपसे ही याचना

करता हूँ। हे शम्भो! देवता लोग भी जिसके लिए हमेशा लालायित रहते हैं, ऐसी करुणापूर्ण अपनी दिव्य दृष्टि प्रदान करें। हे लोकगुरो! मेरे मन के लिए परमसुखप्रद उपदेश कीजिए।

वस्त्रोद्धूतविधौ सहस्रकरता पुष्पार्चने विष्णुता
गन्धे गन्धवहात्मताऽन्नपचने बर्हिर्मुखाध्यक्षता।
पात्रे काञ्चनगर्भताऽस्ति मयि चेद् बालेन्दुचूडामणे
शुश्रूषां करवाणि ते पशुपते स्वामिनूस्त्रिलोकीगुरो।।३०।।

अन्वय—हे बालेन्दुचूडामणे! मयि (विषये) ते, वस्त्रोद्धूतविधौ, सहस्रकरता, पुष्पार्चने, विष्णुता, गन्धे गन्धवहात्मता, अन्नपचने, बर्हिर्मुखाध्यक्षता, पात्रे काञ्चनगर्भता, अस्ति, चेत्, तर्हि, हे पशुपते! हे स्वामिन्! हे त्रिलोकीगुरो! शुश्रूषाम्, करवाणि।

अर्थ—हे चन्द्रमुकुट! हे पशुपति! हे सर्वेश! त्रिलोकी के गुरु! आपको कपड़े पहनाने के लिय मैं यदि सूर्य होऊँ, फूलों से अर्चना करने के लिये विष्णु होऊँ, गन्धार्पण करने के लिये वायु होऊँ, भोजन पकाने के लिये इन्द्र होऊँ, आपके उपयोगी बर्तन बनाने के लिये ब्रह्मा होऊँ, तब आपकी सेवा कर सकूँ। (व्यापक रूपवाले आपकी सेवा परिच्छिन्न रहकर नहीं हो सकती—यह भाव है।)

नालं वा परमोपकारकमिदं त्वेकं पशूनां पते
पश्यन् कुक्षिगतांश्चराचरगणान् बाह्यस्थितान् रक्षितुम्।
सर्वामर्त्यपलायनौषधिमतिज्वालाकरं भीकरं
निक्षिप्तं गरलं गले न गिलितं नोद्गीर्णमेव त्वया।।३१।।

अन्वय—हे पशूनां पते! कुक्षिगतान्, बाह्यस्थितान्, चराचरगणान् पश्यन् रक्षितुं, सर्वामर्त्यपलायनौषधम्, अतिज्वालाकरं, भीकरं, गरलं, त्वया गले, निक्षिप्तं, न, गिलितं, न, एव, उद्गीर्णम्। इदम्, एकं, तु, परमोपकारकं, वा, अलं, न?

अर्थ—हे जीवों के पाकल! अपने उदर के भीतर और बाहर रहने वाले स्थावर-जंगम प्राणियों का विचार कर उनकी रक्षा के लिये आपने हालाहल विष न निगला, न उगला, कण्ठ में रोक लिया! वह विष साधारण नहीं था, सब देव उससे डरकर भाग गये थे क्योंकि वह भयंकर और जलन पैदा करने वाला था। यह एक ही अत्यन्त उपकारक कृत्य आपकी करुणा प्रकट करने के लिये पर्याप्त है।

ज्वालोग्रः सकलामरातिभयदः क्ष्वेलः कथं वा त्वया
दृष्टः किं च करे धृतः करतले किं पक्वजम्बूफलम्।
जिह्वायां निहितश्च सिद्धघुटिका वा कण्ठदेशे भृतः
किं ते नीलमणिर्विभूषणमयं शम्भो महात्मन् वद।।३२।।

अन्वय—शम्भो! हे महात्मन्! (एतत्) वद, यत्, ज्वालोग्रः, सकलामरातिभयदः, (अयम) क्ष्वेलः, त्वया, कथम्, दृष्टः, किम्, (पूर्वम्), करे धृतः, पश्चात्, करतले, (संस्थाप्य) पक्वजम्बूफलम्, इव, दृष्टः, अथवा, सिद्धगुटिका, (इतिधिया) जिह्वायाम्, निहितः, किं वा, ते, विभूषणमयम्, नीलमणिः, इति, मत्वा, कण्ठदेशे भृतः।

अर्थ—हे शम्भो! हे महात्मन्! यह तो बतलाइए, कि ज्वाला की तरह तीक्ष्ण और सभी देवताओं को भयभीत करने वाले समुद्रमन्थन से सर्वप्रथम निकले हुए उस गरल को, आपने किस तरह देखा? क्या पहिलं हाथ से उठा लिया, फिर हथेली में रखकर उसको पके हुए जामुन के फल के समान आपने समझा? अथवा सिद्ध गुटिका (सिद्ध रसायन) समझकर, आपने उसे जीभ में रख लिया? या नीलमणि का आभूषण समझकर गले में बाँध लिया?

नालं वा सकृदेव देव भवतः सेवा नति र्वा नुतिः
पूजा वा स्मरणं कथाश्रवणमप्यालोकनं मादृशाम्।
स्वामिन्नस्थिरदेवतानुसरणायासेन किं लभ्यते
का वा मुक्तिरितः कुतो भवति चेत् किं प्रार्थनीयं तदा।।३३।।

अन्वय—हे स्वामिन्! देव! भवतः सकृत् अपि सेवा, नतिः, वा, नुतिः, पूजा, वा स्मरणं, कथाश्रवणम् आलोकनम् मादृशाम् (मुक्त्यै) न अलं वा? इतः (उक्तोपायान् विहाय प्राप्या) मुक्तिः का वा! (उक्तानां मध्ये) कुतः (अपि) मुक्तिः भवति चेत् (तदा) अस्थिरदेवतानुसरणायासेन किं लभ्यते? प्रार्थनीयं किम्!

अर्थ—हे स्वामी! महादेव! एक बार भी आपकी सेवा करना—अर्थात् प्रणाम, स्तुति, पूजा, स्मरण, कथाश्रवण, दर्शन करना—क्या मुझ जैसों के मोक्ष के लिये काफी नहीं है! इन उपायों से अतिरिक्त किसी तरह मिलने वाला मोक्ष कौन-सा है? (अर्थात् कोई नहीं है)। जब इनमें से किसी भी उपाय से मोक्ष सुलभ है तब अस्थिर देवताओं के पीछे-पीछे घूमने का श्रम बेकार ही है क्योंकि उनसे क्या तो माँगें और क्या ही मिल सकेगा!

किं ब्रूमस्तव साहसं पशुपते कस्यास्ति शम्भो भवद्-
धैर्यं चेदृशमात्मनः स्थितिरियं चान्यैः कथं लभ्यते।
भ्रश्यद्देवगणं त्रसन्मुनिगणं नश्यत्प्रपञ्चं लयं
पश्यन् निर्भय एक एव विहरत्यानन्दसान्द्रो भवान्।।३४।।

अन्वय—हे पशुपते! तव, साहसम्, किम्!, ब्रूमः, हे शम्भो! ईदृशम्, भवद्धैर्यम्, (भवतः सदृशम् धैर्यम्) कस्य, अस्ति, इयम्, आत्मनः, स्थितिः, अन्यैः, कथम्, लभ्यते, भ्रश्यद्-देवगणम्, त्रसन्मुनिगणम्, नश्यत्प्रपञ्चम्, लयम्; पश्यन्, अपि, निर्भयः, भवान्, एकः, एव, आनन्दसान्द्रः, सन्, विहरति।

अर्थ—हे पशुपते! आपके साहस के विषय में हम क्या कहें! हे शम्भो! आपके समान धैर्यशाली अन्य कौन देवता है? अन्य देवताओं के द्वारा इस प्रकार की आत्मा की निश्चलात्मक स्थिति कैसे प्राप्त हो सकती है? क्योंकि प्रलय काल में जिस समय देवताओं का धैर्य डिग जाता है, और मुनिगण भी त्रस्त हो जाते हैं, यह सारा प्रपञ्च जब नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, ऐसे महा भयंकर प्रलय काल को भी, निर्भयतापूर्वक अकेले देखते हुए, आप आनन्दघनरूप में स्थित विहरण करते हैं।

योगक्षेमधुरन्धरस्य सकलश्रेयःप्रदोद्योगिनो
दृष्टादृष्टमतोपदेशकृतिनो बाह्यान्तरव्यापिनः।
सर्वज्ञस्य दयाकरस्य भवतः किं वेदितव्यं मया
शम्भो त्वं परमान्तरङ्ग इति मे चित्ते स्मराम्यन्वहम्।।३५।।

अन्वय—हे शम्भो! योगक्षेमधुरन्धरस्य, सकलश्रेयःप्रदोद्योगिनः, दृष्टादृष्टमतोपदेशकृतिनः, बाह्यान्तरव्यापिनः, सर्वज्ञस्य, दयाकरस्य, भवतः, (विषये) मया, किम् वेदितव्यम्, (अस्ति) (न किमपीत्यर्थः)। हे शम्भो! त्वम्, मे, परमान्तरङ्गः, (असि) (इति) (अहम्) अन्वहम्, चित्ते (त्वाम्) स्मरामि।

अर्थ—हे शम्भो! आप प्राणिमात्र के योग क्षेम में, अर्थात् अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति कराने में, और प्राप्त वस्तु की सुरक्षा कराने में, अथवा संसार यात्रा के निर्वाह में सर्वथा समर्थ हो, और सम्पूर्ण कल्याणों को प्रदान करने में तत्पर हो, इस लोक तथा परलोक के उपयुक्त सिद्धान्तों के उपदेश में भी कुशल हो। आप सभी के अन्दर और बाहर व्याप्त हैं। ऐसे सर्वज्ञ तथा दया के सागर आपके विषय में जानने योग्य कोई भी बात बाकी नहीं है। हे शम्भो! मेरा तो बस इतना ही कहना है, कि आप मेरे परम अन्तरङ्ग हैं, अत

एव मैं अपने चित्त में हमेशा आपका ही स्मरण करता हूँ।

भक्तो भक्तिगुणावृते मुदमृतापूर्णे प्रसन्ने मनः–
कुम्भे साम्ब तवांघ्रिपल्लवयुगं संस्थाप्य संवित्फलम्।
सत्त्वं मन्त्रमुदीरयन्निजशरीरागारशुद्धिं वहन्
पुण्याहं प्रकटीकरोमि रुचिरं कल्याणमापादयन्।।३६।।

अन्वय–हे साम्ब! भक्तः, (अहम्) भक्तिगुणावृते, मुदमृतापूर्णे, प्रसन्ने, मनःकुम्भे, तव, अङ्घ्रिपल्लवयुगम्, संवित् फलम् च संस्थाप्य, सत्त्वम्, मन्त्रम्, उदीरयन्, निजशरीरागारशुद्धिम्, वहन्, कल्याणम्, आपादयन्, रुचिरम्, पुण्याहम्, प्रकटीकरोमि।

अर्थ–हे पार्वती सहित शिव! आपकी भक्ति में निरन्तर दत्तचित्त मैं, भक्तिरूपी सूत्र से वेष्टित, हर्षरूप अमृत से परिपूर्ण, स्वच्छ मनरूपी कलश में आपके चरणरूपी पल्लवों तथा ज्ञानरूपी श्रीफल को रखकर सत्त्वगुणजन्य स्वच्छता रूपी मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ, अपने शरीर रूपी गृह को पवित्र करता हूँ। इस प्रकार प्रातः काल से लेकर सायं काल तक इन कल्याणकारक तथा शान्तिदायक शुभ परम्पराओं का सम्पादन करता हुआ, सारे दिन की सुन्दर पवित्रता को प्रकट करता हूँ।

कोई भी सनातन धर्मावलम्बी भक्त यदि अपने घर में विवाहादि कोई शुभ कार्य करता है, तो उसे भी सर्वप्रथम सर्वारम्भ पूजन अवश्य करना पड़ता है, जिसमें गणेश पूजन मातृकापूजन व आभ्युदयिक श्राद्ध के बाद पुण्याहवाचन तथा कलशस्थापनादि अवश्य करना होता है। प्रस्तुत स्तोत्र में भक्त ने भी भगवदर्चन के विषय में कलश स्थापन व पुण्याहवाचन की चर्चा रूपकालङ्कार द्वारा प्रस्तुत की है, जिसमें बाह्य सामग्री के अभाव में भक्त ने अपने मन को ही सुन्दर कलश बनाया है, भक्ति को सूत्र कलावार, हर्षामृत को गङ्गाजल, भगवान् के पवित्र पादों को पल्लव, तथा भगवद्विषयक ज्ञान को ही श्रीफल माना है। इस प्रकार की पवित्र सामग्री से भक्त अपनी दिनचर्या को प्रकाशित कर रहा है। यह सब एक प्रकार से कर्मकाण्ड की दृष्टि से पुण्याह वाचन भी हो सकता है, जिसका स्वरूप इस प्रकार है–यजमान अपने शुभ कार्य की सफलता तथा अपनी समृद्धता के लिए ब्राह्मणों से प्रार्थना करता है कि हे ब्राह्मणों! मेरा आज का यह दिन पवित्र हो, ऐसा आप मेरे घर में बोलें, और मेरा कल्याण हो ऐसा भी बोलें–'भो ब्राह्मणाः! मम गृहे पुण्याहम् भवन्तो ब्रुवन्तु, भो ब्राह्मणाः! मम गृहे कल्याणं भवन्तो ब्रुवन्तु'

इत्यादि। तब ब्राह्मण आशीर्वाद के रूप में कहते हैं ॐ अस्तु पुण्याहम्, पुण्याहम् पुण्याहम् ॐ अस्तु कल्याणम् कल्याणम् कल्याणम् इत्यादि।

आम्नायाम्बुधिमादरेण सुमनःसंघाः समुद्यन्मनो
मन्थानं दृढभक्तिरज्जुसहितं कृत्वा मथित्वा ततः।
सोमं कल्पतरुं सुपर्वसुरभिं चिन्तामणिं धीमतां
नित्यानन्दसुधां निरन्तररमासौभाग्यमातन्वते।।३७।।

अन्वय—हे शम्भो! सुमनःसंघाः, समुद्यन्मनः, मन्थानम्, कृत्वा, दृढ-भक्तिरज्जुसहितम्, कृत्वा, आदरेण, आम्नायाम्बुधिम्,मथित्वा, ततः सोमम्, कल्पतरुम्, सुपर्वसुरश्मिम्, चिन्तामणिम्, धीमताम्, नित्यानन्दसुधाम्, निरन्तररमासौभाग्यम् आतन्वते।

अर्थ—हे शम्भो! सन्तरूपी देवसंघ अपने मन को ही मथनी बनाकर, और दृढभक्ति को डोरी बनाकर, वैदिक वाङ्मयरूपी समुद्र का बड़े आदर से मन्थन कर, उससे शीतलता प्रदान करने वाले चन्द्रमा को, कामधेनु को, चिन्तामणि को, बुद्धिमानों को नित्य आनन्द देने वाली सुधा (शास्त्रार्थ चर्चा) को, तथा निरन्तर सौख्य प्रदान करने वाली लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं।

प्राक्पुण्याचलमार्गदर्शितसुधामूर्तिः प्रसन्नः शिवः
सोमः सद्गणसेवितो मृगधरः पूर्णस्तमोमोचकः।
चेतःपुष्करलक्षितो भवति चेदानन्दपाथोनिधिः
प्रागल्भ्येन विजृम्भते सुमनसां वृत्तिस्तदा जायते।।३८।।

अन्वय—प्राक्पुण्याचलमार्गदर्शितसुधामूर्त्तिः प्रसन्नः शिवः सद्गणसेवितः मृगधरः पूर्णः तमोमोचकः सोमः प्रागल्भ्येन चेतःपुष्करलक्षितः चेद् भवति, आनन्दपाथोनिधिः विजृम्भते, सुमानसां वृत्तिः जायते।

अर्थ—(चंद्र पक्ष में) पूर्व दिशा में स्थित पुण्याचल पर्वत के रास्ते से जिसका अमृतमय शरीर दीख जाता है ऐसा स्वच्छ, सुखप्रद, नक्षत्रगणों से घिरा, मृगचिह्न से अंकित, सोलहों कलाओं से पूर्ण, अन्धेरा मिटाने वाला चन्द्रमा यदि प्रौढता से चित्ततुल्य विस्तृत आकाश में दीख जाता है तो आनंद समुद्र में उद्रेक आ जाता है और रसिक लोग उस आनन्द में निमग्न हो जाते हैं। (शिव पक्ष में) पूर्वार्जित अतिशय पुण्यों के प्रभाव से जिसका अमृत स्वरूप समझ आता है वह शुद्ध, सुखात्मक, साधुगणों से पूजित, मनोमृग को वश में किये हुए, सर्वव्यापक, अज्ञान-निवारक परमशिव अपनी प्रौढ बोधन-शक्ति का प्रयोग कर यदि (भक्तों के) हृदयाकाश में प्रत्यक्ष हो जाते हैं तो आनन्द-सागर में

उफान आ जाता है जिसमें शुद्धमना भक्त निमग्न हो जाते हैं।

धर्मो मे चतुरङ्घ्रिकः सुचरितः पापं विनाशं गतं
कामक्रोधमदादयो विगलिताः कालाः सुखाविष्कृतः।
ज्ञानानन्दमहौषधिः सुफलिता कैवल्यनाथे सदा
मान्ये मानसपुण्डरीकनगरे राजावतंसे स्थिते।।३९।।

अन्वय—हे शम्भो! मे, मानसपुण्डरीकनगरे, राजावतंसे, मान्ये, कैवल्यनाथे, (त्वयि), स्थिते, सति, तदा, (मम) चतुरङ्घ्रिकः, धर्मः, सुचरितः, पापम्, विनाशम्, गतम्, कामक्रोधमदादयः विगलिताः, कालाः सुखाविष्कृतः आनन्दमहौषधिः, सुफलिता, अस्ति।

अर्थ—हे शम्भो! मेरे मानसकमल रूपी नगर में राजचूडामणि, मान्य, कैवल्य प्रदान करने वाले आपके विराजमान होने पर, चतुष्पाद अर्थात् सत्य, यज्ञ, तप और दान रूप चार चरणों वाला धर्म चरितार्थ हुआ, सारा पाप नष्ट हुआ, काम क्रोधादि जो चित्त के दोष हैं वे भी समाप्त हुए, सुख देने वाला समय उपस्थित हुआ, और ज्ञान एवं आनन्द महौषधि की लतायें पल्लवित, पुष्पित तथा फलित हुईं।

धीयन्त्रेण वचोघटेन कविताकुल्योपकुल्याक्रमै-
रानीतैश्च सदाशिवस्य चरिताम्भोराशिदिव्यामृतैः।
हृत्केदारयुताश्च भक्तिकलमाः साफल्यमातन्वते
दुर्भिक्षान्मम सेवकस्य भगवन् विश्वेश भीतिः कुतः।।४०।।

अन्वय—हे शम्भो! (यदि) धीयन्त्रेण, वचोघटेन, कविताकुल्योपकुल्याक्रमैः, आनीतैः, सदाशिवस्य, चरिताम्भोराशिदिव्यामृतैः, (द्वारा) हृत्केदारयुताः भक्तिकलमाः, च, साफल्यम्, आतन्वते, (तदा) हे भगवन्! हे विश्वेश! सेवकस्य मम, दुर्भिक्षात्, कुतः, भीतिः।

अर्थ—हे भगवन्! जब बुद्धिरूपी घटीयन्त्र (रहट) से, वचनरूपी घड़ों से, तथा कवितारूपी छोटी-छोटी नहरों के द्वारा, उपस्थित भगवान् सदाशिव के चरितरूपी असीम जलाशय से दिव्यामृत रूपी जल में सिञ्चन के द्वारा, हृदयरूपी खेत में उगे हुए भक्तिरूपी धान सफल हो गये, अर्थात् अच्छी तरह पक गये, तो फिर हे विश्वेश! मुझ जैसे सेवक के लिए दुर्भिक्ष (अकाल) से भय क्यों होगा! (जैसे कोई कृषक अपने धान के खेत को सींचने के लिए रहट आदि लगाता है, उसमें घड़ों को जोड़ता है, तथा छोटी नहरों के द्वारा उस पानी को धान के खेत में पहुँचाता है, इस प्रकार वह धान समय में पानी

आदि की सुविधा को प्राप्त कर, सुन्दर फसल से पक कर, किसान को प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। ऐसे किसान को अकाल का कोई भय नहीं होता है, क्योंकि उक्त साधनों द्वारा उपार्जित धान्य राशि कृषक के घर में विद्यमान है। इसी प्रकार भक्त का कहना है कि हे भगवन्! मैंने बुद्धि (विद्या) तथा कविता के द्वारा आपके चरित रूपी दिव्यामृत से भक्तिरस को परिपुष्ट कर लिया है; अब चाहे अकाल, काल या महाकाल भी आयें, तो मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं! कुछ भी नहीं, क्योंकि मैं तो आपके चरितामृत वर्णन या संकीर्तन रूपी भक्तिरस से आप्लावित हूँ।

पापोत्पातविमोचनाय रुचिरैश्वर्याय मृत्युञ्जय
स्तोत्रध्यानतिप्रदक्षिणसपर्यालोकनाकर्णने।
जिह्वाचित्तशिरोऽङ्घ्रिहस्तनयनश्रोत्रैरहं प्रार्थितः,
मामाज्ञापय तन्निरूपय मुहुर्मामेव मा मे ऽवचः।।४१।।

अन्वय—हे मृत्युञ्जय! पापोत्पातविमोचनाय, रुचिरैश्वर्याय, स्तोत्र-ध्यानतिप्रदक्षिणसपर्यालोकनाकर्णने, (विषये) जिह्वाचित्त-शिरोऽङ्घ्रिहस्तनयनश्रोत्रैः, अहम्, प्रार्थितः (अस्मि) अतः, माम्, आज्ञापय, मुहुः, माम्, एव, तत्, निरूपय, मे, मा, अवचः।

अर्थ—हे मृत्युञ्जय! पापों से उत्पन्न उपद्रवों के विनाश के लिए, और सुन्दर ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए, स्तुति, ध्यान, नमस्कार, प्रदक्षिणा, पूजा, दर्शन व प्रभु विषयक पवित्र पदों के श्रवण के लिये क्रमशः जिह्वा, चित्त, शिर, चरण, हस्त, नयन व श्रोत्र—ये इन्द्रयाँ मुझसे निवेदन कर रही हैं, कि हम पूर्वोक्त अपना-अपना स्तुति, ध्यानादि व्यापार करें। अतः आप इसके लिए मुझे आज्ञा दें, और बार-बार मुझे कार्य-अकार्य समझाते रहें। इस विषय में आप चुप न रहें।

गाम्भीर्यं परिखापदं घनधृतिः प्राकार उद्यद्गुण-
स्तोमश्चाप्तबलं घनेन्द्रियचयो द्वाराणि देहे स्थितः।
विद्या वस्तुसमृद्धिरित्यखिलसामग्रीसमेते सदा
दुर्गातिप्रिय देव मामकमनोदुर्गे निवासं कुरु।।४२।।

अन्वय—हे दुर्गातिप्रिय देव! गाम्भीर्यं परिखापदं, घनधृतिः, प्राकारः, उद्यद्गुणस्तोमः आप्तबलं, देहे स्थितः घनेन्द्रियचयः द्वाराणि, विद्या वस्तुसमृद्धिः—इति अखिल-सामग्रीसमेते, मामकमनोदुर्गे निवासं कुरु।

अर्थ—हे देव! आपको दुर्ग (किला) अतिप्रिय है, (अतः) मेरे इस मनरूप

दुर्ग (दुष्प्रवेश स्थान) में निवास कीजिये जिसमें गम्भीरता चारों ओर की खाई की जगह है, दृढ धैर्य चारदीवारी है, बढ़ते सद्गुणों का समुदाय विश्वस्त सेना है। देह में विद्यमान पुष्ट इन्द्रियाँ दरवाजे हैं और शिवज्ञान ही खजाना है। इस प्रकार दुर्ग के लिये उचित सारी सामग्री से सम्पन्न इस मनरूप किले में आप अवश्य रहिये।

मा गच्छ त्वमितस्ततो गिरिश भो मय्येव वासं कुरु
स्वामिन्नादिकिरात मामकमनःकान्तारसीमान्तरे।
वर्तन्ते बहुशो मृगा मदजुषो मात्सर्यमोहादय-
स्तान् हत्वा मृगयाविनोदरुचितालाभं च संप्राप्स्यसि।।४३।।

अन्वय–भो गिरिश! त्वम्, इतस्ततो, मा, गच्छ, हे स्वामिन्! मयि, एव, वासम्!, कुरु, हे आदिकिरात! मामकमनःकान्तारसीमान्तरे, मदजुषः, मात्सर्यमोहादयः, मृगाः, बहुशः, वर्तन्ते, तान्, हत्वा, मृगयाविनोद-रुचितालाभम्, च, सम्प्राप्स्यसि।

अर्थ–हे गिरिश! आप इधर-उधर न जायें, हे स्वामिन्! आप मेरे में ही निवास करें, अर्थात् मेरे अन्तःकरण में हमेशा विराजमान रहें। हे आदिकिरात! आप मेरे मन रूपी वन की सीमा में ही विचरण करें, क्योंकि इसमें असूया, अविवेक आदि बहुत से मदमस्त मृग हैं, उन मृगों का वध करें। आपने अर्जुन को किरातवेश में दर्शन दिया था, तदनुसार आपको शिकार का शौक भी होना उचित है। वह शौक मेरे मनरूप जंगल में रहकर मात्सर्य आदि का वध करके पूंरा कीजिए।

करलग्नमृगः करीन्द्रभङ्गो घनशार्दूलविखण्डनोऽस्तजन्तुः।
गिरिशो विशदाकृतिश्च चेतःकुहरे पञ्चमुखोऽस्ति मे कुतो भीः।।४४।।

अन्वय–करलग्नमृगः करीन्द्रभङ्गः, घनशार्दूलविखण्डनः, अस्तजन्तुः, विशदाकृतिः, च, पञ्चमुखः, गिरिशः, (मम) चेतःकुहरे, अस्ति, अतः, मे, भीः, कुतः।

अर्थ–जैसे जिस गुफा में विशालकाय शेर रहे वहाँ अन्य प्राणियों का भय नहीं, वैसे मेरे चित्तरूप गुफा में धवल वर्ण वाले भगवान् शंकर हैं तो मुझे भी किसी से डर नहीं। शेर कैस होता है?–पहाड़ों पर रहता है, कभी उसके पंजो में हरिण फँस जाते हैं, तगड़े हाथियों को भी वह पछाड़ देता है, पुष्ट बाघ को भी काट डालता है, संक्षेप में कहें तो वह सभी अनिष्ट जन्तुओं को निरस्तर कर देता है। इसी प्रकार गिरिश शिव मनोमृग को हाथ में नियंत्रित

रखते हैं, गजासुर व व्याघ्रासुर को नष्ट कर देते हैं तथा सभी जन्तुओं को अपने स्वरूप में विलीन कर लेते हैं।।

छन्दः शाखिशिखान्वितैर्द्विजवरैः संसेविते शाश्वते
सौख्यापादिनि खेदभेदिनि सुधासारैः फलै र्दीपिते।
चेतःपक्षिशिखामणे त्यज वृथासंचारमन्यैरलं
नित्यं शंकरपादपद्मयुगलीनीडे विहारं कुरु।।४५।।

अन्वय—हे चेतःपक्षिशिखामणे! वृथासंचारम्, त्यज, अन्यैः, (शाखान्तरैः, वनान्तरैर्वा) अलम्, छन्दःशाखिशिखान्वितैः, द्विजवरैः, संसेविते, शाश्वते, सौख्यापादिनि, खेदभेदिनि, सुधासारैः, फलैः, दीपिते (एतादृशे) शंकरपादपद्मयुगलीनीडे, नित्यम् विहारम्, कुरु।

अर्थ—हे चित्तरूपी पक्षिशिरोमणि! तुम इस सांसारिक वन के वृथा सञ्चार को छोड़ो, अन्य किसी वृक्ष की, अथवा जङ्गल की भी आशा मत करो, तुम तो केवल वेद वृक्षों के पल्लवों से समन्वित, ब्राह्मणादियों से सेवित, शाश्वत, निरतिशय सुखों को देने वाले, त्रिविधताप को नष्ट करने वाले, तथा अमृत के समान धर्म अर्थ काम व मोक्ष रूप फलों से प्रकाशित भगवान् शंकर के चरणकमलों के घोंसले में नित्य विहार करो।

आकीर्णे नखराजिकान्तिविभवैरुद्यत्सुधावैभवै-
राधौतेऽपि च पद्मरागललिते हंसव्रजैराश्रिते।
नित्यं भक्तिवधूगणैश्च रहसि स्वेच्छाविहारं कुरु
स्थित्वा मानसराजहंस गिरिजानाथाङ्घ्रिसौधान्तरे।।४६।।

अन्वय—हे मानसराजहंस! नखराजिकान्तिविभवैः, आकीर्णे, उद्यत्सुधावैभवैः, आधौते, अपि, पद्मरागललिते, हंसव्रजैः आश्रिते, गिरिजानाथाङ्घ्रिसौधान्तरे, स्थित्वा, रहसि, नित्यम्, भक्तिवधूगणैः, (सह) स्वेच्छाविहारम्, कुरु।

अर्थ—हे मेरे मनरूपी राजहंस ! निर्मल नखों की कान्ति से सम्पन्न, सुन्दर सफेदी से प्रक्षालित और पद्मराग मणियों से रमणीय, हंस या परमहंस समुदाय से आश्रित, पार्वतीपति के चरणरूपी महल के अन्दर निवास कर, एकान्त में हमेशा भक्तिरूपी वधुओं के साथ स्वेच्छा विहार करो।

शम्भुध्यानवसन्तसङ्गिनि हृदारामेऽघजीर्णच्छदाः
स्रस्ता भक्तिलताच्छटा विलसिताः पुण्यप्रवालश्रिताः।
दीप्यन्ते गुणकोरका जपवचः पुष्पाणि सद्वासना
ज्ञानानन्दसुधामरन्दलहरी संवित्फलाभ्युन्नतिः।।४७।।

अन्वय—शम्भुध्यानवसन्तसङ्गिनि, हृदारामे, अघजीर्णच्छदाः, स्रस्ताः, सन्ति, पुण्यप्रवालश्रिताः, भक्तिलताच्छटाः, विलसिताः, सन्ति, जपवचः, गुणकोरकाः, अपि, सन्ति, सद्वासनाः, पुष्पाणि, ज्ञानानन्दसुधामरन्दलहरी संवित्फलाभ्युन्नतिः दीप्यन्ते।

अर्थ—भगवान् शंकर के ध्यानरूपी वसन्त से युक्त, इस हृदयरूपी उद्यान में, जो पापरूपी जीर्ण पत्ते हैं, वे अब गिर चुके हैं, पुण्यरूपी पत्तों से (नवकिसलयों से) युक्त यह सुन्दर भक्ति लता फैली हुई है, और यहाँ भगवन्नाम रूपी जप के शब्दरूपी कलिकायें भी उग चुकी हैं, और सद्वासनारूपी पुष्प सुशोभित हो रहे हैं, तथा ज्ञान व आनन्द रूपी अमृतमय पुष्परस का आधिक्य है एवं ज्ञान का परम पुरुषार्थरूप मोक्ष फल भी, ऊपर दिखाई दे रहा है।

नित्यानन्दरसालयं सुरमुनिस्वान्ताम्बुजाताश्रयं
स्वच्छं सद्द्विजसेवितं कलुषहृत्सद्वासनाविष्कृतम्।
शम्भुध्यानसरोवरं व्रज मनोहंसावतंस स्थिरं
किं क्षुद्राश्रयपल्वलभ्रमणसंजातश्रमं प्राप्स्यसि।।४८।।

अन्वय—हे मनोहंसावतंस! (त्वम्) नित्यानन्दरसालयम्, सुरमुनिस्वान्ताम्बुजाताश्रयम्, स्वच्छम्, सद्द्विजसेवितम्, कलुषहृत् सद्वासनाविष्कृतम्, स्थिरम्, शम्भुध्यानसरोवरम्, व्रज, (अन्यथा) क्षुद्राश्रयपल्वलभ्रमण-संजतश्रमम् किम् प्राप्स्यसि?

अर्थ—हे मन रूपी श्रेष्ठ हंस! तुम तो हमेशा आनन्दरूपी जल से भरे हुए और देवता व मुनिवृन्द के अन्तःकरणरूपी कमलों के एकमात्र आश्रय, स्वच्छ, सुन्दर शुक पिक कोकिलादि पक्षियों से सेवित, अथवा सत्यानुष्ठान-परायण ब्राह्मणों द्वारा सेवित, हृदय का कालुष्य धोने वाले और सुन्दर वासनाओं, विचारों से सुवासित, शम्भुध्यान रूपी शाश्वत सरोवर की ओर चलो। तुच्छ आश्रय जो छोटे तालाब (अन्य देवता) उनमें भटकने से थककर भी क्या पा लोगे?

आनन्दामृतपूरिता हरपदाम्भोजालवालोद्यता
स्थैर्योपघ्नमुपेत्य भक्तिलतिका शाखोपशाखान्विता।
उच्चैर्मानसकायमानपटलीमाक्रम्य निष्कल्मषा
नित्याभीष्टफलप्रदा भवतु मे सत्कर्मसंवर्धिता।।४९।।

अन्वय—आनन्दामृतपूरिता, हरपदाम्भोजालवालोद्यता, स्थैर्योपघ्नम्, उपेत्य, मानसकायमानपटलीम्, उच्चैः, आक्रम्य, शाखोपशाखान्विता, सत्कर्म-संवर्धिता, निष्कल्मषा, (इयम्), भक्तिलतिका, मे, नित्याभीष्टफलप्रदा, भवतु।

अर्थ—यह शम्भुभक्ति रूप लतिका आनन्दरूपी अमृत से परिपूर्ण है, तथा भगवान् शंकर के चरण कमलरूपी क्यारी में उगी है। यह अत्यन्त स्थिर सहारे पर आश्रित है, उत्कृष्ट मन रूपी मचान पर फैल कर निर्दोष बनी है। यह शाखा व प्रशाखाओं में फैली हुई है। सत्कर्मों से बढ़ाई गई यह लता निर्दोष तथा पवित्र है। इस प्रकार की यह शम्भु-भक्ति रूपी लतिका मुझे नित्य अभीष्ट फलों को प्रदान करे।

संध्यारम्भविजृम्भितं श्रुतिशिरःस्थानान्तराधिष्ठितं
सप्रेमभ्रमराभिराममसकृत्सद्वासनाशोभितम्।
भोगीन्द्राभरणं समस्तसुमनःपूज्यं गुणाविष्कृतं
सेवे श्रीगिरिमल्लिकार्जुनमहालिङ्गं शिवालिङ्गितम्।।५०।।

अन्वय—(अहम्) संध्यारम्भविजृम्भितम्, श्रुतिशिरःस्थानान्तराधिष्ठितम्, सप्रेमभ्रमराभिरामम् असकृत् सद्वासनाशोभितम्, भोगीन्द्राभरणम्, समस्तसुमनःपूज्यम्, गुणाविष्कृतम्, शिवालिङ्गितम्, श्रीगिरिमल्लिकार्जुन-महालिङ्गम्, सेवे।

अर्थ—जैसे किसी श्रेष्ठ पर्वत पर मल्लिकालता से लिपटा अर्जुन वृक्ष हो ऐसे भ्रमराम्बा भवानी से आलिंगित शिव श्रीशैल पर विराजमान हैं। मल्लिका के पुष्प शाम को विकसित होकर सुगन्ध फैलाते हैं। शिव संध्या के प्रारम्भ में ताण्डव नृत्य के लिये तैयार होकर खास सुंदर लगते हैं। वृक्ष तो पहाड़ आदि पर मिलता है किन्तु शिव वहाँ नहीं वरन् वेदों के मस्तक उपनिषदों में प्रतिपाद्य रूप से मिलते हैं। पेड़ पर प्रेम से भौरों की तरह शिव पर प्रेम से शिवानी आश्रित हैं जिससे शिव की शोभा और भी बढ़ गयी है। वृक्ष सुगंध से युक्त है, शिव हमेशा शुभ संस्कारों वाले मन से ही व्याप्त (विषय) होते हैं। जानकार रसिक मल्लिका व अर्जुन के फूलों से सजते हैं पर शिव भोगीन्द्र अर्थात् वासुकि नाग को गहना बनाते हैं। अर्जुन फूलों में श्रेष्ठ है। शिव सब देवताओं से उत्तम हैं। गंधादि गुणों से वृक्ष का पता चलता है जबकि सत्त्वगुण के प्रभाव से शिव का आविष्कार होता है। साधारणतः अज्ञेय परमात्म तत्त्व का बोधक महालिंग वास्तव में अखण्ड वृत्ति है, उसका मैं सेवन करता हूँ। उसी का प्रतीक श्रीशैल-स्थान पर प्रतिष्ठित शिवलिंग है, उसका भी पूजनादि करता हूँ।

भृङ्गीच्छानटनोत्कटः करिमदग्राही स्फुरन्माधवा-
ह्लादो नादयुतो महासितवपुः पञ्चेषुणा चादृतः।

सत्पक्षः सुमनोवनेषु स पुनः साक्षान्मदीये मनो-
राजीवे भ्रमराधिपो विहरतां श्रीशैलवासी विभुः ।।५१।।

अन्वय—सः, भ्रमराधिपः, श्रीशैलवासी विभुः, (कथम्भूतः), भृङ्गीच्छानटनोत्कटः, करिमदग्राही, स्फुरन्माधवाह्लादः, नादयुतः, महासितवपुः, सुमनोऽवनेषु, सत्पक्षः, पञ्चेषुणा, च आदृतः (सः) पुनः, साक्षात्, मदीये, मनोराजीवे, विहरताम् ।

अर्थ—वही पूर्वोक्त मल्लिकार्जुन नामक भ्रमरसम्राट् रूपी श्रीशैलवासी भगवान् शंकर, नृत्य करते हुए, एक बार फिर मेरे हृदय कमल में विहार करें। अन्य विशेषणों द्वारा उसी नृत्यावस्था का प्रदर्शन कर रहे हैं: भक्तवत्सल ये भगवान्, जब भृङ्गी आदि सेवकों की नृत्य देखने की इच्छा होती है, तभी नाच लेते हैं, इस प्रकार भृङ्गी की इच्छानुसार जो नर्तन उसके प्रति उत्साह वाले हैं। गजासुर के मद को नष्ट करने वाले हैं। भगवान् के नृत्य से (माधव) विष्णु भी प्रसन्न रहते हैं। ढक्का आदि वाद्यों के नाद से युक्त हैं, सारे शरीर में भस्मी रमाये हुए हैं। देवताओं की रक्षा उनका सनातन पक्ष (सिद्धान्त) है। कामदेव के द्वारा लक्ष्यरूप में सम्मानित हैं। ऐसे भगवान् साक्षात् मेरे हृदय कमल में विहार करें, अर्थात् मैं इनका निरन्तर ध्यान करता रहूँ।

यहाँ भगवान् में भ्रमर का आरोप किया गया है। अतः ये सारे विशेषण उभय साधारण होंगे, अर्थात् भ्रमर के पक्ष में भी इनका अर्थ होगा। वह इस प्रकार है—जब भृङ्गी की इच्छा होती है, तब भ्रमर भी नाचते हुए उग्र रूप धारण कर लेता है, और कपोलस्थल से हाथी के मद को ग्रहण कर उन्मत्त हो जाता है। अपनी विविध चेष्टाओं से वसन्त ऋतु को भी यह आह्लादित कर देता है। भ्रमर नाद, आवाज तो करता ही है। परागयुक्त फूलों के वनों में काम द्वारा सम्मानित यह भ्रमर उन्मत्त होकर जब पुष्प पराग में लोटता है, तब इसका सारा शरीर तथा पंख सफेद हो जाते हैं, तब भस्म रमाये हुए शंकर-सा लगता है। अतः शिव के नृत्य का सा अनुकरण करने वाला या शिव का प्रतिनिधिभूत यह भ्रमर, कमल में विहरण करता हुआ मेरे हृदय कमल में भी विहार करे।

कारुण्यामृतवर्षिणं घनविपद्ग्रीष्मच्छिदाकर्मठं
विद्यासस्यफलोदयाय सुमनःसंसेव्यमिच्छाकृतिम् ।
नृत्यद्भक्तमयूरमद्रिनिलयं चञ्चज्जटामण्डलं,
शम्भो वाञ्छति नीलकन्धर सदा त्वां मे मनश्चातकः ।।५२।।

अन्वय–हे शम्भो! हे नीलकन्धर! कारुण्यामृतवर्षिणम् घनविपद्-ग्रीष्मच्छिदाकर्मठम्, विद्यासस्यफलोदयाय, सुमनःसंसेव्यम्, इच्छाकृतिम्, नृत्यद्भक्तमयूरम् अद्रिनिलयम्, चञ्चज्जटामण्डलम्, त्वाम्, सदा, मे, मनश्चातकः, वाञ्छति।

अर्थ–हे शम्भो! हे नीलकन्धर! आप दया-रूपी अमृत की वर्षा करने वाले हैं, महाविपत्तियों को दूर करने में कुशल हैं, विद्यारूपी वनस्पति सस्य के फलोदय के लिए सन्तों द्वारा सेवनीय हैं, भक्तों की इच्छानुसार रूप को धारण करने वाले हैं, नाचते हुए भक्तरूपी मयूरों को दर्शन देकर प्रसन्न करते हैं, हिलती जटामण्डलों से सुशोभित आपको हमेशा मेरा मनरूपी चातक चाहता है।

यहाँ मेघ का रूपक है। जलरूपी अमृत को वह करुणावश बरसाता है। खेती सुखा डालने जैसी बड़ी विपत्ति का कारण जो ग्रीष्म या गर्मी, उसके नाश में वह कर्मठ है ही। समझदार कृषक खेती के लिये अनिवार्य मेघ को आदर देते ही हैं। आकार वह मनमर्जी से लेता है ही। मयूर मेघ देखकर नाच उठते हैं। मेघ प्रायः पर्वतों पर छाये दीखा करते हैं। जटा अर्थात् विद्युत्, चमकती बिजली का मण्डल मेघ को घेरे रहता है। चातक का वह प्रिय है। नीला तथा क अर्थात् जल को धारण करता है।

आकाशेन शिखी समस्तफणिनां नेत्रा कलापी नता-
नुग्राहिप्रणवोपदेशनिनदैः केकीति यो गीयते।
श्यामां शैलसमुद्भवां घनरुचिं दृष्ट्वा नटन्तं मुदा
वेदान्तोपवने विहाररसिकं तं नीलकण्ठं भजे।।५३।।

अन्वय–यः आकाशेन शिखी, समस्तफणिनां नेत्रा कलापी, नतानुग्राहिप्रणवोपदेशनिनदैः केकीति गीयते, तं, शैलसमुद्भवां घनरुचिं श्यामां दृष्ट्वा, मुदा नटन्तं, वेदान्तोपवने विहाररसिकं नीलकण्ठं भजे।

अर्थ–आकाश जिसकी कलगी है, सभी साँपों का राजा जिसका भूषण है, प्रणत भक्तों पर कृपालु प्रणव (ॐ) का उपदेश जिसकी 'के-का' ध्वनि है, बादल-सी छवि वाली पर्वतपुत्री पार्वती को देखकर जो आनन्द से नाचता है और वेदान्तरूप बगीचे में विहार करने का रसिक है, उस नीलकण्ठ का भजन करता हूँ। (यहाँ भगवान् का मोर के रूप में वर्णन है।)

संध्या घर्मदिनात्ययो हरिकराघातप्रभूतानक-
ध्वानो वारिदगर्जितं दिविषदां दृष्टिच्छटा चञ्चला।

भक्तानां परितोषबाष्पविततिर्वृष्टिर्मयूरी शिवा
यस्मिन्नुज्ज्वलताण्डवं विजयते तं नीलकण्ठं भजे।।५४।।

अन्वय–(यस्मिन्-वर्षाकाले), संध्या, घर्मदिनात्ययः, हरिकराघातप्रभूतानकध्वानः, वारिदगर्जितम्, दिविषदाम्, दृष्टिच्छटा चञ्चला, भक्तानाम्, परितोषबाष्पविततिः, वृष्टिः, शिवा, मयूरी, तम्, नीलकण्ठम्, भजे यस्मिन् उज्ज्वलताण्डवम्, विजयते।

अर्थ–(भगवान् को मोररूप में दिखाते हैं:) उस नीलकण्ठ का भजन करता हूँ जिसके लिये सन्ध्याकाल ही ग्रीष्म का बीत जाना है, विष्णु के हाथों के ताडन से उत्पन्न ढोल की आवाज ही मेघ की गर्जना है, देवताओं की दृष्टिओं का समूह ही चमकती बिजली है, भक्तों के आनन्दाश्रुओं की धारा ही बरसात है, भगवती पार्वती ही मोरनी है। शोभित होता ताण्डव जिस उक्त प्रकार के नीलकंठ में सबसे उत्कृष्ट रूप में विद्यमान है, उसीका मैं भजन करता हूँ।

आद्यायामिततेजसे श्रुतिपदै र्वेद्याय साध्याय ते
विद्यानन्दमयात्मने त्रिजगतः संरक्षणोद्योगिने।
ध्येयायाखिलयोगिभिः सुरगणै र्गेयाय मायाविने
सम्यक् ताण्डवसम्भ्रमाय जटिने सेयं नतिः शंभवे।।५५।।

अन्वय–आद्याय, अमिततेजसे, श्रुतिपदैः, वेद्याय, साध्याय, विद्यानन्दमयात्मने, त्रिजगतःसंरक्षणोद्योगिने, अखिलयोगिभिः, ध्येयाय, सुरगणैः, गेयाय, मायाविने, सम्यक्ताण्डवसम्भ्रमाय, जटिने, ते, शम्भवे, (सा) इयम्, नतिः, (अस्ति)।

अर्थ–जो भगवान् शंकर सबसे आदि हैं, और अपरिमित तेज वाले हैं, वैदिक पदों से जिनका ज्ञान होता है, अर्थात् वेद भी जिनका व्याख्यान करते हैं, जो सभी प्राणियों के प्राप्य हैं या साध्य हैं, जिनका स्वरूप विद्यानन्दमय है, तीनों लोकों की रक्षा में जो तत्पर हैं, समस्तयोगिसमुदाय जिनका ध्यान करता है, देवगण जिनका गान करते हैं, जो ताण्डव नृत्य में कुशल हैं, ऐसे जटाधारी शम्भु को मैं प्रणाम करता हूँ।

नित्याय त्रिगुणात्मने पुरजिते कात्यायनीश्रेयसे
सत्यायादिकुटुम्बिने मुनिमनःप्रत्यक्षचिन्मूर्तये।
मायासृष्टजगत्त्रयाय सकलाम्नायान्तसंचारिणे
सायं ताण्डवसंभ्रमाय जटिने सेयं नतिः शम्भवे।।५६।।

अन्वय–नित्याय, त्रिगुणात्मने, पुरजिते, कात्यायनीश्रेयसे, मुनिमनः-

प्रत्यक्षचिन्मूर्तये, मायासृष्टजगत्त्रयाय, सकलाम्नायान्तसंचारिणे, सायम्, ताण्डवसम्भ्रमाय, जटिने, शम्भवे, सा, इयम्, (मे) नतिः (अस्ति)।

अर्थ–जो भगवान् शंकर नित्य हैं, सत्त्व रज व तमोगुण रूप हैं, जिन्होंने त्रिपुर को जीता है, और कात्यायनी माता के परम कल्याणकारक हैं, जो भगवान् मुनियों के मनों में प्रत्यक्ष चिद्रूप हैं, तथा सत्त्व रज व तमो गुणात्मिका माया से जिन्होंने तीनों लोकों की सृष्टि की है, समस्त वैदिक वाङ्मय जिनकी व्याख्या करता है, और हमेशा सायंकाल ताण्डव नृत्य के लिए जो उद्यत रहते हैं, जटाधारी ऐसे भगवान् शम्भु को मेरा प्रणाम है।

नित्यं स्वोदरपूरणाय सकलानुद्दिश्य वित्ताशया
व्यर्थं पर्यटनं करोमि भवतः सेवां न जाने प्रभो।
मज्जन्मान्तरपुण्यपाकबलतस्त्वं शर्व सर्वान्तर-
स्तिष्ठस्येव हि तेन वा पशुपते ते रक्षणीयोऽस्म्यहम्।।५७।।

अन्वय–हे प्रभो! (अहम्) स्वोदरपूरणाय, वित्ताशया, सकलान्, उद्दिश्य, नित्यम्, व्यर्थम्, पर्यटनम्, करोमि (परन्तु) भवतः, सेवाम्, न, जाने, हे शर्व मज्जन्मान्तरपुण्यपाकबलतः, त्वम्, सर्वान्तरः, तिष्ठसि, एव, तेन, हि, हे पशुपते! अहम्, ते, रक्षणीयः, अस्मि।

अर्थ–हे प्रभो! मैं अपने उदरपूर्ति के निमित्त व धन की लालसा से, सभी धनिकों के दरवाज़ोंपर व्यर्थ भ्रमण करता हूँ परन्तु आपकी सेवा-भजनादि नहीं जानता हूँ। फिर भी मेरे जन्मान्तर के पुण्यों के परिणाम से, आप सर्वत्र सभी प्राणियों के अन्तःकरण में हो। इसलिए हे पशुपते! मैं सर्वथा आपसे रक्षणीय हूँ। अर्थात् मेरी रक्षा करो।

एको वारिजबान्धवः क्षितिनभोव्याप्तं तमोमण्डलम्
भित्वा लोचनगोचरोऽपि भवति त्वं कोटिसूर्यप्रभः।
वेद्यः किं न भवस्यहो घनतरं कीदृग् भवेन्मत्तम-
स्तत्सर्वं व्यपनीय मे पशुपते साक्षात् प्रसन्नो भव।।५८।।

अन्वय–(हे प्रभो) एकः, वारिजबान्धवः, क्षितिनभोव्याप्तम्, तमोमण्डलम्, भित्वा, लोचनगोचरः, अपि, भवति, अहो! त्वम्, तु, कोटिसूर्यप्रभः, असि, (तथापि) किम्, न, वेद्यः, भवसि, (अथ च) घनतरम्, मत्तमः, च, कीदृक्, हे पशुपते! तत्, सर्वम्, व्यपनीय, मे, साक्षात्, प्रसन्नः, भव।

अर्थ–हे प्रभो! अकेला सूर्य पृथिवी व आकाश के अन्धकार समुदाय का भेदन कर, लोगों के दृष्टि पथ में आता है। आश्चर्य है कि आप तो करोड़ों

सूर्यों की प्रभा के समान हैं, फिर भी दृष्टिगोचर क्यों नहीं होते हो? हो सकता है, उस पार्थिव और क्षितिज अन्धकार की अपेक्षा मेरा यह अन्तःकरण में स्थित अज्ञानान्धकार कहीं बड़ा हो। अतः हे पशुपते! मेरी यही प्रार्थना है, कि इस घने अज्ञानान्धकार को दूर कर, आप मेरे लिए प्रसन्न रहें।

हंसः पद्मवनं समिच्छति यथा नीलाम्बुदं चातकः
कोकः कोकनदप्रियं प्रतिदिनं चन्द्रं चकोरस्तथा।
चेतो वाञ्छति मामकं पशुपते चिन्मार्गमृग्यं विभो
गौरीनाथ भवत्पदाब्जयुगलं कैवल्यसौख्यप्रदम्।।५६।।

अन्वय–हे विभो! यथा, हंसः, पद्मवनम्, समिच्छति, यथा, चातकः, नीलाम्बुदम्, समिच्छति, कोकः, यथा, कोकनदप्रियम्, समिच्छति, चकोरः, यथा, चन्द्रम्, समिच्छति, तथा, हे पशुपते! हे गौरीनाथ! मामकम्, चेतः, चिन्मार्गमृग्यम्, कैवल्यसौख्यप्रदम्, भवत्पदाब्जयुगलम्, समिच्छति।

अर्थ–हे विभो! जिस प्रकार हंस कमलवन की इच्छा करता है, चातक नीलमेघों की इच्छा करता है, कोक (चकवा) सूर्य की इच्छा करता है, चकोर चन्द्र की इच्छा करता है, हे पशुपते! हे गौरीनाथ! उसी प्रकार मेरा मन भी आध्यात्मिक ज्योति द्वारा ही प्राप्य, मोक्षरूप सौख्य को प्रदान करने वाले आपके चरणकमलों को ही चाहता है।

रोधस्तोयहृतः श्रमेण पथिकश्छायां तरोर्वृष्टितः
भीतः स्वस्थगृहं गृहस्थमतिथि र्दीनः प्रभुं धार्मिकम्।
दीप्तं सन्तमसाकुलश्च शिखिनं शीतावृतस्त्वं तथा
चेतः सर्वभयापहं व्रज सुखं शम्भोः पदाम्भोरुहम्।।६०।।

अन्वय–चेतः! तोयहृतः रोधः (यथा व्रजति), पथिकः श्रमेण तरोः छायाम्, वृष्टितः भीतः स्वस्थगृहम्, अतिथिः गृहस्थम्, दीनः धार्मिकं प्रभुम्, सन्तमसाकुलः दीपं, शीतावृतः शिखिनम्, तथा त्वं सर्वभयापहं सुखं शम्भोः पदाम्भोरुहं व्रज।

अर्थ–जलप्रवाह के वेग में बहता व्यक्ति जैसे हर प्रयास कर किनारे की ओर जाता है, थका पैदल यात्री पेड़ की छाया में जाता है बरसात से डरा व्यक्ति सुख से बैठ सके ऐसे घर में जाता है, अतिथि किसी सद्गृहस्थ के पास जाता है, दीन धार्मिक व दानसमर्थ सज्जन के पास जाता है, घने अन्धेरे से आकुल व्यक्ति दीपक के निकट पहुँचता है, ठण्ड से परेशान आग के सामने जाता है, वैसे हे चित्त! तुम सारा भय मिटाने वाले, सुखहेतु शम्भु के

चरणकमलों में जाओ।

अङ्कोलं निजबीजसंततिरयस्कान्तोपलं सूचिका
साध्वी नैजविभुं लता क्षितिरुहं सिन्धुः सरिद्वल्लभम्।
प्राप्नोतीह यथा तथा पशुपतेः पादारविन्दद्वयं
चेतोवृत्तिरुपेत्य तिष्ठति सदा सा भक्तिरित्युच्यते।।६१।।

अन्वय–यथा निजबीजसंततिः, अङ्कोलम्, प्राप्नोति, यथा सूचिका, अयस्कान्तोपलम्, प्राप्नोति, यथा साध्वी, नैजविभुम्, प्राप्नोति, यथा लता, क्षितिरुहम्, प्राप्नोति, यथा, सिन्धुः, सरिद्वल्लभम्, प्राप्नोति, तथा (मदीया) चेतोवृत्तिः, पशुपतेः, पादारविन्दम्, उपेत्य, सदा, तिष्ठति, चेत्, सा, भक्तिः, इति, उच्यते।

अर्थ–जिस प्रकार अंकोल वृक्ष के बीज वृक्ष को ही प्राप्त होते हैं, लौह-सूचिका चुम्बक को प्राप्त करती है, सती-साध्वी स्त्री अपने पति को प्राप्त करती है, नदी सागर को प्राप्त करती है, उसी प्रकार यदि मेरी चित्तवृत्ति भी भगवान् शंकर के चरणारविन्द को हमेशा प्राप्त करती रहे, तो इसी का नाम भक्ति है।

आनन्दाश्रुभिरातनोति पुलकं नैर्मल्यतश्छादनं
वाचा शङ्खमुखे स्थितैश्च जठरापूर्तिं चरित्रामृतैः।
रुद्राक्षैर्भसितेन देव वपुषो रक्षां भवद्भावना-
पर्यङ्के विनिवेश्य भक्तिजननी भक्तार्भकं रक्षति।।६२।।

अन्वय–देव! भक्तिजननी, भक्तार्भकम्, आनन्दाश्रुभिः, पुलकम्, आतनोति, नैर्मल्यतः, छादनम्, आतनोति, वाचाशङ्खमुखे, स्थितैः, च, चरितामृतैः, जठरापूर्तिम्, आतनोति, भसितेन, रुद्राक्षैः, वपुषः, रक्षाम्, आतनोति, भवद्भावनापर्यङ्के, विनिवेश्य, भक्तिजननी, भक्तार्भकम्, रक्षति।

अर्थ–हे महादेव! आपकी भक्ति मानो माता है जो भक्तरूप बालक को, आनन्दाश्रुओं से पुलकित करती है, निर्मलता से उसका आच्छादन करती है, वाणीरूप शंखमुख में स्थित आपके चरित्ररूप अमृत से भक्त बालक की उदर पूर्ति करती है, भस्म व रुद्राक्षों से भक्त की रक्षा करती है, भगवद्भावना रूपी शय्या में लिटा कर, भक्ति जननी भक्त बालक की रक्षा करती है।

मार्गावर्तितपादुका पशुपतेरङ्गस्य कूर्चायते
गण्डूषाम्बुनिषेचनं पुररिपोर्दिव्याभिषेकायते।
किञ्चिद्भक्षितमांसशेषकवलं नव्योपहारायते
भक्तिः किं न करोत्यहो वनचरो भक्तावतंसायते।।६३।।

अन्वय–मार्गावर्तितपादुका, पशुपतेः, अङ्गस्य (कृते) कूर्चायते, गण्डूषाम्बुनिषेचनम्, पुररिपोः, (कृते) दिव्याभिषेकायते, किञ्चिद्भक्षित-मांसशेषकवलम्, नव्योपहारायते, अहो, भक्तिः, किम् (किम्) न करोति वनचरः (अपि,) भक्तावतंसायते।

अर्थ–आश्चर्य है! जिसे रास्तों पर चलने के लिये बार-बार पहना जा चुका ऐसा जूता पशुपति के शरीर को पोंछने की कूची बन जाता है। कुल्ले का पानी उगलना त्रिपुरारिका अलौकिक अभिषेक हो जाता है। थोड़ा खाकर बचा मुट्ठी भर मांस नवीन भेंट बन जाता है। भक्ति क्या नहीं कर देती! जंगली व्यक्ति श्रेष्ठ भक्त बन जाता है।

वक्षस्ताडनमन्तकस्य कठिनापस्मारसंमर्दनं
भूभृत्पर्यटनं नमत्सुरशिरःकोटीरसंघर्षणम्।
कर्मेदं मृदुलस्य तावकपदद्वन्द्वस्य किंवोचितं
मच्चेतोमणिपादुकाविहरणं शम्भो सदाङ्गी कुरु।।६४।।

अन्वय–हे शम्भो! अन्तकस्य, वक्षस्ताडनम्, कठिनापस्मारसंमर्दनम्, भूभृत्पर्यटनम्, नमत्सुरशिरःकोटीरसंघर्षणम्, मृदुलस्य, तावकपदद्वन्द्वस्य, इदम्, (कठिनम्) कर्म, उचितम्, किम् (वा) हे शम्भो! (त्वम्) सदा, मच्चेतोमणिपादुकाविहरणम्, अङ्गी कुरु।

अर्थ–हे शम्भो! आपके चरणकमल अत्यन्त कोमल हैं और कार्य वे कठोर करते हैं जैसे यमराज की छाती पर चोट करना, कड़े शरीर वाले अपस्मार राक्षस को दबाना, पर्वतों पर घूमना, नमन करते देवताओं के मुकुटों की रगड़ खाना, इत्यादि। कोमल चरणों के लिए ऐसे कठोर कार्य उचित नहीं अतः मेरे मनरूपी मणि से बनी पादुका स्वीकार लीजिये ताकि इन कार्यों को करने में परेशानी न हो।

वक्षस्ताडनशङ्कया विचलितो वैवस्वतो निर्जराः
कोटीरोज्ज्वलरत्नदीपकलिकानीराजनं कुर्वते।
दृष्ट्वा मुक्तिवधूस्तनोति निभृताश्लेषं भवानीपते
यच्चेतस्तव पादपद्मभजनं तस्येह किं दुर्लभम्।।६५।।

अन्वय–हे भवानीपते! वैवस्वतः, भवतः, वक्षस्ताडनशङ्कया, विचलितः, निर्जराः, कोटीरोज्ज्वलरत्नदीपकलिकानीराजनम्, कुर्वते, (एतत् सर्वम्) दृष्ट्वा, मुक्तिवधूः, निभृताश्लेषम्, तनोति, हे भवानीपते! यच्चेतः, तव, पादपद्मभजनम्, (अस्ति) तस्य (कृते) इह, किम्, दुर्लभम्, अस्ति।

अर्थ—हे भवानीपति! जिसका चित्त आपके चरणकमल के भजन में लगा है उसके लिये संसार में दुर्लभ क्या है! छाती पर चोट पड़ेगी इस डर से यम भक्त से दूर ही रहता है। देवता मुकुटके रत्नों से उसकी आरती उतारते हैं। (उसकी मंगलकामाना करते हैं)। उसे देख मुक्तिरूप पत्नी गाढ आलिंगन स्थिर कर देती है।

क्रीडार्थं सृजसि प्रपञ्चमखिलं क्रीडामृगास्ते जना
यत्कर्माचरितं मया च भवतः प्रीत्यै भवत्येव तत्।
शम्भो स्वस्य कुतूहलस्य करणं मच्चेष्टितं निश्चितं
तस्मान्मामकरक्षणं पशुपते कर्तव्यमेव त्वया।।६६।।

अन्वय—हे शम्भो! (त्वम्) अखिलम्, प्रपञ्चम्, क्रीडार्थम्, सृजसि, जनाः, ते, क्रीडामृगाः, सन्ति, मया, यत्, कर्म, आचरितम्, तत्, भवतः, प्रीत्यै, एव, भवति, हे पशुपते! मच्चेष्टितम्, निश्चितम्, स्वस्य, कुतूहलस्य, करणम्, (अस्ति)। तस्मात्, त्वया, मामकरक्षणम्, कर्तव्यम्, एव।

अर्थ—हे शम्भो! आप केवल अपनी क्रीडा के लिए ही इस सम्पूर्ण प्रपञ्च की रचना करते हो, इस प्रपञ्च में जितने भी प्राणिवर्ग हैं, सब आपके क्रीडार्थ मृग के समान हैं। हे भगवन्! इस संसार में आकर मैंने यहाँ जो कुछ भी कर्म किया है, वह सब-आपकी प्रसन्नता के लिए ही है। हे पशुपते! मेरी जितनी भी क्रियायें हैं, निश्चित ही वे केवल आपके मनोरञ्जनार्थ हैं, इसलिए मेरी रक्षा का भार भी सर्वथा आपके ही ऊपर है।

बहुविधपरितोषबाष्पपूरस्फुटपुलकाङ्कितचारुभोगभूमिम्।
चिरपदफलकाङ्क्षिसेव्यमानां, परमसदाशिवभावनां प्रपद्ये।।६७।।

अन्वय—(अहम्) बहुविधपरितोषबाष्पपूरस्फुटपुलकाङ्कितचारुभोगभूमिम्, चिरपदफलकाङ्क्षिसेव्यमानाम् परमसदाशिवभावनाम्, (कदा) प्रपद्ये।

अर्थ—परात्पर भगवान् सदाशिव के ध्यान की शरण लेता हूँ। वह ध्यान हर तरह के सन्तोष के आँसुओं से भरपूर प्रकट रोमांच वाले सर्वाधिक सुन्दर आनंदभोग की भूमिका है तथा सनातन पद चाहने वालों द्वारा ही उसका सादर अभ्यास किया जाता है।

अमितमुदमृतं मुहुर्दुहन्तीं, विमलभवत्पदगोष्ठमावसन्तीम्।
सदय पशुपते सुपुण्यपाकां, मम परिपालय भक्तिधेनुमेकाम्।।६८।।

अन्वय—हे पशुपते! हे सदय! मम, मुहुः, अमितमुदमृतम्, दुहन्तीम्, विमल-भवत्पदगोष्ठम्, आवसन्तीम्, सुपुण्यपाकाम्, एकाम्, भक्तिधेनुम्, परिपालय।

अर्थ—हे पशुपते! हे दयालो! अनन्त हर्षरूपी अमृत को प्रदान करने वाली, निर्मल आपके चरण कमल रूपी गोष्ठ में निवास करने वाली, जन्मजन्मान्तरों के पुण्यों की परिणामस्वरूपिणी (अथवा पुण्य है पाक अर्थात् बछड़ा जिसका ऐसी) मेरी एक भक्तिरूपी धेनु की आप रक्षा करें, अर्थात् आप इस प्रकार की मुझे बुद्धि प्रदान करें, जिससे मैं आपकी अनन्यभक्ति से कभी भी विचलित न होऊँ।

जडता पशुता कलङ्किता, कुटिलचरत्वं च नास्ति मयि देव।
अस्ति यदि राजमौले, भवदाभरणस्य नास्मि किं पात्रम्।।६६।।

अन्वय—हे देव! मयि, जडता, पशुता, कलङ्किता, कुटिलचरत्वम्, च, नास्ति, हे राजमौले! यदि, अस्ति, (तर्हि) भवदाभरणस्य, पात्रम्, नास्मि, किम्।

अर्थ—हे देव! मेरे में जडता (मूर्खता), पशुता (अविशेषज्ञता), कुटिलचरता (कपटपूर्ण व्यवहार)—ये सब (दुर्गुण) जब नहीं हैं, तो फिर मुझे आप क्यों नहीं अपनाते हो? हे चन्द्रशेखर! यदि आप पूर्वोक्त दोष मेरे में किसी प्रकार समझते हैं, तो भी मैं आपका अलङ्कार या परिकर नहीं बन सकता क्या? (पूर्वोक्त दोष चंद्र में हैं जो आपका भूषण है। स्वप्रकाश न होने से वह जड है, गुरुपत्नीगमनरूप पशुता उसने की थी, कलंक उस पर है और उसका बिम्ब टेढा रहता है। दयावश ऐसे को आपने स्वीकार लिया तो मुझे क्यों न स्वीकारेंगे? किंच, ओढे जाने वाले गजचर्म आदि जड हैं। मृग नन्दी आदि पशु हैं, चंद्र कलंकी और सर्प टेढी-मेढी चाल वाले हैं; ये सब जब आपके परिकर हैं तब मैं क्यों बहिष्कार्य हूँ?)

अरहसि रहसि स्वतन्त्रबुद्ध्या, वरिवसितुं सुलभः प्रसन्नमूर्तिः।
अगणितफलदायकः प्रभु र्मे, जगदधिपो हृदि राजशेखरोऽस्ति।।७०।।

अन्वय—अरहसि, रहसि, स्वतन्त्रबुद्ध्या, वरिवसितुम्, प्रसन्नमूर्तिः, सुलभः, अस्ति, (सः) अगणितफलदायकः, जगदधिपः, प्रभुः, राजशेखरः, मे, हृदि, अस्ति।

अर्थ—जनसमुदाय में, अथवा एकान्त में आराधना करने में प्रसन्न मूर्ति आशुतोष सदाशिव सर्वथा सुलभ है, ऐसे अनन्तफलों को देने वाले संसार के स्वामी प्रभु चन्द्रशेखर, मेरे हृदय में हमेशा विराजमान हैं। (राजा आदि सभा में ही देखे जा सकते हैं; उनसे एकान्त में मिलना मुश्किल है। मंत्री आदि से अकेले में किसी तरह मिल भी लो तो सभा में नहीं मिल सकते। मिलने पर भी ऐसे लोग कभी प्रसन्न होते हैं तो कभी अप्रसन्न भी हो जाते हैं और सीमित वस्तु ही

दे पाने में समर्थ हैं। भगवान् इनसे हर तरह विलक्षण हैं यह भी भाव है।)

आरूढभक्तिगुणकुञ्चितभावचाप-
युक्तैः शिवस्मरणबाणगणैरमोघैः।
निर्जित्य किल्बिषरिपून विजयी सुधीन्द्रः
सानन्दमावहति सुस्थिरराजलक्ष्मीम्।।७१।।

अन्वय—आरूढभक्तिगुणकुञ्चितभावचापयुक्तैः, अमोघैः, शिवस्मरणबाणगणैः, किल्बिषरिपून, निर्जित्य, विजयी, सुधीन्द्रः सानन्दम्, सुस्थिरराजलक्ष्मीम्, आवहति।

अर्थ—भक्तिरूपी प्रत्यञ्चा (धनुष की डोरी) को चढ़ाकर, आकुञ्चित बुद्धिरूप धनुष से युक्त होकर, अमोघ शिवस्मरण रूप बाणों से, पापरूपी शत्रुओं को जीतकर श्रेष्ठ बुद्धिमान्, आनन्दपूर्वक सुस्थिर राजलक्ष्मी का (सुस्थिर जो ब्रह्मा आदि, उनके राजा परमशिव की सारूप्यात्मक लक्ष्मी का) उपभोग करता है।

ध्यानाञ्जनेन समवेक्ष्य तमः प्रदेशं
भित्वा महाबलिभिरीश्वरनाममन्त्रैः।
दिव्याश्रितं भुजगभूषणमुद्वहन्ति
ये पादपद्ममिह ते शिव ते कृतार्थाः।।७२।।

अन्वय—हे शिव! इह, ये ध्यानाञ्जनेन, तमःप्रदेशम्, समवेक्ष्य, महाबलिभिः, ईश्वरनाममन्त्रैः, भित्त्वा, ते, भुजगभूषणम्, दिव्याश्रितम्, पादपद्मम्, उद्वहन्ति, ते, कृतार्थाः, सन्ति।

अर्थ—हे शिव! इस संसार में जो लोग ध्यानरूपी अञ्जन से दृष्टि को निर्मल कर, अज्ञानरूप स्थल को देख कर शक्तिशाली भगवान् के नाम मन्त्र रूप कुदाली से उस अज्ञानान्धकार को खोद कर, देवताओं द्वारा सेवित एवं सर्पों से भूषित, आपके चरण कमलों का आश्रय लेते हैं, वस्तुतः वे ही कृतार्थ हैं।

भूदारतामुदवहद् यदपेक्षया श्री-
भूदार एव किमतः सुमते लभस्व।
केदारमाकलितमुक्तिमहौषधीनां
पादारविन्दभजनं परमेश्वरस्य।।७३।।

अन्वय—सुमते! यदपेक्षया श्रीभूदारः एव भूदारताम् उदवहत् किम् अतः (परम् ?तस्मात्) आकलितमुक्तिमहौषधीनां केदारं, परमेश्वरस्य पादारविन्द-भजनं लभस्व।

अर्थ—हे सुबुद्धि! लक्ष्मी व धरा जिनकी पत्नियाँ हैं वे विष्णु ही जिनके चरणदर्शनार्थ सुअर बने, उससे परे क्या हो सकता है! अतः श्रेष्ठ मोक्षरूप औषधियों के खेत शिवचरणों का भजन ही कर। (ज्योतिर्लिंग के चरण खोजने विष्णु वराहरूप में चले थे फिर भी चरणों तक पहुँच नहीं पाये थे। विष्णु-सी एकनिष्ठ लगन से बुद्धि शिवभजन करे यह तात्पर्य है।)

आशापाशक्लेशदुर्वासनादिभेदोद्युक्तैर्दिव्यगन्धैरमन्दैः।
आशाशाटीकस्य पादारविन्दं, चेतःपेटीं वासितां मे तनोतु।।७४।।

अन्वय—आशाशाटीकस्य, पादारविन्दम्, आशापाशक्लेशदुर्वासनादि-भेदोद्युक्तैः, अमन्दैः, दिव्यगन्धैः, मे चेतःपेटीम्, वासिताम्, तनोतु।

अर्थ—मेरे चित्तरूप पेटी (सन्दूक) को ऐसे प्रभूत अलौकिक परिमलों से सुगंधित करें जो आशारूप पाश को अविद्यादि क्लेशों को, सदोष संस्कारों को, तथा ऐसे अन्य अनिष्ट दोषों को नष्ट करने में प्रवृत्त हैं।

कल्याणिनं सरसचित्रगतिं सवेगं, सर्वेङ्गितज्ञमनघं ध्रुवलक्षणाढ्यम्।
चेतस्तुरङ्गमधिरुह्य चर स्मरारे, नेतः समस्तजगतां वृषभाधिरूढ।।७५।।

अन्वय—हे स्मरारे! हे नेतः, हे वृषभाधिरूढ! (त्वम्) कल्याणिनम्, सरसचित्रगतिम्, सवेगम्, सर्वेङ्गितज्ञम्, अनघम्, ध्रुवलक्षणाढ्यम्, मे, चेतस्तुरङ्गम् अधिरुह्य, समस्तजगताम्, (मध्ये) चर।

अर्थ—हे स्मरारे! हे समस्तजननायक! हे वृषभवाहन! आप कल्याणकारक अर्थात् अच्छे लक्षणों वाले, सुन्दर व विचित्र पदक्रम वाले, वेगपूर्वक चलने वाले, सभी के इशारे को समझने वाले, भँवर आदि स्थायी अच्छे चिह्नों वाले, मेरे चित्तरूपी घोड़े पर चढ़कर, समस्त संसार में विचरण करो।

भक्तिर्महेशपदपुष्करमावसन्ती
कादम्बिनीव कुरुते परितोषवर्षम्।
संपूरितो भवति यस्य मनस्तटाक-
स्तज्जन्मसस्यमखिलं सफलं च नान्यत्।।७६।।

अन्वय—महेशपदपुष्करम्, आवसन्ती, भक्तिः, कादम्बिनी, इव, परितोषवर्षम्, कुरुते, यस्य मनस्तटाकः, सम्पूरितः, भवति, तज्जन्मसस्यम्, अखिलम् सफलम्, च भवति, न, अन्यत् (सफलम् भवति)।

अर्थ—भगवान् शंकर के चरण कमलों का आश्रय लेने वाली भक्ति, मेघमाला की तरह सन्तोषामृत की वर्षा करती है। जिसका मनरूपी तडाग उस जल से परिपूर्ण हो जाता है उसकी जीवनरूपी खेती पूरी ही सफल है।

तदतिरिक्त किसी का जीवन सफल नहीं है।

बुद्धिः स्थिरा भवितुमीश्वर पादपद्म-सक्ता वधूर्विरहिणीव सदा स्मरन्ती।
सद्भावनास्मरणदर्शनकीर्तनादि संमोहितेव शिवमन्त्रजपेन विन्ते।।७७।।

अन्वय—ईश्वर! विरहिणी वधूः इव पादपद्मसक्ता सदा स्मरन्ती बुद्धिः शिवमन्त्रजपेन सम्मोहिता इव स्थिरा भवितुं सद्भावना-स्मरण-दर्शन-कीर्तनादि विन्ते।

अर्थ—हे ईश्वर! विरहिणी वधू की तरह आपके चरण कमलों से अनन्य प्रेम वाली अतः सदा आपको याद करने वाली बुद्धि, 'शिव'- इस मंत्र के जप से सम्मोहित-सी होने पर स्थिर होने के लिये सद्रूप आपकी भावना, स्मृति, दर्शन कीर्तन आदि साधनों का ही विचार करती है।

सदुपचारविधिष्वनुबोधितां, सविनयां सुहृदं समुपाश्रिताम्।
मम समुद्धर बुद्धिमिमां प्रभो, वरगुणेन नवोढवधूमिव।।७८।।

अन्वय—हे प्रभो! सदुपचारविधिषु, अनुबोधिताम् सविनयाम्, सुहृदम्, समुपाश्रिताम्, इमाम्, मम, बुद्धिम्, वरगुणेन, नवोढवधूम्, इव, समुद्धर।

अर्थ—हे प्रभो! सुन्दर शिष्टाचारादि विधियों में सुशिक्षित, विनीत, सुन्दर हृदयरूपी मित्र का आश्रय ली हुई, इस मेरी बुद्धि का, सुन्दर पति के मिलने से नवोढा वधू का जिस प्रकार उद्धार हो जाता है, उसी प्रकार श्रेष्ठगुणों के उपदेश से उद्धार कीजिए।

नित्यं योगिमनःसरोजदलसंचारक्षमस्त्वत्क्रमः
शम्भो तेन कथं कठोरयमराड्वक्षःकवाटक्षतिः।
अत्यन्तं मृदुलं त्वदङ्घ्रियुगलं हा मे मनश्चिन्तय-
त्येतल्लोचनगोचरं कुरु विभो हस्तेन संवाहये।।७९।।

अन्वय—हे शम्भो! त्वत्क्रमः, नित्यम् योगिमनःसरोजदलसंचारक्षमः, तेन, कठोरयमराड्वक्षःकवाटक्षतिः, कथम्, (आसीत्)? हा!, मे, मनः, अत्यन्तम्, मृदुलम्, त्वदङ्घ्रियुगलम्, चिन्तयति, हे विभो! (त्वम्) एतत्, लोचनगोचरं कुरु, अहम्, अत्यन्तम्, मृदुलम्, त्वदङ्घ्रियुगलम्, हस्तेन, संवाहये।

अर्थ—हे शम्भो! आपका पाद-विक्षेप, अर्थात्, चलना-फिरना, हमेशा योगियों के मन रूपी कमल की पंखुड़ियों में ही होता है, अर्थात् जब आपके चरण हमेशा योगियों के कोमल मन रूपी कमल पर संचरण करते हैं, तो उन चरणों में भी संसर्गजन्य कोमलता ही रहेगी, तब उन चरणों ने कठोर यमराज

के वक्षरूपी कपाट को कैसे तोड़ा? —बड़े दुःख के साथ मेरा मन, यही सोचता रहता है। अतः आप अपना चरण मुझे दिखाइये ताकि मैं इन्हें अपने हाथ से दबाकर, मालिश कर आपको आराम दूँ।

एष्यत्येष जनिं मनोऽस्य कठिनं तस्मिन्नटानीति मद्-
रक्षायै गिरिसीम्नि कोमलपदन्यासः पुराभ्यासितः।
नो चेद्दिव्यगृहान्तरेषु सुमनस्तल्पेषु वेद्यादिषु
प्रायः सत्सु शिलातलेषु नटनं शम्भो किमर्थं तव।।८०।

अन्वय–हे शम्भो! एष (जनः) (पुनः) जनिम्, एष्यति, अस्य, मनः, कठिनम्, अस्ति (अतः) तस्मिन्, अटानि, इति, मद्रक्षायै, एव, गिरिसीम्नि, कोमलपदन्यासः, पुराभ्यासितः। नो, चेत्, दिव्यगृहान्तरेषु, सुमनस्तल्पेषु, वेद्यादिषु प्रायः सत्सु, शिलातलेषु, तव, नटनम् किमर्थम्?

अर्थ–हे शम्भो! 'यह भक्त जन इस संसार में जन्म ग्रहण करेगा, इसका मन अत्यन्त कठिन है, मैं उस मन में संचरण करूँगा' यह सोचकर अपने चरणों को मजबूत बनाने के लिये मेरी रक्षा की दृष्टि से ही, आपने अपने कोमल चरणों से पत्थरों पर नाचने का अभ्यास किया है। यदि ऐसा न होता तो रमणीय घरों में पुष्पसमान बिछौने, वेदिका आदि आपको सदा उपलब्ध रहते आप पत्थरों पर क्यों नाचते?

कंचित्कालमुमामहेश भवतः पादारविन्दार्चनैः
कञ्चिद्ध्यानसमाधिभिश्च नतिभिः कञ्चित्कथाकर्णनैः।
कञ्चित् कञ्चिदवेक्षणैश्च नुतिभिः कञ्चिद्दशामीदृशीं
यः प्राप्नोति मुदा त्वदर्पितमना जीवन् स मुक्तः खलु।।८१।।

अन्वय–हे उमामहेश (उमा सहितो महेशः, उमामहेशः, तत्सम्बुद्धौ, इति) भवतः, पादारविन्दार्चनैः, कञ्चित् कालम्, ध्यानसमाधिभिः, च, कञ्चित्, नतिभिः, कञ्चित्, कथाकर्णनैः, कञ्चित्, अवेक्षणैः नुतिभिः, च कंचित् यः ईदृशीं दशां मुदा प्राप्नोति सः त्वदर्पितमनाः खलु जीवन् मुक्तः।

अर्थ–हे उमासहित महेश! कुछ समय आपके चरणकमलों के पूजन में बीते, कुछ ध्यान समाधि में, कुछ नमस्कार में, कुछ आपसे संबंधित कथा-वार्ता में, कुछ दर्शन व स्तुतियों में, ऐसी जिसकी अनायास दशा हो उसका मन निश्चित ही आपको अर्पित है एवं वह अवश्य जीवन्मुक्त है।

बाणत्वं वृषभत्वमर्धवपुषा भार्यात्वमार्यापते
घोणित्वं सखिता मृदङ्गवहता चेत्यादिरूपं दधौ।

त्वत्पादे नयनार्पणं च कृतवांस्त्वद्देहभागो हरिः

पूज्यात्पूज्यतरः स एव हि न चेत्को वा तदन्योऽधिकः ।।८२।।

अन्वय—हे आर्यापते! त्वद्देहभागः, हरिः, कदाचित् बाणत्वम्, वृषभत्वम्, अर्धवपुषा, भार्यात्वम्, घोणित्वम्, सखिता, मृदङ्गवहता, इत्यादि रूपम्, दधौ, पुनः, त्वत्पादे, नयनार्पणम्, च, कृतवान्। स एव, हि, पूज्यात्, पूज्यतरः, न, चेत्, तदन्यः, अधिकः, वा, कः।

अर्थ—हे आर्यापते! आपके देह के एक भागस्वरूप हरि, भगवान् विष्णु, कभी आपके बाण का रूप धारण करते हैं, तो कभी वृषभ का, कभी आधे शरीर में सुन्दरी का रूप धारण कर लेते हैं, और कभी सूकरादि नाना रूप धारण करते हैं, कभी मोहिनी के रूप में सखी का रूप धारण करते हैं, कभी आपके नाचते समय मृदंग बजाने वाले बन जाते हैं; इतना ही नहीं, उन्होंने आपके चरणों में अपनी आँख तक न्यौछावर कर दी! बताइए, वे ही सबसे अधिक पूजनीय नहीं होंगे, तो फिर उनसे अधिक पूजनीय दूसरा कौन हो सकता है?

जननमृतियुतानां सेवया देवतानां

न भवति सुखलेशः संशयो नास्ति तत्र।

अजनिममृतरूपं साम्बमीशं भजन्ते

य इह परमसौख्यं ते हि धन्या लभन्ते।।८३।।

अन्वय—(इह) जननमृतियुतानाम्, देवतानाम्, सेवया, सुखलेशः, न, भवति, तत्र, संशयः, नास्ति, इह, ये, अजनिम्, अमृतरूपम्, साम्बम्, ईशम्, भजन्ते, ते, हि, धन्याः, (सन्तः) परमसौख्यम्, लभन्ते।

अर्थ—इस संसार में जो लोग जन्म-मरण-धर्म वाले देवताओं की सेवा करते हैं, वे सुखलेश को भी प्राप्त नहीं करते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। परन्तु जो लोग जन्ममरण-धर्म-रहित, अमृतरूप उमासहित महेश का भजन करते हैं, वे भाग्यशाली ही परमसौभाग्य को प्राप्त करते हैं।

शिव तव परिचर्यासंनिधानाय गौर्या

भव मम गुणधुर्यां बुद्धिकन्यां प्रदास्ये।

सकलभुवनबन्धो सच्चिदानन्दसिन्धो

सदय हृदयगेहे सर्वदा संवस त्वम्।।८४।।

अन्वय—हे शिव! गौर्या तव परिचर्यासंनिधानाय, (अहम्) (तुभ्यम्) गुणधुर्य्याम्, मम बुद्धिकन्याम्, प्रदास्ये, हे भव! हे सकलभुवनबन्धो! हे सच्चिदानन्दसिन्धो! हे सदय! त्वम्, मम, हृदयगेहे, सर्वदा, संवस।

अर्थ—हे शिव! गौरी के साथ आपकी पूजा में सुविधा के लिए, मैं अपनी श्रेष्ठ गुणों से युक्त, बुद्धिरूपी कन्या को प्रदान करता हूँ। अर्थात् गौरी आपकी परिचर्या सेवा पूजा में परायण हैं, उनकी सहायता के रूप में मैं गुणगणों से युक्त अपनी बुद्धिरूपी कन्या को प्रदान करता हूँ। तात्पर्य यह है कि मेरी बुद्धि भी आपकी सपर्या पूजा में लगी रहे। इसलिए हे भव! हे सम्पूर्ण भुवन के एकमात्र बन्धु! सत् चित् व आनन्द के सागर! हे दयालो! आप हमेशा मेरे हृदयरूपी घर में ही निवास करें।

जलधिमथनदक्षो नैव पातालभेदी
न च वनमृगयायां नैव लुब्धः प्रवीणः।
अशनकुसुमभूषावस्त्रमुख्यां सपर्यां
कथय कथमहं ते कल्पयानीन्दुमौले।।८५।।

अन्वय—हे इन्दुमौले! अहं जलधिमथनदक्षः नैव, न च पातालभेदी, नैव, मृगयायाम्, प्रवीणः, लुब्धः, अतः, कथय, अहम्, कथम् ते अशनकुसुमभूषावस्त्रमुख्याम्, सपर्याम्, कल्पयानि।

अर्थ—हे चन्द्रशेखर! न मैं समुद्र मथ सकता हूँ कि आपके योग्य विषरूप नैवेद्य लाऊँ, न पाताल ही फोड़ सकता हूँ कि फूलों की तरह सजाने के लिये आपको प्रिय साँप लाऊँ, न जंगली शिकार में समर्थ बहेलिया हूँ कि हाथी शेर आदि की खाल वस्त्र के रूप में अर्पित करूँ। बताइये, मैं आपकी पूजा कैसे करूँ जिसमें नैवेद्य, पुष्प-अलंकार और वस्त्र मुख्य समर्पणीय वस्तुएँ हैं?

पूजाद्रव्यसमृद्धयो विरचिताः पूजां कथं कुर्महे
पक्षित्वं न च वा किटित्वमपि न प्राप्तं मया दुर्लभम्।
जाने मस्तकमङ्घ्रिपल्लवमुमाजाने न तेऽहंविभो
न ज्ञातं हि पितामहेन हरिणा तत्त्वेन तद्रूपिणा।।८६।।

अन्वय—हे उमाजाने! (अस्मामिः) पूजाद्रव्यसमृद्धयः, (सम्यक्) विरचिताः, (परन्तु वयम् भवतः) पूजाम्, कथम्, कुर्महे? (अस्माभिस्तु भवतः सेवार्थम्) दुर्लभम्, पक्षित्वम्, किटित्वमपि न प्राप्तम्, हे विभो! ते अङ्घ्रिपल्लवम्, मस्तकम्, अहम्, न जाने, तद्रूपिणा, पितामहेन, हरिणा, हि तत्त्वेन न ज्ञातम्, (अहम् पुनः कथम् ज्ञास्यामि)!

अर्थ—हे उमापति! हमने अच्छी तरह सारी पूजा सामग्री तो उपस्थित कर ली, फिर भी पूजा कैसे करें? पूजा या मस्तककी की जाती है या चरणों की। व्रह्माजी हंस वनकर और विष्णु सुअर बनकर असंख्य समय के यत्न के बाद

भी जब लिंगोद्भवलीला के समय आपके मस्तक व चरणों का ठीक-ठीक पता नहीं पा सके तब हम कैसे पा सकेंगे जब हमें उतना समर्थ पक्षी का रूप और सुअर का रूप भी उपलब्ध नहीं है?

अशनं गरलं फणी कलापो, वसनं चर्म च वाहनं महोक्षः।
मम दास्यसि किं किमस्ति शम्भो! तव पादाम्बुजभक्तिमेव देहि।।८७।।

अन्वय—हे शम्भो! (तव) अशनम्, गरलम्, (अस्ति) फणी, कलापः, (अस्ति), वसनम्, चर्म, अस्ति, वाहनम्, च, महोक्षः अस्ति। एतादृशः (स्वयमकिञ्चनः त्वम्) मम, (कृते) किम्, दास्यसि, (न किमपीत्यर्थः). तव, (पार्श्वे) किम् अस्ति! (अर्थात् दानयोग्यं वस्तु किमपि नास्तीत्यर्थः। अतः अन्यत्, सर्वम् परिहाय स्वकीयाम्) पादाम्बुजभक्तिम्, एव, देहि।

अर्थ—हे शम्भो! आपका अशन अर्थात् खान-पान तो केवल गरल विष है अर्थात् आप विषपान करते हो। फणाधारी भुजङ्ग आपके भूषण हैं। आपका परिधान गजचर्म है और बूढ़े बैले की सवारी है। इस प्रकार स्वयं अकिञ्चन आप मुझे क्या देंगे! आपके पास तो कुछ भी, किसी को देने योग्य वस्तु नहीं है। अतः आप अपने चरणकमलों की भक्ति ही मुझे प्रदान करें।

यदा कृताम्भोनिधिसेतुबन्धनः, करस्थलाधःकृतपर्वताधिपः।
भवानि ते लङ्घितपद्मसम्भवस्तदा शिवार्चास्तवभावनक्षमः।।८८।।

अन्वय—हे शिव!, यदा, कृताम्भोनिधिसेतुबन्धनः, करस्थलाधःकृतपर्वताधिपः, लङ्घितपद्मसम्भवः (भविष्यामि) तदा ते अर्चा-स्तव-भावनाक्षमः, भवानि।

अर्थ—हे शिव! जब श्रीराम की तरह समुद्र पर पुल बाँध लूँगा, अगस्त्य की तरह हथेली से पर्वतराज विन्ध्य को नीचा कर चुकूँगा, महाविष्णु की तरह ब्रह्मा जी की अपेक्षा अतिशय पा लूँगा तब आपकी पूजा, स्तुति एवं ध्यान करने में समर्थ हो सकूँगा। (अर्थात् यथाविधि सेवा की योग्यता दुर्लभ है अतः शरणागति ही सुलभ उपाय है।)

नतिभिर्नुतिभिस्त्वमीशपूजाविधिभिर्ध्यानसमाधिभिर्न तुष्टः।
धनुषा मुसलेन चाश्मभिर्वा, वद ते प्रीतिकरं तथा करोमि।।८९।।

अन्वय—हे ईश! (यदि त्वम्) नतिभिः, नुतिभिः, पूजाविधिभिः, ध्यान-समाधिभिः, न, तुष्टः, (भवसि चेत् तदा किम्) धनुषा, मुसलेन, अश्मभिः, वा (तुष्टः, भविष्यसि?) वद, (कीदृशम्) ते, प्रीतिकरम्, (कर्म, अहमपि) तथा करोमि।

अर्थ—हे भगवन्! यदि आप नमस्कारों, स्तुतियों, पूजाविधियों और ध्यान समाधि आदि से संतुष्ट नहीं होते हैं, तो क्या फिर धनुष, हल, मूसल, पत्थर आदि से प्रसन्न होते हैं जैसे क्रमशः अर्जुन, गणेश और शाक्यनायनार पर प्रसन्न हुए थे? कहिए? आप जिस प्रकार के कर्म या आचरण से प्रसन्न होंगे, मैं भी वैसा ही कर्म या आचरण करूँगा।

वचसा चरितं वदामि शम्भोरहमुद्योगविधासु तेऽप्रसक्तः।
मनसाकृतिमीश्वरस्य सेवे, शिरसा चैव सदाशिवं नमामि।।९०।।

अन्वय—हे शम्भो! (अहम्), ते, उद्योगविधासु, अप्रसक्तः, सन्, वचसा, शम्भोः चरितम्, वदामि, मनसा, ईश्वरस्य, आकृतिम्, सेवे, शिरसा, च सदाशिवम्, एव नमामि।

अर्थ—हे शम्भो! मैं आपकी विधिवत् पूजा-अर्चना-ध्यान-समाधि आदि विधाओं को सम्यक् सम्पादन करने में असमर्थ होता हुआ, केवल वचन से आपके चरितों का बखान करता हूँ, मन से आपकी आकृति (झाँकी) का ध्यान करता हूँ, और शिर से आपको ही प्रणाम करता हूँ।

आद्याविद्या हृद्गता निर्गतासीद्विद्या हृद्या हृद्गता त्वत्प्रसादात्।
सेवे नित्यं श्रीकरं त्वत्पदाब्जम् भावे मुक्तेर्भाजनं राजमौले।।९१।।

अन्वय—हे राजमौले! त्वत्प्रसादात्, आद्या, अविद्या निर्गता, आसीत्, तथा त्वत्प्रसादात्, हृद्या, विद्या, हृद्गाता, (अभवत्)। हे शम्भो अहम्, भावे नित्यम्, श्रीकरम्, मुक्तेः भाजनम्, त्वत्पदाब्जम्, सेवे।

अर्थ—हे चन्द्रशेखर! आपकी कृपा से अनादि अविद्या (मूलाविद्या) निकल गई पुनः आपके ही प्रसाद से, हृदय में शुद्ध विद्या का उदय हुआ। हे शम्भो! मैं हृदय में नित्य कल्याणकारक व शोभा सम्पन्न, आपके ही चरणकमलों का सेवन करता हूँ, जो मुक्ति के खजाने हैं।

दूरीकृतानि दुरितानि दुरक्षराणि, दौर्भाग्यदुःखदुरहंकृतिदुर्वचांसि।
सारं त्वदीयचरितं नितरां पिबन्तं, गौरीश मामिह समुद्धर सत्कटाक्षैः।।९२।।

अन्वय—हे गौरीश! (त्वया) (मम) दुरितानि, दुरक्षराणि, दौर्भाग्यदुःख-दुरहंकृतिदुर्वचांसि, दूरीकृतानि। (इदानीम्), इह, नितराम्, सारम् त्वदीयचरितम्, पिबन्तम्, माम्, सत्कटाक्षैः, समुद्धर।

अर्थ—हे गौरीनाथ! आपने मेरे पापों से संचित दुर्भाग्य के सूचक भाग्याक्षर मिटा दिये, साथ ही साथ मेरे दुःख प्रारब्ध तथा मिथ्याहंकार, और कटुभाषणादि दुर्वचनों को भी दूर किया है। हे गौरीनाथ! अब इस समय यहाँ अत्यन्त

सारभूत आपके चरितामृत का पान करने वाले मेरा, अपने करुणापूर्ण कटाक्षों से उद्धार कीजिए।

सोमकलाधरमौलौ, कोमलघनकंधरे महामहसि।
स्वामिनि गिरिजानाथे, मामकहृदयं निरन्तरं रमताम्।।६३।।

अन्वय–हे शम्भो! मामकहृदयम्, सोमकलाधरमौलौ, महामहसि, कोमलघनकन्धरे, स्वामिनि, गिरिजानाथे, निरन्तरम्, रमताम्।

अर्थ–हे शम्भो! मेरा हृदय, मस्तक में चन्द्रकला धारण किये हुये, महा तेजस्वी, कोमल एवं पुष्ट कन्धरा वाले, जगदीश्वर पार्वतीनाथ में निरन्तर लगा रहे।

सा रसना ते नयने, तावेव करौ स एव कृतकृत्यः।
या ये यौ यो भर्गं, वदतीक्षेते सदार्चतः स्मरति।।६४।।

अन्वय–सा, रसना, या, भर्गम्, वदति, ते, नयने, ये, भर्गम्, ईक्षेते, तौ, एव, करौ, यौ, भर्गम्, सदा, अर्चतः, सः, एव, कृतकृत्यः, यः, (सदा) भर्गम्, स्मरति।

अर्थ–वस्तुतः किसी मनुष्य की रसना, जिह्वा वही है, जो भगवान् शंकर के विषय में बोलती है, अर्थात् भगवान् शंकर का गुणगान करने वाली रसना ही वस्तुतः रसना है, अन्य तो फिर सामान्य मांसखंड है। किसी भाग्यशाली पुरुष के नेत्र भी वस्तुतः वे ही हैं जो हमेशा भगवान् शंकर के दर्शन किया करते हैं। हाथों की भी सफलता इसी में है कि वे भगवान् शंकर की पूजा में लगे रहें। वस्तुतः वही पुण्यात्मा पुरुष कृतकृत्य है, जो हमेशा भगवान् शंकर का स्मरण किया करता है।

अतिमृदुलौ मन चरणावतिकठिनं ते मनो भवानीश।
इति विचिकित्सां संत्यज, शिव कथमासीद् गिरौ तथा वेशः।।६५।।

अन्वय–हे भवानीश! मम, चरणौ, अतिमृदुलौ, ते, मनः, अतिकठिनम्, इति विचिकित्साम्, संत्यज हे शिव! गिरौ, तथा, वेशः, कथम्, आसीत्।

अर्थ–हे भवानीपति! 'मेरे चरण अत्यन्त कोमल हैं, और भक्त का मन बड़ा कठोर है, अतः कैसे मैं भक्त के मन में विचरण करूँगा?' इस प्रकार के सन्देह को छोड़ो, क्योंकि आप तो पर्वतराज हिमालय व कैलास के कठिन वन-प्रस्तर भागों में विचरण करने वाले हो, जब उस प्रकार के कठिन से कठिन पाषाण खण्डों में आप विचरण कर लेते हैं, तो फिर भक्त-हृदय तो पत्थर से कठिन नहीं है! अतः निःसन्देह आप बड़ी तबीयत से भक्त के हृदय

में विचरण किया करें।

धैर्यांकुशेन निभृतं, रभसादाकृष्य भक्तिशृङ्खलया।
पुरहर चरणालाने, हृदयमदेभं बधान चिद्यन्त्रैः।।९६।।

अन्वय–हे पुरहर! (मम) हृदयमदेभम् (स्वकीये) चरणालाने, धैर्यांकुशेन, (वशीकृत्य) भक्तिशृङ्खलया, रभसात्, आकृष्य, चिद्यन्त्रैः, निभृतं बधान।

अर्थ–हे पुरहर शम्भो! मेरे हृदय रूप मस्त हाथी को अपने चरणरूपी खम्भे में, धीरे-धीरे धैर्यरूपी अंकुश से वश में करके, भक्तिरूपी शृङ्खला से ज़ोर से खींचकर, चैतन्य रूप यन्त्रों द्वारा दृढता से बाँध दो।

प्रचरत्यभितः प्रगल्भवृत्त्या, मदवानेष मनःकरी गरीयान्।
परिगृह्य नयेन भक्तिरज्ज्वा, परम स्थाणुपदं दृढं नयामुम्।।९७।।

अन्वय–हे परम! मदवान्, गरीयान्, एषः, (मम) मनःकरी, प्रगल्भवृत्त्या, अभितः, प्रचरति, अमुम्, नयेन, भक्तिरज्ज्वा, परिगृह्य, स्थाणुपदम्, दृढम्, नय।

अर्थ–हे शम्भो! मदमस्त सशक्त यह मेरा मनरूपी हाथी, स्वच्छन्द वृत्ति से इधर उधर चारों ओर (विषय प्रदेश में) घूमता है। इस मनरूपी हाथी को नीतिपूर्वक भक्तिरूपी रस्सी से बाँधकर, स्थिर, शाश्वत परमधाम की ओर ले चलो।

सर्वालङ्कारयुक्तां सकलपदयुतां साधुवृत्तां सुवर्णां
सद्भिः संस्तूयमानां सरसगुणयुतां लक्षितां लक्षणाढ्याम्।
उद्यद्भूषाविशेषामुपगतविनयां द्योतमानार्थ रेखां
कल्याणीं देव गौरीप्रिय मम कविताकन्यकां त्वं गृहाण।।९८।।

अन्वय–हे देव! हे गौरीप्रिय! मम, सर्वालङ्कारयुक्ताम्, सकलपदयुताम्, साधुवृत्ताम्, सुवर्णाम्, सद्भिः, संस्तूयमानाम्, सरसगुणयुताम्, लक्षिताम्, लक्षणाढ्याम् उद्यद्भूषाविशेषाम्, उपगतविनयाम्, द्योतमानार्थरेखाम्, (एतादृशीम्), कल्याणीम्, कविताकन्यकाम्, त्वम्, गृहाण।

अर्थ–(स्तोत्ररूप कविता को कन्या जैसा समझकर शिवार्पण करते हैं अतः सभी विशेषण कविता तथा कन्या पर घट जाते हैं–) हे देव! हे गौरीप्रिय! सभी उपमा आदि अलङ्कारों से युक्त, अथवा सभी प्रकार के आभरणों से सुशोभित; सभी प्रकार के (असमस्त एवं समस्त) पदों से युक्त, अथवा सभी प्रकार के स्थान में रहने योग्य; सुन्दर छन्दों से बनाई गई, अथवा सुन्दर आचरण से युक्त; सुन्दर स्वर व्यञ्जनादि वर्णों से युक्त या स्वच्छ

गौरादि वर्ण से युक्त; काव्यशास्त्रज्ञों के द्वारा प्रशंसनीय, अथवा सन्तों द्वारा श्लाघनीय; शृङ्गारादि रस, माधुर्यादि गुण से युक्त, अथवा सुन्दर चेष्टा हाव-भाव और दयादाक्षिण्यादि से युक्त; लक्षित अर्थात् परीक्षित; विनय से पूर्ण है, सुन्दर लक्षणों से युक्त; प्रकट हो रहे हैं सूक्तिरूप रत्न जिसमें अथवा चमकते रत्नों से सजी; या विनयशील है; जिसके विभिन्न अर्थ झट से समझ आ जाते हैं; साफ-साफ प्रकट है ललाटादि स्थलों में भाग्यादि रेखायें जिसकी, ऐसी मङ्गलप्रद शुभ मेरी कवितारूपी कन्या को स्वीकार करें।

इदं ते युक्तं वा परमशिव कारुण्यजलधे
गतौ तिर्यग्रूपं तव पदशिरोदर्शनधिया।
हरिब्रह्माणौ तौ दिवि भुवि चरन्तौ श्रमयुतौ
कथं शम्भो स्वामिन् कथय मम वेद्योऽसि पुरतः।।९९।।

अन्वय—हे परमशिव! हे कारुण्यजलधे! तव, पदशिरोदर्शनधिया, तिर्यग्रूपम्!, गतौ, तौ, हरिब्रह्माणौ, (अपि), दिवि, भुवि, (वा) चरन्तौ, श्रमयुतौ, (अभवताम्), इदम्, ते, युक्तम्, किम्? हे शम्भो! हे स्वामिन्! कथय, तदा, त्वम्, मम, पुरतः, वेद्यः, कथम्, (भविष्यसि)।

अर्थ—हे परमशिव! हे करुणा के सागर! आपके चरण तथा शिर की खोज के लिए, या दर्शन के लिए (सुअर-स्वरूप एवं) पक्षिस्वरूप को धारण किए हुए विष्णु व ब्रह्मा आकाश, पाताल व पृथ्वी में विचरण करते-करते थक गये बेचारे, फिर भी आप उनके दृष्टिपथ में नहीं आये; इस तरह से उन्हें परेशान करना (आपको) उचित है क्या? हे शम्भो! हे स्वामिन्! जब संसार के पालक व निर्माताओं के ही आप दृष्टिपथ में नहीं आते हैं, तो फिर मेरे सामने कैसे आप आयेंगे, अर्थात् तब मैं कैसे आपका साक्षात्कार कर सकूँगा?

स्तोत्रेणालमहं प्रवच्मि न मृषा देवा विरिञ्चादयः
स्तुत्यानां गणनाप्रसङ्गसमये त्वामग्रगण्यं विदुः।
माहात्म्याग्रविचारणप्रकरणे धानातुषस्तोमव-
द्धूतास्त्वां विदुरुत्तमोत्तमफलं शम्भो भवत्सेवकाः।।१००।।

अन्वय—हे शम्भो! (अतः परम्), स्तोत्रेण, अलम्, अहम्, मृषा, न, प्रवच्मि (यत्) भवत्सेवकाः विरिञ्चादयः, देवाः माहात्म्याग्रविचारणप्रकरणे धानातुषस्तोमवद् धूताः, स्तुत्यानाम्, गणनाप्रसङ्गसमये अग्रगण्यम्, त्वाम्, विदुः, त्वाम्, उत्तमोत्तमफलम् विदुः।

अर्थ—हे शम्भो! अब आगे और स्तुति करने से क्या फायदा! मैं सच-सच

कहता हूँ कि आपके सेवक ब्रह्मादि देवता, जो महत्ता में श्रेष्ठता का विचार करने पर धान पर स्थित भूसे के ढेर की तरह हटा दिये जाते हैं, वे स्तुतियोग्य व्यक्तियों की गिनती करने के समय आपको सर्वप्रथम गिनते हैं एवं आपको ही सर्वोत्तम फलरूप मानते हैं।

शिवपादादिकेशान्तवर्णनस्तोत्रम्

कल्याणं नो विधत्तां कटकतटलसत्कल्पवाटीनिकुञ्ज-
क्रीडासंसक्तविद्याधरनिकरवधूगीतरुद्रापदानः।
तारैर्हेरम्बनादैस्तरलितनिनदत्तारकारातिकेकी
कैलासः शर्वनिर्वृत्यभिजनकपदः सर्वदा पर्वतेन्द्रः।।१।।

अन्वय–कटकतटलसत्कल्पवाटीनिकुञ्ज-क्रीडासंसक्त-विद्याधरनिकर-वधूगीतरुद्रापदानः, तारैः, हेरम्बनादैः, तरलितनिनदत्तारकारातिकेकी, शर्वनिर्वृत्यभिजनकपदः, पर्वतेन्द्रः, कैलासः, नः, सर्वदा, कल्याणम्, विधत्ताम्।

अर्थ–(जिस पर्वत के) मध्यभाग में सुशोभित कल्पवृक्ष की वाटिका के लता-कुञ्जों में विहार कर रही विद्याधरों की स्त्रियों (देवाङ्गनाओं) के द्वारा भगवान् शङ्कर के परम पावन चरित्र का गान किया जा रहा है, गम्भीर एवं उच्च स्वर से किये जा रहे गणेशजी के गर्जन से आनन्दोद्वेलित होकर तारकासुर के शत्रु स्वामी कार्तिकेय का मयूर निनाद कर रहा है, तथा जो भगवान् शङ्कर का निरतिशयानन्ददायक प्रिय निवास स्थान है, वह पर्वतेन्द्र कैलास, हम सब का सदा कल्याण करे।

यस्य प्राहुः स्वरूपं सकलदिविषदां सारसर्वस्वयोगं
यस्येषुः शार्ङ्गधन्वा समजनि जगतां रक्षणे जागरूकः।
मौर्वी दर्वीकराणामपि च परिवृढः पूस्त्रयी सा च लक्ष्यं
सोऽव्यादव्याजमस्मानशिवभिदनिशं नाकिनां श्रीपिनाकः।।२।।

अन्वय–(मुनयः) सकलदिविषदाम्, सारसर्वस्वयोगं, यस्य, स्वरूपम्, प्राहुः, जगतां रक्षणे जागरूकः, शार्ङ्गधन्वा, यस्य, इषुः, (अस्ति) दर्वीकराणाम् परिवृढः च, यस्य मौर्वी (अस्ति) सा, च, पूस्त्रयी यस्य लक्ष्यम् (अस्ति) अनिशम्, नाकिनाम्, अशिवभित्, सः श्रीपिनाकः, अस्मान्, अव्याजम्, अवतु।

अर्थ—भगवान् शङ्कर के जिस धनुष को ऋषि मुनि जन समस्त देवताओं का एकमात्र बल एवं सार तत्त्व मानते हैं, तथा चराचर जगत् की रक्षा करने में जागरूक भगवान् विष्णु जिसके बाण बने, तथा फण ही है हाथ जिनका ऐसे सर्पों में श्रेष्ठ भगवान् वासुकि जिस धनुष की डोरी बने, प्रसिद्ध त्रिपुर (त्रिपुरासुर के तीनों निवास स्थान) जिसके लक्ष्य (वेध्य) थे, निरन्तर देवताओं के अमंगल का नाशक श्री पिनाक नामक धनुष हम सब की रक्षा करे।

आतङ्कावेगहारी सकलदिविषदामंघ्रिपद्माश्रयाणाम्
मातङ्गाद्युग्रदैत्यप्रकरतनुगलद्रक्तधाराक्तधारः।
क्रूरः सूरायुतानामपि च परिभवं स्वीयभासा वितन्वन्
घोराकारः कुठारो दृढतरदुरिताख्याटवीं पाटयेन्नः।।३।।

अन्वय—(यस्य कुठारः) अंघ्रिपद्माश्रयाणाम् सकलदिविषदाम् आतङ्का-वेगहारी (अस्ति), मातङ्गाद्युग्रदैत्यप्रकरतनुगलद्रक्तधाराक्तधारः स्वीयभासा सूरायुतानाम् परिभवम्, वितन्वन्, घोराकारः, क्रूरः कुठारः नः दृढतरदुरिताख्याटवीम् पाटयेत्।

अर्थ—भगवान् शङ्कर का जो कुठार उनके चरण कमलाश्रित समस्त देवताओं के भय एवं आवेग (आतङ्क) को दूर करने वाला है, और निरन्तर मातङ्ग आदि दुर्दान्त दैत्यसमूह के शरीर से निकल रही खून की धारा से लहूलुहान रहता है, अपनी तेज चमचमाहट से असंख्य सूर्यों को भी तिरस्कृत करता हुआ, भयंकर आकार वाला क्रूर कुठार हम लोगों के पापों के महावन को काट दे।

कालारातेः कराग्रे कृतवसतिरुरःशाणशातो रिपूणां
काले-काले कुलाद्रिप्रवरतनयया कल्पितस्नेहलेपः।
पायान्नः पावकार्चिःप्रसरसखमुखः पापहन्ता नितान्तं
शूलः श्रीपादसेवाभजनरसजुषां पालनैकान्तशीलः।।४।।

अन्वय—कालारातेः, कराग्रे,कृतवसतिः, रिपूणाम्, उरःशाणशातः (अतएव) पावकार्चिप्रसरसखमुखः काले, काले, कुलाद्रिप्रवरतनयया, कल्पितस्नेहलेपः, श्रीपादसेवाभजनरसजुषाम् नितान्तम्, पापहन्ता, पालनैकान्तशीलः, शूलः, नः, पायात्।

अर्थ—जो शूल निरन्तर काल के भी काल भगवान् शङ्कर के हाथों में शोभित होता है, शत्रुओं के वक्षः स्थल रूपी शाण पर शात (तीक्ष्ण) किया जाता है, और इसीलिये सैकड़ों चिनगारियों से जो युक्त है, तथा समय-समय

पर पर्वतराज हिमालय की पुत्री जगदम्बा पार्वती के द्वारा स्नेह का लेप किया गया है जिस पर, और जो लोग भगवान् के श्रीचरण के भजन एवं सेवा रस से ओत-प्रोत हैं उनके समस्त पापों का हरण करने वाला है तथा रक्षा करना जिसका सहज स्वभाव है, ऐसा भगवान् शंकर का शूल (त्रिशूल) हम लोगों की रक्षा करे।

देवस्याङ्काश्रयायाः कुलगिरिदुहितु र्नेत्रकोणप्रचार-
प्रस्तारानत्युदारान् पिपठिषुरिव यो नित्यमत्यादरेण।
आधत्ते भङ्गितुङ्गैरनिशमवयवैरन्तरङ्गं समोदं
सोमापीडस्य सोऽयं प्रदिशतु कुशलं पाण्डुरङ्गः कुरङ्गः।।५।।

अन्वय—(यः कुरङ्गः) देवस्य, अङ्काश्रयायाः, कुलगिरिदुहितुः नेत्रकोणप्रचार-प्रस्तारान्, अत्युदारान् नित्यम् अत्यादरेण, पिपठिषुः, इव (अस्ति) यश्च, पुनः भङ्गितुङ्गैः, अवयवैः अनिशम्, अन्तरङ्गम्, समोदम्, आधत्ते, सः, अयम् सोमापीडस्य, पाण्डुरङ्गः, कुरङ्गः, (नः) कुशलम्, प्रदिशतु।

अर्थ—(जो मृग) देवाधिदेव भगवान् शङ्कर के अङ्क (गोद) में विराजमान पार्वती जी के नेत्रप्रान्त-विस्तार कटाक्षों को पढ़ने की निरन्तर आदर के साथ इच्छा करता हुआ सा है, भंगिमाओंयुक्त टेढ़े मेढ़े लम्बे अङ्गों से निरन्तर चित्त आनन्दित करता रहता है, वह चन्द्रभूषण भगवान् शिव का पाण्डुरङ्ग (भूरेरङ्गवाला) कुरङ्ग (मृग) हम लोगों को कुशल (कल्याण) प्रदान करे।

कण्ठप्रान्तावसज्जत्कनकमयमहाघण्टिकाघोरघोषैः
कण्ठारावैरकुण्ठैरपि भरितजगच्चक्रवालान्तरालः।
चण्डः प्रोद्दण्डशृङ्गः ककुदकवलितोत्तुङ्गकैलासशृङ्गः
कण्ठेकालस्य वाहः शमयतु शमलं शाश्वतं शाक्करेन्द्रः।।६।।

अन्वय—कण्ठप्रान्तावसज्जत्-कनकमय-महाघण्टिका-घोरघोषैः अकुण्ठैः, कण्ठारावैः, अपि, भरितजगच्चक्रवालान्तरालः चण्डः, प्रोद्दण्डशृङ्गः ककुदविलसितोत्तुङ्गकैलासशृङ्गः, (एतादृशः) कण्ठेकालस्य, वाहः, शाक्करेन्द्रः, (वः) शाश्वतं शमलम्, शमयतु।

अर्थ—गले में लटक रही महाघण्टिका, जो सुवर्णमय है, उसके भयानक शब्दों से तथा किसी शब्द से न दबने वाले अत्युच्च कण्ठ की गर्जना से ब्रह्माण्ड के अन्तराल को जिसने गुंजायमान कर दिया है, जिसके दण्डायमान भयानक सींग हैं, जिसका ककुद, डील कैलास पर्वत के शिखर की ऊँचाई को निगल ले रहा है— अर्थात् कैलास से भी ऊँचा है, कालकण्ठ भगवान् शङ्कर

का ऐसा वाहन भगवान् नन्दीश्वर आप सबके पापों को दूर करे।

निर्यद्दानाम्बुधारापरिमलतरलीभूतरोलम्बपाली-
झंकारैः शंकराद्रेः शिखरशतदरीः पूरयन्भूरिघोषैः।
शार्वः सौवर्णशैलप्रतिमपृथुवपुः सर्वविघ्नापहर्त्ता
शर्वाण्याः पूर्वसूनुः स भवतु भवतां स्वस्तिदो हस्तिवक्त्रः।।७।।

अन्वय—निर्यद्दानाम्बुधारापरिमलतरलीभूत-रोलम्बपाली-झङ्कारैः भूरिघोषैः, शङ्कराद्रेः शिखरशतदरीः, पूरयन्, सौवर्णशैलप्रतिमपृथुवपुः सर्वविघ्नापहर्ता, शार्वः, शर्वाण्याः, पूर्वसूनुः, सः, हस्तिवक्त्रः, भवताम्, स्वस्तिदः भवतु।

अर्थ—जिनके गण्डस्थल से टपक रही मदधारा के सुगन्ध से आनन्दोद्वेलित भ्रमर-समूह के झङ्कारमय प्रचुर ध्वनि से कैलास पर्वत की गुफाएँ गुंजायमान हैं और सुवर्णमय सुमेरु पर्वत के समान जिनका शरीर है, जो सभी प्रकार के विघ्नों के विनाशक हैं, वे साम्बसदाशिव के प्रथम पुत्र गजानन गणेश भगवान् आप लोगों का कल्याण करें।

यः पुण्यै र्देवतानां समजनि शिवयोः श्लाघ्यवीर्यैकमत्या
यन्नाम्नि श्रूयमाणे दितिजभटघटा भीतिभारं भजन्ते।
भूयात् सोऽयं विभूत्यै निशितशरशिखापाटितक्रौञ्चशैलः
संसारागाधकूपोदरपतितसमुत्तारकस्तारकारिः।।८।।

अन्वय—यः देवतानाम्, पुण्यैः, शिवयोः समजनि, श्लाघ्यवीर्यैकमत्या, यन्नाम्नि, श्रूयमाणे, दितिजभटघटाः, भीतिभारं, भजन्ते, निशितशरशिखा-पाटितक्रौञ्चशैलः, संसारासारकूपोदरपतितसमुत्तारकः, सः, अयम् तारकारिः, (नः) विभूत्यै, भूयात्।

अर्थ—जो स्वामी कार्तिकेय देवताओं के पुण्य से शिव-पार्वती के पुत्ररूप में उत्पन्न हुये हैं, प्रशंसनीय पराक्रम एवं अद्वितीय बुद्धि से सम्पन्न हैं, जिनके नाम सुनने मात्र से दैत्यवीर समुदाय भयभीत हो जाता है, जिनके तीखे बाण की नोक से क्रौञ्च पर्वत का दर्रा बन गया है, जो असार संसाररूपी कूयें में गिरे प्राणियों का उद्धार करते हैं, वे तारकासुर को मारने वाले भगवान् कार्तिकेय हम लोगों को इस लोक तथा परलोक की मोक्षरूपिणी विभूति प्रदान करें।

आरूढः प्रौढवेगप्रविजितपवनं तुङ्गतुङ्गं तुरङ्गं
चेलं नीलं वसानः करतलविलसत्काण्डकोदण्डदण्डः।
रागद्वेषादिनानाविधमृगपटलीभीतिकृद्भूतभर्त्ता
कुर्वन्नाखेटलीलां परिलसतु मनःकानने मामकीने।।९।।

अन्वय—प्रौढवेगप्रविजितपवनम्, तुङ्गतुङ्गम्, तुरङ्गम्, आरूढः, नीलम् चेलम् वसानः करतलविलसत्काण्डकोदण्डदण्डः,रागद्वेषादिनाना-विधमृगपटलीभीतिकृत्, आखेटलीलाम्, कुर्वन्, भूतभर्ता, मामकीने, मनःकानने, परिलसतु।

अर्थ—अपनी तेज़ गति से जिसने पवन को भी जीत लिया है ऐसे बहुत बड़े घोड़े पर सवार होकर, नीले कपड़े पहने हुये, हाथ में श्रेष्ठ धनुष बाण रूपी दण्ड को धारण कर, राग द्वेष आदि अनेक प्रकार के मृगों को डराने वाले ऐसे मृगया (शिकार) की क्रीडा करने वाले, किरात वेषधारी भगवान् शङ्कर मेरे मन रूपी वन में सदा विहार करें।

अम्भोजाभ्यां च रम्भारथचरणलताद्वन्द्वकुम्भीन्द्रकुम्भैः
बिम्बेनेन्दोश्च कम्बोरुपरि विलसता विद्रुमेणोत्पलाभ्याम्।
अम्भोदेनापि सम्भावितमुपजनिताडम्बरं शम्बरारेः
शम्भोः संभोगयोग्यं किमपि धनमिदं संभवेत् संपदे नः।।१०।।

अन्वय—अम्भोजाभ्यां रम्भा-रथचरण-लताद्वन्द्व-कुम्भीन्द्रकुम्भैः,च, कम्बोः, उपरि, विद्रुमेण, उत्पलाभ्यां, विलसता, इन्दोः, बिम्बेन, अम्भोदेन, अपि, च सम्भावितं, शम्बरारेः, उपजनिताडम्बरं, इदं, शम्भोः, सम्भोगयोग्यं, किमपि, धनं, नः, सम्पदे, सम्भवेत्।

अर्थ—कामदेव के मनमोहक आडम्बर जैसा व शम्भु के ही सम्भोग के योग्य यह अवर्णनीय 'धन' हमें अभीष्ट सम्पत्ति प्रदान करे। यह 'धन' किस-किस से रचित है? दो कमल, केले के दो खम्भे, रथ के दो चक्के, लताओं का जोड़ा, एक छोटी घटिका, दो पुष्ट घड़े एवं गले से ऊपर ऐसा चन्द्रमण्डल जो विद्रुम और दो कमलों से शोभित है व जिस पर घने बादल भी हैं। (यह भगवती का वर्णन है—उनके दोनों चरण कमल जैसे हैं, टाँगें केले के खम्भे-सी हैं, नितंब रथ के चक्के जैसे हैं, भुजाएँ लताओं सी हैं, पेट छोटी घटिका-सा व स्तन पुष्ट घड़ों जैसे हैं। गले से ऊपर उनका मुख चंद्रमण्डल-सा है। उस पर ओठ विद्रुम जैसे व नेत्र कमल जैसे हैं तथा केश बादलों जैसे हैं। ऐसी माता पार्वती हमें सम्पत् दें यह प्रार्थना है।)

वेणीसौभाग्यविस्मापिततपनसुताचारुवेणीविलासान्
वाणीर्निर्धूतवाणीकरतलविधृतोदारवीणाविरावान्।
एणीनेत्रान्तभङ्गीनिरसननिपुणापाङ्गकोणानुपासे
शोणान् प्राणानुदूढप्रतिनवसुषमाकन्दलानिन्दुमौलेः।।११।।

अन्वय–(अहम्) इन्दुमौलेः वेणीसौभाग्यविस्मापित-तपनसुताचारुवेणी-विलासान् (उपासे) (तथा) निर्धूतवाणीकरतलविधृतोदार-वीणाविरावान् वाणीः (उपासे) (तथा) शोणान्, एणीनेत्रान्तभङ्गीनिरसननिपुणापाङ्गकोणान्, (उपासे) (एवञ्च) उदूढप्रतिनवसुषमाकन्दलान्, प्राणान् उपासे।

अर्थ–मैं भगवान् भूतभावन चन्द्रमौलि के उस जटाकलाप लट की उपासना करता हूँ जिसने अपने सौन्दर्य से यमुना जी की मनोरम प्रवाह-भङ्गिमा को आश्चर्यचकित कर दिया है, और भगवान् शंकर की उस वाणी की भी उपासना करता हूँ, जिसने भगवती सरस्वती के हाथ में विराजमान उदार (सबको प्रिय लगने वाली) वीणा की मधुर ध्वनि को भी तिरस्कृत कर दिया है, भगवान् के लाल लाल उन नेत्र कोणों की आराधना करता हूँ, जो हिरनी के नेत्र-सौन्दर्य को पराजित करने में चतुर हैं, तथा जगदीश्वर के उन पञ्च प्राणों की उपासना करता हूँ, जो प्रतिपल नवनवायमान सौन्दर्य के अंकुरों को धारण करते हैं।

नृत्तारम्भेषु हस्ताहतमुरजधिमिद्धिंकृतैरत्युदारै-
श्चित्तानन्दं विधत्ते सदसि भगवतः संततं यः स नन्दी।
चण्डीशाद्यास्तथान्ये चतुरगुणगणप्रीणितस्वामिसत्का-
रोत्कर्षोद्यत्प्रसादाः प्रमथपरिवृढाः पान्तु संन्तोषिणो नः।।१२।।

अन्वय–भगवतः, नृत्तारम्भेषु, सदसि, यः, अत्युदारैः, हस्ताहतमुरज-धिमिद्धिंकृतैः (तालैः) सततम्, चित्तानन्दम् विधत्ते, सः नन्दी, (नः, पातु) तथा, अन्ये, (ये) चतुरगुणगणप्रीणितस्वामिसत्कारोत्कर्षोद्यत्प्रसादाः चण्डीशाद्याः, (सन्ति तेऽपि) सन्तोषिणः, प्रमथपरिवृढाः, च, नः, पान्तु।

अर्थ–भगवान् शंकर के ताण्डवनृत्य के प्रारम्भ में अर्थात् नाट्य गोष्ठी में, जो (नन्दी) हाथों से बजाये गये मृदङ्ग मुरज आदि वाद्यों की धिम्-धिम् ध्वनि की ऊँची सबको प्रिय लगने वाली तालों से सदा गोष्ठी के लोगों का चित्त आनन्दित करते हैं वे भगवान् नन्दी तथा अन्य चण्डीश्वरादि जो अपने चातुर्यादि गुणों से भगवान् को आनन्दोद्वेलित कर अपनी इस क्रिया से स्वयं भी अति प्रसन्न हैं वे प्रमथों के स्वामी लोग हम सब की रक्षा करें।

मुक्तामाणिक्यजालैः परिकलितमहासालमालोकनीयं
प्रत्युप्तानर्घरत्नै र्दिशि दिशि भवनैः कल्पितैर्दिक्पतीनाम्।
उद्यानैरद्रिकन्यापरिजनवनितामाननीयैः परीतं
हृद्यं हृद्यस्तु नित्यं मम भुवनपते र्धाम सोमार्धमौलेः।।१३।।

अन्वय–दिशि-दिशि, दिक्पतीनाम्, प्रत्युप्तानर्घरत्नैः, कल्पितैः, भवनैः,

अद्रिकन्यापरिजनवनितामाननीयैः उद्यानैः, परीतं, मुक्तामाणिक्यजालैः परिकलित-महासालम्, भुवनपतेः, सोमार्धमौलेः, आलोकनीयं, हृद्यं, धाम, मम, हृदि, नित्यम्, अस्तु।

अर्थ—मेरे हृदय में जगन्नाथ शशिशेखर भगवान् शंकर के प्रिय धाम की झाँकी हमेशा रहा करे। उस धाम के चारों ओर दिक्पालों के महल हैं जो बहुमूल्य रत्नों से जटित हैं। भगवती पार्वती की सेविकाएँ प्रेम से जिनकी देख-भाल करती हैं ऐसे बगीचों से शिवधाम घिरा है। मोती, माणिक्य के जालों से बनी चार-दिवारी से वह सुरक्षित है। शंकर जी का वह वास-स्थान अत्यन्त दर्शनीय है।

स्तम्भैर्जम्भारिरत्नप्रवरविरचितैः सम्भृतोपान्तभागं
शुम्भत्सोपानमार्गं शुचिमणिनिचयैर्गुम्फितानल्पशिल्पम्।
कुम्भैः सम्पूर्णशोभं शिरसि सुघटितैः शातकुम्भैरपङ्कैः
शम्भोः संभावनीयं सकलमुनिजनैः स्वस्तिदं स्यात्सदो नः।।१४।।

अन्वय—जम्भारिरत्नप्रवरविरचितैः, स्तम्भैः, सम्भृतोपान्तभागम्, शुचिमणिनिचयैः गुम्फितानल्पशिल्पम्, शुम्भत्सोपानमार्गं, शिरसि, सुघटितैः, अपङ्कैः, शातकुम्भैः कुम्भैः, सम्पूर्ण-शोभम्, सकलमुनिजनैः, सम्भावनीयम्, शम्भोः, सदः, नः, स्वस्तिदं, स्यात्।

अर्थ—महेन्द्र भवन के सर्वश्रेष्ठ रत्नों से निर्मित स्तम्भों से सुशोभित किनारे के हिस्सों वाला, स्वच्छ मणियों से चित्रित सोपान (सीढ़ी) है जिसमें तथा सभाभवन के शिखरों पर निर्मित स्वच्छ सुवर्णमय कलशों से जिसकी समस्त शोभा प्रकट हो रही है, समस्त ऋषि मुनि जनों द्वारा जो अत्यन्त समादृत है, ऐसा भगवान् शंकर का दिव्य सभाभवन हम लोगों के लिये कल्याणकारक हो।

न्यस्तो मध्ये सभायाः परिसरविलसत्पादपीठाभिरामो
हृद्यः पादैश्चतुर्भिः कनकमणिमयैरुच्चकैरुज्ज्वलात्मा।
वासोरत्नेन केनाप्यधिकमृदुतरेणास्तृतो विस्तृतश्रीः
पीठः पीडाभरं नः शमयतु शिवयोः स्वैरसंवासयोग्यः।।१५।।

अन्वय—परिसरविलसत्पादपीठाभिरामः, कनकमणिमयैः, उच्चकैः, चतुर्भिः पादैः उज्ज्वलात्मा, (अतएव) हृद्यः, अधिक-मृदुतरेण, केनापि वासोरत्नेन, आस्तृतः, (अतः) विस्तृतश्रीः, शिवयोः, स्वैरसंवासयोग्यः, सभायाः, मध्ये, न्यस्तः, पीठः, नः, पीडाभरम्, शमयतु।

अर्थ—सामने समीप में स्थित सुन्दर पादपीठ (पायदान) से सुशोभित

और सुवर्ण एवं रत्नों से बने ऊँचे-ऊँचे चार पायों से सुशोभित इसलिये मनोहर, अत्यन्त कोमल अवर्णनीय श्रेष्ठ वस्त्र से आच्छादित होने से जिसकी शोभा और भी बढ़ जा रही है, इस तरह का पराम्बा जगदम्बा पार्वती एवं परात्पर परब्रह्म परमात्मा भगवान् शङ्कर के यथेच्छ बैठने योग्य सभागार के मध्य में रखा हुआ पीठ (सिंहासन) हम सबके कष्टों को शान्त करे।

आसीनस्याधिपीठं त्रिजगदधिपतेरंघ्रिपीठानुषक्तौ
पाथोजाभोगभाजौ परिमृदुलतलोल्लासिपद्मादिरेखौ।
पातां पादावुभौ तौ नमदमरकिरीटोल्लसच्चारुहीर-
श्रेणीशोणायमानोन्नतनखदशकोद्भासमानौ समानौ।।१६।।

अन्वय—अधिपीठम्, आसीनस्य, त्रिजगदधिपतेः, अंघ्रिपीठानुषक्तौ, पाथोजाभोगभाजौ, परिमृदुलतलोल्लासिपद्मादिरेखौ, नमदमरकिरीटोल्ल-सच्चारुहीरश्रेणीशोणायमानोन्नतनखदशकोद्भासमानौ, समानौ, तौ, उभौ पादौ, पाताम्।

अर्थ—उक्त पीठ में विराजमान तीनों लोकों के अधिपति भगवान् शङ्कर के पादपीठ पर विराजमान, कमल के विस्तार के आकार के चरण कमल, जिनके अत्यन्त कोमल तल में स्पष्ट कमल, यव, अंकुशादि रेखायें हैं, नमस्कार कर रहे देवताओं के किरीटों में स्थित हीरकादि मणियों की चमक से लाल दीखते और उठे हुये दशों नख सुशोभित हो रहे हैं जिनके ऐसे एक दूसरे के बिल्कुल समान दोनों चरण हम सब की रक्षा करें।

यन्नादो वेदवाचां निगदति निखिलं लक्षणं पक्षिकेतु-
र्लक्ष्मीसंभोगसौख्यं विरचयति ययोश्चापरे रूपभेदे।
शम्भोः सम्भावनीये पदकमलसमासङ्गतस्तुङ्गशोभे
माङ्गल्यं नः समग्रं सकलसुखकरे नूपुरे पूरयेताम्।।१७।।

अन्वय—यन्नादः, वेदवाचाम्, निखिलम्, लक्षणम्, निगदति, ययोः, अपरे रूपभेदे, पक्षिकेतुः, लक्ष्मीसंभोगसौख्यम्, विरचयति, पदकमलसमासङ्गतः, तुङ्गशोभे, सकलसुखकरे, शम्भोः, सम्भावनीये (ते) नूपुरे, नः समग्रम् माङ्गल्यम् पूरयेताम्।

अर्थ—भगवान् आशुतोष के जिन नूपुरों की झङ्कार (ययोः नादः यन्नादः) वेद के समस्त आरोहावरोहात्मक स्वरों का लक्षण प्रस्तुत करता है अर्थात् वेद ध्वनि का अनुकरण करता है, जिन नूपुरों का रूपान्तर हो जाने पर भगवान् विष्णु भगवती लक्ष्मी के संयोग सुख की रचना करते हैं अर्थात् शिवनूपुरों की

कृपा से ही लक्ष्मी-नारायण को दाम्पत्य-सुख प्राप्त है; भगवान् के चरणकमल के सम्पर्क से अत्यधिक शोभावाले, तथा चराचर को सुख प्रदान करने वाले भगवान् शंकर के परिधान के रूप में स्वीकार करने के कारण उनके भी सम्माननीय नूपुरद्वय हम लोगों के माङ्गल्य की पूर्ति करें।

अङ्गे शृङ्गारयोनेः सपदि शलभतां नेत्रवह्नौ प्रयाते
शत्रोरुद्धृत्य तस्मादिषुधियुगमधो न्यस्तमग्रे किमेतत्।
शङ्कामित्थं नतानाममरपरिषदामन्तरंकूरयत्तत्
संघातं चारु जङ्घायुगमखिलपतेरंहसां संहरेन्नः।।१८।।

अन्वय—(यस्य भगवतः) नेत्रवह्नौ, शृङ्गारयोनेः, अङ्गे, सपदि, शलभताम्, प्रयाते, (सति) 'तस्मात्, शत्रोः, उद्धृत्य, एतत्, इषुधियुगम, अग्रे, अधः, न्यस्तम्, किम्?' इत्थम् यत्, नतानाम्, अमरपरिषदाम्, अन्तः, शङ्काम् अङ्कुरयत्, तत्, अखिलपतेः, चारु, जङ्घायुगम्, नः, अंहसाम्, संघातम्, संहरेत्।

अर्थ—जिन भगवान् शङ्कर के तीसरे नेत्र की अग्नि में कामदेव का सारा शरीर शलभ अर्थात् पतंगा बन गया अर्थात् भस्म हो गया, तब देवताओं को भगवान् शङ्कर के जङ्घायुगल में शत्रुभूत कामदेव के छीने हुये तर्कसद्वय की शङ्का होने लगी कि क्या ये वे ही तर्कसद्वय तो नहीं? अखिल ब्रह्माण्डनायक के वे रुचिर तथा देवताओं के अन्तःकरण में उक्त शंका अंकुरित करने वाले जङ्घाद्वय हम सबके पाप समूह का संहार करें।

जानुद्वन्द्वेन मीनध्वजनृवरसमुद्गोपमानेन साकं
राजन्तौ राजरम्भाकरिकरकनकस्तम्भसम्भावनीयौ।
ऊरू गौरीकराम्भोरुहसरससमामर्दनानन्दभाजौ
चारू दूरीक्रियास्तां दुरितमुपचितं जन्मजन्मान्तरे नः।।१९।।

अन्वय—मीनध्वजनृवरसमुद्गोपमानेन, जानुद्वन्द्वेन, साकम्, राजन्तौ राजरम्भाकरिकरकनकस्तम्भसम्भावनीयौ गौरीकराम्भोरुहसरस-समामर्दनानन्दभाजौ, चारू, ऊरू, नः, जन्मजन्मान्तरे, उपचितम् दुरितम् दूरी क्रियास्ताम्।

अर्थ—कामदेव तथा भगवान् विष्णु के सम्पुटक के समान दोनों जानुओं (घुटनों) के साथ सुशोभित तथा जिनके बारे में संभावना हो सकती है कि वे सुन्दर केले, हाथी की सूँड या सोने के खम्भे हैं एवं जो भगवती के करकमलों से सरस सम्मर्दन के आनन्द को प्राप्त करते हैं, ऐसे सुन्दर व शोभायुक्त

भगवान् के ऊरू (घुटने के ऊपर के भाग) हम लोगों के जन्म-जन्मान्तरों से सञ्चित पापों के समुदाय को दूर करें।

आमुक्तानर्घरत्नप्रकरकरपरिष्वक्तकल्याणकाञ्ची-
दाम्ना बद्धेन दुग्धद्युतिनिचयमुषा चीनपट्टाम्बरेण।
संवीते शैलकन्यासुचरितपरिपाकायमाणे नितम्बे
नित्यं नर्नर्तु चित्तं मम निखिलजगत्स्वामिनः सोममौलेः।।२०।।

अन्वय—शैलकन्यासुचरितपरिपाकायमाणे, आमुक्तानर्घरत्नप्रकरकर-परिष्वक्तकल्याणकाञ्चीदाम्ना, बद्धेन, दुग्धद्युतिनिचयमुषा, चीनपट्टाम्बरेण संवीते, निखिलजगत्स्वामिनः, नितम्बे, मम, चित्तम्, नर्नर्तु।

अर्थ—जो मानो पार्वती जी के पुण्य का परिपाकरूप है तथा अमूल्य रत्नों की किरणों से सम्पृक्त कल्याणकारक करधनीरूपी रस्सी से बंधे हुये व स्वच्छता में दुग्ध को भी मात करने वाले, चीन के बने सफेद रेशमी वस्त्र से आच्छादित है, निखिल ब्रह्माण्डनायक चंद्रचूड भगवान् शङ्कर के ऐसे नितम्ब में मेरा मन सदा नर्तन किया करे, (अर्थात् मैं उसके ध्यान में मग्न रहा करूँ, ऐसी कृपा कीजिये)।

संध्याकालानुरज्यद्दिनकरसरुचा कालधौतेन गाढं
व्यानद्धः स्निग्धमुग्धः सरसमुदरबन्धेन वीतोपमेन।
उद्दीप्तैः स्वप्रकाशैरुपचितमहिमा मन्मथारेरुदारो
मध्यो मिथ्यार्थसध्र्यङ्मम दिशतु सदा सङ्गतिं मङ्गलानाम्।।२१।।

अन्वय—सन्ध्याकालानुरज्यद्दिनकरसरुचा, कालधौतेन, गाढम् (यथास्यात्तथा) व्यानद्धः, वीतोपमेन, उदरबन्धेन, सरसम्, स्निग्धमुग्धः, उद्दीप्तैः, स्वप्रकाशैः, उपचितमहिमा, मिथ्यार्थसध्र्यङ्, मन्मथारेः, उदारः, मध्यः, सदा, मम, मङ्गलानाम्, सङ्गतिम्, दिशतु।

अर्थ—भगवान् शङ्कर की कटि का वर्णन करते हुये स्तुतिकर्ता कहता है कि संन्ध्याकालीन सूर्य की लाल लाल किरणों के पड़ने के कारण (किरणों के प्रतिबिम्बित होने से) उन्हीं लाल किरणों के समान स्वर्णमय पट्टी से जो मजबूत बँधा हुआ है, और यज्ञोपवीत के समान तीन संख्या से युक्त जो उदरबन्ध (त्रिवलि, उदरस्थत तीन रेखायें) हैं उनसे जो कोमल तथा मनोहर मालूम पड़ता है, ऊपर को फैल रहे ज्योतिपुञ्ज से जिसकी महिमा बढ़ रही है, मिथ्यावस्तु के समान जो न होने जैसा है (अर्थात् बहुत पतला है) और भक्तों को अभीष्ट फल देने के कारण उदार (या बड़ा) है, कामारि भगवान्

शङ्कर का ऐसा मध्य भाग (कटिप्रदेश) हमें मङ्गलों को प्रदान करे।

नाभीचक्रालवालान्नवनवसुषमादोहदश्रीपरीता-
दुद्गच्छन्ती पुरस्तादुदरपथमतिक्रम्य वक्षः प्रयान्ती।
श्यामा कामागमार्थप्रकथनलिपिवद् भासते या निकामं
सा मां सोमार्धमौलेः सुखयतु सततं रोमवल्लीमतल्ली।।२२।।

अन्वय—नवनवसुषमादोहदश्रीपरीतात् नाभीचक्रालवालात्, उद्गच्छन्ती, पुरस्तात्, उदरपथमतिक्रम्य, वक्षः, प्रयान्ती, या, कामागमार्थप्रकटनलिपिवत् निकामम्, भासते, सा, सोमार्धमौलेः, श्यामा, रोमवल्लीमतल्ली सततम्, माम्, सुखयतु।

अर्थ—नयी-नयी सुषमा के फलीभूत होने के श्रेष्ठ चिह्नों से घिरी गोल नाभीरूप क्यारी से सामने की ओर निकलती, पेट से आगे बढ़कर छाती तक पहुँचती जो शशिशेखर की काली, श्रेष्ठ रोमावली कामशास्त्र के अभिप्राय को प्रकट करते लेख-सी अत्यन्त शोभित हो रही है, वह मुझे निरन्तर सुखी करे।

आश्लेषेष्वद्रिजायाः कठिनकुचतटीलिप्तकाश्मीरपङ्क-
व्यासङ्गादुद्यदर्कद्युतिभिरुपचितस्पर्धमुद्दामहृद्यम्।
दक्षारातेरुदूढप्रतिनवमणिमालावलीभासमानं
वक्षो विक्षोभिताघं सततनतिजुषां रक्षतादक्षतं नः।।२३।।

अन्वय—अद्रिजायाः, आश्लेषेषु, कठिनकुचतटीलिप्तकाश्मीरपङ्कव्यासङ्गात्, उद्यदर्कद्युतिभिः, उपचितस्पर्धम्, उद्दामहृद्यम्, उदूढप्रतिनवमणिमाला-वलीभासमानम्, विक्षोभिताघम्, अक्षतम्, दक्षारातेः, वक्षः, सततनतिजुषाम्, नः (अस्मान्) रक्षतात्।

अर्थ—भगवती पार्वती के आलिङ्गन के समय उनके कठोर स्तनों में लगे हुए केसरादि अङ्गराग के पङ्क (द्रव) के लग जाने से जो केसरिया रंग का हो जाने के कारण मानो उदित हो रहे सूर्य की किरणों से स्पर्धा कर रहा है; अत्यन्त मनोहर, नवीन मणिमाला धारण करने से उज्ज्वल, पापों व पापियों को नष्ट करने वाला, अविनाशी वह दक्षशत्रु भगवान् शङ्कर का वक्षःस्थल, निरन्तर प्रणाम में तत्पर हम लोगों की रक्षा करे।

वामाङ्के विस्फुरन्त्याः करतलविलसच्चारुरक्तोत्पलायाः
कान्ताया वामवक्षोरुहभरशिखरोन्मर्दनव्यग्रमेकम्।
अन्यांस्त्रीनप्युदारान् वरपरशुमृगालंकृतानिन्दुमौले-
र्बाहूनाबद्धहेमाङ्गदमणिकटकानन्तरालोकयामः।।२४।।

अन्वय—*इन्दुमौलेः, वामाङ्के, विस्फुरन्त्याः, करतलविलसच्चारुरक्तोत्पलायाः कान्तायाः, वामवक्षोरुहभरशिखरोन्मर्दनव्यग्रहस्तम्, एकम्, बाहुम्, (तथा) वरपरशुमृगालंकृतान्, आबद्धहेमाङ्गदमणिकटकान्, अन्यान्, उदारान्, त्रीन्, बाहून्, अपि, अन्तः, आलोकयामः।*

अर्थ—जिनके हाथ में लाल कमल शोभित हो रहा है ऐसी भगवती पार्वती इन्दुशेखर श्रीशंकर की बायीं गोद में विराजमान हैं। उनके बायें स्तन के अत्यन्त उठे भाग का सप्रेम स्पर्श करने में भगवान् का एक हाथ व्यस्त है। जिनमें सुवर्णमय बाजूबन्द के मणिमय कंकण बँधे हैं ऐसे लम्बे तीन हाथ वरमुद्रा, परशु और मृग धारण किये हुए हैं। भगवान् के ऐसे चारों हाथों का भी हम मन में ही दर्शन करते हैं।

संभ्रान्तायाः शिवायाः पतिविलयभिया सर्वलोकोपतापात्
संविग्नस्यापि विष्णोः सरभसमुभयोर्वारणप्रेरणाभ्याम्।
मध्ये त्रैशङ्कवीयामनुभवति दशां यत्र हालाहलोष्मा
सोऽयं सर्वापदां नः शमयतु निचयं नीलकण्ठस्य कण्ठः।।२५।।

अन्वय—*पतिविलयभिया, संभ्रान्तायाः, शिवायाः, अपि, च, सर्वलोकोपतापात् संविग्नस्य, विष्णोः, उभयोः, सरभसम्, वारणप्रेरणाभ्याम् हालाहलोष्मा, यत्र, मध्ये त्रैशङ्कवीयाम्, दशाम्, अनुभवति, नीलकण्ठस्य सः, अयम्, कण्ठः, नः, सर्वापदाम्, निचयम्, शमयतु।*

अर्थ—पति के मरण के डर से घबराई पार्वती के सजोर निषेध एवं सभी लोकों के नष्ट होने की सम्भावना से घबराये विष्णु की पुरजोर प्रेरणा—इन दोनों के कारण ज्वालारूप विष जहाँ बीच में त्रिशंकु की स्थिति अनुभव कर रहा है, नीलकण्ठ शिवका ऐसा वह कण्ठ हमारी सब आपदाओं के समूह को नष्ट करे। (समुद्रमन्थन से निकला कालकूट समस्त ब्रह्माण्ड को जलाने लगा तो विष्णु के नेतृत्व में देवताओं ने शिवजी से प्रार्थना की एवं उन्होंने उसे पी जाना प्रारंभ किया। तभी भगवती पार्वती डर गयीं कि यह घोर विष कहीं भगवान् को ही न मार डाले! वे उन्हें पीने से रोकने लगीं। विष्णु ने सोचा कि यदि विष बाहर रहा तो ब्रह्माण्ड नष्ट होंगे। अतः वे उन्हें उसे पीने को प्रेरित करने लगे। पार्वती व विष्णु दोनों की बात रखकर भगवान् ने उसे गले में धारण कर लिया, न बाहर छोड़ा, न पेट तक ले गये। जैसे त्रिशंकु न स्वर्ग में रहा न धरती पर आया ऐसी उस जहर की स्थिति हुई।)

हृद्यैरद्रीन्द्रकन्यामृदुदशनपदै र्मुद्रितो विद्रुमश्री-
रुद्योतन्त्या नितान्तं धवलधवलया मिश्रितो दन्तकान्त्या।
मुक्तामाणिक्यजालव्यतिकरसदृशा तेजसा भासमानः
सद्योजातस्य दद्यादधरमणिरसौ संपदां संचयं नः।।२६।।

अन्वय–हृद्यैः, अद्रीन्द्रकन्यामृदुदशनपदैः, मुद्रितः नितान्तं धवलधवलया उद्योतन्त्या दन्तकान्त्या, मिश्रितः मुक्तामाणिक्यजालव्यतिकरसदृशा, तेजसा, भासमानः, सद्योजातस्य, असौ, विद्रुमश्रीः, अधरमणिः, नः सम्पदाम् सञ्चयम्, दद्यात्।

अर्थ–पर्वतराज की पुत्री के कोमल व भले लगने वाले दन्तक्षतों से अंकित व मूंगे-सी शोभा वाला भगवान् का मणि जैसा अधर अत्यन्त स्वच्छ श्वेत चमकते दाँतों की कान्ति से मिलकर ऐसी दीप्ति वाला प्रकाशित हो रहा है मानो मोती और माणक का मिला जाल हो! सद्योजात शिव का वह अधर हमें सम्पत्ति का भण्डार प्रदान करे।

कर्णालङ्कारनानामणिनिकररुचां सञ्चयैरञ्चितायां
वर्ण्यायां स्वर्णपद्मोदरपरिविलसत्कर्णिकासंनिभायाम्।
पद्धत्यां प्राणवायोः प्रणतजनहृदम्भोजवासस्य शम्भो-
र्नित्यं नश्चित्तमेतद् विरचयतु सुखेनासिकां नासिकायाम्।।२७।।

अन्वय–कर्णालङ्कारनानामणिनिकररुचाम्, सञ्चयैः, अञ्चितायाम्, स्वर्ण-पद्मोदरपरिविलसत्कर्णिकासन्निभायाम्, प्राणवायोः पद्धत्याम्, प्रणतजन-हृदम्भोजवासस्य, शम्भोः, वर्ण्यायाम्, नासिकायाम्, नः एतत्, चित्तम् नित्यम्, सुखेन, आसिकाम्, विरचयतु।

अर्थ–प्रणत लोगों के हृदयकमल में बसने वाले भगवान् शंभु की, कानों के आभरणों में गुँथे अनेक प्रकार के रत्नों के समूहों की प्रभा से सुशोभित, स्वर्णिम कमल के मध्य स्थित कुछ दलों के सम्पुट के समान, प्राणवायु के चलने के मार्गरूप, वर्णनीय नासिका में हमारा यह मन हमेशा सुख से स्थिर रहे।

अत्यन्तं भासमाने रुचिरतररुचां संगमात् सन्मणीना-
मुद्यच्चण्डांशुधामप्रसरनिरसनस्पष्टदृष्टापदाने।
भूयास्तां भूतये नः करिवरजयिनः कर्णपाशावलम्बे
भक्तालीभालसज्जज्जनिमरणलिपेः कुण्डले कुण्डले ते।।२८।।

अन्वय–रुचिरतररुचाम्, सन्मणीनाम्, संगमात्, अत्यन्तम्, भासमाने, उद्यच्चण्डांशुधामप्रसरनिरसनस्पष्टदृष्टापदाने, भक्तालीभालसज्जज्जनि-मरणलिपेः, कुण्डले, करिवरजयिनः, कर्णपाशावलम्बे, ते, कुण्डले, नः

भूतये भूयास्ताम्।

अर्थ–(भगवान् शङ्कर के) जो कुण्डल अत्यन्त सुन्दर कान्तिसम्पन्न सुन्दर रत्नों के सम्पर्क से अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं, उगते हुये सूर्य के तेजःपुञ्ज के फैलाव को रोकने में संलग्न हैं, भक्तों के भाल में लिखी हुयी जन्म मरण की अक्षर पंक्ति को देखने के लिए ये कुण्डली के समान हैं, अथवा जिनके ध्यान करने से जन्म मरण की लिपि वाली कुण्डली गोल हो जाती है, अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति मिल जाती है। गजासुर को जीतने वाले भगवान् शङ्कर के कर्णपाशों में लटकने वाले वे अवर्णनीय कुण्डल हम सब का कल्याण करें।

याभ्यां कालव्यवस्था भवति तनुमतां यो मुखं देवतानां
येषामाहुः स्वरूपं जगति मुनिवरा देवतानां त्रयीं ताम्।
रुद्राणीवक्त्रपङ्केरुहसततविहारोत्सुकेन्दिन्दिरेभ्य-
स्तेभयस्त्रिभ्यः प्रणामाञ्जलिमुपरचये त्रीक्षणस्येक्षणेभ्यः।।२९।।

अन्वय–याभ्याम्, तनुमताम्, कालव्यवस्था, भवति, यः (भालस्थः नयनाग्निः) देवतानाम्, मुखम्, (अस्ति) जगति, मुनिवराः, येषाम्, स्वरूपम् ताम्, देवतानाम्, त्रयीम्, आहुः, त्रीक्षणस्य, तेभ्यः, रुद्राणीवक्त्रपङ्केरुहसतत-विहारोत्सुकेन्दिन्दिरेभ्यः, त्रिभ्यः, ईक्षणेभ्यः, प्रणामाञ्जलिम्, उपरचये।

अर्थ–भगवान् भूतभावन के जिन सूर्य चन्द्र रूपी नेत्रों से काल (दिन-रात) की व्यवस्था होती है, और भगवान् शङ्कर का तीसरा अग्नि रूप जो नेत्र देवताओं का मुख कहा जाता है (अग्नि में ही हवि देने से देवता तृप्त होते हैं), संसार में मुनि-जन जिन नेत्रों को देवत्रयी रूप मानते हैं (अथवा जिनको ऋक्, यजु, साम स्वरूप मानते हैं), भगवान् के वे नेत्र जो पार्वती जी के मुख कमल में विहरण करने में भ्रमरों के समान हैं, उन्हीं नेत्रों को मैं प्रणामाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

वामं वामाङ्गगाया वदनसरसिजे व्यावलद् वल्लभाया
व्यानम्रेष्वन्यदन्यत्पुनरलिकभवं वीतनिःशेषरौक्ष्यम्।
भूयो भूयोऽपि मोदाद् निपतदतिदयाशीतलं चूतबाणे
दक्षारेरीक्षणानां त्रयमपहरतादाशु तापत्रयं नः।।३०।।

अन्वय–दक्षारेः ईक्षणेषुमध्ये (एकम्) वामम्, वामाङ्गगायाः, वल्लभायाः, वदनसरसिजे, व्यावलत् (अस्ति), अन्यद्, व्यानम्रेषु (निपतद् अस्ति), पुनः, अन्यत्, अलिकभवम्, ईक्षणम्, चूतबाणे, वीतनिःशेषरौक्ष्यम्

मोदात्, अतिदयाशीतलम् भूयः, भूयः, निपतत् (अस्ति) इत्थम्, दक्षारेः, ईक्षणानाम्, त्रयम्, नः तापत्रयम्, आशु, अपहरतात्।

अर्थ—भगवान् की बाँयी आँख बायें भाग में विराजमान प्रिय पार्वती के मुख कमल पर मंडरा रही है; दूसरी, प्रणत भक्तों पर पड़ रही है; और ललाटस्थित तीसरी आँख पूर्व में आये क्रोध से सर्वथा रहित होकर अत्यन्त दया से शीतल हुई प्रसन्नता-पूर्वक बार-बार कामदेव पर पड़ रही है; दक्षशत्रु भगवान् शंकर की तीनों आँखें हमारे तीनों तापों को शीघ्र दूर करें।

यस्मिन्नर्धेन्दुमुग्धद्युतिनिचयतिरस्कारनिस्तन्द्रकान्तौ
काश्मीरक्षोदसंकल्पितमिव रुचिरं चित्रकं भाति नेत्रम्।
तस्मिन्नुल्लीलचिल्लीनटवरतरुणीलास्यरङ्गायमाणे
कालारेः फालदेशे विहरतु हृदयं वीतचिन्तान्तरं नः।।३१।।

अन्वय—अर्धेन्दुमुग्धद्युतिनिचयतिरस्कारनिस्तन्द्रकान्तौ, यस्मिन्, (भगवतः फालदेशे) चित्रकम्, रुचिरम्, नेत्रम्, काश्मीरक्षोदसंकल्पितम्, इव, भाति, उल्लीलचिल्लीनटवरतरुणीलास्यरङ्गायमाणे, तस्मिन्, कामारेः फालदेशे, वीतचिन्तान्तरम्, नः, हृदयम्, विहरतु।

अर्थ—अर्धचन्द्र को मुग्ध करने वाली चमक के समूह का तिरस्कार करने वाली पूर्ण कान्ति वाले जिस मस्तक पर स्थित विचित्र सुन्दर नेत्र कश्मीर में उत्पन्न केसर-चूर्ण से बना लगता है, (और जो मस्तक) उद्धत नृत्त में परायण अर्थात् ताण्डव में तत्पर भगवान् की प्रिया पार्वती के लास्य (श्रृंगारिक नृत्य) के लिये रंगशाला है, कालान्तक शिव के उस मस्तक पर हमारा हृदय निश्चिन्त हुआ विहरण किया करे।

स्वामिन् गङ्गामिवाङ्गीकुरु तव शिरसा मामपीत्यर्थयन्तीं
धन्यां कन्यां खरांशोः शिरसि वहति किंत्वेष कारुण्यशाली।
इत्यं शङ्का जनानां जनयदतिघनं कैशिकं कालमेघ-
च्छायं भूयादुदारं त्रिपुरविजयिनः श्रेयसे भूयसे नः।।३२।।

अन्वय—'हे स्वामिन्! तव, गङ्गाम्, इव, माम्, अपि शिरसा, अङ्गी कुरु' इति, अर्थयन्तीम्, धन्याम्, खरांशोः, कन्याम् एषः, कारुण्यशाली, शिरसि, वहति, किम् नु? इत्थम् जनानाम् शङ्काम्, जनयत्, त्रिपुरविजयिनः, उदारम्, अतिघनम्, कालमेघच्छायम्, कैशिकम्, नः, भूयसे, श्रेयसे, भूयात्। (केशानां समूहः इतिविग्रहे 'केशाश्वाभ्यां यञ्छावन्यतरस्याम्' इति वैकल्पिके ठकि कैशिकम्)।

अर्थ—'हे स्वामिन्! अपनी गङ्गा की तरह मुझे भी शिर पर धारण कीजिये', इस प्रकार प्रार्थना करने वाली भाग्यशालिनी सूर्यसुता यमुनाजी को भी अकारणकरुण करुणाकर भगवान् ने क्या सिर पर धारण कर लिया है?—इस प्रकार जनों के मन में भ्रान्ति (शङ्का) उत्पन्न कराने वाला काले बादलों के समान कान्तिवाला विशाल व घना केशसमूह हम लोगों के लिये अत्यन्त कल्याणकारक हो।

शृङ्गाराकल्पयोग्यैः शिखरिखरसुतासत्सखीहस्तलूनैः
सूनैराबद्धमालावलिपरिविलसत्सौरभाकृष्टभृङ्गम्।
तुङ्गं माणिक्यकान्त्या परिहसितसुरावासशैलेन्द्रशृङ्गं
संघं नः संकटानां विघटयतु सदा काङ्कटीकं किरीटम्।।३३।।

अन्वय—शिखरिखरसुतासत्सखीहस्तलूनैः शृङ्गाराकल्पयोग्यैः सूनैः, आबद्धमालावलिपरिविलसत्सौरभाकृष्टभृङ्गम्, माणिक्यकान्त्या परिहसितसुरावासशैलेन्द्रशृङ्गम्, तुङ्गम्, काङ्कटीकम्, किरीटम्, सदा, नः सङ्कटानाम्, संघम्, विघटयतु।

अर्थ—भगवान् शंकर का मुकुट (किरीट) पर्वतराज पुत्री पार्वती की सखियों के हाथों से तोड़े गये व सजाने के लिये उपयुक्त पुष्पों की मालाओं से आबद्ध है, मालाओं में गुथे हुये फूलों की तीव्र सुगन्ध से आकृष्ट भ्रमर उस किरीट के चारों ओर मंडरा रहे हैं, माणिक्यादि मणियों की कान्ति से कैलास पर्वत के शिखरों का परिहास कर रहा है, ऐसा अत्युन्नत, सिर की सुरक्षा के लिये पहना गया किरीट हमेशा हमारे सङ्कट-समूह का नाश करे।

वक्राकारः कलङ्की जडतनुरहमप्यंघ्रिसेवानुभावा-
दुत्तंसत्वं प्रयातः सुलभतरघृणास्यन्दिनश्चन्द्रमौलेः।
तत्सेवन्तां जनौघाः शिवमिति निजयावस्थयैव ब्रुवाणं
वन्दे देवस्य शम्भो र्मुकुटसुघटितं मुग्धपीयूषभानुम्।।३४।।

अन्वय—सुलभतरघृणास्यन्दिनः, चन्द्रमौलेः, अंघ्रिसेवानुभावात्, वक्राकारः, कलङ्की, जडतनुः, अपि, अहम्, उत्तंसत्वम्, प्रयातः, तत् (हे) जनौघाः, शिवम्, सेवन्ताम्, इति, निजया, अवस्थया, एव, ब्रुवाणम्, देवस्य, शम्भोः, मुकुटसुघटितम् मुग्धपीयूषभानुम्, (अहम्) वन्दे।

अर्थ—'बिना कारण कृपा की वर्षा करने वाले चन्द्रशेखर भगवान् के चरण-कमल की सेवा के प्रभाव से वक्री (कुटिल, कुचाली), कलङ्क से युक्त, जड शरीर वाला भी मैं (चन्द्र) जब शिव का शिरोभूषण बन गया, (तब ज्ञान-

प्रधान मनुष्यों के विषय में क्या कहना है! अर्थात् इतना दोषग्रस्त जब मैं उनकी सेवा से इस प्रकार का पद प्राप्त कर सकता हूँ, तो सरल स्वभाव से और ज्ञानपूर्वक भगवान् की सेवा करने से तो न जाने मनुष्य कौन-सा पद प्राप्त कर सकेगा?) इसलिये हे मनुष्यो! तुम शिव की सेवा में तत्पर रहो।' अपनी अवस्था से ही जो इस बात को बता रहा है, भगवान् शङ्कर के मुकुट में प्रतिष्ठित उस सुन्दर अमृत के समान शीतल किरण वाले, चन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ।

कान्त्या संफुल्लमल्लीकुसुमधवलया व्याप्य विश्वं विराजन्
वृत्ताकारो वितन्वन्मुहुरपि च परां निर्वृतिं पादभाजाम्।
सानन्दं नन्दिदोष्णा मणिकटकवता वाह्यमानः पुरारेः
श्वेतच्छत्राख्यशीतद्युतिरपहरतादापदस्तापदा नः।।३५।।

अन्वय–संफुल्लमल्लीकुसुमधवलया, कान्त्या, विश्वम्, व्याप्य, विराजन्, वृत्ताकारः, मुहुः, पादभाजाम्, अपि पराम् निर्वृतिम, वितन्वन्, मणिकटकवता नन्दिदोष्णा, सानन्दम्, वाह्यमानः पुरारेः, श्वेतच्छत्राख्यशीतद्युतिः, नः, तापदाः, आपदः, अपहरतात्।

अर्थ–जो छत्र खिले हुये मालती के फूल के समान स्वच्छ कान्ति से समस्त विश्व को अपनी धवलिमा से व्याप्त करके सुशोभित हो रहा है, जो स्वयम् वृत्ताकार अर्थात् गोल है, भगवान् के चरणसेवक प्राणियों को भी शान्ति प्रदान करता है, जिसको रत्नजटित कङ्कण पहने हुये हाथ से भगवान् नन्दीश्वर धारण करते हैं, वह महादेव का शीतल कान्ति वाला श्वेत छत्र हम लोगों को अत्यन्त सन्ताप देने वाली आपत्तियों को दूर करे।

दिव्याकल्पोज्ज्वलानां शिवगिरिसुतयोः पार्श्वयोराश्रितानां
रुद्राणीसत्सखीनां मदतरलकटाक्षाञ्चलैरञ्चितानाम्।
उद्वेल्लद्बाहुवल्लीविलसनसमये चामरान्दोलनीना-
मुद्भूतः कङ्कणालीवलयकलकलो वारयेदापदो नः।।३६।।

अन्वय–शिवगिरिसुतयोः, पार्श्वयोः, आश्रितानाम्, दिव्याकल्पोज्ज्वलानाम्, मदतरलकटाक्षाञ्चलैः, अञ्चितानाम्, चामरान्दोलनीनाम्, रुद्राणीसत्सखीनाम्, उद्वेल्लद्बाहुवल्लीविलसनसमये, उद्भूतः, कङ्कणालीवलयकलकलः, नः, आपदः, वारयेत्।

अर्थ–भगवान् शङ्कर व पार्वती जी के अगल-बगल उपस्थित, दिव्य वेष से उज्ज्वल, मद से चञ्चल कटाक्षों से युक्त जो चँवर डुलाने वाली पार्वती जी

की प्रिय सखियाँ हैं, चँवर चलाते समय, ऊपर को उठती हुयी उनकी भुजलताओं के विलास से उत्पन्न हुई कङ्कणों की कलकल ध्वनि हमारी आपत्तियों का निवारण करे।

स्वर्गौकःसुन्दरीणां सुललितवपुषां स्वामिसेवापराणां
वल्गद्भूषाणि वक्त्राम्बुजपरिविगलन्मुग्धगीतामृतानि।
नित्यं नृत्तान्युपासे भुजविधुतिपदन्यासभावावलोक-
प्रत्युद्यत्प्रीतिमाद्यत्प्रमथनटनटीदत्तसंभावनानि।।३७।।

अन्वय—सुललितवपुषाम्, स्वामिसेवापराणाम्, स्वर्गौकःसुन्दरीणाम्, वल्गद्-भूषाणि, वक्त्राम्बुजपरिविगलन्मुग्धगीतामृतानि, भुजविधुतिपदन्यास-भावावलोकप्रत्युद्यत्प्रीतिमाद्यत्प्रमथनटनटीदत्तसंभावनानि, नृत्तानि (अहम्) नित्यम्, उपासे।

अर्थ—अतिमनोहर देहों वाली शिवसेवा-तत्पर अप्सराओं के, झनकते घुँघरुओं की ध्वनि से सम्पन्न, (उनके) कमलतुल्य मुखों से उच्चरित सुरीले उत्तम गीतों की संगति वाले, नाचों की मैं हमेशा उपासना करता हूँ जिनके सोत्साह दर्शक नट-नटीरूप प्रमथगण नृत्यान्तर्गत हाथों की विविध गतियाँ, नाना प्रकार से कदम रखना और विभिन्न रसों की अभिव्यक्ति—इनसे बढ़ती प्रसन्नता से मस्त हो जाते हैं।

स्थानप्राप्त्या स्वराणां किमपि विशदतां व्यञ्जयन्मञ्जुवीणा-
स्वानावच्छिन्नतालक्रममममृतमिवास्वाद्यमानं शिवाभ्याम्।
नानारागातिहृद्यं नवरसमधुरस्तोत्रजातानुविद्धं
गानं वीणामहर्षेः कलमतिललितं कर्णपूरायतां नः।।३८।।

अन्वय—स्वराणाम्, स्थानप्राप्त्या, किमपि, विशदताम्, व्यञ्जयत्, मञ्जुवीणास्वानावच्छिन्नतालक्रमम्, नानारागातिहृद्यम् नवरस-मधुरस्तोत्रजातानुविद्धम्, शिवाभ्याम्, अमृतम्, इव, आस्वाद्यमानम्, वीणामहर्षेः, कलम्, अतिललितम्, गानम्, नः, कर्णपूरायताम्।

अर्थ—स्वरों के उचित श्रुति से उच्चरित हो जाने से, कुछ अधिक स्पष्टता से सुनाई देने वाला, मञ्जुल वीणा के स्वर व ताल के क्रम से युक्त, अनेक प्रकार के रागों से युक्त होने के कारण कर्णप्रिय, शृङ्गारादि नवों रसों से मधुर स्तोत्रों से युक्त, शिव तथा पार्वती द्वारा अमृत की तरह आस्वादनीय, वीणपाणि महर्षि नारद का वह कभी अव्यक्त व कभी प्रकट ललित संगीत, हमारे कानों का आभरण बने, अर्थात् हमेशा हमें श्रवण-गोचर हो।

चेतो जातप्रमोदं सपदि विदधती प्राणिनां वाणिनीनां
पाणिद्वन्द्वाग्रजाग्रत्सुललितरणितस्वर्णतालानुकूला।
स्वीयारावेण पाथोधररवपटुना नादयन्ती मयूरीं
मायूरी मन्दभावं मणिमुरजभवा मार्जना मार्जयेन्नः।।३९।।

अन्वय–प्राणिनाम्, चेतः, सद्योजातप्रमोदम्, विदधती, वाणिनीनाम्, पाणिद्वन्द्वाग्रजाग्रत्सुललिरणितस्वर्णतालानुकूला, पाथोधररवपटुना, स्वीयारावेण, मयूरीम् नादयन्ती, मणिमुरजभवा, मायूरी, मार्जना, नः, मन्दभावम्, मार्जयेत्।

अर्थ–लोगों के मनको तत्काल सानन्द बनाने वाली, अप्सराओं की अंगुलियों द्वारा बजते व सुकोमल ध्वनि वाले स्वर्णिम मंजीरों की आवाज से मेल खाने वाली, मेघगम्भीर अपनी गूंज से मोरनी को बुला देने वाली, मणिमय ढोल से उद्भूत, मोर के स्वर (अर्थात् षड्ज–'सा'–स्वर) वाली, (भगवान् के नृत्य के साथ बजते ढोल की) ध्वनि हमारी मन्दता मिटाये।

देवेभ्यो दानवेभ्यः पितृमुनिपरिषत्सिद्धविद्याधरेभ्यः
साध्येभ्यश्चारणेभ्यो मनुजपशुपतज्जातिकीटादिकेभ्यः।
श्रीकैलासप्ररूढास्तृणविटपिमुखाश्चापि ये सन्ति तेभ्यः
सर्वेभ्यो निर्विचारं नतिमुपरचये शर्वपादाश्रयेभ्यः।।४०।।

अन्वय–(अहम्) देवेभ्यः, दानवेभ्यः, पितृमुनिपरिषत्सिद्धविद्याधरेभ्यः, साध्येभ्यः, चारणेभ्यः, मनुजपशुपतज्जातिकीटादिकेभ्यः, ये, (च) श्रीकैलासप्ररूढाः तृणविटपिमुखाः, सन्ति, तेभ्यः, तथा, शर्वपादाश्रयेभ्यः सर्वेभ्यः, निर्विचारम्, नतिम्, उपरचये।

अर्थ–सभी देवताओं, दानवों, पितरों, मुनिगणों, सिद्धों, विद्याधरों, साध्यों (शिवगणों), चारणों (स्तुतिगायकों) मनुष्य, पशु, पक्षी, कीटादिकों को एवं श्री कैलास पर्वत पर उत्पन्न हुये जितने भी घास लतायें व वृक्ष हैं, उन सबको और भगवान् भूतभावन के चरण कमलों पर आश्रित जितने भी चराचर प्राणी हैं, उन सब को बिना विचार, समान दृष्टि से प्रणाम करता हूँ।

ध्यायन्नित्यं प्रभाते प्रतिदिवसमिदं स्तोत्ररत्नं पठेद्यः
किं वा ब्रूमस्तदीयं सुचरितमथवा कीर्तयामः समासात्।
सम्पज्जातं समग्रं सदसि बहुमतिं सर्वलोकप्रियत्वं
सम्प्राप्यायुःशतान्ते पदमयति परब्रह्मणो मन्मथारेः।।४१।।

अन्वय–यः नित्यं, ध्यायन्, इदम् स्तोत्ररत्नम्, प्रभाते, पठेत् तदीयम्

सुचरितम्, किम् वा ब्रूमः? अथवा, समासात्, कीर्तयामः—(सः) समग्रम्, सम्पज्जातम्, सदसि, बहुमतिम्, सर्वलोकप्रियत्वम्, (च) सम्प्राप्य, आयुःशतान्ते, मन्मथारेः परब्रह्मणः पदम् अयति।

अर्थ—जो मनुष्य इस स्तोत्ररत्न का प्रतिदिन प्रातः इसके अर्थ का ध्यान करते हुए पाठ करता है उसके पुण्य के विषय में क्या कहा जाय! अर्थात् उस पुण्य का वर्णन शब्द से नहीं हो सकता। फिर भी, लोकव्यवहार या लोकसंग्रहार्थ हम संक्षेप में उसके पुण्यों के सुपरिणामों का थोड़ा वर्णन करते हैं—वह सुकृती इस लोक में समस्त सम्पत्ति, सभा में सम्मान तथा लोकप्रियता को प्राप्त कर सौ वर्ष के बाद अर्थात् पूर्णायु के अन्त में कामारि परब्रह्म भगवान् शङ्कर के पद को अर्थात् शिवलोक को प्राप्त करता है।

शिवकेशादिपादान्तवर्णनस्तोत्रम्

देयासुर्मूर्ध्नि राजत्सरससुरसरित्पारपर्यन्तनिर्य-
त्प्रांशुस्तम्बाः पिशङ्गास्तुलितपरिणतारक्तशालीलता वः।
दुर्वारापत्तिगर्त्तश्रितनिखिलजनोत्तारणे रज्जुभूता
घोराघोर्वीरुहालीदहनशिखिशिखाः शर्म शार्वाः कपर्दाः।।१।।

अन्वय—मूर्ध्नि, राजत्सरससुरसरित्पारपर्यन्तनिर्यत्प्रांशुस्तम्बाः, तुलितपरिणतारक्तशालीलताः, दुर्वारापत्तिगर्त्तश्रितनिखिलजनोत्तारणे, रज्जुभूताः, घोराघोर्वीरुहालीदहनशिखिशिखाः, शार्वाः, पिशङ्गाः, कपर्दाः, वः, शर्म, देयासुः।

अर्थ—स्वादु जल वाली देवनदी के पूरे पाट पर फैली व खम्बे जैसी ऊँची, समुचित पके अतः किंचित् लाल धान के बालकी तरह भूरी, अतिकठिन आपत्ति रूप गड्ढे में पड़े सब लोगों के उद्धारार्थ रस्सी जैसी, घोर पापरूप वृक्षों की पंक्तियाँ जला डालने में आग की लौ जैसी, भगवान् शंकर की मूर्धास्थित जटायें आप सबको कल्याण प्रदान करें।

कुर्वन्निर्वाणमार्गप्रगमपरिलसद्रूप्यसोपानशङ्कां
शक्रारीणां पुराणां त्रयविजयकृतस्पष्टरेखायमाणम्।
अव्यादव्याजमुच्चैरलिकहिमधराधित्यकान्तस्त्रिधोद्य-
ज्जाह्नव्याभं मृडानीकमितुरुडुपरुक्पाण्डरं वस्त्रिपुण्ड्रम्।।२।।

अन्वय—निर्वाणमार्गप्रगमपरिलसद्रूप्यसोपानशङ्काम्, कुर्वत्, शक्रारीणाम्, पुराणाम्, त्रयविजयकृतस्पष्टरेखायमाणम्, उच्चैः, अलिकहिमधराधित्यकान्तस्त्रिधोद्यज्जाह्नव्याभम्, उडुपरुक्पाण्डरम्, मृडानीकमितुः, त्रिपुण्ड्रम्, वः, (युष्मान्) अव्याजम्, अव्यात्।

अर्थ—जो यह शंका पैदा करता है कि क्या वह मोक्षमार्ग पर आरूढ होने के लिये सुन्दर चाँदी की सीढ़ी है, इन्द्रशत्रुओं के (स्वर्ण, रजत, लोह से निर्मित) तीनों पुरों को जीत कर (उनकी राख से) लगायी स्पष्ट रेखायें जिसमें दीखती हैं, ऊँचाई में शिव के मस्तकतुल्य हिमालय के ऊपरी स्थान से तीन धाराओं में प्रस्फुटित गंगा की आभा वाला, चन्द्रकान्ति की तरह शुभ्र, पार्वतीपति का त्रिपुण्ड्र बिना हेतु आपकी रक्षा करे।

क्रुध्यद्गौरीप्रसादानतिसमयपदाङ्गुष्ठसंक्रान्तलाक्षा-
बिन्दुस्पर्धि स्मरारेः स्फटिकमणिदृषन्मग्नमाणिक्यशोभम्।
मूर्ध्न्युद्यद्दिव्यसिन्धोः पतितशफरिकाकारि वो मास्तकं स्ता-
दस्तोकापत्तिकृत्यै हुतवहकणिकामोक्षरूक्षं सदाक्षि।।३।।

अन्वय—क्रुध्यद्गौरीप्रसादानतिसमयपदाङ्गुष्ठसंक्रान्तलाक्षाबिन्दुस्पर्धि, स्फटिकमणिदृषन्मग्नमाणिक्यशोभम्, मूर्ध्नि, उद्यद्दिव्यसिन्धोः, पतितशफरिकाकारि, हुतवहकणिकामोक्षरूक्षम्, स्मरारेः, मास्तकम्, अक्षि, सदा, वः, अस्तोकापत्तिकृत्यै, स्तात्।

अर्थ—चिढ़ी हुई गौरी को प्रसन्न करने के लिये झुकते समय उनके पैर के अंगूठे के स्पर्श से लगे लाक्षारस (महावर) के बिन्दु से मानो स्पर्धा करती, स्फटिक मणि के आधार पर जड़े माणक जैसी शोभा वाली, मूर्धापर शोभमान देवनदी से गिरी मछली जैसी, आग की चिनगारियाँ पैदा करते रहने के कारण रूखी, कामारि शिव के मस्तक पर स्थित आँख आप लोगों की बड़ी-से-बड़ी विपत्तियों को हमेशा काट डाला करे।

भूत्यै दृग्भूतयोः स्याद्यदहिमहिमरुग्बिम्बयोः स्निग्धवर्णो
दैत्यौघध्वंसशंसी स्फुट इव परिवेशावशेषो विभाति।
सर्गस्थित्यन्तवृत्ति र्मयि समुपगतेतीवनिर्वृत्तगर्वं
शर्वाणीभर्तुरुच्चै र्युगलमथ दधद्विभ्रमं तद्भ्रुवो र्वः।।४।।

अन्वय—(यत् भ्रुवो युगलम्) दृग्भूतयोः, अहिमहिमरुग्बिम्बयोः, स्फुटः, स्निग्धवर्णः, दैत्यौघध्वंसशंसी, परिवेशावशेषः, इव, विभाति, अथ, च, मयि, सर्गस्थित्यन्तवृत्तिः, समुपगता, इति, इव निर्वृत्तगर्वम्, (अत एव

उच्चैः) विभ्रमम्, दधत्, शर्वाणीभर्तुः, तत्, भ्रुवोः, युगलम्, वः, भूत्यै, स्यात्।

अर्थ—भगवान् शंकर का जो चमचमाता और दैत्यसमुदाय के नाश का सूचक भ्रूयुगल (भौहों का जोड़ा) है वह उनके नेत्र रूप में विद्यमान सूर्य व चंद्र के प्रभामण्डल का ही बचा हिस्सा मालूम पड़ता है। 'प्रपंच की सृष्टि, स्थिति व संहार करना मेरे ही अधिकार में है' मानो ऐसा समझने से अत्यन्त गर्वीला अतः ऊँचा उठा आकार धारण किया, पार्वतीपति का वह भ्रूयुगल आपको ऐश्वर्य प्रदान करे।

युग्मे रुक्माब्जपिङ्गे ग्रह इव पिहिते द्राग्ययोः प्राग्दुहित्रा
शैलस्य ध्वान्तनीलाम्बररचितवृहत्कञ्चुकोऽभूत् प्रपञ्चः।
ते त्रैनेत्रे पवित्रे त्रिदशवरघटामित्रजैत्रोग्रशस्त्रे
नेत्रे नेत्रे भवेतां द्रुतमिह भवतामिन्द्रियाश्वान्नियन्तुम्।।५।।

अन्वय—रुक्माब्जपिङ्गे युग्मे (ये नेत्रे) प्राक् शैलस्य दुहित्रा पिहिते (आस्ताम्। तेन) ग्रहः (ग्रहणम्) इव (संजातः। ततः) ध्वान्तनीलाम्बररचितबृहत्कञ्चुकः प्रपञ्चः अभूत्। त्रिदशवरघटाऽमित्रजैत्रोग्रशस्त्रे पवित्रे ते त्रैनेत्रे नेत्रे इह भवताम् इन्द्रियाश्वान् नियन्तुं नेत्रे भवेताम्।

अर्थ—पुरा काल में शैलसुता पार्वती ने भगवान् के सोने-से पीले रंग के दो नेत्र ढाँक दिये थे जिससे ग्रहण जैसी स्थिति हो गयी थी (क्योंकि सूर्य-चंद्र दोनों ढँक गये थे)। उस समय हुए अंधेरारूप नीले वस्त्र से बने बड़े चोगे की तरह यह संसार तैयार हुआ। उत्तम देवों की सेना के शत्रुओं को जीतने वाले उग्र शस्त्ररूप वे शिव के पवित्र नेत्र इस संसार में आप लोगों के इन्द्रिय रूप घोड़ों पर नियन्त्रण रखने के लिये नेता (मार्गदर्शक, सारथी) बनें।

चण्डीवक्त्रार्पणेच्छोस्तदनुभगवतः पाण्डुरुक्पाण्डुगण्ड-
प्रोद्यत्कण्डूं विनेतुं वितनुत इव ये रत्नकोणै र्विघृष्टिम्।
चण्डार्चिर्मण्डलाभे सततनतजनध्वान्तखण्डातिशौण्डे
चाण्डीशे ते श्रिये स्तामधिकमवनताखण्डले कुण्डले वः।।६।।

अन्वय—चण्डीवक्त्रार्पणेच्छोः, भगवतः, तदनु, पाण्डुरुक्पाण्डुगण्डप्रोद्यत्कण्डूम्, विनेतुम्, ये (कुण्डले) रत्नकोणैः, विघृष्टिम्, वितनुतः, इव, चण्डार्चिर्मण्डलाभे, सततनतजनध्वान्तखण्डातिशौण्डे, अवनताखण्डले, चाण्डीशे, ते, कुण्डले, वः, अधिकम् (यथास्यात्तथा) श्रिये, स्ताम्।

अर्थ—जब भगवान् शंकर अपना मुखकमल भगवती पार्वती माता के

लिए समपर्ण करना चाहते हैं (अर्थात् पार्वती जी की चुम्बनेच्छा को पूर्ण करना चाहते हैं) तब उनके केसरिया मिश्रित सफेद गालों में उत्पन्न होने वाली कण्डू अर्थात् हर्ष जन्य गुदगुदी या रोमाञ्च को जो कुण्डल अपने रत्न-कोणों के घर्षण से मानो दूर कर रहे हों, सूर्य बिम्ब की तरह दीखने वाले, निरन्तर भक्त जनों के अज्ञानान्धकार को दूर करने में दक्ष, इन्द्र के द्वारा नमस्करणीय, भगवान् शंकर के वे कुण्डल, आप लोगों को अधिक से अधिक सम्पत्ति प्रदान करें।

खट्वाङ्गोदग्रपाणेः स्फुटविकटपुटो वक्त्ररन्ध्रप्रवेश-
प्रेप्सूदञ्चत्फणोरुश्वसदतिधवलाहीन्द्रशङ्कां दधानः।
युष्माकं कम्रवक्त्राम्बुरुहपरिलसत्कर्णिकाकारशोभः
शश्वत्त्राणाय भूयादलमतिविमलोत्तुङ्गकोणः स घोणः।।७।।

अन्वय–खट्वाङ्गोदग्रपाणेः, स्फुटविकटपुटः, वक्त्ररन्ध्रप्रवेशप्रेप्सूदञ्चत्फणोरुश्वसदतिधवलाहीन्द्रशङ्काम्, दधानः, कम्रवक्त्राम्बुरुहपरिलसत्कर्णिकाकारशोभः, अतिविमलोत्तुङ्गकोणः, सः, घोणः, युष्माकम्, शश्वत्, त्राणाय, अलम्, भूयात्।

अर्थ–ऊँचे उठे हाथ में खाट का पाया पकड़े रखने वाले भगवान् शंकर का वह स्पष्ट व विशाल नासापुट, जो उनके मुख रूपी बिल में प्रवेश करने की इच्छा से फैले हुए पुटरूपी फणाओं से दीर्घ श्वास लेता हुआ ऐसा मालूम पड़ता है मानो विशाल व अतिस्वच्छ नागराज वासुकि अपने प्रशस्त फणों को फैलाकर किसी बिल में प्रवेश कर रहा हो! शंकर भगवान् के सुन्दर मुखकमल के कोश की शोभा को धारण करता हुआ, अत्यन्त स्वच्छ व शिखरयुक्त वह नासापुट (या नासिका) आप लोगों की निरन्तर रक्षा के लिए समर्थ होवे।

क्रुध्यत्यद्धा ययोः स्वां तनुमतिलसतोर्बिम्बितां लक्षयन्ती
भर्त्रे स्पर्धातिनिघ्ना मुहुरितरवधूशङ्कया शैलकन्या।
युष्मांस्तौ शश्वदुच्चैरबहुलदशमीशर्वरीशातिशुभ्रा-
वव्यास्तां दिव्यसिन्धोः कमितुरवनमल्लोकपालौ कपोलौ।।८।।

अन्वय–दिव्यसिन्धोः, कमितुः, (शंकरस्य) (तौ कपोलौ) अतिलसतोः, ययोः बिम्बिताम्, स्वाम्, तनुम्, लक्षयन्ती, शैलकन्या, इतरवधूशङ्कया, स्पर्धातिनिघ्ना सती, अद्धा, मुहुः, भर्त्रे क्रुध्यति, अबहुलदशमीशर्वरीशातिशुभ्रौ, अवनमल्लोकपालौ, तौ, कपोलौ, युष्मान्, उच्चैः, शश्वत्, अव्यास्ताम्।

अर्थ—सुरनदी गङ्गा जी के प्रिय शंकर के अत्यंत चमकते जिन कपोलों में प्रतिबिम्बित अपने शरीर को देखती हुई पार्वती, अन्य रमणी की शङ्का से ईर्ष्या-परवश हुई, भगवान् शंकर पर बार-बार क्रुद्ध होती हैं, शुक्ल पक्ष की दशमी के चन्द्र के समान अत्यन्त शुभ्र और लोकपालों द्वारा भी वन्दनीय, वे भगवान् के कपोल आप लोगों की निरन्तर रक्षा करें।

यो भासा भात्युपान्तस्थित इव निभृतं कौस्तुभो द्रष्टुमिच्छन्
सोत्थस्नेहान्नितान्तं गलगतगरलं पत्युरुच्चैः पशूनाम्।
प्रोद्यत्प्रेम्णा यमार्द्रा पिबति गिरिसुता सम्पदः सातिरेका
लोकाः शोणीकृतान्ता यदधरमहसा सोऽधरो वो विधत्ताम्।।९।।

अन्वय—यः, (अधरः) पशूनाम्, पत्युः, गलगतगरलम्, सोत्थस्नेहात् नितान्तम्, द्रष्टुम्, इच्छन्, उच्चैः, (उपरितः) निभृतम्, उपान्तस्थितः, भासा, कौस्तुभः, इव, भाति, यम्, आर्द्रा, गिरिसुता, प्रोद्यत्-प्रेम्णा, पिबति, यदधरमहसा, लोकाः, शोणीकृतान्ताः (सन्ति) सः, अधरः, वः, सातिरेकाः, संपदः, विधत्ताम्।

अर्थ—भगवान् शंकर का कौस्तुभ मणि-सी कान्ति वाला वह अधर, जो मानो उनके कण्ठ में स्थित गरल को बड़े स्नेह के साथ देखने की इच्छा से चुपचाप गले के नज़दीक आकर स्थित हो गया है, प्रेम से तरलित पार्वती जी जिस अधर का पान करती हैं, जिस अधर की लालिमा से समीपस्थ जन लाल से मालूम पड़ते हैं, वह भगवान् का भव्य अधर आप लोगों को अतिशय सम्पत्ति प्रदान करे।

अत्यर्थं राजते या वदनशशधरादुद्गलच्चारुवाणी-
पीयूषाम्भःप्रवाहप्रसरपरिलसत्फेनबिन्द्वावलीव।
देयात् सा दन्तपंक्तिश्चिरमिह दनुदायाददौवारिकस्य
द्युत्या दीप्तेन्दुकुन्दच्छविरमलतरप्रोन्नताग्रा मुदं वः।।१०।।

अन्वय—वदनशशधराद् उद्गलच्चारुवाणीपीयूषाम्भः प्रवाहप्रसरपरिलसत्फेनबिन्द्वावली, इव, या (भगवतः दन्तपंक्तिः) अत्यर्थम्, राजते, द्युत्या, दीप्तेन्दुकुन्दच्छविः, अमलतरप्रोन्नताग्रा, सा, दन्तपंक्तिः, इह, वः, चिरम्, मुदम्, देयात्।

अर्थ—दानव भी जिनके द्वारपाल हैं उन भगवान् शंकर की जो दन्तपंक्ति, उनके मुखचन्द्र से निकलने वाले सुन्दर वचनामृत के प्रवाह-प्रसार से उफनते हुए झाग के बिन्दुओं की पंक्ति के समान अत्यन्त सुशोभित होती है, कान्ति

में जो उज्ज्वल चन्द्र व कुन्दकुसुम के समान है, अतिस्वच्छ व सीधे उठे अगले हिस्सों वाली भगवान् की वह दन्तपंक्ति इस संसार में आप लोगों की प्रसन्नता को निरन्तर बनाये रखे।

न्यक्कुर्वन्नुर्वराभृन्निभघनसमयोद्घुष्टमेघौघघोषं
स्फूर्जद्वार्ध्युत्थितोरुध्वनितमपि परब्रह्मभूतो गभीरः।
सुव्यक्तो व्यक्तमूर्तेः प्रकटितकरणः प्राणनाथस्य सत्या
प्रीत्या वः संविदध्यात्फलविकलमलं जन्म नादः स नादः।।११।।

अन्वय—उर्वराभृन्निभ-घनसमयोद्घुष्टमेघौघघोषं, स्फूर्जद्वार्ध्युत्थितोरुध्वनितम् अपि न्यक्कुर्वन् (यः) व्यक्तमूर्तेः प्राणनाथस्य परब्रह्मभूतः गभीरः प्रकटितकरणः सुव्यक्तः नादः, सः सत्या प्रीत्या वः जन्म फलविकलमलं संविदध्यात्। ('करणं क्रियाभेदे'-विश्वः। क्रियाभेदः क्रियाविशेषो धर्मः। 'करणं कारणे' अजः। कारणं ब्रह्म।। फलेन विकलीकृतं दूरीकृतं मलं यस्य।)

अर्थ—बरसात के समय गरजने वाले पहाड़ जैसे बादलों के सामूहिक घोष को ही नहीं, उफनते समुद्र से उत्पन्न भयंकर घोष को भी मात करने वाला, परमात्मा-सा गंभीर, धर्म-ब्रह्म का प्रतिपादक, सुस्पष्ट और प्रसिद्ध है (वेदरूप) नाद। आठ सर्वसुलभ मूर्तियों वाले, प्राणप्रिय नाथ शिव का वह नाद अव्यभिचारी प्रेम से आपका जन्म सफल व निर्मल बनाये।

भासा यस्य त्रिलोकी लसति परिलसत्फेनबिन्द्वर्णवान्त-
र्व्यामग्नो वातिगौरस्तुलितसुरसरिद्वारिपूरप्रसारः।
पीनात्मा दन्तभाभिर्भृशमहहहकारातिभीमः सदेष्टां
पुष्टां तुष्टिं कृषीष्ट स्फुटमिह भवतामट्टहासोऽष्टमूर्तेः।।१२।

अन्वय—यस्य(अट्टहासस्य) भासा, परिलसत्फेनबिन्द्वर्णवान्तर्व्यामग्नः त्रिलोकी, तुलितसुरसरिद्वरिपूरप्रसारः, अतिगौरः, लसति, दन्तभाभिः, भृशम्, पीनात्मा अहहहकारातिभीमः, (सः) अष्टमूर्तेः, अट्टहासः, इह, भवताम्, सदा, इष्टाम्, पुष्टाम्, तुष्टिम् स्फुटम्, कृषीष्ट।

अर्थ—चारों ओर फैले फेन-बिन्दुओं वाले क्षीरसमुद्र में विराजमान, तीन लोकों के प्रभु विष्णु (श्याम वर्ण के होने पर भी) जिस हँसी की कान्ति के कारण गंगा के बढ़े जले के विस्तार जैसे अतिगौर वर्ण वाले मालूम पड़ते हैं, दाँतों की चमक के कारण और भी बड़ी दीखने वाली 'अहहह' की आवाज से डरावनी लगने वाली, आठ विग्रहों में प्रकट भगवान् शंकर की उन्मुक्त हँसी

आपको संसार में अभिलषित पर्याप्त सन्तोष स्पष्टतः प्रदान करे। ('त्रयो लोका यस्य' यों त्रिलोकी शब्द समझकर यह अर्थ है। यदि 'त्रयाणां लोकानां समाहारः' यों समझें तो भाव होगा—जब भगवान् अत्यन्त खुलकर हँसते हैं तब उनके मुख से कुछ थूक (या झाग) निकलती है जिससे लगता है कि उनकी हँसी चारों ओर दीखते फेन-बिंदुओं के समुद्र में डूब रही हो! अथवा, गंगा की बाढ़ के फैलाव की समानता रखे ऐसी अत्यन्त गोरी हो गयी हो! उस हँसी की प्रभासे तीनों लोक एक-साथ चमकने लगते हैं। दाँतों की... इत्यादि पूर्ववत् है।)

सद्योजाताख्यमाप्यं यदुविमलमुदग्वर्ति यद् वामदेवं
नाम्ना हेम्ना सदृक्षं जलदनिभमघोराह्वयं दक्षिणं यत्।
यद् बालार्कप्रभं तत्पुरुषनिगदितं पूर्वमीशानसंज्ञं
यद्दिव्यं तानि शम्भो र्भवदभिलषितं पञ्च दद्युर्मुखानि।।१३।।

अन्वय—(भगवतः पञ्चाननस्य, शंकरस्य), आप्यम्, (वरुणस्य पश्चिमाधिपतित्वात् पश्चिमाभिमुख) यत् उ, विमलम्, सद्योजाताख्यम्, (मुखमस्ति), उदग्वर्ति, (च) हेम्ना सदृक्षम्, नाम्ना वामदेवम्, (मुखमस्ति), जलदनिभम्, दक्षिणम्, अघोराह्वयम्, च, यत्, (मुखमस्ति), बालार्कप्रभम्, तत्पुरुषनिगदितम्, च, यत्, पूर्वम्, मुखमस्ति, दिव्यम्, यत् ईशानसंज्ञम्, च, यत् (मुखमस्ति) शम्भोः, तानि, (पूर्वोक्तानि) पञ्च मुखानि, भवदभिलषितम्, दद्युः।

अर्थ—भगवान् शंकर का सर्वप्रथम पश्चिम की ओर अतिविमल सद्योजात नामक मुख है। उत्तर की ओर सुवर्ण-वर्ण वाला वामदेव नामक दूसरा मुख है। दक्षिणदिशा की ओर काले मेघ के समान तीसरा अघोर-नामक मुख है। नवोदित सूर्य की प्रभा के समान तत्पुरुष नामक चौथा मुख पूर्व दिशा की ओर है। दिव्य प्रभा-युक्त ईशान नामक पाँचवाँ मुख ऊर्ध्व की ओर है। भगवान् के पूर्वोक्त ये पाँचों मुख आप लोगों की मनोभिलषित कामनाओं को पूरा करें।

आत्मप्रेम्णो भवान्या स्वयमिव रचिताः सादरं सांवनन्या
मष्या तिस्रः सुनीलाञ्जननिभगररेखाः समाभान्ति यस्याम्।
आकल्पानल्पभासा भृशरुचिरतरा कम्बुकल्पाऽम्बिकायाः
पत्युः सात्यन्तमन्तर्विलसतु सततं मन्थरा कन्धरा वः।।१४।।

अन्वय—भवान्या, आत्मप्रेम्णः, मष्या, तिस्रः, सांवनन्या, सुनीलाञ्जन-

निभगररेखाः स्वयं, सादरं, रचिताः, इव, यस्यां, समाभान्ति। अम्बिकायाः पत्युः, सा आकल्पानल्पभासा, भृशरुचिरतरा, कम्बुकल्पा, मन्थरा, कन्धरा, वः, अन्तः, सततम्, अत्यन्तं, विलसतु। ('वशक्रिया संवननम्' अमरः)।

अर्थ—जिस पर गहरे नीले अंजन जैसे विष की तीन रेखायें ऐसी लगती हैं मानो भवानी ने अपने प्रेम की स्याही से वश में करने वाले किसी चित्र के रूप में सावधानी पूर्वक खुद अंकित की हों! अम्बिकापतिकी वह आभूषणों की प्रभूत प्रभा से अत्यधिक सुन्दर, शंख-सी स्थूल कन्धरा (गला) आपके मन में निरन्तर अत्यधिक प्रकट रहे (अर्थात् आपको उसकी झाँकी स्पष्ट रहे।)

वक्त्रेन्दोर्दन्तलक्ष्याश्चिरमधरमहाकौस्तुभस्याप्युपान्ते
सोत्थानां प्रार्थयन्तः स्थितिमचलभुवे वारयन्त्यै निवेशम्।
प्रायुङ्क्तेवाशिषो यः प्रतिपदममृतत्वे स्थितः कालशत्रोः
कालं कुर्वन् गलं वो हृदयमयमलं क्षालयेत् कालकूटः।।१५।।

अन्वय—वक्त्रेन्दोः दन्तलक्ष्मयाः, अधरमहाकौस्तुभस्य, अपि उपान्ते, सोत्थानां चिरं स्थितिं (यदा देवाः) प्रार्थयन्तः (आसन्, तदा) निवेशं वारयन्त्यै, अचलभुवे, यः, अमृतत्वे स्थितः, प्रतिपदम्, आशिषः, प्रायुंक्त इव, (सः) कालकूटः, कालशत्रोः गलं, कालं, कुर्वन् वः, हृदयमयमलं, क्षालयेत्।

अर्थ—जहर को कमल जैसे मुख में स्थित दाँत रूप लक्ष्मी के व अधररूप महान् कौस्तुभ के निकट उठाकर हमेशा के लिये रख लेने की प्रार्थना जब देवता कर रहे थे तभी मुँह में उसे घुसाने से भी मना करने वाली पर्वतपुत्री पार्वती को वह विष मानो हर कदम पर आशीर्वाद दे रहा है (क्योंकि यदि वे न रोकती तो भगवान् उसे पचाकर नष्ट कर डालते, जबकि उनके रोकने से गले में स्थापित होकर वह) अमरता पा गया! कालान्तक के गले को काला करता हुआ वह कालकूट आपके हृदयग्रन्थिरूप मल को धो डाले।

प्रौढप्रेमाकुलाया दृढतरपरिरम्भेषु पर्वेन्दुमुख्याः
पार्वत्याश्चारुचामीकरवलयपदैरङ्कितं कान्तिशालि।
रङ्गन्नागाङ्गदार्ढ्यं सततमविहितं कर्म निर्मूलयेत्त-
द्दोर्मूलं निर्मलं यद्धृदि दुरितमपास्यार्जितं धूर्जटेर्वः।।१६।।

अन्वय—प्रौढप्रेमाकुलायाः, पर्वेन्दुमुख्याः, पार्वत्याः दृढतरपरिरम्भेषु, चारुचामीकरवलयपदैः, अंकितं, कान्तिशालि, रंगन्नागांगदार्ढ्यं निर्मलं,

यद् धूर्जटेः, दोर्मूलं, तत्, वः हृदि, सततम्, अर्जितं, दुरितम्, अपास्य, अविहितं, कर्म, निर्मूलयेत्।

अर्थ—अत्यधिक प्रेम से उत्तेजित, पूर्णिमा के चाँद-से मुख वाली पार्वती जब बहुत मजबूत आलिंगन करती हैं तब गंगाधर की मनोरम स्वच्छ कांख भी रेंगते साँप के शरीर सी कठोर हो जाती है अतः देवी के सुन्दर स्वर्णिम कंकणों के आकारों से चिह्नित बन जाती है। वह कांख आपके हृदय में लगातार एकत्र हुए पाप हटाकर (उन्हीं से प्रेरित होने वाले) निषिद्ध कर्मों का उन्मूलन करे।

कण्ठाश्लेषार्थमाप्ता दिव इव कमितुः स्वर्गसिन्धोः प्रवाहाः,
क्रान्त्यै संसारसिन्धोः स्फटिकमणिमहासंक्रमाकारदीर्घाः।
तिर्यग्विष्कम्भभूतास्त्रिभुवनवसतेर्भिन्नदैत्येभदेहा
बाहा वस्ता हरस्य द्रुतिमिह निवहानंहसां संहरन्तु।।१७।।

अन्वय—स्वर्गसिन्धोः, कमितुः, (याः बाहाः) कण्ठाश्लेषार्थम्, आप्ताः, दिवः प्रवाहाः, इव, संसारसिन्धोः, क्रान्त्यै, स्फटिकमणिमहासंक्रमाकारदीर्घाः, त्रिभुवनवसतेः, तिर्यक्, विष्कम्भभूताः, भिन्नदैत्येभदेहाः, हरस्य, ताः, बाहाः, इह, वः, अंहसाम्, निवहान्, द्रुतम्, संहरन्तु।

अर्थ—आकाश गङ्गा (मन्दाकिनी) के कामुक, भगवान् शंकर के (वे बाहु) जो मन्दाकिनी के आलिङ्गनार्थ आकाश की ओर बढ़े हुए, ऐसे लगते हैं जैसे आकाश से गिरने वाली उसी गङ्गा के प्रवाह हों! संसार-सागर को पार करने के लिए वे बाहु स्फटिकमणि-निर्मित विशाल सेतु हों, और त्रिभुवन रूपी भव के अर्गला हों! इस प्रकार गजासुर को मारने वाले वे शंकर जी के बाहु, इस संसार में आप लोगों के पापों के पुञ्जों को शीघ्र नष्ट करें।

वक्षो दक्षद्विषोऽलं स्मरभरविनमद्दक्षजाक्षीणवक्षो-
जान्तर्निक्षिप्तशुम्भन्मलयजमिलितोद्भासिभस्मोक्षितं यत्।
क्षिप्रं तद्रूक्षचक्षुः श्रुतिगणफणरत्नौघभाभीक्ष्णशोभं
युष्माकं शश्वदेनः स्फटिकमणिशिलामण्डलाभं क्षिणोतु।।१८।।

अन्वय—स्मरभरविनमद्दक्षजाक्षीणवक्षोजान्तर्निक्षिप्तशुम्भन्मलयज-मिलितोद्भासि, यत्, अलम्, भस्मोक्षितम्, (चास्ति) तद् रूक्षचक्षुः श्रुतिगणफणरत्नौघभाभीक्ष्णशोभम्, स्फटिकमणिशिलामण्डलाभम्, दक्षद्विषः, (तत्) वक्षः युष्माकम्, शश्वत्, एनः, क्षिप्रम्, क्षिणोतु।

अर्थ—भगवान् शंकर का वह वक्षस्थल, जो युवावस्था-सुलभ काम के भार से झुके हुए पार्वती जी के प्रशस्त पयोधरों के मध्य में लगे हुए मलयज

चन्दनरस से सुगन्धित हो रहा है, जो वक्षस्थल भस्म से खूब सना हुआ है, और ललाटस्थित अग्निरूप चक्षु से तथा कानों में लगे हुए रत्नों की प्रभा से जो निरन्तर देदीप्यमान है, स्फटिकमणि के शिलामण्डल के समान पुष्ट व प्रशस्त भगवान् शंकर का वह वक्षस्थल आप लोगों के निरन्तर संचीयमान पापों को शीघ्र ही दूर करे।

मुक्तामुक्ते विचित्राकुलवलिलहरीजालशालिन्यवाञ्च-
न्नाभ्यावर्ते विलोलद्भुजगवरयुते कालशत्रोर्विशाले।
युष्मच्चित्तत्रिधामा प्रतिनवरुचिरे मन्दिरे कान्तिलक्ष्म्याः
शेतां शीतांशुगौरे चिरतरमुदरक्षीरसिन्धौ सलीलम्।।१६।।

अन्वय—मुक्तामुक्ते, विचित्राकुलवलिलहरीजालशालिनि, अवाञ्चन्नाभ्यावर्ते, विलोलद्भुजगवरयुते, विशाले, प्रतिनवरुचिरे, कान्तिलक्ष्म्याः मन्दिरे, शीतांशुगौरे, कालशत्रोः, उदरक्षीरसिन्धौ युष्मच्चित्तत्रिधामा, चिरतरं, सलीलं, शेताम्।

अर्थ—आपका चित्तरूप विष्णु, कालान्तक शिव के विशाल उदररूप क्षीरसागर में लम्बे समय तक विलास-पूर्वक शयन करे। क्षीर सागर मोतियों से भरापूरा है तो भगवान् का उदर मोतियों की लड़ियों से बँधा है। सागर में नाना आकारों की इधर-उधर आती जाती लहरों का जाल होता है तो उदर में ऐसी ही वलियाँ हैं। सागर में गहरे भँवर हैं तो शिव-उदर में गहरी नाभि है। सागर में चंचल श्रेष्ठ साँप हैं तो पेट भी नागराज से शोभित हैं। सागर लक्ष्मी का घर है तो शिव का पेट कांति का आश्रय है। नित्य नूतन सुषमा भी समुद्र की तरह भगवद्-उदर धारण करता है। जैसे क्षीरसागर वैसे शिव का उदर चाँद-सा गोरा है। (अतः जैसे विष्णु दीर्घकाल तक क्षीरसागर में सोते हैं ऐसे आपका चित्त भगवान् के उदर में स्थिर रहे यह उचित है।)

वैयाघ्री यत्र कृत्तिः स्फुरति हिमगिरेर्विस्तृतोपत्यकान्तः
सान्द्रावश्यायमिश्रा परित इव वृता नीलजीमूतमाला।
आवद्धाहीन्द्रकाञ्चीगुणमतिपृथुलं शैलजाक्रीडभूमि-
स्तद्वो निःश्रेयसे स्याज्जघनमतिघनं बालशीतांशुमौलेः।।२०।।

अन्वय—हिमगिरेः विस्तृतोपत्यकाऽन्तः सान्द्रावश्यायमिश्रा नीलजीमूतमाला परितः वृता इव यत्र वैयाघ्री कृत्तिः स्फुरति, आबद्धाऽहीन्द्रकाञ्चीगुणम्, अतिपृथुलं, शैलजाक्रीडभूमिः, बालशीतांशुमौलेः तद् अतिघनं जघनं वः निःश्रेयसे स्यात्।

अर्थ—बालचन्द्र धारण करने वाले भगवान् शिव के विशाल जघन पर बाघाम्बर ऐसा लगता है जैसे हिमालय की तराई में घने तुषार से मिश्रित काले मेघों की माला चारों ओर घिरी हो। (भगवान् हिमालय की जगह व उनके जघन तराई की जगह हैं।) मेखला की रस्सी की तरह जिस पर सर्पराज बँधा है, पार्वती के लिये जो क्रीडास्थली है, शिव का वह मांसल जघन आपके कल्याण का कारण बने।

पुष्टावष्टम्भभूतौ पृथुतरजघनस्यापि नित्यं त्रिलोक्याः,
सम्यग्वृत्तौ सुरेन्द्रद्विरदवरकरोदारकान्तिं दधानौ।
सारावूरू पुरारेः प्रसभमरिघटाघस्मरौ भस्मशुभ्रौ
भक्तैरत्यार्द्रचित्तैरधिकमवनतौ वाञ्छितं वो विधत्ताम्।।२१।।

अन्वय—पृथुतरजघनस्य, त्रिलोक्याः, अपि, नित्यम्, पुष्टावष्टम्भभूतौ, सम्यग्वृत्तौ, सुरेन्द्रद्विरदवरकरोदारकान्तिम्, दधानौ, प्रसभम्, अरिघटाघस्मरौ, अत्यार्द्रचित्तैः, भक्तैः, अधिकम् अवनतौ, भस्मशुभ्रौ, सारौ, पुरारेः, ऊरू, वः, वाञ्छितम्, विधत्ताम्।

अर्थ—भगवान् शंकर के ऊरू (घुटने से ऊपर का भाग) विशालतर जघन भाग की ही नहीं त्रिलोकी की भी स्थिति के लिए निरन्तर परिपुष्ट स्तम्भ से हैं; एकदम गोलाकर हैं, और इन्द्र के श्रेष्ठ हाथी की सूंड के समान विशाल व सुन्दर हैं; बलात् शत्रु की सेना को मटियामेट कर देने वाले हैं; भक्ति से द्रवित चित्तवाले भक्तों के द्वारा, अत्यन्त प्रणत हैं; पुरारि भगवान् शिव के भस्म से शुभ्र व मजबूत वे जंघायें, आप लोगों के मनोरथों को पूर्ण करें।

आनन्दायेन्दुकान्तोपलरचितसमुद्गायिते ये मुनीनां
चित्तादर्शं निधातुं विदधति चरणे ताण्डवाकुञ्चनानि।
काञ्चीभोगीन्द्रमूर्ध्ना प्रतिमुहुरुपधानायमाने क्षणं ते
कान्ते स्तामन्तकारे र्द्युतिविजितसुधाभानुनी जानुनी वः।।२२।।

अन्वय—मुनीनां चित्तादर्शं निधातुं ये इन्दुकान्तोपलरचितसमुद्गायिते; चरणे ताण्डवाकुञ्चनानि विदधति (सति) काञ्चीभोगीन्द्रमूर्ध्ना प्रतिमुहुः क्षणम् उपधानायमाने (च ये); अन्तकारेः द्युतिविजितसुधाभानुनी कान्ते जानुनी, ते वः आनन्दाय स्ताम्।

अर्थ—मुनिमानस जिन पर ऐसे एकाग्र होता है मानो मुनियों के मनरूप काँच को सुरक्षित रखने के लिये जो चन्द्रकान्तमणि से बने बक्से हैं; चरण जब ताण्डव करते हुए नाना आकारों में मुड़ता है तब करधनी में लगा

सर्पराज झूलने लगता है व उसका सिर बार-बार क्षण-क्षणभर के लिये जिन पर टिकता है मानो वे उसके लिये तकिये हों; अन्तकान्तक के वे सुंदर घुटने, जो कान्ति में चाँद को भी मात करते हैं, आपके आनन्द का कारण बनें।

मञ्जीरीभूतभोगिप्रवरगणफणामण्डलान्तर्नितान्त-
व्यादीर्घानर्घरत्नद्युतिकिसलयिते स्तूयमाने द्युसद्भिः।
विभ्रत्यौ विभ्रमं वः स्फटिकमणिबृहद्दण्डवद्भासिते ये
जङ्घे शङ्खेन्दुशुभ्रे भृशमिह भवतां मानसे शूलपाणेः।।२३।।

अन्वय—ये (जङ्घे) मञ्जीरीभूतभोगिप्रवरगणफणामण्डलान्तर्नितान्तव्यादीर्घानर्घरत्नद्युतिकिसलयिते (स्तः), द्युसद्भिः स्तूयमाने, विभ्रमम्, बिभ्रत्यौ, स्फटिकमणिबृहद्दण्डवद्भासिते, शङ्खेन्दुशुभ्रे, शूलपाणेः, (ते) जङ्घे, इह, वः, मानसे, भृशम्, भवताम्।

अर्थ—भगवान् शंकर की वे (जङ्घे) पिण्डलियाँ जो पायजेबों के स्थान में आबद्ध श्रेष्ठ सर्पों के फणामण्डलों में जड़े हुए विशाल, बहुमूल्य रत्नों की कान्ति से नये पत्तों जैसी लगती हैं; (नाचते समय भगवान् ने अपने चरणकमलों में पायजेब की जगह पर सर्पगणों को बाँध लिया। उन सर्पों के फणामण्डलों में अनेक बहुमूल्य रत्न जड़े हुए हैं, जिनसे आवाज होती है, साथ-ही-साथ, उन अनेक रत्नों की उमड़ती कान्ति से उनकी पिण्डलियाँ नये पत्तों सी मालूम पड़ती हैं।) देवताओं से प्रशंसित, विलास (नाना आकारों) को धारण करने वाले, स्फटिकमणि-निर्मित दण्ड के समान, गोलाई व शुभ्रता में शङ्ख व चन्द्र के समान, भगवान् शूलपाणि शंकर की पिण्डलियाँ हमेशा आपके मनमन्दिर में विराजमान रहें।

अस्तोकस्तोमशस्त्रैरपचितिममलां भूरिभावोपहारैः
कुर्वद्भिः सर्वदोच्चैः सततमभिवृतौ ब्रह्मविद्देवलाद्यैः।
सम्यक्सम्पूज्यमानाविह हृदि सरसीवानिशं युष्मदीये
शर्वस्य क्रीडतां तौ प्रपदवरबृहत्कच्छपावच्छभासौ।।२४।।

अन्वय—(यौ पादौ) भूरिभावोपहारैः, अस्तोकस्तोमशस्त्रैः, सर्वदा, उच्चैः, अमलाम्, अपचितिम्, कुर्वद्भिः, ब्रह्मविद्देवलाद्यैः, सततम्, अभिवृतौ, इह, सम्यक्सम्पूज्यमानौ, शर्वस्य, अच्छभासौ, तौ, प्रपदवरबृहत्कच्छपौ, युष्मदीये, सरसि, इव, हृदि, अनिशम्, क्रीडताम्।

अर्थ—भगवान् शंकर के जो चरण, अत्यन्त श्रद्धाभाव रूपी उपहार से तथा लम्बे स्तुतिरूप मन्त्रों के द्वारा सर्वोत्तम स्वच्छ पूजा करने वाले ब्रह्मज्ञानी

देवलादि महर्षियों से निरन्तर घिरे रहते हैं, इस संसार में निरन्तर पूजा सत्कारादि को प्राप्त करने वाले, भगवान् के स्वच्छ कान्ति-सम्पन्न वे श्रेष्ठ चरण रूपी बड़े कछुए आप लोगों के, सरोवर के समान हृदय में, अथवा हृदयरूपी सरोवर में, निरन्तर विहार करें।

(यहाँ श्रेष्ठ चरणों में जब कछुए का आरोप किया है, तो फिर हृदय में सरोवर का आरोप उचित ही है। जिस प्रकार कच्छप सरोवर में विहार करता है, उसी प्रकार भगवान् शंकर के स्वच्छ चरण आपके हृदय में विहार करें।)

याः स्वस्यैकांशपातादतिबहलगलद्रक्तवक्त्रं प्रणुन्न-
प्राणं प्राक्रोशयन्प्राङ् निजमचलवरं चालयन्तं दशास्यम्।
पादाङ्गुल्यो दिशन्तु द्रुतमयुगदृशः कल्मषप्लोषकल्याः
कल्याणं फुल्लमाल्यप्रकरविलसिता वः प्रणद्धाहिवल्ल्यः।।२५।।

अन्वय—याः प्राक् स्वस्य एकांशपातात् निजम् अचलवरं चालयन्तम्, अतिबहलगलद्रक्तवक्त्रं, प्रणुन्नप्राणं दशास्यं, प्राक्रोशयन्, कल्मषप्रोषकल्याः, फुल्लमाल्यप्रकरविलसिताः, प्रणद्धाहिवल्ल्यः, अयुगदृशः (ताः) पादाङ्गुल्यः वः कल्याणं दिशन्तु।

अर्थ—जिन्होंने प्राचीन काल में अपने एक हिस्से का दबाव डालने से उस रावण को—जो भगवान् के निजी श्रेष्ठ पर्वत कैलास को हिला रहा था—रुलाया और उसकी ऐसी हालत करदी कि उसके प्राण भी निकलने को हो गये क्योंकि उसके मुँह से अत्यधिक खून बहता रहा; पाप निवृत्तकर शुद्ध बनाने वाली; विकसित बहुत-से फूलों से सजी; सर्परूप लताओं के लिपटने से बँधी (अर्थात् बिच्छुओं की जगह जिन पर साँप लिपटे हैं); त्रिनेत्रधारी के पैर की वे अंगुलियाँ आपका कल्याण करें।

प्रह्वप्राचीनबर्हिःप्रमुखसुरवरप्रस्फुरन्मौलिसक्त-
ज्यायोरत्नोत्करोस्त्रैरविरतममला भूरिनीराजिता या।
प्रोदग्राग्रा प्रदेयात्ततिरिव रुचिरा तारकाणां नितान्तं
नीलग्रीवस्य पादाम्बुरुहविलसिता सा नखाली सुखं वः।।२६।।

अन्वय—(या भगवतो नखाली) प्रह्वप्राचीनबर्हिःप्रमुखसुरवरप्रस्फुरन्मौलि-सक्तज्यायोरत्नोत्करोस्त्रैः, भूरिनीराजिता (सती) अविरतम्, अमला, (अस्ति) प्रोदग्राग्रा, तारकाणाम्, ततिः इव नितान्तम्, रुचिरा, नीलग्रीवस्य, पादाम्बुरुहविलसिता, सा, नखाली, वः, सुखम्, प्रदेयात्।

अर्थ—भगवान् शंकर के चरणकमलों में विराजमान नखपंक्ति, विनम्र

ब्रह्मा आदि देवश्रेष्ठों के मस्तक में लगे हुए उत्तम रत्नों की प्रबल प्रभा से निरन्तर बहुत नीराजित है। (ब्रह्मादि श्रेष्ठ सुरवर भगवान् के चरणकमलों की नखपंक्तियों में झुक कर प्रणाम करते हैं, उस समय उनके मुकुटों में जटित श्रेष्ठ रत्नों की उज्ज्वल कान्ति से वह नखपंक्ति प्रकाशित हो, खूब चमकने लगती है। ऐसा मालूम पड़ता है कि ब्रह्मादि सुरवर अपने किरीटस्थित रत्नों की प्रभा से ही उन नखों की आरती करते हैं।) भगवान् की अतिशुद्ध नखपंक्तियों का अगला भाग कुछ उन्नत है। निरन्तर चमकने वाले नक्षत्रों (तारों) की पंक्ति की तरह वह नखपंक्ति बहुत सुंदर मालूम पड़ती है। कालकण्ठ भगवान् शंकर की चरणकमलों में विरजमान वह नखपंक्ति आप लोगों को सुख प्रदान करे।

सत्याः सत्याननेन्दावपि सविधगते ये विकासं दधाते
स्वान्ते स्वां ते लभन्ते श्रियमिह सरसीवामरा ये दधानाः।
लोलं लोलम्बकानां कुलमिव सुधियां सेवते ये सदा स्तां
भूत्यै भूत्यैणपाणे र्विमलतररुचस्ते पदाम्भोरुहे वः।।२७।।

अन्वय–ये (पदाम्भोरुहे) सत्याः, आननेन्दौ, सविधगते, सति, अपि, विकासम्, दधाते; ये (पदाम्भोरुहे), स्वान्ते, दधानाः, सरसि, अमराः इव इह, ते (अमराः) स्वाम्, श्रियम्, लभन्ते; लोलम्बकानाम्, (रोलम्बकानाम्) लोलम्, कुलम्, इव, सुधियाम्, कुलम्, ये (पदाम्भोरुहे) सदा, सेवते; भूत्या, विमलतररुचः, एणपाणेः, ते, पदाम्भोरुहे, वः, (युष्माकम्) भूत्यै, स्ताम्।

अर्थ–जगज्जननी भगवती पार्वती के मुखचन्द्र के सन्निकट रहने पर भी, भगवान् के चरणकमल हमेशा विकसित रहते हैं। (यहाँ 'अपि', भी, इस पद से विरोध अभिव्यक्त हो रहा है, परन्तु यह विरोध या विरोधाभास, मुखचन्द्र व चरणकमलों में प्रयुक्त रूपकालङ्कारजन्य है। कहने का तात्पर्य यह है कि चन्द्रोदय तो रात को होता है, कमल केवल दिन में सूर्य के प्रकाश से ही विकसित होता है, तब मुखचन्द्र की सन्निकटता में चरणकमल का विकासवर्णन विरुद्ध-सा मालूम पड़ता है। इसका परिहार इस प्रकार है, कि भगवती पार्वती व भगवान् शंकर के मुखरूपी चन्द्र व चरणरूपी कमल तो लोकोत्तर हैं, अर्थात् अलौकिक हैं, उनमें लोकसाधारण व्याप्ति या नियम लागू नहीं हो सकता है। वे तो हमेशा उदीयमान व विकसित ही हैं, अतः उनके उदय व विकास के लिए किसी अतिरिक्त करण व सामग्री की आवश्यकता ही नहीं है। साथ ही साथ, इनके मुखचन्द्र व चरणकमलों का व्यतिरेक भी अभिव्यक्त

होता है, क्योंकि चन्द्र तो केवल रात में उदित होता है, और कमल केवल दिन में ही विकसित होते हैं परन्तु जगज्जननी माता पार्वती का मुखचन्द्र तो रात-दिन असामान्य सुषमा से समन्वित रहता है, और संसार के परमपिता परमेश्वर के चरणकमल नित्य नूतन विकास से प्रफुल्लित हैं। तब इस प्रकार की लोकोत्तर वस्तु को लौकिक नियमों की परिधि में कैसे बाँधा जाय। तस्मात् उक्त पद्य में प्रयुक्त यह 'अपि' शब्द उक्त पदार्थों के विरोध का वाचक न होकर, उनकी लोकोत्तरता का ही द्योतक है।) इस प्रकार के उन अलौकिक चरणकमलों को जो लोग अपने अन्तःकरण में धारण करते हैं वे वस्तुतः देवता ही हैं, वे 'जन्म जरा मरण' इन तीन तापों से मुक्त हो जाते हैं। जैसे देवताओं ने समुद्र से लक्ष्मी प्राप्त की, वैसे इस संसार में, वे लोग अपनी स्वरूपनिष्ठ शोभा को प्राप्त करते हैं, अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप आत्मसाक्षात्कार को प्राप्त करते हैं। चञ्चल भ्रमरसमुदाय जिस प्रकार कमल का सेवन करता है, उसी प्रकार विद्वत्-समुदाय भगवान् के इन चरणकमलों का सेवन करता है। विभूति से स्वच्छ कान्ति वाले भगवान् के वे चरणकमल आप लोगों को हमेशा ऐश्वर्य प्रदान करें।

येषां रागादिदोषाक्षतमतियतयो यान्ति मुक्तिं प्रसादाद्
ये वा नम्रात्ममूर्तिद्युसदृषिपरिषन्मूर्ध्नि शेषायमाणाः।
श्रीकण्ठस्यारुणोद्यच्चरणसरसिजप्रोत्थितास्ते भवाख्यात्
पारावाराच्चिरं वो दुरिततहतिकृतस्तारयेयुः परागाः।।२८।।

अन्वय—येषाम्, (पदाम्भोरुहपरागाणाम्) प्रसादात्, रागादिदोषाक्षतमतियतयः, मुक्तिम्, यान्ति, ये, वा, नम्रात्ममूर्तिद्युसदृषिपरिषन्मूर्ध्नि, शेषायमाणाः, (सन्ति) श्रीकण्ठस्य, अरुणोद्यच्चरणसरसिजप्रोत्थिताः, दुरितहतिकृतः, ते, (पदाम्भोरुहस्थाः) परागाः वः (युष्मान्) भवाख्यात्, पारावारात्, चिरम्, तारयेयुः।

अर्थ—भगवान् शंकर के जिन चरणकमलों में स्थित पराग के प्रसाद से, रागद्वेषादि दोषों से रहित बुद्धि वाले यतिगण मुक्ति को प्राप्त करते हैं; जो पराग स्वर्गस्थित विनम्र देव व ऋषि परिषद् के मस्तक पर शेषनाग की तरह छाये हैं अर्थात् उनकी छत्रछाया में ही वह परिषत् चल रही है। भगवान् श्रीकण्ठ के लाल व उन्नत चरण रूप कमल से उत्थित, और सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले वे पराग आपको इस संसार सागर से पार करें।

भूम्ना यस्यास्तसीम्ना भुवनमनुसृतं यत्परं धाम धाम्नां
साम्नामाम्नायतत्त्वं यदपि च परमं यद् गुणातीतमाद्यम्।
यच्चांहोहन्निरीहं गहनमिति मुहुः प्राहुरुच्चैर्महान्तो
माहेशं तन्महो मे महितमहरहर्मोहरोहं निहन्तु।।२६।।

अन्वय–यस्य अस्तसीम्ना भूम्ना साम्नाम् आम्नायतत्त्वं (प्रतिपादितम्), यद् धाम्नां परं धाम भुवनम् अनुसृतम्, यद् अपि परमं, यत् च आद्यं गुणातीतम्, महान्तः मुहुः उच्चैः यत् अंहोहन् निरीहं गहनम् इति प्राहुः, तद् माहेशं महितं महः मे मोहरोहं अहरहः निहन्तु।

अर्थ–जिसकी असीम बहुलताके रूप में सामशाखाका वेदार्थ बताया गया है (छान्दो. अध्याय ७), जो प्रसिद्ध प्रकाशों का प्रकाशक वास्तविक प्रकाश संसार में व्याप्त है, जो पारमार्थिक भी है और अनादि व गुणों से परे है, महान् सज्जन बारम्बार उच्च स्वर से जिसे सब पापों का नाशक, निष्काम व गम्भीर बताते हैं, भगवान् महेश का वह पूज्य तेज मेरे मोहरूप अंकुर को रोज नष्ट किया करे।

वेदसारशिवस्तोत्रम्

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं, गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम्।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गाङ्गवारिं, महादेवमेकं स्मरामि स्मरारिम्।।१।।

अन्वय–(अहम्) पशूनाम्, पतिम्, पापनाशम्, परेशम्, गजेन्द्रस्य, कृत्तिम्, वसानम्, वरेण्यम्, जटाजूटमध्ये, स्फुरद्गाङ्गवारिं, महादेवम् स्मरारिम्, एकम् स्मरामि।

अर्थ–जो समस्त प्राणियों के रक्षक हैं, पाप का नाश करने वाले हैं, तथा परमात्मा हैं, जिन्होंने गजराज का चर्म पहना हुआ है, जो सर्वश्रेष्ठ हैं, जिनकी जटाओं में गङ्गा जी की लहरें सुशोभित हैं, ऐसे उस कामारि महादेव का, मैं निरन्तर स्मरण करता हूँ।

महेशं सुरेशं सुरारातिनाशं, विभुं विश्वनाथं विभूत्यङ्गभूषम्।
विरूपाक्षमिन्द्वर्कवह्नित्रिनेत्रम्, सदानन्दमीडे प्रभुं पञ्चवक्त्रम्।।२।।

अन्वय–(अहम्) महेशम्, सुरेशम्, सुरारातिनाशम्, विभुम्, विश्वनाथम्, विभूत्यङ्गभूषम्, इन्दु-अर्कवह्नित्रिनेत्रम्, विरूपाक्षम्, सदानन्दम्, पञ्चवक्त्रम्, प्रभुम्, ईडे।

अर्थ—परमेश्वर, सुरेश्वर, और देवताओं के शत्रुओं का नाश करने वाले, सर्वत्र विराजमान, संसार के स्वामी, भस्म ही जिनका भूषण है, चन्द्र सूर्य तथा अग्नि रूप तीन नेत्रों को धारण करने वाले, अत एव लोग जिन्हें विरूपाक्ष या विषमलोचन भी कहते हैं, ऐसे नित्यानन्द स्वरूप, पाँच मुख वाले, परम प्रभु, महादेव की मैं स्तुति करता हूँ।

गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं, गवेन्द्राधिरूढं गुणातीतरूपम्।
भवं भास्वरं भस्मना भूषिताङ्गं, भवानीकलत्रं भजे पञ्चवक्त्रम्।।३।।

अन्वय—(अहम्) गिरीशम्, गणेशम्, गले, नीलवर्णम्, गवेन्द्राधिरूढम्, गुणातीतरूपम् भवम्, भास्वरम्, भस्मना, भूषिताङ्गम्, भवानीकलत्रम्, पञ्चवक्त्रम्, भजे।

अर्थ—(मैं) कैलासनाथ, गणनाथ, नीलकण्ठ, वृषभवाहन, गुणातीत (सत्त्व, रज व तमोगुण से भी परे) संसार के आदिकारण, प्रकाशस्वरूप, विभूतिभूषण, भवानीपति, उस पञ्चमुखवाले महादेव का भजन करता हूँ।

शिवाकान्त शम्भो शशाङ्कार्धमौले, महेशान शूलिञ्जटाजूटधारिन्।
त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूपः, प्रसीद प्रसीद प्रभो पूर्णरूप।।४।।

अन्वय—हे शिवाकान्त! हे शम्भो! हे शशाङ्कार्धमौले! हे महेशान! हे शूलिन्! हे जटाजूटधारिन्! एकः (सन्, अपि) विश्वरूपः, त्वम्, जगद्व्यापकः, (असि) (अत एव) हे पूर्णरूप! हे प्रभो! प्रसीद प्रसीद।

अर्थ—हे पार्वतीवल्लभ! हे शम्भो! हे चन्द्रशेखर! हे महेश्वर! हे त्रिशूलिन्! हे जटाजूट को धारण करने वाले, आप एक होते हुए भी अनेक रूप वाले हैं (अर्थात् सारे नाम-रूप आपकी ही उपाधियाँ हैं), सत्तारूप से आप जगत् में व्याप्त हैं और आप पूर्णरूप हैं। इसीलिए प्रभु, सर्वथा समर्थ भी हैं, इस जगत्-चित्र की रचना में उपादान सामग्री के लिए आपको परमुखापेक्षी नहीं होना पड़ता है। प्रभु कहने का कदाचित् यह भी तात्पर्य है कि आप सर्वदा शक्तिसम्पन्न रहते हैं। अतः हे पूर्णरूप प्रभो! आप (मेरे लिए) प्रसन्न रहें।

परात्मानमेकं जगद्बीजमाद्यं, निरीहं निराकारमोंकारवेद्यम्।
यतो जायते पाल्यते येन विश्वम् तमीशं भजे लीयते यत्र विश्वम्।।५।।

अन्वय—(अहम्) एकम्, परात्मानम्, आद्यम्, जगद्बीजम्, निरीहम्, निराकारम्, ओंकारवेद्यम्, यतः, विश्वम्, जायते, येन, विश्वम्, पाल्यते, यत्र, विश्वम्, लीयते, तम्, ईशम्, भजे।

अर्थ—मैं, उस परमेश्वर शिव का भजन करता हूँ, जो एक, अद्वैत है,

अतः सर्वोत्कृष्ट है, (क्योंकि तारतम्य वहाँ रहता है जहाँ द्वैत, अनेकता, विषमता रहती है, शिवाद्वैत में तो स्वेतर ही कहाँ?)। वे ही जंगत् के आदि कारण हैं, इच्छारहित तथा निराकार हैं, ॐकार के द्वारा उनका ज्ञान होता है। उस परमपिता परमेश्वर को बतलाने वाला, या वाचक शब्द ओंकार है, योग दर्शन में कहा भी है—"तस्य वाचकः प्रणवः"। शिव से ही इस संसार की उत्पत्ति होती है, तथा पालन होता है, और अन्त में उन्हीं में इस संसार का लय हो जाता है।

न भूमि र्न चापो न वह्नि र्न वायु र्न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा।
न चोष्णं न शीतं न देशो व वेषो न यस्यास्ति मूर्तिस्त्रिमूर्तिं तमीडे।।६।।

अन्वय—(यः शिवः) भूमिः, न, आपः, च, न, वह्निः, न, वायुः, न, आकाशः, च, न आस्ते, तन्द्रा, न, निद्रा, न, उष्णम्, च, न, शीतम्, न, देशः, न, वेषः, न, यस्य, मूर्तिः, न अस्ति, तम्, त्रिमूर्तिम्, (अहम्) ईडे।

अर्थ—जो शिव, न पृथ्वी है, ना ही जल है, न अग्नि है, न वायु है, और न आकाश है, न तन्द्रा है, न निद्रा है, न (उष्ण) ग्रीष्म है, और न शीत है, तथा जिनका न कोई देश है, न वेष है, ऐसे आकारहीन, त्रिमूर्ति की मैं स्तुति करता हूँ। कहने का तात्पर्य यह है कि वह परम-शिव-तत्त्व पृथिव्यादि भौतिक पदार्थों से परे है, और न किसी देशकालादि की सीमा से भी बँधा है। शिव स्वयं प्रकाशस्वरूप निराकार होते हुए भी संसार की उत्पत्ति, स्थिति व लय के लिए, समय-समय पर रज, सत्त्व, व तमोगुण की उपाधियाँ ग्रहणकर, ब्रह्मा, विष्णु व महेश नामक तीन रूपों में अवतरित होते हैं।

अजं शाश्वतं कारणं कारणानां, शिवं केवलं भासकं भासकानाम्।
तुरीयं तमःपारमाद्यन्तहीनं, प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम्।।७।।

अन्वय—अजम्, शाश्वतम्, कारणानाम्, कारणम्, भासकानाम्, केवलम्, भासकम्, आद्यन्तहीनम्, तमःपारग्, (अत एव) तुरीयम्, द्वैतहीनम्, परम्, पावनम्, शिवम्, (अहम्) प्रपद्यें।

अर्थ—इस प्रकार (जो शिव) स्वयं अजन्मा है, नित्य है, जो कारणों के भी कारण, अर्थात् इस समस्त संसार के आदि कारण हैं, सूर्यादि प्रकाशक पदार्थों के भी केवल प्रकाशक हैं, ('केवल प्रकाशक' कहने का अर्थ है, कि शिवतत्त्व तो स्वयं प्रकाशस्वरूप होने से पदार्थों को प्रकाशित कर देना मात्र उसका कार्य है, और किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं, तदतिरिक्त स्पन्दनादि कार्यकलाप तो विमर्श का है। इसीलिए 'केवलम् भासकम्' कहा।) इस प्रकार वे अनादि

व अनन्त हैं, अविद्या (अज्ञान) से परे होने से ही उन्हें 'तुरीय ब्रह्म' भी कहा जाता है। अविद्या, प्राज्ञ व ईश्वर की अपेक्षा वे चतुर्थ हैं। ऐसे अद्वैतरूप परमपावन, उस शिव को मैं प्रणाम करता हूँ।

नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्ते, नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते।
नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य, नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य।।८।।

अन्वय–हे विश्वमूर्ते! हे विभो! ते नमः,ते नमः, हे चिदानन्दमूर्ते! ते, नमः, ते, नमः, हे तपोयोगगम्य! ते, नमः, ते, नमः हे श्रुतिज्ञानगम्य! ते, नमः, ते, नमः।

अर्थ–हे विश्वमूर्ते! हे विभो! आपको नमस्कार करता हूँ। हे ज्ञान आनन्द रूप मूर्ति वाले! आपको नमस्कार है। हे तप तथा योग से प्राप्तव्य प्रभो! आपको नमस्कार है। हे वेदज्ञान से प्राप्तव्य प्रभो! आपको नमस्कार करता हूँ।

प्रभो शूलपाणे विभो विश्वनाथ, महादेव शम्भो महेश त्रिनेत्र।
शिवाकान्त शान्त स्मरारे पुरारे, त्वदन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्यः।।६।।

अन्वय–हे प्रभो! हे शूलपाणे! हे विभो! हे विश्वनाथ! हे महादेव! हे शम्भो! हे महेश! हे त्रिनेत्र! हे शिवाकान्त! हे शान्त! हे स्मरारे! हे पुरारे! त्वदन्यः, (मत्कृते) न, वरेण्यः, न मान्यः, न गण्यः, (अस्ति)।

अर्थ–हे प्रभो! हे शूलपाणि (जिनके हाथ में शूल है)! हे विभो! हे विश्वनाथ! हे महादेव! हे शम्भो! हे महेश! हे त्रिनेत्र! हे पार्वतीवल्लभ! हे शान्त! हे कामारि! हे पुरारि! मेरे लिए तो तुम्हारे अतिरिक्त न कोई देव श्रेष्ठ है, न माननीय है और न गणनीय ही है।

शम्भो महेश करुणामय शूलपाणे
गौरीपते पशुपते पशुपाशनाशिन्
काशीपते करुणया जगदेतेदेक-
स्त्वं हंसि पासि विदधासि महेश्वरोऽसि।।१०।।

अन्वय–हे शम्भो! हे महेश! हे करुणामय! हे शूलपाणे! हे गौरीपते! हे पशुपते! हे पशुपाशनाशिन्! हे काशीपते! त्वम् एकः, (सन् अपि) एतत्, जगत्, करुणया, विदधासि, पासि, हंसि, (अत एव) त्वम्, महेश्वरः, असि।

अर्थ–हे शम्भो! हे महेश्वर! हे करुणामय! हे शूलपाणे! हे गौरीपते! हे पशुपते! ('पशुः-सर्वमविशेषेण पश्यतीति पशुः' नित्यानित्य पदार्थों के विषय में विवेचनाहीन जीव ही पशु है, उसके आप स्वामी हो), हे पशुबन्धविमोचक– आप ही ऐसे पशुओं (जीवों) की अज्ञान रूपी रस्सी को भी काटने वाले हो,

हे काशीपते! विश्वनाथ; आप ही अकेले करुणापूर्वक इस संसार की सृष्टि, पालन तथा संहार करते हो। इस संसार की सृष्टि स्थिति तथा लय में एकमात्र परमेश्वर की अहेतु करुणा ही कारण है। जीव न जाने कब से अनादि अविद्या के अनन्त भव-सागर में डूबा हुआ है। इस सृष्टिचक्र की सम विषम प्रक्रियाओं से वह जब ऊब जाता है, तो फिर वह अपने उद्धार के लिए केवल भगवान् की ही शरण लेता है। ऐसे जीवों के लिए इस सृष्टिचक्र के प्रवर्तन में एकमात्र करुणा ही हेतु है। इस प्रकार अन्ततः जीवों के उद्धार के लिए अकेले निरन्तर इस भवचक्र का प्रवर्तन करना, एक असामान्य कार्य है। इतनी बड़ी जिम्मेदारी को निभाने के कारण आपको महेश्वर भी कहते हैं, क्योंकि आपका ऐश्वर्य अप्रतिहत है।

त्वत्तो जगद् भवति देव भव स्मरारे
त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड विश्वनाथ।
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश
लिङ्गात्मके हर चराचरविश्वरूपिन्।।११।।

अन्वय—हे देव! हे भव! हे स्मरारे! हे मृड! हे विश्वनाथ! हे ईश! हे हर! हे चराचरविश्वरूपिन्, एतत्, जगत्, त्वत्तः, भवति (पुनः) त्वयि, एव, तिष्ठति, (अन्ते च) लिङ्गात्मके, त्वयि, एव, लयम् गच्छति।

अर्थ—हे देव! हे भव! हे कामारि! हे सबको सुख देने वाले मृड! हे विश्वनाथ! हे ईश्वर! हे सबके दुःखों के हरण करने वाले हर! हे चराचरजगद्रूप प्रभो! यह परिदृश्यमान समस्त जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है, और आप में ही स्थित है, अर्थात् आप ही पालन-पोषण द्वारा इसकी मर्यादा की रक्षा करते हो, और अन्त में लिङ्गात्मक आपमें ही (अन्ते लीयते विश्वं यत्र तल्लिङ्गम् इस व्युत्पत्ति के अनुसार) इस संसार का लय हो जाता है।

शिवापराधक्षमापणस्तोत्रम्

आदौ कर्मप्रसङ्गात्कलयति कलुषं मातृकुक्षौ स्थितं मां
विण्मूत्रामेध्यमध्ये क्वथयति नितरां जाठरो जातवेदाः।
यद्यद् वै तत्र दुःखं व्यथयति नितरां शक्यते केन वक्तुं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो।।१।।

अन्वय—(कश्चित् संसारानलसंतप्तः स्वीयं संसृतिजन्यं दुःखं वर्णयति) (यत्) आदौ, कर्मप्रसङ्गात्, (कृतं) कलुषम्, मातृकुक्षौ, स्थितम्, माम्, कलयति, (पश्चात्) तत्र, विण्मूत्रामेध्यमध्ये, जाठरः, जातवेदाः, नितराम्, क्वथयति, तत्र, यत्, यत्, वै, दुःखम्, (माम्) नितराम्, व्यथयति, (तत्) केन, वक्तुम्, शक्यते, (तस्मात्) हे शिव! हे शिव! हे शिव! भोः श्रीमहादेव! हे शम्भो! मे, अपराधः, क्षन्तव्यः।

अर्थ—सांसारिक संकटों से संतप्त कोई भक्त, अपने इस संसार के जन्मचक्र के दुःख का वर्णन करता है कि, सर्वप्रथम तो शोचनीय बात यह है कि कर्मवश किया हुआ पाप मुझे माता की कुक्षि में ले आता है; तदनन्तर वहाँ उस अपवित्र विष्ठा व मूत्र के मध्य में जठराग्नि खूब सन्तप्त करती है। वहाँ जो-जो दुःख मुझे निरन्तर सन्तप्त करते रहते हैं, उनका वर्णन कौन कर सकता है! इसलिए हे शिव! हे महादेव! हे शम्भो! आज तक किया हुआ मेरा शुभाशुभरूप जो अपराध है, उसे आप क्षमा करें, जिससे कि आगे हमें इस संसार में जन्म न लेना पड़े।

बाल्ये दुःखातिरेको मललुलितवपुः स्तन्यपाने पिपासा
नो शक्तश्चेन्द्रियेभ्यो भवगुणजनिता जन्तवो मां तुदन्ति।
नानारोगातिदुःखाद् रुदनपरवशः शङ्करं न स्मरामि
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो।।२।।

अन्वय—बाल्ये, दुःखातिरेकः, (अस्ति) मललुलितवपुः, स्तन्यपाने, पिपासा, च भवति, इन्द्रियेभ्यः, शक्तः, न, (भवति) तथा भवगुणजनिताः, जन्तवः, माम्, तुदन्ति, (अहम्) नानारोगातिदुःखात्, रुदनपरवशः, (भवामि) (तथापि) शङ्करम्, न, स्मरामि, (तस्मात्) हे शिव! हे श्रीमहादेव! हे शम्भो! मे, अपराधः, क्षन्तव्यः।

अर्थ—बाल्यावस्था में दुःखों की अधिकता रहती है, और शरीर मलमूत्रों से लिप्त रहता है। समय-समय पर स्तनपान की लालसा बनी ही रहती है। इन्द्रियों में कोई कार्य करने का सामर्थ्य नहीं रह जाता है। सांसारिक गुणों से उत्पन्न अर्थात् रजोगुणी व तमोगुणी जन्तु मुझे पीडित करते हैं। अनेक रोगों से अत्यन्त दुःखी होकर मैं केवल रोता ही रहता हूँ, फिर भी भगवान् शङ्कर का स्मरण नहीं कर सकता हूँ। इसलिए हे शिव! हे महादेव! हे शम्भो! मेरे इन अपराधों को क्षमा करें।

प्रौढोऽहं यौवनस्थो विषयविषधरैः पञ्चभि मर्मसन्धौ
दष्टो नष्टो विवेकः सुतधनयुवतिस्वादसौख्ये निषण्णः।
शैवीचिन्ताविहीनं मम हृदयमहो मानगर्वाधिरूढं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो।।३।।

अन्वय–(यदा, अहम्) यौवनस्थः, प्रौढः, (अभवम्) तदा, पञ्चभिः (रूपरसगन्धादिभिः) विषयविषधरैः, मर्मसन्धौ, दष्टः, (अत एव) विवेकः नष्टः, (पुनश्च) सुतधनयुवतिस्वादसौख्ये, (एव) निषण्णः, (अभवम्) अहो! तदा, मम, हृदयम्, शैवीचिन्ताविहीनम्, सत्, मानगर्वाधिरूढम्, (अभवत्) (अतः) हे शिव! हे महादेव! हे शम्भो! मे, अपराधः, क्षन्तव्यः।

अर्थ–जब मैं युवावस्था में आकर प्रौढ हुआ, तो पाँच (रूप रस गन्ध शब्द स्पर्श) विषयरूपी विषधर सर्पों ने मेरे मर्मस्थल हृदय को डस लिया, जिससे मेरा विवेक–सदसत् ज्ञान नष्ट हो गया, तब मैं धन स्त्री सुतादि के सुखास्वादन में ही मग्न रहा। उस समय मेरा हृदय आपके नाम स्मरण रूपी चिन्ता से शून्य हो गया, और बड़े मान व गर्व से भर गया। इसलिए हे भगवन् मेरे इस अपराध को क्षमा करें।

वार्धक्ये चेन्द्रियाणां विकलगतिमतश्चाधिदैवादितापैः
प्राप्तै रोगैर्वियोगै र्व्यसनकृशतनो र्ज्ञप्तिहीनं च दीनम्।
मिथ्यामोहाभिलाषै र्भ्रमति मम मनो धूर्जटे र्ध्यानशून्यं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो।।४।।

अन्वय–वार्धक्ये, इन्द्रियाणाम्, विकलगतिमतः, आधिदैवादितापैः, प्राप्तैः, रोगैः वियोगैः, च, व्यसनकृशतनोः, मम (जीवनम्) ज्ञप्तिहीनम्, अत एव, दीनम्, च भवति, तदा, मम मनः, धूर्जटेः, ध्यानशून्यम्, (सत्) मिथ्यामोहाभिलाषैः, (व्यर्थम्) भ्रमति, अतः, हे शिव! हे महादेव! हे शम्भो! मे, (मम) अपराधः, क्षन्तव्यः।

अर्थ–वृद्धावस्था में जब मेरी इन्द्रियों की गति शिथिल हो जाती है, आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक इन त्रिविध तापों से, और संयोगवश प्राप्त रोगों व वियोगों से, शरीर जर्जरित, तथा जीवन विवेकशून्य एवं क्षीण हो जाता है, तो फिर यह निकम्मा मन भी महादेव के चिन्तन से शून्य होकर, झूठे मोह के महलों में व्यर्थ घूमता रहता है। इसलिए हे शिव! हे महादेव! हे शम्भो! मेरे अपराधों को आप क्षमा करें।

स्नात्वा प्रत्यूषकाले स्नपनविधिविधौ नाहृतं गाङ्गतोयं
पूजार्थं वा कदाचिद् बहुतरगहनेऽखण्डबिल्वीदलं वा।
नानीता पद्ममाला सरसि विकसिता गन्धपुष्पैस्त्वदर्थं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो।।५।।

अन्वय—प्रत्यूषकाले, स्नात्वा, स्नपनविधिविधौ (रुद्राभिषेके, इत्यर्थः) गाङ्गतोयम्, नाहृतम्, कदाचिद्, पूजार्थम्, बहुतरगहने, (वने गत्वा) अखण्डबिल्वीदलम्, वा, नाहृतम्, त्वदर्थम्, गन्धपुष्पैः (सह) सरसि, विकसिता, पद्ममाला, अपि, वा, कदाचित्, न, आनीता, अतः हे शिव! हे महादेव! हे शम्भो! मे (पूर्वोक्तः) अपराधः, क्षन्तव्यः।

अर्थ—हे भगवन्! प्रातः स्नान करके, आपके अभिषेक के लिए मैं गंगा जल तक नहीं ला सका, और न कभी आपकी पूजा के लिए गहन वन में जाकर अखण्ड-अविकृत बिल्वपत्र ही ला सका, तथा आपकी पूजा के लिए मैंने कभी भी सुगन्धित पुष्पों के साथ सरोवर में खिले हुए कमलों की माला भी समर्पण नहीं की, इसलिए हे शिव! हे महादेव! हे शम्भो! आप उक्त अपराध को क्षमा करें।।५।।

दुग्धैर्मध्वाज्ययुक्तैर्दधिगुडसहितैः स्नापितं नैव लिङ्गं
नो लिप्तं चन्दनाद्यैः कनकविरचितैः पूजितं न प्रसूनैः।
धूपैः कर्पूरदीपै र्विविधरसयुतै र्नैव भक्ष्योपहारैः
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो।।६।।

अन्वय—हे भगवन्! (मया, कदाचिदपि भवताम्) लिङ्गम्, मध्वाज्ययुक्तैः, दधिगुडसहितैः, दुग्धैः, न, एव, स्नापितम्, (अथ) चन्दनाद्यैः, न, लिप्तम्, कनकविरचितैः प्रसूनैः, (न पूजितम्) तथा धूपैः, कर्पूरदीपैः, विविध-रसयुतैः, भक्ष्योपहारैः, च, नैव, पूजितम्, अतः हे शिव! हे महादेव! हे शम्भो! मे, अपराधः, क्षन्तव्यः।

अर्थ—हे भगवन्! मैंने कभी भी, मधु, घी, दधि व शर्करा युक्त दूध से (पञ्चामृत से अथवा इन प्रत्येक पदार्थों से पृथक् पृथक्) आपके लिङ्ग को नहीं नहलाया, और न चन्दन केशर आदि से अनुलेप ही किया, कनकमय पुष्प या धतूरे के फूल से, धूप, कर्पूरयुक्त दीप व अनेक रसों युक्त नैवेद्य द्वारा पूजन भी नहीं किया। अतः हे शिव! हे महादेव! हे शम्भो! आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें।

नो शक्यं स्मार्तकर्म प्रतिपदगहने प्रत्यवायाकुलाढ्ये
श्रौते वार्ता कथं मे द्विजकुलविहिते ब्रह्ममार्गानुसारे।
तत्त्वेऽज्ञाते विचारे श्रवणमननयोः किं निदिध्यासितव्यं,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो।।७।।

अन्वय—प्रतिपदगहने, प्रत्यवायाकुलाढ्ये, (सति) स्मार्तकर्म, (कर्तुम्) न, शक्यम्, (पुनः) ब्रह्ममार्गानुसारे, द्विजकुलविहिते, श्रौते (कर्मणि तु) मे, वार्ता, (अपि) कथम्, स्यात् (यदा) श्रवणमननयोः, (कृते) तत्त्वे, विचारे, अज्ञाते (तदा) किम्, निदिध्यासितव्यम्, (न किमपीत्यर्थः) अतः, हे शिव! हे महादेव! हे शम्भो! मे, अपराधः, क्षन्तव्यः।

अर्थ—हे भगवन्! प्रतिपद गहन अर्थात् पद पद पर कठिनाई से युक्त, और प्रत्यवाय रूप दोष से व्याप्त होने के कारण, जब स्मृति-प्रतिपादित कर्म ही नहीं किया जा सकता है, तो फिर द्विज कुल के लिए विहित, ब्रह्मप्राप्ति के साधन स्वरूप श्रौत कर्म की तो बात ही कहाँ है! और जब श्रवण व मनन विषयक तत्त्व का ज्ञान ही न हो, तो फिर निदिध्यासन (ध्यान या उपासना) के विषय में क्या कहा जाय! अतः हे शिव! हे महादेव! हे शम्भो! आप मेरे इन अपराधों को क्षमा करें।

ध्यात्वा चित्ते शिवाख्यं प्रचुरतरधनं नैव दत्तं द्विजेभ्यो
हव्यं ते लक्षसंख्यैर्हुतवहवदने नार्पितं बीजमन्त्रैः।
नो तप्तं गाङ्गतीरे व्रतजपनियमैः रुद्रजाप्यं न जप्तं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो।।८।।

अन्वय—हे भगवन्! (मया कदाचित्) चित्ते, शिवाख्यम् (वस्तु) ध्यात्वा, द्विजेभ्यः, प्रचुरतरधनम्, न, एव, दत्तम्, न, वा, लक्षसंख्यैः, ते, बीजमन्त्रैः, हुतवहवदने, हव्यम्, अर्पितम्, व्रतजपनियमैः, कदाचित्, रुद्रजाप्यम्, न जप्तम्, (अपि च) गाङ्गतीरे, अपि, (तपः) न, तप्तम्, अतः हे शिव! हे महादेव! हे शम्भो! मे अपराधः क्षन्तव्यः।

अर्थ—हे भगवन्! मैंने कभी भी हृदय में आप के नाम का स्मरण कर ब्राह्मणों को प्रचुर दान नहीं दिया, और न कभी एक लाख आपके बीज मन्त्रों (नमः शिवाय इत्यादि) से अग्नि में आहुतियाँ ही दी हैं। व्रत-पूर्वक व जप के नियमों के अनुसार कभी आपका जप भी नहीं किया, और न गङ्गा जी के तट पर कोई साधना ही की। अतः हे शिव! हे महादेव! हे शम्भो! आप मेरे इन अपराधों को क्षमा करें।

नग्नो निःसङ्गशुद्धस्त्रिगुणविरहितो ध्वस्तमोहान्धकारो
नासाग्रन्यस्तदृष्टि र्विदितभवगुणो नैव दृष्टः कदाचित्।
उन्मन्यावस्थया त्वां विगतकलिमलः शंकरं न स्मरामि
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो।।९।।

अन्वय–हे भगवन्! (मया) (भवान्) नग्नः, निःसङ्गशुद्धः, त्रिगुणविरहितः, ध्वस्तमोहान्धकारः, नासाग्रन्यस्तदृष्टिः, विदितभवगुणः, कदाचित्, न, एव, दृष्टः, (अथ च) विगतकलिमलः, अहम्, त्वाम्, शंकरम् उन्मन्यावस्थया, न, स्मरामि, अतः हे शिव! हे महादेव! हे शम्भो! मे, अपराधः, क्षन्तव्यः।

अर्थ–हे भगवन्! मैंने कभी, आपको नग्न, असङ्ग, शुद्ध, त्रिगुणरहित, मोहान्धकाररहित, नासिका की नोक पर दृष्टि एकाग्र किये हुए, विदितभवगुण–संसार के गुणों के ज्ञाता के रूप में नहीं देखा, और कलिदोषों से रहित अर्थात् सांसारिक दोष-शून्य होकर, उन्मनी (गहन तल्लीनता) अवस्था से, कभी आपका स्मरण भी नहीं किया। अतः इन सारे मेरे अपराधों को आप क्षमा करें।

स्थित्वा स्थाने सरोजे प्रणवमयमरुत्कुण्डले सूक्ष्ममार्गे
शान्ते स्वान्ते प्रलीने प्रकटितविभवे दिव्यरूपे शिवाख्ये।
लिङ्गाग्रे ब्रह्मवाक्ये सकलतनुगतं शंकरं न स्मरामि
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो।।१०।।

अन्वय–लिङ्गाग्रे (स्थित्वा) ब्रह्मवाक्ये (स्मृते सति) प्रकटितविभवे शिवाख्ये दिव्यरूपे प्रलीने (सति), स्वान्ते शान्ते (च सति), सूक्ष्ममार्गे प्रणवमयमरुत्कुण्डले (चलित्वा) सरोजे स्थाने स्थित्वा, सकलतनुगतं शङ्करं न स्मरामि, अयं मे अपराधः क्षन्तव्यः।

अर्थ–शिवलिंग के सम्मुख बैठकर, ब्रह्मप्रतिपादक महावाक्य स्मरण कर, व्यक्त वैभव वाले शिवनामक अलौकिक पंचमुखादि रूप को लीन कर, मन को शान्त कर, जैसे वायु धूल को कुण्डलितकर (घेरकर) छोटे गवाक्षादि में ले जाती है ऐसे ओंकार के सहारे विचाररूप सूक्ष्म मार्ग पर चलकर हृदयकमल में एकाग्र होकर सर्वव्यापक शंकर को (स्वयं से अभिन्न रूप में) याद नहीं करता हूँ; मेरा यह अपराध आप अवश्य क्षमा करें।

हृद्यं वेदान्तवेद्यं हृदयसरसिजे दीप्तमुद्यत्प्रकाशं
सत्यं शान्तस्वरूपं सकलमुनिमनःपद्मषण्डैकवेद्यम्।
जाग्रत् स्वप्ने सुषुप्तौ त्रिगुणविरहितं शंकरं न स्मरामि
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो।।११।।

अन्वय–(अहम्) (स्वकीये) हृदयसरसिजे, दीप्तम्, हृद्यम्, वेदान्तवेद्यम्, सत्यम्, शान्तस्वरूपम्, सकलमुनिमनःपद्मषण्डैकवेद्यम्, जाग्रति, स्वप्ने, सुषुप्तौ, (च) उद्यत्प्रकाशम्, त्रिगुणविरहितम्, शंकरम्, न स्मरामि, अतः हे शिव! हे महादेव! हे शम्भो! मे, अपराधः, क्षन्तव्यः।

अर्थ–मैं अपने हृदयकमल में, प्रकाशमान, मनोहर, वेदान्तवेद्य, शान्त व सत्यस्वरूपवाले, समस्त मुनियों के मन रूपी कमलों के समूह द्वारा जानने योग्य, और जिनका प्रकाश जाग्रत् स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्था में भी हमेशा बना ही रहता है, अर्थात् जो जाग्रत् स्वप्न व सुषुप्ति दशा के साक्षी हैं, ऐसे त्रिगुणरहित, भगवान् शंकर का स्मरण नहीं कर सका, इसलिए हे शिव! हे महादेव! हे शम्भो! मेरे इस अपराध को क्षमा करें।

चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शंकरे,
सर्पै र्भूषितकण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे।
दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे
मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमखिलामन्यैस्तु किं कर्मभिः।।१२।।

अन्वय–चन्द्रोद्भासितशेखरे, स्मरहरे, गङ्गाधरे, सर्पैः, भूषितकण्ठकर्णविवरे, नेत्रोत्थवैश्वानरे, दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बरधरे, त्रैलोक्यसारे, शंकरे, हरे, मोक्षार्थम्, अखिलाम्, चित्तवृत्तिम्, कुरु, अन्यैः, (तु) कर्मभिः, किम्।

अर्थ–चन्द्रकला से जिनका मुकुट प्रकाशित हो रहा है, जो कन्दर्प के दर्प को नष्ट करने वाले हैं, जिन्होंने अपने माथे पर गङ्गा जी को धारण किया है, और जिनके कण्ठ व कर्ण सर्पों से भूषित हैं, जिनके भालस्थ तृतीय नेत्र से अग्नि प्रज्वलित हो रही है, और हस्ति-चर्म की कन्था जिन्होंने धारण की हुई है, जो तीनों लोकों के सारभूत परमतत्त्व हैं, ऐसे कल्याणकारी भगवान् शिव में मोक्ष के लिए अपनी निर्मल चित्तवृत्ति को समर्पण कर दो, अन्य कर्मों से क्या प्रयोजन? अर्थात् संसार से चित्त को हटा कर, सर्वात्मना शिव में समर्पण कर दो।

किं वानेन धनेन वाजिकरिभिः प्राप्तेन राज्येन किं
किं वा पुत्रकलत्रमित्रपशुभि र्देहेन गेहेन किम्।
ज्ञात्वैतत्क्षणभङ्गुरं सपदि रे त्याज्यं मनो दूरतः
स्वात्मार्थं गुरुवाक्यतो भज भज श्रीपार्वतीवल्लभम्।। १३।।

अन्वय–(कश्चन विरक्तः स्वं हृदयं सम्बोध्य कथयति) रे मनः! अनेन, धनेन, वाजिकरिभिः, वा, किम्, प्राप्तेन, राज्येन, वा किम्, (न किमपीत्यर्थः) पुत्रकलत्रमित्रपशुभिः, किम्, (एभिरपि न किमपि साध्यमित्यर्थः) अनेन,

देहेन, गेहेन, (तदुपलक्षितेन वैभवेन) वा किम्। एतत् सर्वम्, सपदि, क्षणभङ्गुरम् ज्ञात्वा, दूरतः त्याज्यम्, गुरुवाक्यतः, स्वात्मार्थम्, श्रीपार्वतीवल्लभम्, भज, भज।

अर्थ—कोई विरक्त भक्त अपने मन को सम्बोधित करते हुए कह रहा है, कि इस धन से या हाथी घोड़े आदि से क्या लाभ? अथवा किसी प्रकार यदि राज्य भी मिल जाय तो उससे भी कौन-सा लाभ है? पुत्र-स्त्री-मित्र व पशु आदि से तो कुछ भी बनना नहीं है। सुन्दर इस शरीर और इन भोग-प्रधान भवनों से कौन-सा लाभ है? अतः हे मन! इन सब पदार्थों की नश्वरता, क्षणभङ्गुरता को जानकर इनमें तृष्णा मत कर। गुरु के उपदेशानुसार अपने पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए अर्थात् परमात्मा में सम्यक् स्थिति के लिए, मोक्ष के लिए, निरन्तर श्री पार्वतीवल्लभ भगवान् शिव का ध्यान कर।

पौरोहित्यं रजनिचरितं ग्रामणीत्वं नियोगो
माठापत्यं ह्यनृतवचनं साक्षिवादः परान्नम्।
ब्रह्मद्वेषः खलजनरतिः प्राणिनां निर्दयत्वं
भा भूदेवं मम पशुपते जन्मजन्मान्तरेषु।।१४।।

अन्वय—हे पशुपते! मम, जन्मजन्मान्तरेषु, एवम् मा भूत् पौरोहित्यम्, रजनिचरितम्, ग्रामणीत्वम्, नियोगः, माठापत्यम्, अनृतवचनम्, साक्षिवादः, परान्नम्, ब्रह्मद्वेषः, खलजनरतिः, प्राणिनाम्, निर्दयत्वम्।

अर्थ—हे पशुपते! जन्मान्तरों में भी मुझे ये प्राप्त न हों—पौरोहित्य वृत्ति, दुश्चरित्रता, गाँव का मुखिया होना, नियोग, मठाधिपति बनना, झूठ बोलना, झूठी गवाही देना, परान्नभक्षण, ब्राह्मण-द्वेष, कुसङ्गति, और प्राणियों के विषय में निर्दयता।

आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं यौवनं
प्रत्यायान्ति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः।
लक्ष्मीस्तोयतरङ्गभङ्गचपला विद्युच्चलं जीवितं
तस्मान्मां शरणागतं करुणया त्वं रक्ष रक्षाधुना।।१५।।

अन्वय—हे शरणागतवत्सल! भगवन्! पश्यताम्, (जनानाम्) आयुः, नश्यति, प्रतिदिनम्, यौवनम्, क्षयम्, याति, गताः, दिवसाः, न, पुनः, प्रत्यायान्ति, कालः, जगद्भक्षकः, (अस्ति) लक्ष्मीः, तोयतरङ्गभङ्गचपला, (अस्ति) जीवितम्, विद्युच्चलम्, (अस्ति) तस्मात्, अधुना, त्वम्, करुणया, शरणागतम्, माम्, रक्ष, रक्ष।

अर्थ—हे शरणागतवत्सल भगवान्! देखते-देखते ही लोगों की आयु नष्ट

हो जाती है, यौवन उत्तरोत्तर क्षीण होता जा रहा है, बीते हुए दिन फिर लौटकर नहीं आते, यह काल (समय) सम्पूर्ण जगत् को खा रहा है। यह सब धन दौलतरूप जो लक्ष्मी है वह भी जल की तरङ्गों की तरह चञ्चल है, अर्थात् कभी स्थिर रहने वाली चीज नहीं है। यदि लाख उपाय करके इसे स्थिर भी किया जाय तो फिर यह जीवन ही कितने दिनों का है? यह जीवन भी तो बिजली की चमक की तरह क्षणस्थायी है। इसीलिए कृपा करके शरण में आये हुए मेरी आप रक्षा करें।

सुवर्णमालास्तुतिः

अथ कथमपि मद्रसनां त्वद्गुणलेशै र्विशोधयामि विभो।
साम्ब सदाशिव शंभो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।१।।

अन्वय—हे विभो! अथ,. (अहम्) कथम्, अपि, त्वाद्गुणलेशैः, मद्रसनाम्, विशोधयामि, हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शंभो! हे शंकर! तव, चरणयुगम् मे शरणम् (अस्ति)।

अर्थ—हे विभो! अब मैं किसी प्रकार आपके थोड़े से गुणों का गानकर अपनी रसना (जिह्वा) को पवित्र कर रहा हूँ। इसलिए हे साम्ब! (पार्वतीसहित शिव) हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! मैं आपके चरणों की शरण में हूँ।

आखण्डलमदखण्डनपण्डित तण्डुप्रिय चण्डीश विभो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।२।।

अन्वय—हे आखण्डलमदखण्डनपण्डित! हे तण्डुप्रिय! हे चण्डीश! हे विभो! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम् मे शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे इन्द्र के गर्व को खण्डित करने में पण्डित! हे तण्डुगणप्रिय! हे भवानीश! हे विभो! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! अब मैं आपके ही चरणों की शरण में हूँ।

इभचर्माम्वर शम्बररिपुवपुरपहरणोज्ज्वलनयन विभो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।३।।

अन्वय—हे इभचर्माम्बर! हे शम्बररिपुवपुरपहरणोज्ज्वलनयन! हे विभो! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम् मे

शरणम् (अस्ति)।

अर्थ—हे हस्ति-चर्म को धारण करने वाले! हे शम्बरासुर के शत्रु कामदेव के शरीर को भस्म करने वाले उज्ज्वल नेत्र से शोभित! हे विभो! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरण ही मेरी शरण हैं।

ईश गिरीश नरेश परेश महेश बिलेशयभूषण भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।४।।

अन्वय—हे ईश! हे गिरीश! हे नरेश! हे परेश! हे महेश! भो बिलेशयभूषण! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम् मे शरणम् (अस्ति)।

अर्थ—हे ऐश्वर्यशालिन्! हे कैलाशपते! हे नरपते! हे परमात्मन्! हे महैश्वर्यशालिन्! हे सर्पाभरणभूषित! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! (कल्याणकारक) अब मैं अपके चरणों की शरण में हूँ।

उमया दिव्यसुमङ्गलविग्रहयालिङ्गितवामाङ्ग विभो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।५।।

अन्वय—हे दिव्यसुमङ्गलविग्रहया उमया आलिङ्गितवामाङ्ग! हे विभो! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे दिव्य व कल्याण-कारक मङ्गलमय स्वरूप वाली उमा (पार्वती) से आलिङ्गित वामाङ्गवाले! हे प्रभो! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणकमल ही मेरी रक्षा करने वाले हैं।

ऊरीकुरु मामज्ञमनाथं दूरीकुरु मे दुरितं भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।६।।

अन्वय—भो! शंकर! अज्ञम्, अनाथम्, माम्, ऊरीकुरु, मे दुरितम्, दूरीकुरु, हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! तव, चरणयुगम्, मे शरणम् (अस्ति)।

अर्थ—हे शंकर! अज्ञानी व अनाथ मुझको आप स्वीकार करें, अर्थात् मुझे अपनायें, और मेरे पापों को दूर करें। हे पार्वतीसहित! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणयुगल ही मेरे शरण हैं।

ऋषिवरमानसहंस चराचरजननस्थितिलयकारण भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।७।।

अन्वय—भो! ऋषिवरमानसहंस! हे चराचरजननस्थितिलयकारण! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे श्रेष्ठ ऋषियों के मनरूपी मानसरोवर में विचरण करने वाले हंस! हे चराचर इस संसार के उत्पत्ति स्थिति तथा लय में एकमात्र कारण! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरण ही मेरे रक्षक हैं।

ऋक्षाधीशकिरीट महोक्षारूढ विधृतरुद्राक्ष विभो।

साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।८।।

अन्वय—हे ऋक्षाधीशकिरीट! हे महोक्षारूढ! हे विधृतरुद्राक्ष! हे विभो! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम् मे शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे चन्द्रशेखर! हे वृषभवाहन! हे रुद्राक्ष को धारण करने वाले! हे विभो! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणयुगल ही मेरे शरण हैं।

लृवर्णद्वन्द्वमवृन्तसुकुसुममिवांघ्रौ तवार्पयामि विभो।

साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।६।।

अन्वय—हे विभो! (अहम्) लृवर्णद्वन्द्वम्, इव, अवृन्तसुकुसुमम्, तव, अङ्घ्रौ, अर्पयामि, हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम् मे शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे विभो! दो लृ-अक्षरों की तरह बिना वृन्त (डंडी) के सुन्दर पुष्प को मैं आपके चरणों में अर्पण करता हूँ। हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणकमल ही मेरी शरण हैं।

एकं सदिति श्रुत्या त्वमेव सदसीत्युपास्महे मृड भो।

साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।१०।।

अन्वय—भो मृड! श्रुत्या, एकम्, सत्, इति (यदुक्तम्) तत्, त्वम्, एव, सत्, असि, (अतः त्वामेव वयम्) उपास्महे, हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्! मे शरणम् (अस्ति)।

अर्थ—हे सर्वसुखदायक मृड! वेद में 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' इत्यादि जो उस परब्रह्म परमात्मा के विषय में कहा गया है, वह सत्य, सनातन, एक परमतत्त्व तुम्हीं हो, अतः हम सभी सद्रूप तुम्हारी उपासना करते हैं। हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! अब आपके चरण ही मेरी शरण हैं।

ऐक्यं निजभक्तेभ्यो वितरसि विश्वंभरोऽत्र साक्षी भो।

साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।११।।

अन्वय—भो! (शिव) (त्वम्) निजभक्तेभ्यः, ऐक्यम्, वितरसि, अत्र (अस्मिन् संसारे) त्वम्, विश्वम्भरः, (असि), साक्षी (च) (असि), हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम् मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे शिव! आप अपने भक्तों के लिए एकता अर्थात् अद्वैतज्ञान देते हो। इस संसार में लोग आपको विश्वम्भर कहते हैं, अर्थात् आप ही संसार का भरण पोषण करने वाले हो, और आप इस समस्त चराचर जगत् के साक्षी भी हो। अतः हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरण युगल ही मेरी शरण हैं।

ओमिति तव निर्देष्ट्री मायास्माकं मृडोपकर्त्री भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।१२।।

अन्वय—भो! मृड! अस्माकं कृते ओम्, इति, निर्देष्ट्री, तव, माया, उपकर्त्री, (अस्ति)। हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे सबको सुख देने वाले शंकर! हम लोगों के लिए 'ॐ' इस शब्द का निर्देश करने वाली आपकी माया भी उपकार करने वाली ही है। अतः हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरण ही हमारे शरण हैं।

औदास्यं स्फुटयति विषयेषु दिगम्बरता च तवैव विभो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।१३।।

अन्वय—हे विभो! तव, दिगम्बरता, एव, च, विषयेषु, औदास्यम् स्फुटयति अतः हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम् मे शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे विभो! आपकी जो दिगम्बरता है, वही सांसारिक पदार्थों में आपकी विरक्ति को प्रकट कर देती है। हे साम्ब! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणयुगल ही मेरे शरण हैं।

अन्तःकरणविशुद्धिं भक्तिं च त्वयि सतीं प्रदेहि विभो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।१४।।

अन्वय—हे विभो! (त्वम् मह्यम्) अन्तःकरणविशुद्धिम्, त्वयि, सतीम्, भक्तिम्, च, प्रदेहि, हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे विभो! आप मेरे लिए अन्तःकरण की शुद्धि, तथा अपने चरणकमलों की सुन्दर भक्ति को भी प्रदान करें। हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणयुगल ही मेरे शरण हैं।

अस्तोपाधिसमस्तव्यस्तै रूपैर्जगन्मयोऽसि विभो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।१५।।

अन्वय—हे विभो! अस्तोपाधिसमस्तव्यस्तैः, रूपैः, जगन्मयः, असि, हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे विभो! आप जगन्मय हैं—निरुपाधिरूप से आप जगत्के अधिष्ठान हैं एवं समष्टि व्यष्टि रूपों से जगत्के आकार में विवर्तित हैं। हे साम्ब! सदाशिव! शंभो शंकर! आपके चरण ही मेरी शरण हैं।

करुणावरुणालय मयि दास उदासस्तवोचितो न हि भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।१६।।

अन्वय—भो करुणावरुणालय! दासे, मयि, तव, उदासः (औदासीन्यप्रकारः अथवा उदासीनतापूर्णो व्यवहारः) उचितः, न हि, (अस्ति)। हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे करुणा के सागर! हे दयानिधान! मैं तो आपका सेवक हूँ, तब मेरे लिए आपकी इतनी उदासीनता क्यों है? अर्थात् मेरे प्रति आपका इतना उपेक्षापूर्ण व्यवहार उचित नहीं है। अतः हे साम्ब सदाशिव शम्भो! हे कल्याणकारिन्! आपके युगल चरण ही मेरी शरण हैं।

खलसहवासं विघटय घटय सतामेव सङ्गमनिशं भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।१७।।

अन्वय—भो! शिव! खलसहवासम्, विघटय, अनिशम्, सताम्, (एव) सङ्गम्, घटय, हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम् मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे शिव! आप मेरी दुर्जनों की सङ्गति को दूर करें और हमेशा सज्जनों साधुओं की ही सङ्गति बनाये रक्खें। हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरण ही मेरी शरण हैं।

गरलं जगदुपकृतये गिलितं भवता समोऽस्ति कोऽत्र विभो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।१८।।

अन्वय—हे विभो! जगदुपकृतये, (भवता) गरलम्, गिलितम्, (अतः)

अत्र, (अस्मिन् संसारे देवानां मध्ये) भवता, समः, कः, अस्ति, (न कोऽपीत्यर्थः)। हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे प्रभो! इस संसार के उपकार के लिए आपने (समुद्र मन्थन के अवसर पर) विष का पान कर लिया था, अतः इस संसार में देवताओं के बीच में भी, आपके समान परोपकारी देव कौन है? अर्थात् कोई भी नहीं है। अतः हे साम्ब सदाशिव! हे कल्याणकारिन् शम्भो! आपके युगल-चरण ही मेरी शरण हैं।

घनसारगौरगात्र प्रचुरजटाजूटबद्धगङ्ग विभो।
साम्व सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।१९।।

अन्वय—हे घनसारगौरगात्र! हे प्रचुरजटाजूटबद्धगङ्ग! हे विभो! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम् मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे कपूर की तरह स्वच्छ-देह वाले भोलेनाथ! हे घनी जटाओं के मध्य गङ्गा जी को धारण करने वाले गङ्गाधर! हे विभो! हे साम्ब सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणयुगल ही मेरे शरण हैं।

ज्ञप्तिः सर्वशरीरेष्वखण्डिता या विभाति सा त्वं भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।२०।।

अन्वय—भो शिव! या, सर्वशरीरेषु, अखण्डिता, ज्ञप्तिः, विभाति, सा, त्वम्, (एव) हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)

अर्थ—हे शिव! जो सभी शरीरों में अर्थात् प्राणिमात्र में, अखण्डित एक प्रकाशरूप चैतन्य दिखाई देता है, वह भी आप ही हैं, अर्थात् एक ही परमशिव तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है, यह सारा चराचर जगत् तो उसी के विमर्श या शक्ति के नाना स्पन्दों का सुपरिणाम है। अतः अखिल विश्व ही शिवरूप है। इसलिए हे शक्तिसहित शिव! हे परम भट्टारक! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरण ही मेरी शरण हैं।

चपलं मम हृदयकपिं विषयद्रुचरं दृढं बधान विभो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।२१।।

अन्वय—हे विभो! विषयद्रुचरम्, चपलम्, मम, हृदयकपिम्, दृढम्, (यथा स्यात्तथा) बधान। हे, साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम् मे, शरणम् (अस्ति)।

अर्थ—हे प्रभो! विषयरूपी वृक्ष में विचरण करने वाले, चञ्चल मेरे इस हृदयरूपी बन्दर को, आप अच्छी तरह बाँध दें, अर्थात् विषयों में आसक्त मेरे इस चित्त को, आप शान्त कर दें। हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! अब आपके चरण ही मेरे शरण हैं।

छाया स्थाणोरपि तव तापं नमतां हरत्यहो शिव भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।२२।।

अन्वय—भो शिव! अहो, स्थाणोः, अपि, तव, छाया, नमताम्, (जनानाम्) तापम्, हरति, अतः हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम् मे (मम), शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे शिव! आश्चर्य है कि स्थाणु (खूँटा, शाखापत्रहीन वृक्ष) होते हुए भी, आपकी शीतल छाया, आपको प्रणाम करने वाले, विनम्र भक्तों के सन्ताप को दूर करती है! (यहाँ यह विरोध प्रकट किया कि स्थाणु पत्रशाखादि से हीन होते हुए भी उसकी छाया है। वैसे, स्थाणु यह भगवान् शंकर का नाम भी है। इससे भगवान् की सर्वशक्तिमत्ता तथा सब प्रकार का वैभव अभिव्यक्त होता है, शिव होने से वे संसार के ताप का शमन करते हैं।) अतः हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरण ही मेरे शरण हैं।

जय कैलासनिवास प्रमथगणाधीश भूसुरार्चित भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।२३।।

अन्वय—भो कैलासनिवास! हे प्रमथगणाधीश! हे भूसुरार्चित! (त्वम्) जय, हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्! मे शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे कैलासवासी! हे प्रमथगणों के अधीश! हे ब्राह्मणों से पूजित शिव! आपकी जय हो, अर्थात् आप सर्वोत्कृष्ट हैं। हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणयुगल ही मेरे शरण हैं।

झणुतक झङ्किणु झणुतत्किटतक शब्दै र्नटसि महानट भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।२४।।

अन्वय—भो महानट! (त्वम्) झणुतक झङ्किणु झणुतत्किट तक शब्दैः, नटसि, हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे शरणम् (अस्ति)।

अर्थ—हे महानट (नटराज)! आप झणु, तक, झङ्किणु आदि शब्दों के द्वारा अपना ताण्डव नृत्य करते हो। हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे

कल्याण-कारिन्! आपके चरणयुगल ही मेरे शरण हैं।

ज्ञानं विक्षेपावृतिरहितं कुरु मे गुरुस्त्वमेव विभो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।२५।।

अन्वय—हे विभो! (त्वम्) मे ज्ञानम्, विक्षेपावृतिरहितम्, कुरु, त्वम्, एव, (मे) गुरुः, (असि) अतः हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम् मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे प्रभो! कृपया आप आवरण और विक्षेप के सर्वथा विरोधी ज्ञानको मेरे अन्तःकरण में सम्पन्न कर दें, अर्थात् मेरी बुद्धिवृत्ति को स्वच्छ तथा इतना निमर्ल कर दें, जिसमें चैतन्यरूप सरलतया प्रतिफलित हो। आप ही तो मेरे गुरु हैं। इसलिए हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणयुगल ही मेरे शरण हैं।

टङ्कारस्तव धनुषो दलयति हृदयं द्विषामशनिरिव भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।२६।।

अन्वय—भो शिव! अशनिः, इव, तव, धनुषः, टङ्कारः, द्विषाम्, हृदयम्, दलयति, हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे शिव! जो आपके धनुष का टङ्कार है वह व्रज की तरह शत्रुओं के हृदय को विदीर्ण कर देता है। हे पार्वती-सहित शिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणकमल ही मेरे शरण हैं।

ठाकृतिरिव तव माया बहिरन्तःशून्यरूपिणी खलु भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।२७।।

अन्वय—भो शिव! बहिरन्तःशून्यरूपिणी, तव, माया, ठाकृतिः, इव (अस्ति) खलु। हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे शिव! बाहर और अन्दर भी निस्तत्त्व, शून्यरूपा यह जो आपकी माया है, वह ठकार वर्ण की तरह है। हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणयुगल ही मेरे शरण हैं।

डम्बरमम्बुरुहामपि दलयत्यनघं त्वदंघ्रियुगलं भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।२८।।

अन्वय—भो शिव! अनघम्, त्वदंघ्रियुगलम्, अम्बुरुहाम्, अपि, डम्बरम्, दलयति, हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्,

मे शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे शिव! पवित्र आपके जो चरणयुगल हैं, वे पवित्रता व सुन्दरता में कमलों के भी आडम्बर को मात कर रहे हैं। से साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणयुगल ही मेरे शरण हैं।

ढक्काक्षसूत्रशूलद्रुहिणकरोटीसमुल्लसत्कर भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।२६।।

अन्वय—भो शिव! (त्वम्) ढक्काक्षसूत्रशूलद्रुहिणकरोटीसमुल्लसत्करः, (असि) हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे (मम), शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे शिव! आपके कर-कमलों में ढक्का (वाद्यविशेष) रुद्राक्ष माला, त्रिशूल तथा ब्रह्माके कपाल सुशोभित हैं। हे पार्वतीसहितशिव! हे शम्भो! हे कल्याण-कारिन्! आपके चरणकमल ही मेरे शरण हैं।

णाकारगर्भिणी चेच्छुभदा ते शरगति नृणामिह भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।३०।।

अन्वय—भो शिव! चेत्, ते, णाकारगर्भिणी, शरगतिः, (तदा, सा शरगतिः) इह, नृणाम्, शुभदा, (भवति)। हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे शिव! यदि आपके बाणों की गति, णकार के आकार की तरह है, तो भी, वह इस संसार में मनुष्यों के लिए कल्याण-कारक है। अतः हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणकमल ही मेरे शरण हैं।

तव मन्वतिसंजपतः सद्यस्तरति नरो हि भवाब्धिं भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।३१।।

अन्वय—भो शिव! हि, तव, मन्वतिसंजपतः, नरः, सद्यः, भवाब्धिम्, तरति, हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे शिव! निश्चय ही तुम्हारा मंत्र जपने से मनुष्य इस संसार सागर से तत्काल पार हो जाता है। हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणयुगल ही मेरे शरण हैं।

थूत्कारस्तस्य मुखे भूयात्ते नाम नास्ति यस्य विभो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।३२।।

अन्वय—हे विभो! यस्य, मुखे, ते, नाम, नास्ति, तस्य (मुखे) थूत्कारः

भवेत्। हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे विभो! जिस नराधम के मुख में आपका 'ॐ नमः शिवाय' इत्यादि नाम नहीं रहता है, उसके मुख में केवल थूत्कार ही रहता है अर्थात् उसको लोग 'थू थू' करके ही तिरस्कृत करते हैं। अतः हे पार्वतीसहितशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणकमल ही मेरे शरण हैं।

दयनीयश्च दयालुः कोऽस्ति मदन्यस्त्वदन्य इह वद भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।३३।।

अन्वय—भो शम्भो! इह, (संसारे) मदन्यः, दयनीयः, कः, अस्ति, इति, वद, त्वदन्यश्च, दयालुः, कः, आस्ति, इति, च, वद। हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम् मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे शम्भो! हे भोलेनाथ! यह तो बताईए, कि इस संसार में मेरे सिवाय और दयनीय ही कौन है, और आपके सिवाय और (अन्य देवता) दयालु ही कौन है? इसलिए हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणकमल ही मेरे शरण हैं।

धर्मस्थापनदक्ष त्र्यक्ष गुरो दक्षयज्ञशिक्षक भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।३४।।

अन्वय—हे त्र्यक्ष! भो गुरो! दक्षयज्ञशिक्षक! धर्मस्थापनदक्ष! (असि) हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे त्रिनेत्र! हे गुरु! आप दक्ष प्रजापति के यज्ञ के नाशक होते हुए भी धर्म की मर्यादा की प्रतिष्ठा में तत्पर हैं, अर्थात् दक्षप्रजापति के यज्ञके विध्वंसक होते हुए भी धर्म-स्थापना में चतुर हैं, (यद्यपि यज्ञ भी धर्म कार्य ही है, फिर उसका ध्वंस करना धर्म स्थापक के लिए आपाततः अनुचित मालूम पड़ता है, परन्तु दक्षप्रजापति ने अपने यज्ञ में सती (पार्वती जी) का अपमान किया था, यह अपमान भी भगवान् शंकर जी के प्रति ही द्वेषभावना से प्रयुक्त था, अतः यज्ञ के धर्म कर्म होते हुए भी दक्ष के इस अनुचित अहंकार के कारण, वह एक अधार्मिक कार्य ही था, इसीलिए दक्ष प्रजापति के इस अहंकार की शान्ति के लिए भगवान् ने उसके यज्ञ का ध्वंस किया)। अतः हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणयुगल ही मेरे शरण हैं।

ननु ताडितोऽसि धनुषा लुब्धधिया त्वं पुरा नरेण विभो।
साम्ब सदाशिवं शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।३५।।

अन्वय—हे विभो! पुरा, लुब्धधिया, नरेण, धनुषा, त्वम्, (वक्षसि) ताडितः, (असि) ननु, हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे भगवान्! पहले किसी समय (इन्द्रकील पवर्त में तपस्या करते समय) शिकार के लोभ में आकर अर्जुन ने अपने धनुष से (या मुक्के से) तुम्हारी छाती में मारा था, (अर्जुन की परीक्षा के लिए आपने स्वयं माया-सूकर उत्पन्न किया, जिस पर अर्जुन ने बाण मारा था। लड़ने का बहाना बनाकर ठीक उसी समय आपने भी बाण मार दिया, तदनन्तर आपका और अर्जुन का घमासान युद्ध हुआ, अर्जुन की वीरता से प्रसन्न होकर आपने वरदान में उसे दिव्यास्त्र प्रदान किया था।) हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणकमल ही मेरे शरण हैं।

परिमातुं तव मूर्ति नालमजस्तत्परात्परोऽसि विभो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।३६।।

अन्वय—हे विभो! अजः, तव, मूर्तिम्, परिमातुम्, अलम्, न, तत्, (त्वम्) परात्परः, असि! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे प्रभो! ब्रह्मा जी भी आपकी विशाल लिंगमूर्ति का परिमाण नहीं पता लगा सके, तस्मात् आप परात्पर परब्रह्म रूप हैं, अतः हे साम्ब! हे पार्वतीसहितशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणकमल ही मेरे शरण हैं।

फलमिह नृतया जनुषस्त्वत्पदसेवा सनातनेश विभो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।३७।।

अन्वय—हे सनातनेश! हे विभो! इह (संसारे) नृतया, जनुषः, फलम्, त्वत्पदसेवा, (एव भवति)। अतः हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे सनातन ईश! हे विभो! इस संसार में मनुष्यरूप में जन्म लेने का फल तुम्हारे चरणकमलों की सेवा ही है। अतः हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणकमल ही मेरे शरण हैं।

बलमारोग्यं चायुस्त्वद्गुणरुचितां चिरं प्रदेहि विभो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।३८।।

अन्वय—हे विभो! (त्वम् मह्यम्), बलम्, आरोग्यम्, चिरम्, आयुः, त्वद्गुणरुचिताम्, च प्रदेहि। हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे प्रभो! आप तो मुझे बल, आरोग्य (सुन्दर स्वास्थ्य), पूर्ण आयु, तथा अपने गुण व चरितों में रुचि प्रदान करें। हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणयुगल ही मेरे शरण हैं।

भगवन् भर्ग भयापह भूतपते भूतिभूषिताङ्ग विभो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।३६।।

अन्वय—हे भगवन्! हे भर्ग! हे भयापह! हे भूतपते! हे भूतिभूषिताङ्ग! हे विभो! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे षडैश्वर्य-सम्पन्न! हे तेजस्विन्! हे सब प्रकार के भयों को दूर करने वाले! हे प्राणिमात्र के पिता! हे भस्म से विभूषित शरीर वाले! हे विभो! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणकमल ही मेरे शरण हैं।

महिमा तव नहि माति श्रुतिषु हिमानीधरात्मजाधव भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।४०।।

अन्वय—भो हिमानीधरात्मजाधव! श्रुतिषु, तव, महिमा, नहि, माति, हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे पर्वतराजतनया पार्वती के पति! हे विभो! वेदों में वर्णित आपकी महिमा अति विशाल है, अथवा आपकी महिमा इतनी विशाल है कि जो चारों वेदों में भी नहीं समा सकती है। अतः हे पार्वतीसहित शिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणकमल ही मेरे शरण हैं।

यमनियमादिभिरङ्गैर्यमिनो हृदये भजन्ति स त्वं भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।४१।।

अन्वय—भो शिव! यमिनः, यमनियमादिभिः, अङ्गैः, (यं देवम्) हृदये, भजन्ति, सः, (देवः),त्वम्, (एव, असि) अतः हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे शिव! संयमी सन्तजन, यम-नियम-आसनादि योगाङ्गों के द्वारा, जिस देवता का अपने हृदय में ध्यान करते हैं वह (ध्येय) देव भी आप ही

हो। अतः हे पार्वतीसहित शिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणकमल ही मेरे शरण हैं।

रज्जावहिरिव शुक्तौ रजतमिव त्वयि जगन्ति भान्ति विभो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।४२।।

अन्वय—हे विभो! त्वयि, (परमात्मनि) जगन्ति, रज्जौ, अहिः, इव, शुक्तौ, (च) रजतम्, इव, भान्ति, हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव चरणयुगम्, मे (मम), शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे प्रभो! परब्रह्म परमात्मस्वरूप आपमें ही, ये सारे जगत् उस तरह प्रतीत हो रहे हैं, जैसे रस्सी में सर्प की प्रतीति होती है, और सीप में चाँदी की प्रतीति होती है अर्थात् अधिष्ठानभूत सत्य तो रस्सी व सीप हैं, इनमें भ्रान्तिवश सर्प व चाँदी की प्रतीति मात्र हो रही है। इसी प्रकार त्रिकालाबाधित सत्य तो सारे ब्रह्माण्डों के अधिष्ठानभूत आप ही हैं, पर जीवों को पूर्व वासनाओं के संस्कारवश, नित्य शुद्ध बुद्ध आप में, परिदृश्यमान इस प्रपञ्च की प्रतीति होती है। संसार की यह प्रतीति भी उतनी ही मिथ्या है, जितनी कि रज्जु में सर्प की तथा सीप में रजत की। अतः हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणकमल ही मेरे शरण हैं।।४२।।

लब्ध्वा भवत्प्रसादाच्चक्रं विधुरवति लोकमखिलं भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।४३।।

अन्वय—भो शिव! भवत्प्रसादात्, चक्रम्, लब्ध्वा, विधुः, अखिलम्, लोकम्, अवति, हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे शिव! आपकी अनुकम्पा से ही चक्र को प्राप्त कर, विष्णु समस्त लोकों की रक्षा करते हैं। अतः हे पार्वतीसहितशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणकल ही मेरे शरण हैं।

वसुधातद्धरतच्छयरथमौर्वीशर पराकृतासुर भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।४४।।

अन्वय—भो वसुधातद्धरतच्छयरथमौर्वीशर! भो पराकृतासुर! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे पृथ्वी को रथ, शेषनाग को मौर्वी (प्रत्यंचा), और भगवान् विष्णु को बाण बनाने वाले शंकर! हे त्रिपुरासुर को तिरस्कृत करने वाले! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणकमल ही मेरे शरण हैं।

(त्रिपुरासुर के वध के लिए भगवान् शंकर ने पृथ्वी को रथ, सुमेरु पर्वत को धनुष, सूर्य व चन्द्र को रथ के पहिये तथा चक्रपाणि भगवान् विष्णु को बाण बनाया था, जैसा पुष्पदन्ताचार्य-प्रणीत शिवमहिम्नःस्तोत्र के 'रथः क्षोणी यन्ता' इत्यादि श्लोक में कहा है)।

शर्व देव सर्वोत्तम सर्वद दुर्वृत्तगर्वहरण विभो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।४५।।

अन्वय—हे शर्व! हे देव! हे सर्वोत्तम! हे सर्वद! हे दुर्वृत्तगर्वहरण! हे विभो! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम् मे शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे सर्व-सुखद प्रकाशशील देव! हे सब कुछ प्रदान करने वाले सर्वोत्तम! हे दुराचारियों के गर्व को हरण करने वाले विभो! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणकमल ही मेरे शरण हैं।

षड्रिपुषडूर्मिषड्विकारहर सन्मुख षण्मुखजनक विभो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।४६।।

अन्वय—हे षड्रिपुषडूर्मिषड्विकारहर! हे सन्मुख! हे षण्मुखजनक! हे विभो! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे शरणम् (अस्ति)।

अर्थ—हे षड्-रिपु, षड्-ऊर्मि, तथा षड्विकार को हरण करने वाले शंकर! (भगवान् शंकर के भजन व पूजन से, अपने शरीर के अन्दर जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य रूप छै शत्रु हैं, वे नष्ट हो जाते हैं। और हमारे शरीर, मन व प्राण के क्रमशः जन्म, मरण, शोक, मोह और भूख, प्यास ये छै ऊर्मियाँ भी नष्ट हो जाती हैं। अथ च जन्म, स्थिति, बढ़ना, परिणत होना, जीर्ण होना तथा नष्ट होना, ये छै भाव विकार भी नष्ट हो जाते हैं)। हे सुन्दर मुख वाले! हे कार्तिकेय के जनक! हे विभो! हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणयुगल ही मेरे शरण हैं।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेत्येतल्लक्षणलक्षित भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।४७।।

अन्वय—भो शिव! (त्वम्) सत्यम्, ज्ञानम्, अनन्तम्, ब्रह्म, इति, एतत् लक्षणलक्षितः, (असि) हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम्, मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे सदाशिव! ब्रह्म का लक्षण है—जो सत्य ज्ञान व अनन्त है। इस

लक्षण से लक्ष्य ब्रह्म आप ही हैं। (तीनों कालों में जिसकी सत्ता का निषेध असम्भव है वह सत्य है। अज्ञान का विरोधी ज्ञान है। व्यापक को अनन्त कहते हैं। यही शिव का स्वरूप है।) ऐसे आपके चरणद्वय मेरे रक्षक हैं।

हाहा-हूहू-मुखसुरगायकगीतापदानपद्य विभो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।४८।।

अन्वय—स्पष्ट है।

अर्थ—हे विभो! हाहा, हूहू आदि जिनमें मुख्य हैं, ऐसे गन्धर्वों के द्वारा आपके पराक्रमादि कर्म गीतों में गाये गये हैं। अतः हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणकमल ही मेरे शरण हैं।

ळादि र्न हि प्रयोगस्तदन्तमिह मङ्गळं सदास्तु विभो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।४९।।

अन्वय—हे विभो! हि, इह (कोशादौ) ळादिः, प्रयोगः, न (अतः) तदन्तम्, मङ्गळं (पदं विन्यस्य) सदा मङ्गलम्, अस्तु, (इत्यर्थये) अतः हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव,चरणयुगम् मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे विभु! ळ-वर्ण से प्रारंभ होने वाला कोई शब्द नहीं अतः ळ-वर्ण से समाप्त होने वाले 'मंगळ' शब्द का यहाँ विन्यास कर आपसे सर्वदा मंगल की प्रार्थना करता हूँ। हे साम्ब सदाशिव शम्भु शंकर! आपके चरणद्वय मेरे शरण हैं। (इस स्तोत्र में अकार आदि क्रम से श्लोक रचे गये हैं। ळ-वर्ण भी वर्णमाला में क्वचित् पढा जाता है। तदनुसार एक श्लोक ळ से प्रारंभ होना चाहिये किंतु ऐसा शब्द अप्रसिद्ध होने से ळ से समाप्त होने वाला शब्द यहाँ रखा है।)

क्षणमिव दिवसान्नेष्यति त्वत्पदसेवाक्षणोत्सुकः शिव भो।
साम्ब सदाशिव शम्भो शंकर शरणं मे तव चरणयुगम्।।५०।।

अन्वय—भो शिव! (एष जनः मल्लक्षणो वा जनः) त्वत्पदसेवाक्षणोत्सुकः, सन्, दिवसान्, क्षणम्, इव, नेष्यति, अतः हे साम्ब! हे सदाशिव! हे शम्भो! हे शंकर! तव, चरणयुगम् मे, शरणम्, (अस्ति)।

अर्थ—हे शिव! यह सेवक आपके चरणकमलों की सेवारूप महोत्सव में, उत्कण्ठित या उत्साहित होकर, अपने जीवन के सारे दिनों को, एक क्षण की तरह बितायेगा। अतः हे पार्वतीसहित शिव! हे शम्भो! हे शंकर! आपके चरणकमल ही अब मेरे शरण हैं।

दशश्लोकी स्तुतिः

साम्बो नः कुलदैवतं पशुपते साम्ब त्वदीया वयं
साम्बं स्तौमि सुरासुरोरगगणाः साम्बेन संतारिताः।
साम्बायास्तु नमो मया विरचितं साम्बात्परं नो भजे
साम्बस्यानुचरोऽस्म्यहं मम रतिः साम्बे परब्रह्मणि।।१।।

अन्वय—हे पशुपते! नः (अस्माकम्) कुलदैवतम्, साम्बः, (अस्ति) हे साम्ब! वयम्, त्वदीयाः, (स्मः)। (अहम्) साम्बम्, स्तौमि। साम्बेन, (सर्वे) सुरासुरोरगगणाः, संतारिताः। मया, विरचितम्, नमः, साम्बाय (अस्तु)। (अहम्) साम्बात्, परम्, (कमप्यन्यम्, देवम्) नो, भजे। (यतो हि) अहम्, साम्बस्य, अनुचरः, अस्मि। मम रतिः साम्बे परब्रह्मणि (अस्ति)।

अर्थ—हे पशुपते! हमारे कुलदेवता तो साम्ब (पार्वतीसहित शिव ही) हैं। हे साम्ब! पार्वतीसहित शिव! हम सब तो तुम्हारे ही हैं। मैं पार्वती-सहित शिव जी की स्तुति करता हूँ। शिव जी ने ही सभी सुर-असुर नाग आदि गणों का उद्धार किया है। मैं भवानी सहित शंकर के लिए नमस्कार करता हूँ। मैं पार्वती व शिव (साम्ब) के अतिरिक्त किसी भी अन्य देवता का भजन नहीं करता हूँ, क्योंकि मैं उन्हीं का सेवक हूँ। अतः परब्रह्मस्वरूप जो साम्ब (पार्वती सहित शिव) हैं, उन्हीं में मेरा प्रेम या अभिरुचि है। (यहाँ 'साम्ब' शब्द के सातों विभक्तियों के एकवचनान्त रूप दिखाये गये हैं।)

विष्ण्वाद्याश्च पुरत्रयं सुरगणा जेतुं न शक्ताः स्वयं
यं शंभुं भगवन् वयं तु पशवोऽस्माकं त्वमेवेश्वरः।
स्वस्वस्थाननियोजिताः सुमनसः स्वस्था बभूवुस्तत-
स्तस्मिन्मे हृदयं सुखेन रमतां साम्बे परब्रह्मणि।।२।।

अन्वय—यम् शम्भुम् (विना) विष्ण्वाद्याः, सुरगणाः, च पुरत्रयम्, जेतुम्, न शक्ताः (आसन्) हे भगवन्! वयम्, तु, पशवः, अस्माकम्, त्वम्, एव, ईश्वरः (असि) ततः, स्वस्वस्थाननियोजिताः, सुमनसः, स्वस्थाः, बभूवुः, तस्मिन्, परब्रह्मणि, साम्बे, मे, हृदयम्, सुखेन, रमताम्।

अर्थ—विष्णु आदि सुरश्रेष्ठ भी जिस शंकर के बिना, त्रिपुर को जीतने में समर्थ नहीं हो सके, उसी त्रिपुर को भगवान् शंकर ने पृथ्वी सुमेरु व विष्णु

आदि को रथ धनुष व बाणादि बनाकर सहज ही जीत लिया, तब से अपने-अपने स्थान में नियुक्त देवगण स्वस्थ व सुखी हुए। अतः हे भगवन्! पशुओं के समान अज्ञानी हम लोगों के तो आप ही ईश्वर हैं। ऐसे परब्रह्मस्वरूप आप (साम्ब) में सुखपूर्वक (एकाग्रता के साथ) तल्लीनता के साथ मेरा हृदय (अन्तःकरण) रमता रहे।

क्षोणी यस्य रथो रथाङ्गयुगलं चन्द्रार्कबिम्बद्वयं
कोदण्डः कनकाचलो हरिरभूद् बाणो विधिः सारथिः।
तूणीरो जलधि ईयाः श्रुतिचयो मौर्वी भुजङ्गाधिप-
स्तस्मिन्मे हृदयं सुखेन रमतां साम्बे परब्रह्मणि।।३।।

अन्वय—यस्य (भगवतः शिवस्य त्रिपुरविजयावसरे), क्षोणी, रथः, अभूत्, चन्द्रार्कबिम्बम्, रथाङ्गयुगलम्, अभूत्, कनकाचलः, कोदण्डः, अभूत्, हरिः, बाणः, अभूत्, विधिः, सारथिः, अभूत्, जलधिः, तूणीरः, अभूत्, श्रुतिचयः, हया, अभूवन्, भुजङ्गाधिपः, मौर्वी, अभूत्, तस्मिन्, परब्रह्मणि, साम्बे, मे, हृदयम्, सुखेन, रमताम्।

अर्थ—त्रिपुरविजय के अवसर पर, जिस भगवान् शंकर ने, पृथ्वी को रथ बनाया, सूर्य व चन्द्रमा के बिम्बों को रथ के पहिये बनाये, सुमेरु पर्वत को धनुष बनाया, और भगवान् विष्णु को बाण बनाया, ब्रह्मा जिनके सारथि हुए, समुद्र तूणीर (भत्था) बना, वेद घोड़े बने, सर्पराज वासुकि को जिन्होंने धनुष की डोरी बनाया, उन्हीं परब्रह्मरूप साम्ब शिव में मेरा हृदय सुखपूर्वक रमण करे।

येनापादितमङ्गजाङ्गभसितं दिव्याङ्गरागैः समं
येन स्वीकृतमब्जसंभवशिरः सौवर्णपात्रैः समम्।
येनाङ्गीकृतमच्युतस्य नयनं पूजारविन्दैः समं
तस्मिन् मे हृदयं सुखेन रमतां साम्बे परब्रह्मणि।।४।।

अन्वय—येन (शिवेन) अङ्गजाङ्गभसितम्, दिव्याङ्गरागैः, समम्, आपादितम्, येन, सौवर्णपात्रैः, समम्, अब्जसंभवशिरः, स्वीकृतम्, येन, पूजारविन्दैः, समम्, अच्युतस्य, नयनम्, अङ्गीकृतम्, तस्मिन्, परब्रह्मणि, साम्बे, मे, हृदयम्, सुखेन, रमताम्।

अर्थ—जो भगवान् शंकर, दिव्य अङ्गराग (सुगन्धित लेपन) के समान श्मशान के भस्म को रमाते हैं, और सुवर्ण-रचित पात्र के समान जिन्होंने ब्रह्मा के शिरःकपाल, किं वा नरकपाल रूप खप्पर को भिक्षा पात्र के रूप में

स्वीकृत किया है, पूजा में समर्पित कमलों के साथ-साथ जिन्होंने भगवान् विष्णु के नयन-कमल को भी स्वीकार किया, (भगवान् विष्णु प्रतिदिन हजार कमलों से भगवान् शिव का पूजन किया करते थे। एक दिन किसी कारण से एक कमल का फूल कम हो गया। अपने नियम की पूर्ति के लिए तब भगवान् विष्णु ने अपने नेत्र कमल को कमल पुष्प के रूप में समर्पित किया, जिसको भगवान् शिव ने सहर्ष स्वीकार किया) उन्हीं परब्रह्म स्वरूप भगवान् साम्ब शिव में मेरा हृदय निरन्तर रमण करे।

गोविन्दादधिकं न दैवतमिति प्रोच्चार्य हस्तावुभा-
वुद्धृत्याथ शिवस्य सन्निधिगतो व्यासो मुनीनां वरः।
यस्य स्तम्भितपाणिरानतिकृता नन्दीश्वरेणाभवत्
तस्मिन् मे हृदयं सुखेन रमतां साम्बे परब्रह्मणि।।५।।

अन्वय—मुनीनाम्, वरः, व्यासः, 'गोविन्दात् अधिकम्, न दैवतम्' इति, उभौ, हस्तौ, उद्धृत, प्रोच्चार्य, अथ, शिवस्य, सन्निधिम्, गतः यस्य आनतिकृता नन्दीश्वरेण, स्तम्भितपाणिः, अभवत्, तस्मिन्, परब्रह्मणि, साम्बे, मे हृदयं, सुखेन, रमताम्।

अर्थ—मुनियों में श्रेष्ठ व्यास जी ने, दोनों हाथ उठाकर यह घोषणा कर दी कि 'गोविन्द-श्रीकृष्ण से अधिक मान्य देव और नहीं है,' फिर जब वे शिवसन्निधि में पहुँचे तब विनम्र नन्दीश्वर ने व्यास के हाथ ही स्तम्भित (जडवत्) कर दिये! जिनके गण का ऐसा प्रताप है उसी परब्रह्म रूप साम्ब शिव में मेरा चित्त निरन्तर आनन्दपूर्वक रमण करता रहे। (यह ब्रह्माण्डपुराण (अध्याय २८) में वर्णित है।)

आकाशश्चिकुरायते दशदिशाभोगो दुकूलायते
शीतांशुः प्रसवायते स्थिरतरानन्दः स्वरूपायते।
वेदान्तो निलयायते सुविनयो यस्य स्वभावायते
तस्मिन् मे हृदयं सुखेन रमतां साम्बे परब्रह्मणि।।६।।

अन्वय—यस्य (प्रभोः शिवस्य) आकाशः, चिकुरायते, दशदिशाभोगः, दुकूलायते, शीतांशुः प्रसवायते, स्थिरतरानन्दः (यस्य) स्वरूपायते, वेदान्तः, (उपनिषदादिशास्त्रविशेषः) निलयायते, सुविनयः, (यस्य) स्वभावायते तस्मिन्, परब्रह्मणि, साम्बे, मे हृदयम्, सुखेन, रमताम्।

अर्थ—आकाश जिस परमात्मा शिव के केशों के समान है अर्थात् केशों का कार्य नीला आकाश कर रहा है; दशों दिशाओं का विस्तार, जिनके लिए

दुकूल का काम कर रहा है, इसीलिए भगवान् को दिगम्बर भी कहते हैं; शीतल किरणों वाला बाल-चन्द्रमा जिनके मस्तक का फूल बन रहा है; शाश्वत आनन्द ही जिसका स्वभाव है; वेदान्त शास्त्र, उपनिषदादि ज्ञानकाण्ड, ही जिनका निवास स्थान किं व पता है, या परिचय है। (अर्थात् उक्त शास्त्रों के रहस्यों को जानकर ही हम सच्चिदानन्दस्वरूप वाले शिव का साक्षात्कार कर सकते हैं, इसलिए उपनिषदादि ग्रन्थ शिव के प्रतिपादक हैं); भगवान् शिव स्वयं सरल स्वभाव वाले भोले नाथ हैं (भगवान् शंकर का स्वभाव बहुत ही सीधा, पर दुःख को दूर करने में प्रवण है, इसी लिए ये भोले बाबा के नाम से विख्यात हैं); ऐसे परब्रह्मस्वरूप साम्ब सदाशिव में मेरा चित्त आनन्दपूर्वक रमता रहे।

विष्णु र्यस्य सहस्रनामनियमादम्भोरुहाण्यर्पय-
न्नेकोनोपचितेषु नेत्रकमलं नैजं पदाब्जद्वये।
संपूज्यासुरसंहतिं विदलयंस्त्रैलोक्यपालोऽभव-
त्तस्मिन् मे हृदयं सुखेन रमतां साम्बे परब्रह्मणि।।७।।

अन्वय–(भगवान्) विष्णुः, यस्य शिवस्य पदाब्जद्वये, सहस्रनामनियमात्, (प्रतिदिनं भगवतश्चरणकमले, कमलसहस्रैरर्चनीये, इति कृत्वा, इति नियमं विधाय वा सहस्रनामानुसारम् सहस्राणि) अम्भोरुहाणि अर्पयन्, (आसीत्) (एकस्मिन् दिवसे) एकोनोपचितेषु, (एकं कमलपुष्पं न्यूनं बभूव, सः, तदा, तत्स्थाने) नैजम्, नेत्रकमलम्, (यस्य पदाब्जद्वये) समर्पयामास। एवं प्रकारेण, शिवम्, संपूज्य (प्रसन्नात्ततः प्रसादरूपेण, चक्रम्, प्राप्य) असुरसंहतिम्, विदलयन्, त्रैलोक्यपालः, अभवत्, एतादृशे, तस्मिन्, परब्रह्मणि, साम्बे, मे हृदयम्, सुखेन, रमताम्।

अर्थ–भगवान् विष्णु ने तो यह नियम ही बना लिया कि प्रतिदिन एक हज़ार नामों के द्वारा एक हज़ार कमलों से भगवान् शंकर के चरणकमलों की पूजा करना। एक दिन पूजा के समय जब एक कमल की किसी कारणवश कमी हो गई, तो भगवान् विष्णु ने उस कमल की पूर्ति के लिए अपना एक नेत्र कमल ही भगवान् के चरणकमलों में समर्पित कर दिया, जिससे प्रसन्न होकर शिव ने उन्हें चक्रायुध प्रदान किया, उसी चक्र से दानवों का संहार कर भगवान् तीनों लोकों के पालक हुए। इस प्रकार भगवान् विष्णु के उपर भी जो अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं, ऐसे परब्रह्म साम्ब सदाशिव में, मेरा हृदय हमेशा रमण करता रहे।

शौरिं सत्यगिरं वराहवपुषं पादाम्बुजादर्शने
चक्रे यो दयया समस्तजगतां नाथं शिरोदर्शने।
मिथ्यावाचमपूज्यमेव सततं हंसस्वरूपं विधिं
तस्मिन् मे हृदयं सुखेन रमतां साम्बे परब्रह्मणि।।८।।

अन्वय—यः (शिवः) (निजे) पादाम्बुजादर्शने, दयया, समस्तजगताम्, नाथम्, वराहवपुषम्, शौरिम्, सत्यगिरम्, चक्रे, (तथा च) शिरोदर्शने, (विषये) मिथ्यावाचम्, हंसस्वरूपम्, (अपि) विधिम्, सततम्, अपूज्यम्, एव (चक्रे) तस्मिन् (तादृशे) परब्रह्मणि, साम्बे, मे (मम) हृदयम्, सुखेन, रमताम्।

अर्थ—जो भगवान् शंकर अपने चरण कमलों के न दिखाई देने के विषय में, वराहरूप को धारण किये हुए सत्यवादी भगवान् विष्णु को दया करके, समस्त संसार का पालक प्रभु बनाये, तथा अपने शिर के दर्शन के दिखाई देने के विषय में, मिथ्या वचन बोलने वाले, हंसरूपधारी ब्रह्मा को अपूज्य ही माने, उन्हीं परब्रह्म-स्वरूप साम्ब सदाशिव में मेरा हृदय आनन्द पूर्वक रमण करे। (उक्त पद्य का पूरा प्रसङ्ग इस प्रकार है : एक बार ब्रह्मा व विष्णु में अपनी-अपनी महत्ता के विषय में विवाद हो गया। दोनों निर्णय के लिए भगवान् शंकर के पास गये, वहाँ उन्होंने यही प्रश्न रक्खा कि 'हम दोनों में से कौन बड़ा है?' भगवान् शंकर ने उन दोनों की महत्ता के निर्णय के लिए यही परीक्षा रक्खी कि 'जो पाताल व आकाश में जाकर मेरे लिङ्गके अन्त का पता लगा लेगा, वही बड़ा माना जायेगा। इस पर ब्रह्मा जी हंस का रूप लेकर आकाश में जाने को राजी हुए और भगवान् विष्णु वराहरूप धारण कर पाताल को गये। पाताल में भी उन्हें भगवान् के शिवलिङ्ग की कोई थाह नहीं मिली। उन्होंने आकर भगवान् से सच-सच कह दिया कि 'भगवान्! बहुत ढूँढने पर भी आपके लिङ्ग के अंत का हमें कोई पता नहीं लगा।' इनकी सत्यवादिता से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने उन्हें तीन लोकों का स्वामी, पालक व पूज्य बना दिया। इसके विपरीत, हंसरूप ब्रह्मा स्वर्ग लोक में गये, वहाँ उन्होंने लिङ्ग के अन्वेषण में अधिक परिश्रम न करके, कामधेनु व केतकी पुष्प को झूठा गवाह बनाकर शीघ्र स्वर्ग से वापिस आकर भगवान् शिव से कह दिया कि, 'भगवान्! मैंने तो आपके लिङ्ग का अन्त पा लिया, जिसके साक्षी ये कामधेनु तथा केतकी पुष्प हैं।' भगवान् शंकर जब अन्तर्यामी हैं तो फिर किसी देश अथवा काल की कोई बात उनसे छिपी कैसे रह सकती है? उन्होंने मुस्कराकर कहा 'तुमने मेरे लिङ्ग के अन्वेषण में जो कुछ किया,

वह मैं सब जानता हूँ, और जालसाजी के लिए तुझे शाप भी देता हूँ कि भूलोक में तुम्हारी पूजा नहीं होगी। और मिथ्या साक्षी जो कामधेनु व केतकी हैं, उन्हें भी शाप देता हूँ कि, कामधेनु भूलोक में विष्ठा खायेगी, और इस केतकी पुष्प से मेरी पूजा नहीं होगी।' अतः शास्त्रों में लिखा है कि 'न केतक्या सदाशिवम्' इत्यादि।)

यस्यासन् धरणीजलाग्निपवनव्योमार्कचन्द्रादयो
विख्यातास्तनवोऽष्टधा परिणता नान्यत्ततो वर्तते।
ओंकारार्थविवेचनी श्रुतिरियं चाचष्ट तुर्यं शिवं
तस्मिन् मे हृदयं सुखेन रमतां साम्बे परब्रह्मणि।९।।

अन्वय—यस्य (विभोः) धरणीजलाग्निपवनव्योमार्कचन्द्रादयः, विख्याताः, अष्टधा, परिणताः, तनवः, आसन्, ततः, अन्यत्, (किमपि) न वर्तते, ओंकारार्थविवेचनी, इयम्, श्रुतिः, (यम्) शिवम्, तुर्यम् च, आचष्ट, तस्मिन्, (तुरीये) परब्रह्मणि, साम्बे मे (मम) हृदयम्, सुखेन रमताम्।

अर्थ—जिस प्रभु (भगवान् शंकर) की पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र व यजमान ये प्रसिद्ध आठ रूपों में परिणत मूर्तियाँ हैं, संसार में इनसे अतिरिक्त कौन-सी चीज़ है! स्मृतियों व पुराणों में पृथिवी जल सूर्य चन्द्रादि को भगवान् शंकर की ही मूर्ति बतलाया गया है। जैसा कि विष्णु पुराण में भी कहा है

सूर्यो जलं मही वह्नि र्वायुराकाशमेव च।
दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः स्मृताः।।

महाकवि कालिदास ने भी 'अभिज्ञानशाकुन्तल' नामक अपने नाटक में मङ्गलाचरण (नान्दी) में, इन्हीं अष्टमूर्तियों से युक्त शिव की स्तुति की है, और 'प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नः' कहकर इन्हें प्रत्यक्ष माना है। यद्यपि 'न्यायदर्शन' आकश व वायु को प्रत्यक्ष न मानकर अनुमेय मानता है, तथापि वेदान्तदर्शन में इन सबको प्रत्यक्ष ही माना है।) एवम् ॐकार के अर्थ का विवेचन करने वाली श्रुति जिस शिव को 'तुरीय' (नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त चैतन्यरूप) मानती है, उसी परब्रह्मस्वरूप साम्ब सदाशिव में मेरा हृदय आनन्दपूर्वक रमता रहे।

विष्णुब्रह्मसुराधिपप्रभृतयः सर्वेऽपि देवा यदा
सम्भूताज्जलधेर्विषात्परिभवं प्राप्तास्तदा सत्वरम्।
तानार्ताञ्शरणागतानिति सुरान् योऽरक्षदर्धक्षणा-
त्तस्मिन् मे हृदयं सुखेन रमतां साम्बे परब्रह्मणि।।१०।।

अन्वय—यदा, विष्णुब्रह्मसुराधिपप्रभृतयः, सर्वे, अपि, देवाः, जलधेः, सम्भूतात्, विषात् परिभवम्, प्राप्ताः, तदा, तान्, आर्तान्, सुरान्, शरणागतान् इति, सत्वरम्, अर्धक्षणात्, यः, अरक्षत. तस्मिन्, परब्रह्मणि, साम्बे, मे (मम) हृदयम्, सुखेन, रमताम्।

अर्थ—समुद्र के मन्थन के अवसर पर समुद्र के प्रथम मन्थन से निकले हुए विष से, जब ब्रह्मा, विष्णु व इन्द्रादि देवता भी, भयभीत हो गये, तब उसी समय शरणागत दीन उन देवताओं की जिसने स्वयं विषपान के द्वारा रक्षा की, उन्हीं परब्रह्मस्वरूप साम्ब सदाशिव में मेरा हृदय निरन्तर रमता रहे।

दक्षिणामूर्तिवर्णमालास्तोत्रम्

ॐ इत्येतद्यस्य बुधैर्नाम गृहीतं
यद्भासेदं भाति समस्तं वियदादि।
यस्याज्ञातः स्वस्वपदस्था विधिमुख्या-
स्तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।१।।

अन्वय—यस्य (दक्षिणामूर्तेः) बुधैः, 'ओम्' इति, एतत्, नाम, गृहीतम्, यद्भासा, इदम्, समस्तम्, वियदादि, भाति, यस्य, आज्ञातः, विधिमुख्याः, स्वस्वपदस्थाः,भवन्ति, तम्, प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम्, कलयामि।

अर्थ—जिस दक्षिणामूर्ति भगवान् का, विद्वान् मनीषी 'ओम्' यह नाम ग्रहण करते हैं; जिनके प्रकाश से यह सारा आकाशादि प्रपञ्च प्रकाशित होता है, जिसकी आज्ञा से ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि देव अपने-अपने पदों में स्थित होते हैं, उन्हीं प्रत्यक् चैतन्य स्वरूप भगवान् दक्षिणामूर्ति की मैं आराधना करता हूँ।

नम्राङ्गाणां भक्तिमतां यः पुरुषार्थान्
दत्त्वा क्षिप्रं हन्ति च तत्सर्वविपत्तीः।
पादाम्भोजाधस्तनितापस्मृतिमीशं
तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।२।।

अन्वय—यः, नम्राङ्गाणाम्, भक्तिमताम्, (कृते) पुरुषार्थन्, दत्वा, तत्सर्वविपत्तीः च, क्षिप्रम्, हन्ति, तम् पादाम्भोजाधस्तनितापस्मृतिम्, ईशम्, प्रत्यञ्चम् दक्षिणवक्त्रम्, कलयामि।

अर्थ–जो भगवान् (दक्षिणामूर्ति) विनय से नम्र हुए अपने भक्तों को, चारों पुरुषार्थ (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) प्रदान करके, शीघ्र उनकी सारी विपत्तियों को दूर करते हैं, और जो अपस्मार को अपने चरणकमलों से नष्ट करते हैं, ऐसे परमेश्वर प्रत्यक् चैतन्य स्वरूप उस दक्षिणामूर्ति की मैं आराधना करता हूँ। (दक्षिणामूर्ति के पैर से दबे राक्षस का नाम अपस्मार है। वेद में तत्त्वज्ञान को स्मृति भी कहा है अतः गलत ज्ञान या भ्रम ही अपस्मार है जिसे भगवान् ही नष्ट करते हैं तभी सारी विपत्ति दूर होती है।)

मोहध्वस्त्यै वैणिकवैय्यासिकिमुख्याः
संविन्मुद्रापुस्तकवीणाक्षगुणान्यम्।
हस्ताम्भोजे बिभ्रतमाराधितवन्त-
स्तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।३।।

अन्वय–संविन्मुद्रापुस्तकवीणाक्षगुणान्, हस्ताम्भोजैः, बिभ्रतम्, यम्, मोह-ध्वस्त्यै, वैणिकवैय्यासिकिमुख्याः, आराधितवन्तः, तम्, प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम् कलयामि।

अर्थ–अपने कर-कमलों द्वारा, जिन्होंने ज्ञानमुद्रा, पुस्तक, वीणा व अक्षमाला को धारण किया है, और अपने-अपने मोह (अज्ञान) की निवृत्ति के लिए नारद-व्यास आदि मुनिश्रेष्ठों ने जिनकी आराधना की है, उन्हीं प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप भगवान् दक्षिणामूर्ति की मैं आराधना करता हूँ।

भद्रारूढं भद्रदमाराधयितॄणां
भक्तिश्रद्धापूर्वकमीशं प्रणमन्ति।
आदित्या यं वाञ्छितसिद्ध्यै करुणाब्धिं
तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।४।।

अन्वय–आदित्याः, (स्वकीय-) वाञ्छितसिद्ध्यै, करुणाब्धिम्, आराधयितॄणाम्, भद्रदम, भद्रारूढम्, यम्, ईशम्, भक्तिश्रद्धापूर्वकम्, प्रणमन्ति, तम्, प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम् कलयामि।

अर्थ–देवता लोग (अथवा द्वादश आदित्य) अपनी-अपनी अभिलाषा की सिद्धि के लिए, करुणानिधि तथा आराधकों का कल्याण करने वाले, भद्रासन से बैठे जिस परमेश्वर को, भक्ति व श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हैं, उसी प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप भगवान् दक्षिणामूर्ति की मैं आराधना करता हूँ।

गर्भान्तस्थाः प्राणिन एते भवपाश-
च्छेदे दक्षं निश्चितवन्तः शरणं यम्।

आराध्यांघ्रिप्रस्फुरदम्भोरुहयुग्मं

तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।५।।

अन्वय–एते गर्भान्तस्थाः, प्राणिनः (प्राणिनाम्) शरणम्, यम्, भवपाशच्छेदे, दक्षम् अंघ्रिप्रस्फुरदम्भोरुहयुग्मम्, आराध्य, निश्चितवन्तः तम्, प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम्, कलयामि।

अर्थ–ये गर्भस्थ प्राणी (गर्भ में स्थित जीव) खिलते कमल के समान चरणयुगल की आराधना कर प्राणिमात्र के रक्षक, जिस परमेश्वर को सांसारिक प्रपञ्च को दूर करने में कुशल समझते हैं (मैं) उसी प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप भगवान् दक्षिणामूर्ति की आराधना करता हूँ।

वक्त्रं धन्याः संसृतिवार्धेरतिमात्राद्

भीताः सन्तः पूर्णशशाङ्कद्युति यस्य।

सेवन्तेऽध्यासीनमनन्तं वटमूलं

तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।६।।

अन्वय–संसृतिवार्धेः, अतिमात्राद्, भीताः, सन्तः, धन्याः, यस्य, पूर्णशशाङ्कद्युति, वक्त्रम्, सेवन्ते, तम्, वटमूलम्, अध्यासीनम्, अनन्तम्, प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम् कलयामि।

अर्थ–इस संसार सागर से अत्यन्त भयभीत हुए जो साधु-महात्मा लोग, पूर्णचन्द्र के समान कान्ति वाले, उन दक्षिणामूर्ति भगवान् का मुख देखते हैं, वस्तुतः वे धन्य हैं। वटवृक्ष के नीचे समासीन अनन्त प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप उन्हीं भगवान् दक्षिणामूर्ति की आराधना करता हूँ।

तेजःस्तोमैरङ्गदसंघट्टितभास्व-

न्माणिक्योत्थै र्भासितविश्वो रुचिरैर्यः।

तेजोमूर्तिं खानिलतेजःप्रमुखाब्धिं

तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।७।।

अन्वय–यः, अङ्गदसंघट्टितभास्वन्माणिक्योत्थैः, रुचिरैः, तेजःस्तोमैः, भासित-विश्वः (अस्ति) तम्, खानिलतेजःप्रमुखाब्धिम्, तेजोमूर्तिम्, प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम्, कलयामि।

अर्थ–जो भगवान्, अपने माणिक्य मणि से बने हुए अङ्गद (बाजूबन्ध) के संघर्षण से निकले हुए सुन्दर व उज्ज्वल तेजःपुञ्ज से समस्त विश्व को प्रकाशित करते हैं, ऐसे आकाश की तरह विस्तृत तथा अग्नि की तरह प्रदीप्त प्रभा के सागर स्वरूप, उस तेजोमूर्ति प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप भगवान् दक्षिणामूर्ति

की मैं आराधना करता हूँ।

दध्याज्यादिद्रव्यककर्माण्यखिलानि
त्यक्त्वा कांक्षां कर्मफलेष्वत्र करोति।
यज्जिज्ञासारूपफलार्थी क्षितिदेव-
स्तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।८।।

अन्वय–क्षितिदेवः, यज्जिज्ञासारूपफलार्थी (सन्) कर्मफलेषु, कांक्षाम्, त्यक्त्वा, अत्र, अखिलानि, दध्याज्यादिद्रव्यककर्माणि, करोति, तम्, प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम् कलयामि।

अर्थ–जिसकी जिज्ञासारूप फल चाहने वाला ब्राह्मण कर्मों के विविध फलों की आकांक्षा छोड़कर साधकावस्था में उन सभी विहित कर्मों का अनुष्ठान करता है जिनमें दही घी आदि द्रव्यों का उपयोग होता है, उस दक्षिणामूर्तिरूप प्रत्यगात्मा की मैं आराधना करता हूँ।

क्षिप्रं लोके यं भजमानः पृथुपुण्यः
प्रध्वस्ताधिः प्रोज्झितसंसृत्यखिलार्तिः।
प्रत्यग्भूतं ब्रह्म परं सन्रमते य-
स्तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।९।।

अन्वय–लोके, यम्, (दक्षिणामूर्तिम्) भजमानः, (जनः) क्षिप्रम्, पृथुपुण्यः, प्रध्वस्ताधिः, प्रोज्झितसंसृत्यखिलार्तिः, (च भवति तथा च) प्रत्यग्भूतम्, परम् ब्रह्म, सन्, रमते, तम्, प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम्, कलयामि।

अर्थ–इस संसार में दक्षिणामूर्ति भगवान् का भजन करता हुआ मनुष्य, जल्दी ही धर्मात्मा हो जाता है, और मानसिक व्यथाओं से मुक्त होकर समस्त सांसारिक सन्तापों से रहित होता हुआ, अपने जीवत्व अल्पज्ञत्वादि धर्मों को भी छोड़कर, जिस परब्रह्म में लीन होकर शाश्वतिक आनन्द प्राप्त करता है, उसी प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप भगवान् दक्षिणामूर्ति की मैं आराधना करता हूँ।

णानेत्येवं यन्मनुमध्यस्थितवर्णान् भक्ताः काले वर्णगृहीत्यै प्रजपन्तः।
मोदन्ते संप्राप्तसमस्तश्रुतितन्त्रास्तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।१०।।

अन्वय–संप्राप्तसमस्तश्रुतितन्त्राः, भक्ताः, वर्णगृहीत्यै, काले णाना, इति, एवम्, यन्मनुमध्यस्थितवर्णान्, प्रजपन्तः, मोदन्ते, तम्, प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम्, कलयामि।

अर्थ–सम्पूर्ण वेद व शास्त्रों के ज्ञान को प्राप्त कर, भक्त लोग, माला आदि पर विन्यास करते समय अक्षरों का ग्रहण करने के लिए जिस के मत्र

में आये णा, न इत्यादि वर्णों को जपते हुए प्रसन्न होते हैं, उसी प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप भगवान् दक्षिणामूर्ति की मैं आराधना करता हूँ।

मूर्तिश्छायानिर्जित-मन्दाकिनि-कुन्द-
प्रालेयाम्भोराशिसुधाभूतिसुरेभा।
यस्याभ्राभा हासविधौ दक्षशिरोधि-
स्तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।११।।

अन्वय—हासविधौ, दक्षशिरोधिः, अभ्राभा, यस्य, मूर्तिः, छायानिर्जित-मन्दाकिनिकुन्दप्रालेयाम्भोराशिसुधाभूतिसुरेभा, (भवति) तम्, प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम्, कलयामि।

अर्थ—जिसकी आकाश-सी स्वच्छ मूर्ति अपनी शोभा से आकाश-गंगा, कुन्दपुष्प, हिम, समुद्र, चूना, भस्म और ऐरावत को भी मात कर देती है एवं हँसी-हँसी में दक्षके सिर के लिये आपत्ति भी बन जाती है, उस प्रत्यगात्मरूप भगवान् दक्षिणामूर्ति की आराधना करता हूँ।

तप्तस्वर्णच्छायजटाजूटकटाह-
प्रोद्यद्वीचीवल्लिविराजत्सुरसिन्धुम्।
नित्यं सूक्ष्मं नित्यनिरस्ताखिलदोषं
तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।१२।।

अन्वय—तप्तस्वर्णच्छायजटाजूटकटाहप्रोद्यद्वीचीवल्लिविराजत्सुरसिन्धुम् (एतादृशम्) नित्यम्, सूक्ष्मम्, नित्यनिरस्ताखिलदोषम्, तम्, प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम्, कलयामि।

अर्थ—तपाये गये सोने की कान्ति के समान जो भगवान् का कड़ाही-सा जटाजूट है उसके मध्य, अपनी तरङ्गों से उमड़ती हुई गङ्गाजी सुशोभित हैं। ऐसे नित्य व सूक्ष्म रूप वाले, हमेशा समस्त दोषों को दूर करने वाले, जो प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप दक्षिणामूर्ति भगवान् हैं, उन्हीं की मैं आराधना करता हूँ।

येन ज्ञातेनैव समस्तं विदितं स्याद्
यस्मादन्यद् वस्तु जगत्यां शशशृङ्गम्।
यं प्राप्तानां नास्ति परं प्राप्यमनादिं
तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।१३।।

अन्वय—येन, ज्ञातेन, एव, समस्तम्, विदितम्, स्यात्, जगत्याम्, यस्मात्, अन्यत्, वस्तु शशशृङ्गम् (अस्ति)। यम्, प्राप्तानाम्, परम्, प्राप्यम्, नास्ति, तम्, अनादिम्, प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम् कलयामि।

अर्थ—जिस एक के ज्ञान से ही समस्त वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है, अर्थात् फिर कोई ज्ञातव्य वस्तु शेष नहीं रह जाती है, इस संसार में जिससे अतिरिक्त वस्तु खरगोश के सींग के समान है, अर्थात् तुच्छ है; जिसको प्राप्त कर फिर कोई प्राप्तव्य अवशिष्ट नहीं रह जाता है, उसी अनादि-अनन्त प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप भगवान् दक्षिणामूर्ति की मैं आराधना करता हूँ।

मत्तो मारो यस्त ललाटाक्षिभवाग्नि-
स्फूर्जत्कीलप्रोषित भस्मीकृतदेहः।
तद् भस्मासीद्यस्य सुजातः पटवास-
स्तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।१४।।

अन्वय—मत्तः, मारः, यस्य, ललाटाक्षिभवाग्निस्फूर्जत्कीलप्रोषितभस्मीकृतदेहः, (अभवत्) तत्, भस्म, यस्य, सुजातः, पटवासः, आसीत्, तम्, प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम् कलयामि।

अर्थ—मदोन्मत्त कामदेव, जिसके ललाट में स्थित तृतीय अग्निरूपी नेत्र की धधकती हुई ज्वाला में भस्म हो गया, और वह भस्म, जिनका सुन्दर पटवास (अङ्गराग, शरीर में लेपन करने का सुगन्धित चूर्ण) बन गया, उन्हीं प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप भगवान् दक्षिणामूर्ति की मैं आराधना करता हूँ।

ह्यम्भोराशौ संसृतिरूपे लुठतां त-
त्पारं गन्तुं यत्पदभक्तिर्दृढनौका।
सर्वाराध्यं सर्वगमानन्दपयोधिं
तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।१५।।

अन्वय—संसृतिरूपे, अम्भोराशौ, लुठताम्, (जनानाम् कृते) हि, (निश्चयेन) यत्पदभक्तिः, तत्पारम् गन्तुं, दृढनौका (भवति) (एतादृशम्) सर्वाराध्यम्, सर्वगम्, आनन्दपयोधिम्, तम् प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम्, कलयामि।

अर्थ—इस संसार रूपी सागर में, डूबते हुए जनों के लिए, जिसके चरणकमलों की भक्ति, (संसार सागर से) पार जाने के लिए निश्चित ही मजबूत नाव है, और जो सभी के आराध्य हैं, उन्हीं व्यापक, सुखसागर प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप भगवान् दक्षिणामूर्ति की मैं आराधना करता हूँ।

मेधावी स्यादिन्दुवतंसं धृतवीणं
कर्पूराभं पुस्तकहस्तं कमलाक्षम्।
चित्ते ध्यायन्यस्य वपु द्राङ्निमिषार्धं
तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।१६।।

अन्वय–इन्दुवतंसम्, धृतवीणम्, कर्पूराभम्, पुस्तकहस्तम्, कमलाक्षम्, यस्य, वपुः, द्राक्, निमिषार्धम्, (अपि) चित्ते, ध्यायन्, (नरः) मेधावी, स्यात्, तम्, प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम्, कलयामि।

अर्थ–चन्द्रमा जिनका शिरोभूषण है, जो वीणा को धारण किये हुए हैं, कर्पूर की तरह स्वच्छ जिनके शरीर की कान्ति है, जिनके हाथ में पुस्तक और कमल के बीजों की माला है, ऐसे भगवान् के स्वरूप को यदि मनुष्य अपने चित्त में एक क्षण या आधे क्षण के लिए भी धारण कर ले, तो वह निश्चित ही जल्दी मेधावी हो जाता है, अतः मैं ऐसे प्रत्यक्, चैतन्यस्वरूप भगवान् दक्षिणामूर्ति की आराधना करता हूँ।

धाम्नां धाम प्रौढरुचीनां परमं यत्
सूर्यादीनां यस्य स हेतुर्जगदादेः।
एतावान्यो यस्य न सर्वेश्वरमीड्यं।
तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।१७।।

अन्वय–यस्य यत् (प्रसिद्ध), धाम, प्रौढरुचीनाम्, सूर्यादीनाम्, धाम्नाम्, (मध्ये अपि) परमम् (अस्ति) सः, (एव भगवान्) जगदादेः, हेतुः, (अस्ति) यः, एतावान् न, तम्, ईड्यम् सर्वेश्वरम् प्रत्यञ्चम् दक्षिणवक्त्रम् कलयामि।

अर्थ–जिस भगवान् का वह प्रसिद्ध तेज, प्रबल प्रकाश वाले सूर्यादि के प्रकाशों से भी श्रेष्ठ है, वही भगवान् इस संसार के भी कारण हैं, अर्थात् उन्हीं से इस संसार की उत्पत्ति हुई है। वे भगवान् 'इतने ही हैं', ऐसा उन्हें सीमित नहीं किया जा सकता। मैं पूजनीय उन्हीं सर्वेश्वर प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप भगवान् दक्षिणामूर्ति की आराधना करता हूँ।

प्रत्याहारप्राणनिरोधादिसमर्थै-
र्भक्तै दान्तैः संयतचित्तैर्यतमानैः।
स्वात्मत्वेन ज्ञायत एव त्वरया य-
स्तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।१८।।

अन्वय–यः, (भगवान्) प्रत्याहारप्राणनिरोधादिसमर्थैः, संयतचित्तैः, यतमानैः, दान्तैः, भक्तैः, त्वरया, स्वात्मत्वेन, ज्ञायते, एव, तम्, प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम्, कलयामि।

अर्थ–जिस भगवान् को, प्रत्याहार धारणा ध्यान प्राणायामादि में समर्थ, संयमशील, प्रयत्न-परायण, अपनी इन्द्रियों को दमन किये हुए, दान्त व शान्त भक्तजन, शीघ्र ही आत्मरूप से जाने जाते हैं, मैं उसी प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप

भगवान् दक्षिणामूर्ति की आराधना करता हूँ।

ज्ञांशीभूतान् प्राणिन एतान् फलदाता
चित्तान्तःस्थः प्रेरयति स्वे सकलेऽपि।
कृत्ये देवः प्राक्तनकर्मानुसरः सं-
स्तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।१९।।

अन्वय—फलदाता, यः, देवः, चित्तान्तःस्थः, प्राक्तनकर्मानुसरः, सन्, ज्ञांशीभूतान्, एतान्, प्राणिनः, स्वे (स्वे) सकले, अपि, कृत्ये, प्रेरयति, तम्, प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम्, कलयामि।

अर्थ—कर्म के फलों को प्रदान करने वाला जो देव, प्राणियों के अन्तःकरणों में स्थिर होकर, उनके पूर्वजन्म में किये हुए कर्मों का अनुसरण करता हुआ (शुभ या अशुभ) सभी प्रकार के कर्मों में उन्हें प्रेरित करता है, मैं उसी प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप भगवान् दक्षिणामूर्ति की आराधना करता हूँ।

प्रज्ञामात्रं प्रापितसंविन्निजभक्तं
प्राणाक्षादेः प्रेरयितारं प्रणवार्थम्।
प्राहुः प्राज्ञा यं विदितानुश्रवतत्त्वा-
स्तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।२०।।

अन्वय—विदितानुश्रवतत्त्वाः, प्राज्ञाः, यम्, प्रज्ञामात्रम्, प्रापितसंविन्निजभक्तम्, प्राणाक्षादेः, प्रेरयितारम्, प्रणवार्थम्, प्राहुः, तम्, प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम्, कलयामि।

अर्थ—वेदों के रहस्यभूत तत्त्वों को जानने वाले विद्वान् लोग, जिस परमेश्वर को केवल ज्ञानरूप, निज-भक्तों के लिये ज्ञानदाता, तथा प्राण व इन्द्रियों का प्रेरक, और ओंकार का अर्थ समझते हैं, मैं उसी प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप भगवान् दक्षिणामूर्ति की आराधना करता हूँ।

यस्याज्ञानादेव नृणां संसृतिबोधो, यस्य ज्ञानादेव विमोक्षो भवतीति।
स्पष्टं ब्रूते वेदशिरो देशिकमाद्यं, तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।२१।।

अन्वय—यस्य, अज्ञानात्, एव, संसृतिबोधः, भवति, यस्य, (च) ज्ञानात्, एव, विमोक्षः, भवति, (इति) वेदशिरः, स्पष्टम्, ब्रूते, तम्, आद्यम्, देशिकम्, प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम्, कलयामि।

अर्थ—जिस भगवान् (दक्षिणामूर्ति) के अज्ञान से ही संसार का अनुभव होता है, और जिस भगवान् के ज्ञान से ही मोक्ष होता है, मैं उन्हीं आद्य गुरु प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप भगवान् दक्षिणामूर्ति की आराधना करता हूँ।

छन्नेऽविद्यारूपपटेनैव च विश्वं
यत्राध्यस्तं जीवपरेशत्वमपीदम्।
भानोर्भानुष्वम्बुवदस्ताखिलभेदं
तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।२२।।

अन्वय—अविद्यारूपपटेन, छन्ने, (सति) एव यत्र, (परब्रह्मणि) इदम्, विश्वं, जीवपरेशत्वम्, अपि, भानोः, भानुषु, अम्बुवत्, अध्यस्तम्, (भवति) अस्ताखिलभेदम्, तम्, प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम्, कलयामि।

अर्थ—जब अज्ञानरूप पर्दे से ढका रहता है, तब ही उस परब्रह्म परमात्मा में यह विश्व तथा जीव-ईश्वर आदि विभाग सूर्यकिरणों में जल की तरह अध्यस्त (आरोपित) होता है। (वस्तुतः पारमार्थिक रूप से केवल उस निरवच्छिन्न परमात्मा की ही सत्ता हैं, पर अविद्या के कारण इसी अधिष्ठानभूत चैतन्य में, जीव जगत् ईश्वर इत्यादि नाना रूप देखा जाता है, परन्तु यह सब प्रपञ्च उसी तरह असत्य या कल्पित है, जिस प्रकार सूर्य की किरणों में दूर से जल की प्रतीति असत्य है। रेगिस्तान में सूर्य-किरणें बालू में इस प्रकार चमकती हैं, कि दूर से देखने वाले को उसमें जल का सा भ्रम हो जाता है। इसी प्रकार यह संसार भी आपाततः देखने मात्र के लिए है, इसकी काई आत्यन्तिक सत्ता नहीं है। अथवा सूर्य के अंशरूप सूर्य की किरणें जैसे सूर्य से अतिरिक्त नहीं हैं, जल की ही अवयवभूता जलतरङ्गें जैसे जल से अतिरिक्त नहीं हैं, इसी प्रकार परमात्मा का ही अंशभूत यह जीव भी, परमात्मा से अतिरिक्त नहीं है। वेदान्त विद्या से जब सारा भेदभाव दूर होता जाता है, तब वही एक परमात्मा ही अवशिष्ट रह जाता है।) अतः मैं निरस्त-समस्त-भेद वाले, उस प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप भगवान् दक्षिणामूर्ति की आराधना करता हूँ।

स्वापस्वप्नौ जाग्रदवस्थापि न यत्र
प्राणश्चेतः सर्वगतो यः सकलात्मा।
कूटस्थो यः केवलसच्चित्सुखरूप-
स्तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।२३।।

अन्वय—यत्र, स्वापस्वप्नौ, न, यत्र जाग्रदवस्था, अपि, (च) न, (अस्ति) यः, प्राणः, (प्राणस्वरूपः) चेतः (चित्स्वरूपः), सर्वगतः, सकलात्मा, च, (अस्ति) यः, कूटस्थः, केवलः, सच्चित्सुखरूपः, च (अस्ति), तम् प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम्, कलयामि।

अर्थ—जिस परब्रह्म परमात्मा में सुषुप्ति स्वप्न व जाग्रत् ये अवस्थायें

नहीं हैं, अर्थात् इन तीनों अवस्थाओं से परे होने से ही जिसको तुरीय चैतन्य भी कहते हैं, वह केवल साक्षी सत्-चित्-सुखरूप है, इस प्रकार के उस प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप भगवान् दक्षिणामूर्ति की मैं आराधना करता हूँ।

हा हेत्येवं विस्मयमीयु र्मुनिमुख्या
ज्ञाते यस्मिन् स्वात्मतयानात्मविमोहः।
प्रत्यग्भूते ब्रह्मणि यातः कथमित्थं
तं प्रत्यञ्चं दक्षिणवक्त्रं कलयामि।।२४।।

अन्वय–यस्मिन्, प्रत्यग्भूते, ब्रह्मणि, स्वात्मतया, ज्ञाते (सति) हा, हा, इति, (अस्माकम्) आत्मविमोहः, (आत्मविषयकोऽविवेकः) कथम्, यातः, इत्थम्, मुनिमुख्याः विस्मयम् ईयुः, तम् प्रत्यञ्चम्, दक्षिणवक्त्रम्, कलयामि।

अर्थ–जिस प्रत्यग्भूत परमात्मा का आत्मत्वेन (देहेन्द्रियादि से पृथक् रूप में) ज्ञान हो जाने पर, हमारा आत्म-विषयक व्यामोह कहाँ चला गया?– इस प्रकार, बड़े-बड़े मुनियों को भी, बड़ा आश्चर्य हुआ, मैं उसी प्रत्यक् चैतन्यस्वरूप भगवान् दक्षिणामूर्ति की आराधना करता हूँ।

यैषा रम्यै र्मत्तमयूराभिधवृत्तै-
रादौ क्लृप्ता यन्मनुवर्णै र्नुतिभङ्गी।
तामेवैतां दक्षिणवक्त्रः कृपयासा-
वूरीकुर्याद् देशिकसम्राट् परमात्मा।।२५।।

अन्वय–या, एषा, रम्यैः, मत्तमयूराभिधवृत्तैः, आदौ, यन्मनुवर्णैः, क्लृप्ता, नुतिभङ्गी (रचिता), ताम्, एताम्, एव, असौ देशिकसम्राट्, दक्षिणवक्त्रः, परमात्मा, कृपया, ऊरीकुर्यात्।

अर्थ–मत्तमयूर-नामक रमणीय छंद में विनिबद्ध इस स्तुतिविशेष में हर श्लोक का प्रारंभ जिनके मंत्राक्षरों से हुआ है वे गुरुराज दक्षिणामूर्ति भगवान् कृपाकर इसी निवेदित रचना को ग्रहण करें।

दक्षिणामूर्त्तिस्तोत्रम्

उपासकानां यदुपासनीयमुपात्तवासं वटशाखिमूले।
तद् धाम दाक्षिण्यजुषा स्वमूर्त्या, जागर्तु चित्ते मम बोधरूपम्।।१।।

अन्वय—यत्, (धाम, तेजोविशेषः) उपासकानाम्, उपासनीयम्, (अस्ति) अथ च वटशाखिमूले, उपात्तवासम्, (वर्तते) बोधरूपम्, तत्, धाम, मम, चित्ते, दाक्षिण्यजुषा, स्वमूर्त्या, जागर्तु।

अर्थ—परमज्योतिरूप जो तेज (धाम) उपासकों के लिए उपासना के योग्य है, जिस तेज का निवास वट वृक्ष के मूल भाग (नीचे) में है, ज्ञानस्वरूप वह तेजः पुञ्ज अपने उदारतापूर्ण आकार से, हमेशा मेरे चित्त में बिराजै।।१।।

अद्राक्षमक्षीणदयानिधानमाचार्यमाद्यं वटमूलभागे।
मौनेन मन्दस्मितभूषितेन महर्षिलोकस्य तमो नुदन्तम्।।२।।

अन्वय—(अहम्) वटमूलभागे, (उपविष्टमित्यर्थः) मन्दस्मितभूषितेन, मौनेन, महर्षिलोकस्य, तमः, नुदन्तम्, अक्षीणदयानिधानम्, आद्यम्, आचार्यम्, अद्राक्षम्।

अर्थ—(मैंने) वटवृक्ष के नीचे बैठे हुए, मन्द मुस्कान से सुशोभित, मौन व्याख्यान के द्वारा महर्षिवृन्द के अज्ञान को नष्ट करने वाले, अत्युदार दयासागरस्वरूप आदि आचार्य दक्षिणामूर्ति भगवान् को देखा।।२।।

विद्राविताशेषतमोगणेन, मुद्राविशेषेण मुहुर्मुनीनाम्।
निरस्य मायां दयया विधत्ते, देवो महांस्तत्त्वमसीति बोधम्।।३।।

अन्वय—(सः) महान्, देवः, मुहुः, विद्राविताशेषतमोगणेन, मुद्राविशेषेण, मुनीनाम्, मायाम्, निरस्य तत्त्वमसि इति बोधम् (जीवब्रह्मणोरैक्यलक्षणज्ञान-विशेषम्) दयया, विधत्ते।

अर्थ—वह महान् देव, अर्थात् देवों के भी देव महादेवरूप दक्षिणामूर्ति भगवान्, समस्त अज्ञान को नष्ट करने वाली मुद्रा से, अर्थात् ज्ञानमुद्रा द्वारा, मुनियों की भी संसरण का कारण अनादि अविद्यारूप माया को दूर कर 'तत् त्वम् असि' (वह सच्चिदानन्दघन लक्षण जो ब्रह्म है, तुम (जीव) भी वही हो, अर्थात् जीव ब्रह्म की एकता) रूप जो अद्वैत ज्ञान या अखण्डार्थ बोध है, अपनी दयादृष्टि से इसका ज्ञान कराते हैं।।३।।

अपारकारुण्यसुधातरङ्गै रपाङ्गपातैरवलोकयन्तम्।
कठोरसंसारनिदाघतप्तान्, मुनीनहं नौमि गुरुं गुरूणाम्।।४।।

अन्वय—कठोरसंसारनिदाघतप्तान्, मुनीन्, अपारकारुण्यसुधातरङ्गैः, अपाङ्गपातैः, अवलोकयन्तम्, गुरूणाम्, गुरुम् तम् भगवन्तम्, दक्षिणामूर्तिम्, अहम्, नौमि।

अर्थ—अत्यन्त कठिन इस संसाररूपी गर्मी से तपे हुए तपस्वियों को अपने असीम करुणारूपी सुधातरङ्गों के समान कटाक्षों से देखने वाले, गुरुओं के भी परमगुरु, श्री दक्षिणामूर्ति भगवान् की मैं स्तुति करता हूँ।।४।।

ममाद्य देवो वटमूलवासी कृपाविशेषात्कृतसंन्निधानः।
ओंकाररूपामुपदिश्य विद्यामाविद्यकध्वान्तमपाकरोतु।।५।।

अन्वय—कृपाविशेषात्, कृतसंन्निधानः, वटमूलवासी, मम, देवः, (स दक्षिणामूर्तिभगवान्) ओंकाररूपाम्, विद्याम् (मह्यम्) उपदिश्य, (मम) आविद्यकध्वान्तम्, अद्य (सद्य एव), अपाकरोतु।

अर्थ—आज अपनी असीम कृपा से, अर्थात् मेरे ऊपर परम अनुग्रह कर, मेरे नयनों के विषय बने वटमूलवासी मेरे इष्टदेव दक्षिणामूर्ति भगवान्, मुझे ओंकाररूपी विद्या (मन्त्र) का उपदेश देकर, मेरीअनादि अविद्यारूप जडता को दूर करें।।५।।

कलाभिरिन्दोरिव कल्पिताङ्गं, मुक्ताकलापैरिव बद्धमूर्तिम्।
आलोकये देशिकमप्रमेयम् अनाद्यविद्यातिमिरप्रभातम्।।६।।

अन्वय—(अहन्तु तमाचार्यं दक्षिणामूर्तिम्), इन्दोः, कलाभिः कल्पिताङ्गम्, इव, मुक्ताकलापैः, बद्धमूर्तिम्, इव अनाद्यविद्यातिमिरप्रभातम्, अप्रमेयम्, देशिकम्, (तम् दक्षिणामूर्तिम् भगवन्तम्) आलोकये।

अर्थ—वे आचार्य दक्षिणामूर्ति भगवान्, अनन्त तथा अथाह ज्ञान समुद्र हैं, अनादि अविद्यारूपी अन्धकार को दूर करने के लिए, सुन्दर प्रभात हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गों या अवयव-विशेषों की रचना चन्द्रमा की कलाओं से ही सम्पन्न हुई हो, और उनके शरीर का आकार मोतियों के गुच्छों से ही बना हो।। ६।।

स्वदक्षजानुस्थितवामपादं, पादोदरालङ्कृतयोगपट्टम्।
अपस्मृतेराहितपादमङ्गे, प्रणौमि देवं प्रणिधानवन्तम्।।७।।

अन्वय—स्वदक्षजानुस्थितवामपादम्, पादोदरालङ्कृतयोगपट्टम्, अपस्मृतेः अङ्गे, आहितपादम्, प्रणिधानवन्तम्, देवम्, (भगवन्तं दक्षिणामूर्तिम्,) प्रणौमि।

अर्थ—जिन्होंने अपने दाहिने जानु पर बायाँ पाद रखा हुआ है, और

जिनके दोनों पादों के मध्यभाग से योगपट्ट अलंकृत है, दाहिना पाद अपस्मार के शरीर पर रखा है, ऐसे ध्यानमग्न देव श्रीदक्षिणामूर्ति भगवान् की मैं स्तुति करता हूँ।।७।।

तत्त्वार्थमन्तेवसतामृषीणां, युवाऽपि यः सन्नुपदेष्टुमीष्टे।
प्रणौमि तं प्राक्तनपुण्यजालैराचार्यमाश्चर्यगुणाधिवासम्।।८।।

अन्वय—यः (दक्षिणामूर्तिर्भगवान्) युवा, सन्, अपि, अन्तेवसताम्, ऋषीणाम्, (कृते) तत्त्वार्थम्, उपदेष्टुम्, ईष्टे, तम्, आश्चर्यगुणाधिवासम्, आचार्यम्, अहम्, प्राक्तनपुण्यजालैः, प्रणौमि।

अर्थ—जो दक्षिणामूर्ति भगवान् स्वयं युवक होते हुए भी, शिष्यभूत वृद्ध ऋषियों को तत्त्वार्थ (परमसत्) विषयक उपदेश देने में सर्वथा समर्थ हैं, ऐसे अद्भुत विलक्षण गुणगणों के निधान, आचार्य दक्षिणामूर्ति भगवान् की मैं स्तुति करता हूँ यह मेरे पूर्वार्जित पुण्यों का ही फल है।।८।।

एकेन मुद्रां परशुं करेण, करेण चान्येन मृगं दधानः।
स्वजानुविन्यस्तकरः पुरस्तादाचार्यचूडामणिराविरस्तु।।९।।

अन्वय—एकेन (करेणेत्यर्थः) मुद्राम्, दधानः (सन्) अपरेण करेण, परशुम्, दधानः, अन्येन, (तृतीयेनेत्यर्थः) मृगम्, दधानः, स्वजानुविन्यस्तकरः, (चतुर्थ इत्यर्थः) आचार्यचूडामणिः, मम पुरस्तात्, आविः, अस्तु।

अर्थ—एक हाथ में ज्ञानमुद्रा को धारण किये हुए, दूसरे हाथ में परशु को धारण किये हुए, और तीसरे हाथ में मृग को धारण किये हुए, चौथा हाथ अपने जानु में रक्खे हुए, ऐसे आचार्य-चूडामणि भगवान् दक्षिणामूर्ति मेरे सामने प्रकट होवें।।९।।

आलेपवन्तं मदनाङ्गभूत्या, शार्दूलकृत्त्या परिधानवन्तम्।
आलोकये कञ्चनदेशिकेन्द्रमज्ञानवाराकरवाडवाग्निम्।।१०।।

अन्वय—मदनाङ्गभूत्या, आलेपवन्तम्, शार्दूलकृत्त्या, परिधानवन्तम्, अज्ञानवाराकरवाडवाग्निम्, कञ्चन, देशिकेन्द्रम्, आलोकये।

अर्थ—कामदेव के शरीर के भस्म से अङ्गराग, अर्थात् शरीर में भस्म का लेपन किये हुए, और व्याघ्र चर्म के उत्तरीय को धारण किये हुए, अज्ञानरूपी समुद्र को सुखाने के लिए वडवानल के समान, किन्हीं अनिर्वचनीय गुणगणों से युक्त, आचार्यवर्य भगवान् दक्षिणामूर्ति का दर्शन करना चाहता हूँ।।१०।।

चारुस्मितं सोमकलावतंसं, वीणाधरं व्यक्तजटाकलापम्।
उपासते केचन योगिनस्त्वामुपात्तनादानुभवप्रमोदम्।।११।।

अन्वय—हे भगवन्! उपात्तनादानुभवप्रमोदम्, चारुस्मितम्, सोमकलावतंसम्, वीणाधरम्, व्यक्तजटाकलापम्, त्वाम् केचन योगिनः, उपासते।

अर्थ—हे भगवन्! आप शब्दब्रह्म की सूक्ष्म कला के अनुभवजन्य आनन्द में निमग्न हैं, सुन्दर मन्द हाससे समन्वित मुख वाले हैं, चन्द्रकला को शिरोभूषण बनाये हुए, वीणा को धारण किये हुए, चारों ओर बिखरे जटासमूह वाले हैं; कोई पुण्यात्मा योगिजन ही आपकी उपासना करते हैं।।११।।

उपासते यं मुनयः शुकाद्या निराशिषो निर्ममताधिवासाः।
तं दक्षिणामूर्तितनुं महेशमुपास्महे मोहमहार्त्तिशान्त्यै।।१२।।

अन्वय—यम्, (भगवन्तं दक्षिणामूर्तिम्) निर्ममताधिवासाः, निराशिषः, शुकाद्याः, मुनयः, उपासते (वयम् अपि) स्वकीयमोहमहार्तिशान्त्यै, तम्, दक्षिणामूर्तितनुम्, महेशम्, उपास्महे।

अर्थ—निस्पृह वीतराग, ममत्वादि मोहशून्य, शुक आदि मुनिजन, जिस भगवान् दक्षिणामूर्ति की उपासना करते हैं, हम भी अपने मोहरूपी भयंकर दुःख की शान्ति के लिए, उन्हीं दक्षिणामूर्ति रूप में प्रकट हुए महादेव की उपासना करते हैं।।१२।।

कान्त्या निन्दितकुन्दकन्दलवपु र्न्यग्रोधमूले वसन्
कारुण्यामृतवारिभि र्मुनिजनं सम्भावयन् वीक्षितैः।
मोहध्वांतविभेदनं विरचयन् बोधेन तत्तादृशा,
देवस्तत्त्वमसीति बोधयतु मां मुद्रावता पाणिना।।१३।।

अन्वय—कान्त्या, निन्दितकुन्दकन्दलवपुः (देवो दक्षिणामूर्तिः) न्यग्रोधमूले, वसन्, कारुण्यामृतवारिभिः वीक्षितैः, मुनिजनम्, सम्भावयन्, (तथा) बोधेन, तत्, मोहध्वान्तविभेदनम्, विरचयन्, सः, देवः, तादृशा मुद्रावता, पाणिना, माम्, तत्, त्वम्, असि, इति (वेदान्तमहावाक्यार्थम्) बोधयतु।

अर्थ—जिन्होंने अपने शरीर के सौन्दर्य से कुन्दकलिका को भी मात कर दिया है, वटवृक्ष के नीचे निवास करने वाले ऐसे जो भगवान् करुणारूपी अमृताश्रुपूर्ण अवलोकन से मुनिजनों को अनुगृहीत करते हैं, और तत्त्वज्ञान द्वारा उनके अज्ञानान्धकार का नाश करते हैं, वही देव दक्षिणामूर्ति भगवान्, अपनी ज्ञानमुद्रायुक्त हाथ से, मुझे 'तत्त्वमसि' इत्यादि वेदान्त महावाक्यों का बोध करावें।।१३।।

अगौरगात्रैरललाटनेत्रैरशान्तवेषैरभुजङ्गभूषैः।
अबोधमुद्रैरनपास्तनिद्रैरपूर्णकामैरमरैरलं नः।।१४।।

अन्वय—अगौरगात्रैः, अललाटनेत्रैः, अशान्तवेषैः, अभुजङ्गभूषैः, अबोधमुद्रैः, अनपास्तनिद्रैः, अपूर्णकामैः, अमरैः, नः, (अस्माकम्) अलम्, (इति निषेधे; न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः)।

अर्थ—जिनका शरीर गौर न हो, जिनके ललाट में तृतीय नेत्र न हो, और जिनका शान्त वेष न हो, सर्प जिनके आभूषण न हों, जो ज्ञानमुद्राशून्य हों, तथा ध्यान-निद्रा से रहित हों, ऐसे अपूर्ण कामना वाले, देवताओं से हमारा क्या प्रयोजन? (दक्षिणामूर्तिरूप महादेव का अनन्य भक्त, कृष्ण आदि अन्य देवताओं से अपनी चित्तवृत्ति को हटाकर, केवल दक्षिणामूर्ति भगवान् में ही स्थिर कर रहा है, अथवा समस्त इस चराचर देवमय जगत् को शिवाद्वैतमय ही समझ रहा है।)।।१४।।

दैवतानि कति सन्ति चावनौ, नैव तानि मनसो मतानि मे।
दीक्षितं जडधियामनुग्रहे, दक्षिणाभिमुखमेव दैवतम्।।१५।।

अन्वय—अवनौ, कति, दैवतानि, च सन्ति, परन्तु, तानि, मे, मनसः, मतानि, न, एव, सन्ति, जडधियाम्, अनुग्रहे दीक्षितम् दक्षिणाभिमुखम्, एव, दैवतम्, अस्ति।

अर्थ—इस धरा धाम में न जाने कितने देवता हैं, जिनकी गणना भी नहीं हो सकती है, परन्तु उनमें से कोई भी मुझे पसन्द नहीं है। अज्ञानी जीवों पर अनुग्रह करने का जिन्होंने पावन संकल्प ले रखा है वे श्री दक्षिणामूर्ति ही मुझे अभीष्ट देवता हैं।

मुदिताय मुग्धशशिनावतंसिने भसितावलेपरमणीयमूर्तये।
जगदिन्द्रजालरचनापटीयसे महसे नमोऽस्तु वटमूलवासिने।।१६।।

अन्वय—मुग्धशशिनावतंसिने, मुदिताय, भसितावलेपरमणीयमूर्तये, जगदिन्द्रजालरचनापटीयसे, वटमूलवासिने, महसे, ते, नमः, अस्तु।

अर्थ—मनोहर चन्द्रमा के द्वारा जो शिरोभूषण वाले हैं, नित्य प्रसन्नमुद्रा में स्थित हैं, भस्म के अवलेप (अङ्गराग) से रमणीय मूर्ति वाले हैं, जगत् रूपी इन्द्रजाल की रचना में निपुण हैं, वटवृक्ष के नीचे निवास करने वाले, ऐसे किसी (दक्षिणामूर्तिरूपी) दिव्य तेज को हम नमस्कार करते हैं।।१६।।

व्यालम्बिनीभिः परितो जटाभिः कलावशेषेण कलाधरेण।
पश्यल्ललाटेन मुखेन्दुना च, प्रकाशसे चेतसि निर्मलानाम्।।१७।।

अन्वय—हे भगवन्! (त्वम्) परितः, व्यालम्बिनीभिः, जटाभिः पश्यल्ललाटेन, मुखेन्दुना, च, कलावशेषेण, कलाधरेण, (समानः,) निर्मलानाम्, चेतसि, प्रकाशसे।

अर्थ—हे भगवन्! आप अपने निर्मल अन्तःकरण वाले भक्तों के चित्त में, चारों ओर बिखरी हुई जटाओं से, द्वितीया के चंद्रमा से, नेत्रयुक्त भाल से तथा चन्द्रतुल्य मुख से युक्त हुए भासते हैं। (स्वच्छचेता भक्त हृदय में आपकी ऐसी मूर्ति का दर्शन पाते हैं।)।।१७।।

उपासकानां त्वमुमासहायः पूर्णेन्दुभावं प्रकटीकरोषि।
यदद्य ते दर्शनमात्रतो मे, द्रवत्यहो मानसचन्द्रकान्तः।।१८।।

अन्वय—हे भगवन्! उमासहायः, त्वम्, उपासकानाम्, (कृते) पूर्णेन्दु-भावम्, प्रकटीकरोषि (इति) अहो (निश्चितमेतदित्यर्थः) यत्, अद्य ते, दर्शनमात्रतः, मे, मानसचन्द्रकान्तः, द्रवति।

अर्थ—हे भगवन्! उमार्धदेह होते हुए भी आप अपने उपासकों के लिये तो अवश्य पूर्ण चन्द्र का कार्य प्रकट करते हैं क्योंकि आज आपके केवल दर्शन करने से मेरा मनरूप चन्द्रकान्त पिघल रहा है। (चन्द्रकान्तमणि का यह स्वभाव है कि वह चन्द्रमा की किरणों से पिघलता है। यहाँ भक्त का भी मानस चन्द्रकान्त भगवान् के मुखचन्द्र से जब पिघल रहा है, द्रवित हो रहा अर्थात् भाव विभोर हो रहा है, तब सुतरां यह सिद्ध है कि भगवान् का मुख पूर्णचन्द्र है। यहाँ अन्यथानुपपत्तिरूपी अर्थापत्ति से उमासहाय भगवान् का पूर्णचन्द्रत्व सिद्ध है।)।।१८।।

यस्ते प्रसन्नामनुसन्दधानो, मूर्तिं मुदा मुग्धशशाङ्कमौलेः।
ऐश्वर्यमायुर्लभते च विद्यामन्ते च वेदान्तमहारहस्यम्।।१९।।

अन्वय—हे भगवन्! यः, मुदा, मुग्धशशाङ्कमौलेः, ते, प्रसन्नाम्, मूर्तिम्, अनुसन्दधानः, सन्, (अस्ति) सः, ऐश्वर्यम्, आयुः, विद्याम्, च, लभते, अन्ते, च, वेदान्तमहारहस्यम्, लभते।

अर्थ—हे भगवन्! ज़ो मनुष्य प्रसन्नचित्त होकर, बालचन्द्र को शिरोभूषण बनायी हुई, अर्थात् बालचन्द्रालंकृत प्रसन्नमुद्रा में विराजमान आपकी मूर्ति का ध्यान करता है, वह ऐश्वर्य, प्रशस्त आयु व विद्या को प्राप्त करता हुआ, अन्त में वेदान्त के परम तत्त्व को प्राप्त करता है।।१९।।

शिवनामावल्यष्टकम्

हे चन्द्रचूड मदनान्तक शूलपाणे, स्थाणो गिरीश गिरिजेश महेश शम्भो।
भूतेश भीतभयसूदन मामनाथं, संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष।।१।।

अन्वय–हे चन्द्रचूड! हे मदनान्तक! हे शूलपाणे! हे स्थाणो! हे गिरीश! हे गिरिजेश! हे महेश! हे शम्भो! हे भूतेश! हे भीतभयसूदन! हे जगदीश! संसारदुःखगहनात्, अनाथम्, माम् रक्ष।

अर्थ–हे चन्द्रशेखर! हे मदनान्तक! (कामदेव को भस्म करने वाले!) हे शूलपाणे! (त्रिशूल को धारण करने वाले!) हे स्थाणो! हे गिरीश! हे गिरिजा के ईश! हे महेश! हे भूतों के स्वामी! हे भयभीत व्यक्ति के भय को दूर करने वाले! हे जगदीश! इस संसार के दुःखरूपी घने जंगल से मेरी रक्षा करो।।१।।

हे पार्वतीहृदयवल्लभ चन्द्रमौले, भूताधिप प्रमथनाथ गिरीशचाप।
हे वामदेव भव रुद्र पिनाकपाणे, संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष।।२।।

अन्वय–हे पार्वतीहृदयवल्लभ! हे चन्द्रमौले! हे भूताधिप! प्रमथनाथ! हे गिरीशचाप! हे वामदेव! हे भव! हे रुद्र! हे पिनाकपाणे! हे जगदीश! संसारदुःखगहनात् रक्ष।

अर्थ–हे पार्वती जी के हृदयवल्लभ! हे चन्द्रमौले! हे भूतों के अधिपति! हे प्रमथादि गणों के ईश! हे पर्वतराज मेरु को धनुष बनाने वाले! हे वामदेव! हे भव! हे रुद्र! हे पिनाकपाणि! (पिनाक नामक धनुष को हाथ में लिए हुए), हे जगदीश! इस संसार के दुःखरूपी वन में मेरी रक्षा करो।।२।।

हे नीलकण्ठ वृषभध्वज पञ्चवक्त्र
लोकेश शेषवलय प्रमथेश शर्व।
हे धूर्जटे पशुपते गिरिजापते मां
संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष।।३।।

अन्वय–हे नीलकण्ठ! हे वृषभध्वज! हे लोकेश! हे शेषवलय! हे प्रमथेश! हे शर्व! हे धूर्जटे! पशुपते! हे गिरिजापते! हे जगदीश! संसारदुःखगहनात् माम्, रक्ष।

अर्थ–हे नीलकण्ठ भगवान् शिव! हे वृषभवाहन! हे पञ्चमुख महादेव! हे संसार के स्वामी! हे शेषनाग को कङ्कण बनाये हुए! हे प्रमथगणों के ईश! हे

शर्व! (संहारकारक शिव), हे जटाओं के भार को धारण करने वाले धूर्जटि! हे पशुपति! (पशु-जीव, उनके, स्वामी-उपदेष्टा), हे पार्वतीपति! हे जगदीश! इस संसार के त्रिविध दुःख रूपी वन से मेरी रक्षा करो।।३।।

हे विश्वनाथ शिवशङ्कर देवदेव
गङ्गाधर प्रमथनायकनन्दिकेश।
बाणेश्वरान्धकरिपो हर लोकनाथ
संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष।।४।।

अन्वय—हे विश्वनाथ! हे शिवशङ्कर! हे देवदेव! हे बाणेश्वरान्धकरिपो! हे हर! हे लोकनाथ! हे जगदीश! संसारदुःखगहनात्, (माम्) रक्ष।

अर्थ—हे विश्वनाथ! हे कल्याण व सुख के सम्पादक! हे देवों के देव! हे बाण के ईश्वर, अन्धकासुर के शत्रु! हे सबके दुःखों को हरण करने वाले हर! हे लोकनाथ! हे जगदीश! इस संसार के दुःख रूपी वन से मेरी रक्षा करो।।४।।

वाराणसीपुरपते मणिकर्णिकेश, वीरेश दक्षमखकाल विभो गणेश।
सर्वज्ञ सर्वहृदयैकनिवास नाथ, संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष।।५।।

अन्वय—हे वाराणसीपुरपते! हे मणिकर्णिकेश! हे वीरेश! हे दक्षमखकाल! हे विभो! हे गणेश! हे सर्वज्ञ! हे सर्वहृदयैकनिवास! हे नाथ! हे जगदीश! संसारदुःखगहनात्, (माम्) रक्ष।

अर्थ—हे काशी नगरी के स्वामी! हे मणिकर्णिका तीर्थ के ईश! हे वीरेश्वर! हे दक्षप्रजापति के यज्ञ को ध्वंस करने वाले! हे विभो! गणों के स्वामी! हे सर्वज्ञ! हे सभी के हृदय में निवास करने वाले! हे नाथ! हे जगदीश! इस संसार के दुःख रूपी जंगल से मेरी रक्षा करो।।५।।

श्रीमन्महेश्वर कृपामय हे दयालो, हे व्योमकेश शितिकण्ठ गणाधिनाथ।
भस्माङ्गराग नृकपाल कपालमाल, संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष।।६।।

अन्वय—हे श्रीमन्महेश्वर, कृपामय! हे दयालो! हे व्योमकेश! हे शितिकण्ठ! हे गणाधिनाथ! हे भस्माङ्गराग! नृकपाल! कपालमाल! हे जगदीश! संसारदुःखगहनात् (माम्) रक्ष।

अर्थ—हे श्रीमान् महेश्वर! हे कृपामय! हे दयालो! हे आकाश केश वाले! (या आकाश के समान नीले केश वाले), हे नीलकण्ठ! हे गणाधिनाथ! हे भस्मविभूति को रमाने वाले! भोजनपात्र के लिये नरमुंड रखने वाले! हे कपालों की माला वाले! हे जगदीश! इस संसार के दुःख रूपी वन से मेरी

रक्षा करो।।६।।

कैलासशैलविनिवासं वृषाकपे हे, मृत्युञ्जय त्रिनयन त्रिजगन्निवास।
नारायणप्रिय मदापह शक्तिनाथ, संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष।।७।।

अन्वय—हे कैलासशैलविनिवास! हे वृषाकपे! मृत्युञ्जय! हे त्रिनयन! हे त्रिजगन्निवास! हे नारायणप्रिय! मदापह! हे शक्तिनाथ! हे जगदीश! संसारदुःखगहनात् (माम्) रक्ष।

अर्थ—हे कैलास पवर्त में निवास करने वाले! हे धर्मधुरन्धर (वृष = धर्म, उसे अकंप = स्थिर रखने वाले)! हे मृत्यु को भी जीतने वाले, काल के भी काल! हे त्रिनयन! हे तीनों लोकों में निवास करने वाले! हे नारायणप्रिय! हे मद को दूर करने वाले! हे माया शक्ति के स्वामी! हे जगदीश! इस संसार के दुःख रूपी वन से मेरी रक्षा करो।।७।।

विश्वेश विश्वभवनाशक विश्वरूप, विश्वात्मक त्रिभुवनैकगुणाधिकेश।
हे विश्वनाथ करुणामय दीनबन्धो, संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष।।८।।

अन्वय—हे विश्वेश! हे विश्वभवनाशक! हे विश्वरूप! हे विश्वात्मक! हे त्रिभुवनैकगुणाधिकेश! हे विश्वनाथ! हे करुणामय! दीनबन्धो! हे जगदीश! संसारदुःखगहनात् (माम्) रक्ष।

अर्थ—हे विश्व के ईश! हे प्रलयकाल में सम्पूर्ण संसार के नाशक! विराट् रूप वाले! हे विश्वमय! (शैव दर्शन के अनुसार यह सारा संसार ही शिवमय है), हे तीनों भुवनों में एकमात्र असीम गुणनिधि वाले ईश्वर! विश्वनाथ! हे करुणामय! हे दीनबन्धो! हे जगदीश! इस संसार के दुःख रूपी जंगल से मेरी रक्षा करो।।८।।

गौरीविलासभवनाय महेश्वराय, पञ्चाननाय शरणागतकल्पकाय।
शर्वाय सर्वजगतामधिपाय तस्मै, दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय।।६।।

अन्वय—गौरीविलासभवनाय, महेश्वराय, पञ्चाननाय, शरणागतकल्पकाय, शर्वाय, सर्वजगतामधिपाय, दारिद्र्यदुःखदहनाय, तस्मै, शिवाय नमः।

अर्थ—जो भगवान् शंकर माता पार्वती जी के विलास के लिए भवन-अधिष्ठान, आलंबन स्वरूप हैं, जो इस विश्व के महान् ईश्वर हैं, जिनके पाँच मुख हैं और जो शरणागतों के रक्षक हैं, प्रलय काल में इस संसार का संहार करते हैं, जो सारे संसार के स्वामी हैं, और जो दरिद्रतारूपी दुःख के नाशक हैं, ऐसे भगवान् शंकर के लिए मैं नमस्कार करता हूँ।।६।।

अर्धनारीश्वरस्तोत्रम्

चाम्पेयगौरार्धशरीरकायै, कर्पूरगौरार्धशरीरकाय।
धम्मिल्लकायै च जटाधराय नमः शिवायै च नमः शिवाय।।१।।

अन्वय—चाम्पेयगौरार्धशरीरकायै, धम्मिल्लकायै, च, शिवायै, नमः, कर्पूरगौरार्धशरीरकाय, जटाधराय, च, शिवाय, च नमः।

अर्थ—चम्पा के पुष्प के समान स्वच्छ कान्तिवाला आधा शरीर, वामाङ्ग है जिनका ऐसे धम्मिल्ल = केशपाश से सुशोभित, माता पार्वती जी को नमस्कार करता हूँ और कर्पूर के समान शुभ्र अर्ध शरीर वाले, जटाजूट को धारण किये हुए, भगवान् शिव को भी नमस्कार करता हूँ।।१।।

कस्तूरिकाकुंकुमचर्चितायै, चितारजःपुञ्जविचर्चिताय।
कृतस्मरायै विकृतस्मराय, नमः शिवायै च नमः शिवाय।।२।।

अन्वय—कस्तूरिकाकुंकुमचर्चितायै, कृतस्मरायै, च, शिवायै, नमः, चितारजःपुञ्जविचर्चिताय, विकृतस्मराय, शिवाय, च, नमः, ।

अर्थ—कस्तूरी (मृगमद), कुंकुम, केशर आदि से जिनका भाल सुशोभित है, दयावश जिन्होंने कन्दर्प को भी जीवन दान दिया है, ऐसी भगवती पार्वती जी को मैं नमस्कार करता हूँ। अपने शरीर में जिन्होंने चिता-भस्म रमाया है, तृतीय नेत्र द्वारा जिन्होंने कामदेव को भस्म कर दिया, ऐसे भगवान् शंकर को भी मैं नमस्कार करता हूँ।।२।।

झणत्क्वणत्कङ्कणनूपुरायै, पादाब्जराजत्फणिनूपुराय।
हेमाङ्गदायै भुजगाङ्गदाय, नमः शिवायै च नमः शिवाय।।३।।

अन्वय—झणत्क्वणत्कङ्कणनूपुरायै, हेमाङ्गदायै, च, शिवायै, नमः, पादाब्जराजत्फणिनूपुराय, भुजगाङ्गदाय, शिवाय, च, नमः।

अर्थ—झङ्कार-युक्त कङ्कण (कड़ा) व नूपुर (पायजेब) को धारण की हुई, सुवर्ण-रचित बाजूबन्द धारण की हुई, माता पार्वती जी को नमस्कार है। जिन्होंने अपने चरणकमलों में सर्पराज को आभूषण बनाया है, और उसी का अङ्गद (बाजूबन्द) भी बनाया है, ऐसे भगवान् शंकर को भी मैं नमस्कार करता हूँ।।३।।

विशालनीलोत्पललोचनायै, विकासिपङ्केरुहलोचनाय।
समेक्षणायै विषमेक्षणाय, नमः शिवायै च नमः शिवाय।।४।।

अन्वय—विशालनीलोत्पललोचनायै, समेक्षणायै, शिवायै, नमः, विकासिपङ्केरुहलोचनाय, विषमेक्षणाय, शिवाय, च, नमः।

अर्थ—नील कमल की तरह काले विशाल व दो नेत्रों वाली, माता पार्वती को मैं नमस्कार करता हूँ। रक्त कमल की तरह विस्तृत व विषम (तीन) नेत्रों वाले, भगवान् शंकर को भी मैं नमस्कार करता हूँ।।४।।

मन्दारमालाकलितालकायै, कपालमालाङ्कितकन्धराय।

दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय।।५।।

अन्वय—मन्दारमालाकलितालकायै, दिव्याम्बरायै, शिवायै, नमः, कपालमालाङ्कितकन्धराय, दिगम्बराय, शिवाय, च, नमः।

अर्थ—मन्दार पुष्प की माला से जिनका केशपाश सुशोभित है, जिन्होंने दिव्य वस्त्रों को धारण किया है, उन्हीं माता पार्वती को, मैं नमस्कार करता हूँ। कपालमाला से जिनका कन्धर=गला सुशोभित है, दिगम्बर रूप उस भगवान् शिव को भी मैं नमस्कार करता हूँ।।५।।

अम्भोधरश्यामलकुन्तलायै, तडित्प्रभाताम्रजटाधराय।

निरीश्वरायै निखिलेश्वराय नमः शिवायै च नमः शिवाय।।६।।

अन्वय—अम्भोधरश्यामलकुन्तलायै, निरीश्वरायै, शिवायै, नमः, तडित्प्रभाताम्रजटाधराय, निखिलेश्वराय, शिवाय, च नमः।

अर्थ—बादल के समान काले घुँघराले केश वाली, तथा सरल स्वभाव वाली माता पार्वती को मैं नमस्कार करता हूँ। बिजली की प्रभा के समान ताम्रवर्ण की जटाओं को धारण किये हुए, समस्त भूमण्डल के स्वामी जो भगवान् शंकर हैं, उनके लिए मैं नमस्कार करता हूँ।।६।।

प्रपञ्चसृष्ट्युन्मुखलास्यकायै, समस्तसंहारकताण्डवाय।

जगज्जनन्यै जगदेकपित्रे नमः शिवायै च नमः शिवाय।।७।।

अन्वय—प्रपञ्चसृष्ट्युन्मुखलास्यकायै, जगज्जनन्यै, शिवायै, नमः, समस्तसंहारकताण्डवाय, जगदेकपित्रे, शिवाय, च, नमः।

अर्थ—इस संसार के उत्पत्ति के अनुकूल सुन्दर व कोमल लास्य नृत्य करने वाली, समस्त जगत् की जननी पार्वती को, मैं नमस्कार करता हूँ। इस संसार के संहार के अनुकूल ताण्डव (प्रलयङ्कर) नृत्य करने वाले, सारे संसार के पिता भगवान् शंकर को भी मैं नमस्कार करता हूँ।।७।।

प्रदीप्तरत्नोज्ज्वलकुण्डलायै स्फुरन्महापन्नगभूषणाय।

शिवान्वितायै च शिवान्विताय नमः शिवायै च नमः शिवाय।।८।।

अन्वय—प्रदीप्तरत्नोज्ज्वलकुण्डलायै, शिवान्वितायै, शिवायै, च, नमः, स्फुरन्महापन्नगभूषणाय, शिवान्विताय, शिवाय, च, नमः।

अर्थ—देदीप्यमान रत्नों की प्रभा से चमक रहे हैं कुण्डल (कर्णाभरण) जिनके, ऐसी कल्याणकारिणी शक्ति से समन्वित, माता पार्वती को मैं नमस्कार करता हूँ। चमकते हुए फणों से युक्त, भयानक सर्प का बनाया है आभूषण जिन्होंने, ऐसे कल्याणकारी गुणों से युक्त, भगवान् शंकर को मैं नमस्कार करता हूँ।।८।।

एतत्पठेदष्टकमिष्टदं यो भक्त्या स मान्यो भुवि दीर्घजीवी।
प्राप्नोति सौभाग्यमनन्तकालं भूयात् सदा तस्य समस्तसिद्धिः।।६।।

अन्वय—यः (नरः) इष्टदम्, एतत्, अष्टकम्, भक्त्या, पठेत्, सः, भुवि, मान्यः, दीर्घजीवी, च, स्यात्, अनन्तकालम् (यावत्) सौभाग्यम्, प्राप्नोति, तस्य, सदा, समस्तसिद्धिः, (च) भूयात्।

अर्थ—जो मनुष्य, अभीष्ट फल देने वाले इस अष्टक का भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह इस संसार में, मान व प्रतिष्ठा को प्राप्त करता हुआ, बहुत समय तक जीता है, और आगे भी यावत्-जीवन सौभाग्य, तथा सभी प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त करता है।।६।।

उमामहेश्वरस्तोत्रम्

नमः शिवाभ्यां नवयौवनाभ्यां परस्पराश्लिष्टवपुर्धराभ्याम्।
नगेन्द्रकन्यावृषकेतनाभ्यां नमो नमः शंकरपार्वतीभ्याम्।।१।।

अन्वय—नवयौवनाभ्याम्, परस्पराश्लिष्टवपुर्धराभ्याम्, शिवाभ्याम्, नमः (तथा च) नगेन्द्रकन्यावृषकेतनाभ्याम् शंकरपार्वतीभ्याम् नमः नमः।

अर्थ—नित्य नूतन युवावस्था में वर्तमान, एक दूसरे से कभी भी जुदा न होने वाले, (अर्थात् अर्धनारीनटेश्वर स्वरूप को धारण करने वाले) संसार के कल्याण-कारक, भगवान् शंकर व पार्वती को, मैं नमस्कार करता हूँ, और हिमालय की पुत्री के रूप में जो माता पार्वती हैं, तथा वृषभध्वज के रूप में जो भगवान् शंकर हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।।१।।

नमः शिवाभ्यां सरसोत्सवाभ्यां, नमस्कृताभीष्टवरप्रदाभ्याम्।
नारायणेनार्चितपादुकाभ्यां नमो नमः शंकरपार्वतीभ्याम्।।२।।

अन्वय–नमस्कृताभीष्टवरप्रदाभ्याम् सरसोत्सवाभ्याम्, शिवाभ्याम्, नमः, नारायणेनार्चितपादुकाभ्याम्, शंकरपार्वतीभ्याम्, नमः नमः।

अर्थ–नमस्कार करने वाले भक्त जनों के लिए अभिलषित वर देने वाले प्रेमपूर्ण तथा प्रफुल्लित जो पार्वती व शंकर हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ, और भगवान् विष्णु स्वयं जिनके चरण-कमलों की पादुका की पूजा किया करते हैं, उन भगवान् शंकर व माता पार्वती जी को मैं नमस्कार करता हूँ।।२।।

नमः शिवाभ्यां वृषवाहनाभ्यां विरिञ्चिविष्ण्विन्द्रसुपूजिताभ्याम्।
विभूतिपाटीरविलेपनाभ्यां नमो नमः शंकरपार्वतीभ्याम्।।३।।

अन्वय–विरिञ्चिविष्ण्विन्द्रसुपूजिताभ्याम्, वृषवाहनाभ्याम्, शिवाभ्याम्, नमः (पुनश्च) विभूतिपाटीरविलेपनाभ्याम्, शंकरपार्वतीभ्याम्, नमः, नमः, (अस्तु)।

अर्थ–ब्रह्मा, विष्णु व इन्द्रादि देवताओं के द्वारा भलीभाँति पूजित, वृषभवाहन वाले, भगवान् शिव व पार्वती को मैं नमस्कार करता हूँ। पुनश्च भस्म व चन्दन का लेपन किये हुए, भगवान् शंकर व माता पार्वती को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।।३।।

नमः शिवाभ्यां जगदीश्वराभ्यां जगत्पतिभ्यां जयविग्रहाभ्याम्।
जम्भारिमुख्यैरभिवन्दिताभ्यां नमो नमः शंकरपार्वतीभ्याम्।।४।।

अन्वय–जम्भारिमुख्यैः, अभिवन्दिताभ्याम्, जयविग्रहाभ्याम्, जगत्पतिभ्याम्, जगदीश्वराभ्याम्, शिवाभ्याम्, शंकरपार्वतीभ्याम्, नमः, नमः, (अस्तु)।

अर्थ–इन्द्रादि प्रमुख देवताओं के द्वारा अभिवन्दित, विजय ही है स्वरूप जिनका, ऐसे जगत्पति तथा जगत् के शासक, कल्याणरूप जो भगवान् शंकर व माता पार्वती हैं, उनको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।।४।।

नमः शिवाभ्यां परमौषधाभ्यां पञ्चाक्षरीपञ्जररञ्जिताभ्याम्।
प्रपञ्चसृष्टिस्थितिसंहृतिभ्यां नमो नमः शंकरपार्वतीभ्याम्।।५।।

अन्वय–(अस्य प्रपञ्चस्य कृते) परमौषधाभ्याम्, पञ्चाक्षरीपञ्जररञ्जिताभ्याम्, शिवाभ्याम्, नमः, (पुनश्च) प्रपञ्चसृष्टिस्थितिसंहृतिभ्याम्, शंकरपार्वतीभ्याम्, नमः, नमः, (अस्तु)।

अर्थ–इस संसार के लिए महौषधि के समान और 'नमः शिवाय' इस पञ्चाक्षरी रूप पिंजड़े में विराजमान जो शंकर व पार्वती हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। और भगवान् शंकर व माता पार्वती के उस स्वरूप को भी मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ, जो स्वरूप इस संसार की सृष्टि, स्थिति तथा संहार करता है।।५।।

नमः शिवाभ्यामतिसुन्दराभ्याम् अत्यन्तमासक्तहृदम्बुजाभ्याम्।
अशेषलोकैकहितंकराभ्यां नमो नमः शंकरपार्वतीभ्याम्।।६।।

अन्वय–अत्यन्तम्, आसक्तहृदम्बुजाभ्याम्, अतिसुन्दराभ्याम्, शिवाभ्याम्, नमः (तथा च) अशेषलोकैकहितंकराभ्याम्, शंकरपार्वतीभ्याम्, नमः नमः।

अर्थ–जिनके हृदयरूपी कमल परस्पर एक दूसरे में अत्यन्त आसक्त हैं, ऐसे अत्यन्त सुन्दर रूप वाले, शिव व पार्वती को मैं नमस्कार करता हूँ, पुनश्च सम्पूर्ण संसार के जो एकमात्र हितकारी हैं, ऐसे भगवान् शंकर व माता पार्वती को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।।६।।

नमः शिवाभ्यां कलिनाशनाभ्यां कङ्कालकल्याणवपुर्धराभ्याम्।
कैलासशैलस्थितदेवताभ्यां नमो नमः शंकरपार्वतीभ्याम्।।७।।

अन्वय–कलिनाशनाभ्याम्, कङ्कालकल्याणवपुर्धराभ्याम्, शिवाभ्याम्, नमः। (पुनश्च) कैलासशैलस्थितदेवताभ्याम्, शंकरपार्वतीभ्याम्, नमः, नमः।

अर्थ–कलि (कलह-पाप आदि) के नाशक, घोर तथा कल्याणकारक सुन्दर रूपों से युक्त शरीरों को धारण करने वाले, शिव व पार्वती को मैं नमस्कार करता हूँ। ये दोनों भगवान् शिव व माता पार्वती, कैलासपर्वत के प्रतिष्ठित देवता हैं, इसीलिए इनको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।।७।।

नमः शिवाभ्यामशुभापहाभ्याम् अशेषलोकैकविशेषिताभ्याम्।
अकुण्ठिताभ्यां स्मृतिसम्भृताभ्यां नमो नमः शंकरपार्वतीभ्याम्।।८।।

अन्वय–अशुभापहाभ्याम्, अशेषलोकैकविशेषिताभ्याम्, शिवाभ्याम्, नमः, (अथ च) अकुण्ठिताभ्याम्, स्मृतिसम्भृताभ्याम्, शंकरपार्वतीभ्याम्, नमः, नमः।

अर्थ–जो अमङ्गल के निवारक हैं, समस्त संसार जिनकी स्तुति करता है, ऐसे शिव व पार्वती को मैं नमस्कार करता हूँ। शिव व पार्वती की अक्षय शक्ति सर्वसमर्थ है एवं उन्हें जीवों का कल्याण करना सदा याद रहता है,

(अथवा इन्हें अपने वास्तविक स्वरूप का कभी भी विस्मरण नहीं होता है। अतः किसी प्रकार का विकार या कुण्ठा के आने का कोई अवसर ही नहीं है)। ऐसे भगवान् शिव व माता पार्वती को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।।८।।

नमः शिवाभ्यां रथवाहनाभ्यां रवीन्दुवैश्वानरलोचनाभ्याम्।
राकाशशाङ्काभमुखाम्बुजाभ्यां नमो नमः शंकरपार्वतीभ्याम्।।९।।

अन्वय—रवीन्दुवैश्वानरलोचनाभ्याम्, रथवाहनाभ्याम्, शिवाभ्याम्, नमः, (तथा च) राकाशशाङ्काभमुखाम्बुजाभ्याम्, शंकरपार्वतीभ्याम्, नमः, नमः, (अस्तु)।

अर्थ—सूर्य चन्द्र व अग्निरूप लोचन वाले, रथ में विराजमान शिव व पार्वती को मैं नमस्कार करता हूँ। ये भगवान् शंकर व पार्वती, पूर्णिमा के परिपूर्ण चन्द्र की कान्ति के समान मुखारविन्द वाले हैं, इन्हें बार-बार नमस्कार करता हूँ।।९।।

नमः शिवाभ्यां जटिलंधराभ्यां जरामृतिभ्यां च विवर्जिताभ्याम्।
जनार्दनाब्जोद्भवपूजिताभ्यां नमो नमः शंकरपार्वतीभ्याम्।।१०।।

अन्वय—जरामृतिभ्याम्, विवर्जिताभ्याम्, जटिलंधराभ्याम्, (च) शिवाभ्याम्, नमः, (अथ च) जनार्दनाब्जोद्भवपूजिताभ्याम्, शंकरपार्वतीभ्याम्, नमः, नमः, (अस्तु)।

अर्थ—जरामरण से वर्जित व जटाजूट को धारण करने वाले शिव व पार्वती को मैं नमस्कार करता हूँ। (तपश्चर्या के दौरान पार्वती भी जटाधारी हो गयी थीं। अथवा जटिल अर्थात् सिंह को वे वाहनरूप से धारण करती हैं।) भगवान् विष्णु व ब्रह्मा जी भी जिनकी पूजा किया करते हैं, ऐसे भगवान् शंकर तथा माता पार्वती जी को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।।१०।।

नमः शिवाभ्यां विषमेक्षणाभ्यां बिल्वच्छदामल्लिकदामभृद्भ्याम्।
शोभावतीशान्तवतीश्वराभ्यां नमो नमः शंकरपार्वतीभ्याम्।।११।।

अन्वय—बिल्वच्छदामल्लिकदामभृद्भ्याम्, विषमेक्षणाभ्याम्, शोभावतीशान्तवतीश्वराभ्याम्, शिवाभ्याम्, शंकरपार्वतीभ्याम् नमः, नमः।

अर्थ—बिल्वपत्र से युक्त मल्लिका पुष्प की मालाओं को धारण किये हुए, विषम-नयन (त्रिनेत्रधारी), शोभावती भगवती व शान्तवती त्रिविध ताप शान्त करने वाली गंगा के स्वामी, संसार के कल्याणकारक, जो भगवान् शंकर व माता पार्वती हैं, उन्हें मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।।११।।

नमः शिवाभ्यां पशुपालकाभ्यां जगत्त्रयीरक्षणबद्धहृद्भ्याम्।
समस्तदेवासुरपूजिताभ्यां नमो नमः शंकरपार्वतीभ्याम्।।१२।।

अन्वय—जगत्त्रयीरक्षणबद्धहृद्भ्याम्, पशुपालकाभ्याम्, शिवाभ्याम्, नमः (पुनश्च) समस्तदेवासुरपूजिताभ्याम्, शंकरपार्वतीभ्याम्, नमः, नमः।

अर्थ—तीन लोकों की रक्षा का संकल्प जिन्होंने अपने हृदय में रक्खा हुआ है, पशुवत् अज्ञानी जो जीव हैं, उनके अज्ञान को दूर कर अर्थात् 'पाशों' से मुक्त कर उनकी रक्षा करने वाले जो शिव व पार्वती हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। और समस्त देवता व दानव जिनकी पूजा किया करते हैं, उन्हीं भगवान् शंकर व माता पार्वती जी को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।।१२।।

स्तोत्रं त्रिसंध्यं शिवपार्वतीभ्यां भक्त्या पठेद् द्वादशकं नरो यः।
स सर्वसौभाग्यफलानि भुङ्क्ते शतायुरन्ते शिवलोकमेति।।१३।।

अन्वय—यः, नरः, द्वादशकम् (इदम्) स्तोत्रम्, त्रिसन्ध्यम्, भक्त्या, शिव-पार्वतीभ्याम्, (शिवयोः प्रसन्नतायै, इत्यर्थः) पठेत् सः, शतायुः सन् (इह) सर्वसौभाग्यफलानि भुङ्क्ते, अन्ते, (च) शिवलोकम् एति।

अर्थ—जो मनुष्य द्वादश पद्यात्मक, इस उमामहेश्वर नामक स्तोत्र का, तीनों समय (प्रातः मध्याह्न व सायंकाल) भक्तिपूर्वक भगवान् शंकर व माता पार्वती जी की प्रसन्नता के लिए पाठ करता है, वह मनुष्य यहाँ शतायु होकर, सभी प्रकार के सौभाग्य फलों का उपभोग करता है, और अन्त में शिवलोक को प्राप्त करता है।।१३।।

मीनाक्षीपञ्चरत्नम्

उद्यद्भानुसहस्रकोटिसदृशां केयूरहारोज्ज्वलां
बिम्बोष्ठीं स्मितदन्तपंक्तिरुचिरां पीताम्बरालंकृताम्।
विष्णुब्रह्मसुरेन्द्रसेवितपदां तत्त्वस्वरूपां शिवां
मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम्।।१।।

अन्वय—अहम्, उद्यद्भानुसहस्रकोटिसदृशाम्, केयूरहारोज्ज्वलाम्, बिम्बोष्ठीम्, स्मितदन्तपंक्तिरुचिराम्, पीताम्बरालंकृताम्,

विष्णुब्रह्मसुरेन्द्रसेवितपदाम्, तत्त्वस्वरूपाम्, शिवाम्, कारुण्यवाराम् निधिम्, मीनाक्षीम्, सन्ततम्, प्रणतः, अस्मि।

अर्थ—जो उदय होते हुए अनंत सूर्यो के समान आभा वाली हैं, केयूर व हार से जो भव्य मालूम पड़ती हैं, जो बिम्ब फल के समान लाल ओठों वाली हैं, मधुर मुस्कान युक्त दन्तपंक्ति से जो सुन्दर मालूम पड़ती हैं, पीले वस्त्र से जो अलंकृत हैं, विष्णु, ब्रह्मा व इन्द्रादि देवताओं से जिनके चरण कमल सुसेवित हैं, जो तत्त्वस्वरूपा, कल्याण-कारिणी व करुणा-वरुणालया हैं, ऐसी श्रीमीनाक्षी देवी जी को मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ।।१।।

मुक्ताहारलसत्किरीटरुचिरां पूर्णेन्दुवक्त्रप्रभां
शिञ्जन्नूपुरकिङ्किणीमणिधरां पद्मप्रभाभासुराम्।
सर्वाभीष्टफलप्रदां गिरिसुतां वाणीरमासेवितां
मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम्।।२।।

अन्वय—अहम्, मुक्ताहारलसत्किरीटरुचिराम्, पूर्णेन्दुक्त्रप्रभाम्, शिञ्जन्नूपुरकिङ्किणीमणिधराम्, पदम्प्रभाभासुराम्, सर्वाभीष्टफलप्रदाम्, वाणीरमासेविताम्, गिरिसुताम्, कारुण्यवाराम् निधिम्, मीनाक्षीम्, सन्ततम्, प्रणतः, अस्मि।

अर्थ—जो मुक्ताहार से शोभायमान मुकुट से अत्यन्त सुन्दर मालूम पड़ती हैं, पूर्ण चन्द्र के समान जिनके मुख की कान्ति है, झनकते हुए नूपुर (पायजेब) किङ्किणी (करधनी) और मणिगणों को जो धारण किये हुए हैं, जो कमल की कान्ति की तरह उज्ज्वल हैं, सबको अभीष्ट फल देने वाली, सरस्वती व लक्ष्मी से सेवित, गिरिराज-हिमालय-पुत्री, करुणावरुणालया श्री मीनाक्षी देवी जी हैं, उन्हें मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ।।२।।

श्रीविद्यां शिववामभागनिलयां ह्रींकारमन्त्रोज्ज्वलां
श्रीचक्राङ्कितबिन्दुमध्यवसतिं श्रीमत्सभानायकीम्।
श्रीमत्षण्मुखविघ्नराजजननीं श्रीमज्जगन्मोहिनीं
मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम्।।३।।

अन्वय—अहम्, श्रीविद्याम्, (श्रीविद्यास्वरूपामित्यर्थः), शिववामभाग-निलयाम्, ह्रींकारमन्त्रोज्ज्वलाम्, श्रीचक्राङ्कित-बिन्दुमध्यवसतिम्, श्रीमत्सभानायकीम्, श्रीमत्षण्मुख-विघ्नराजजननीम्, श्रीमज्जगन्मोहिनीम्, कारुण्यवाराम्, निधिम्, मीनाक्षीम्, सन्ततम्, प्रणतः अस्मि।

अर्थ—जो (मीनाक्षी देवी) श्रीविद्यास्वरूपा हैं, और भगवान् शंकर के बायें

भाग में विराजमान हैं, 'ह्रीं' इस बीजमन्त्र से सुशोभित हैं, जो श्रीचक्र में अङ्कित बिन्दु के मध्य में निवास करती हैं और जो दिव्य-देवसभा की अधिनेत्री हैं, श्रीस्वामी कार्तिकेय व गणेश जी की माता, करुणा-वरुणालया श्री मीनाक्षी देवी जी को, मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ। ।३। ।

श्रीमत्सुन्दरनायकीं भयहरां ज्ञानप्रदां निर्मलां
श्यामाभां कमलासनार्चितपदां नारायणस्यानुजाम्।
वीणावेणुमृदङ्गवाद्यरसिकां नानाविधाडम्बिकां
मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम्। ।४। ।

अन्वय—(अहम्) श्रीमत्सुन्दरनायकीम्, भयहराम्, ज्ञानप्रदाम्, निर्मलाम्, श्यामाभाम्, कमलासनार्चितपदाम्, नारायणस्य, अनुजाम्, वीणा-वेणुमृदङ्गवाद्यरसिकाम्, नानाविधाडम्बिकाम्, कारुण्यवाराम्, निधिम्, मीनाक्षीम्, सन्ततम्, प्रणतः, अस्मि।

अर्थ—जो अति सुन्दर स्वामिनी हैं, भय को दूर करने वाली, ज्ञान को प्रदान करने वाली, निर्मल, स्वच्छ स्वरूप वाली, तथा श्यामल वर्ण की शोभा से सम्पन्न हैं, श्री ब्रह्मा जी द्वारा जिनके चरणकमल पूजे गये हैं, और श्री नारायण (भगवान् कृष्ण) की जो छोटी बहिन हैं, वीणा, वेणु, मृदङ्ग आदि वाद्यों के वादन में जिनकी विशेष रुचि है; इस प्रकार अनेक विचित्र लीलाओं में विहरण करने वाली, करुणावरुणालया श्री मीनाक्षी देवी जी को, मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ। ।४। ।

नानायोगिमुनीन्द्रहृन्निवसतीं नानार्थसिद्धिप्रदां,
नानापुष्पविराजिताङ्घ्रियुगलां नारायणेनार्चिताम्।
नादब्रह्ममयीं परात्परतरां नानार्थतत्त्वात्मिकां,
मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम्। ।५। ।

अन्वय—अहम्, नानायोगिमुनीन्द्रहृन्निवसतीम्, नानार्थसिद्धिप्रदाम्, नानापुष्पविराजिताङ्घ्रियुगलाम्, नारायणेन, अर्चिताम्, नादब्रह्ममयीम्, परात्परतराम्, नानार्थतत्त्वात्मिकाम्, कारुण्यवाराम्, निधिम्, मीनाक्षीम्, सन्ततम्, प्रणतः, अस्मि।

अर्थ—जो अनेक योगियों, तथा मुनिश्रेष्ठों के हृदयों में निवास करती हैं और अनेक प्रकार की सिद्धियों को देने वाली हैं, जिनके चरण-युगल अनेक प्रकार के पुष्पों से सुशोभित हैं, भगवान् नारायण स्वयं जिनकी पूजा किया करते हैं, जो नादब्रह्मरूप हैं तथा परात्पर तुरीय तत्त्वरूपा होते हुए भी, अनेक

प्रकार के पदार्थों के रूप धारण किये हुए हैं, ऐसी करुणावरुणालया श्री मीनाक्षी देवी जी को, मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ।।५।।

भवानीभुजङ्गप्रयातस्तोत्रम्

षडाधारपंकेरुहान्तर्विराजत्सुषुम्नान्तरालेऽतितेजोलसन्तीम्।
सुधामण्डलं द्रावयन्तीं पिबन्तीं सुधामूर्तिमीडे चिदानन्दरूपाम्।।१।।

अन्वय–(अहम्) षडाधारपंकेरुहान्तर्विराजत्सुषुम्नान्तराले, अतितेजोलसन्तीम्, सुधामण्डलं, द्रावयन्तीं, (सुधां) पिबन्तीम्, चिदानन्दरूपां, सुधामूर्तिम्, ईडे।

अर्थ–जो भगवती भवानी, छहों आधारभूत चक्ररूपी कमलों के अन्दर विराजमान जो सुषुम्ना नाडी है उसके मध्य अत्यन्त तेजस्वी रूप में सुशोभित हैं, (सहस्रार में स्थित) अमृत के मंडल को पिघालती हैं व उस अमृत का पान करती हैं, अमृत की मूर्ति, चेतन और सुख रूप उन श्री भवानी की मैं स्तुति करता हूँ।।१।।

ज्वलत्कोटिबालार्कभासारुणाङ्गीं सुलावण्यश‍ृङ्गारशोभाभिरामाम्।
महापद्मकिंजल्कमध्ये विराजत्त्रिकोणे निषण्णां भजे श्रीभवानीम्।।२।।

अन्वय–(अहम्) ज्वलत्कोटिबालार्कभासारुणाङ्गीम्, सुलावण्यश‍ृङ्गार-शोभाभिरामाम्, महापद्मकिंजल्कमध्ये, विराजत्त्रिकोणे, निषण्णाम्, श्रीभवानीम्, भजे।

अर्थ–जो भगवती भवानी, करोड़ों उदीयमान सूर्यों की देदीप्यमान कान्ति जैसी अरुणवर्ण की हैं और अपने स्वाभाविक सौन्दर्यरूप श‍ृङ्गार की शोभा से अत्यन्त रमणीय हैं, अष्टदल रूप जो विशाल कमल चक्र है, उसके पराग के बीच शोभायमान जो त्रिकोण है, उसी में बिन्दुरूप से विराजमान हैं, उन्हीं का मैं भजन करता हूँ।।२।।

क्वणत्किंकिणीनूपुरोद्भासिरत्नप्रभालीढलाक्षार्द्रपादाब्जयुग्मम्।
अजेशाच्युताद्यैः सुरैः सेव्यमानं महादेवि मन्मूर्ध्नि ते भावयामि।।३।।

अन्वय–हे महादेवि! अजेशाच्युताद्यैः सुरैः सेव्यमानं ते क्वणत्किं-किणीनूपुरोद्भासिरत्न-प्रभालीढलाक्षार्द्रपादाब्जयुग्मं, मन्मूर्ध्नि भावयामि।

अर्थ–हे महादेवि! मैं ऐसा ध्यान करता हूँ कि मेरे सिर पर हमेशा आपके चरण कमल हैं, जो कि झनकते हुए नूपुर (पायजेब) में जटित माणिक्यादि

रत्नों की अरुण कान्ति से लाक्षारस-रञ्जित से मालूम पड़ते हैं, और ब्रह्मा विष्णु महेशादि देवों से सदा सेवित हैं।

सुशोणाम्बराबद्धनीवीविराजन्महारत्नकांचीकलापं नितम्बम्।
स्फुरद्दक्षिणावर्तनाभिं च तिस्रो वलीरम्ब ते रोमराजिं भजेऽहम्।।४।।

अन्वय—हे अम्ब! ते सुशोणाम्बराबद्धनीवीविराजन्महारत्नकांची-कलापं नितम्बं, स्फुरद्दक्षिणावर्तनाभिं, तिस्रः वलीः, रोमराजिं च अहं भजे।

अर्थ—हे माता! मैं आपके उस नितम्ब-बिम्बका भजन करता हूँ जो सुन्दर लाल साड़ी से कसकर लिपटा है और कमर पर बँधी बहुमूल्य रत्नों वाली करधनी की लड़ियों से शोभित है। दक्षिणावर्त शंख-सी सुन्दर आपकी नाभि, उसके आस-पास की तीन वलियाँ और रोमों की रेखा—इनका भी मैं भजन करता हूँ।।५।।

लसद्वृत्तमुत्तुङ्गमाणिक्यकुम्भोपमश्रिस्तनद्वन्द्वमम्बाम्बुजाक्षि।
भजे दुग्धपूर्णाभिरामं तवेदं महाहारदीप्तं सदा प्रस्नुतास्यम्।।५।।

अन्वय—हे अम्ब! हे अम्बुजाक्षि! तव इदं लसद्वृत्तम् उत्तुङ्गमाणिक्य-कुम्भोपमश्रि महाहारदीप्तम् अभिरामं सदा प्रस्नुतास्यं स्तनद्वन्द्वं भजे।

अर्थ—हे माता! हे कमलनयना! सुडौल, सुन्दर हार से सजे, सब तरह से रमणीय, वात्सल्यवश सदा दुग्ध से युक्त मुखभाग वाले आपके स्तनों के इस जोड़े का भजन करता हूँ जिसकी कान्ति ऐसी है मानों माणिक्य से बने उन्नत घड़े हों।।५।।

शिरीषप्रसूनोल्लसद्बाहुदंडै र्ज्वलद्बाणकोदण्डपाशांकुशैश्च।
चलत्कङ्कणोदारकेयूरभूषोज्ज्वलद्भिः स्फुरन्तीं भजे श्रीभवानीम्।।६।।

अन्वय—(अहम्) शिरीषप्रसूनोल्लसद्बाहुदंडैः, ज्वलद्बाणकोदण्डपाशांकुशैः, च, चलत्कङ्कणोदारकेयूरभूषोज्ज्वलद्भिः, स्फुरन्तीम्, श्रीभवानीम्, भजे।

अर्थ—मैं उस श्रीभगवती भवानी का (भजन) ध्यान करता हूँ, जो सीरस के पुष्प के समान सुकोमल बाहुदण्डों से, और चमकते हुए धनुष, बाण, पाश व अंकुश से, तथा चञ्चल कङ्कण (कड़े) व विशाल बाजूबन्द आदि आभूषणों की कान्ति से, देदीप्यमान हैं ।।६।।

शरत्पूर्णचन्द्रप्रभापूर्णबिम्बाधरस्मेरवक्त्रारविन्दां सुशान्ताम्।
सुरत्नावलीहारताटङ्कशोभां भजे सुप्रसन्नामहं श्रीभवानीम्।।७।।

अन्वय—हे भवानि! शरत्पूर्णचन्द्रप्रभापूर्णबिम्बाधरस्मेरवक्त्रारविन्दां,

सुशान्तां, सुरत्नावलीहारताटङ्कशोभाम्, सुप्रसन्नाम्, श्रीभवानीम्, अहम्, भजे।

अर्थ—हे भवानी! शरत् ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा की चाँदनी से परिपूर्ण बिम्ब जैसे, तथा कुछ मन्द मुस्कान भरे अधरों वाले मुख-कमल वाली, (कहने का तात्पर्य यह है कि माता भवानी का मुखारविन्द असाधारण सुषमा-सम्पन्न है, वह मन्द मुस्कान से युक्त होता है तो वह स्वच्छ हास उनके लाल अधरोष्ठों में फैल जाता है, तब वे अधर ऐसे मालूम पड़ते हैं कि मानो उनमें शरत्कालीन पूर्णिमा के चन्द्र की चाँदनी छिटकी हो।) सर्वथा शान्त, सुन्दर रत्नों से सुसज्जित हार व कर्णालङ्कारभूत ताटङ्क से सुशोभित, प्रसन्नमुद्रा में समासीन, आपका ध्यान व भजन करता हूँ।।७।।

सुनासापुटं सुन्दरभ्रूललाटं तवौष्ठश्रियं दानदक्षं कटाक्षम्।
ललाटोल्लसद्गन्धकस्तूरिभूषं स्फुरच्छ्रीमुखाम्भोजमीडेऽहमम्ब।।८।।

अन्वय—अम्ब! सुनासापुटं, सुन्दरभ्रूललाटम्, ओष्ठश्रियं, दानदक्षं कटाक्षं, ललाटोल्लसद्गन्धकस्तूरिभूषं, तव स्फुरच्छ्रीमुखाम्भोजम्, अहम्, ईडे।

अर्थ—हे माता! मैं आपके कान्तियुक्त शोभा वाले मुखकमल की स्तुति करता हूँ जो सुंदर नासिकाओं वाला है, सुंदर भौंहों वाले मस्तक से युक्त है, जिसकी शोभा ओठों के कारण अत्यधिक है, जिसके कृपाकटाक्ष अभीष्ट प्रदान करने में कुशल हैं तथा जिसका ललाट सुगंधित कस्तूरी से सजा होने से अतिमनोहारी है।।८।।

चलत्कुन्तलान्तर्भ्रमद्भृङ्गवृन्दं घनस्निग्धधम्मिल्लभूषोज्ज्वलं ते।
स्फुरन्मौलिमाणिक्य-बद्धेन्दुरेखाविलासोल्लसद् दिव्यमूर्धानमीडे।।६।।

अन्वय—चलत्कुन्तलान्तर्भ्रमद्भृङ्गवृन्दं, घनस्निग्धधम्मिल्लभूषोज्ज्वलं, स्फुरन्मौलिमाणिक्यबद्धेन्दुरेखाविलासोल्लसत्, ते, दिव्यमूर्धानम्, ईडे।

अर्थ—मैं आपकी अलौकिक मूर्धा की स्तुति करता हूँ : जिसके हिलते बालों के अन्दर भौरों के समूह भ्रमण करते हैं (केशों के सौंदर्य व सुगंध से भ्रमवश फूल समझकर उनमें घुसने पर वहीं प्रसन्नता से गूंजते भौरों वाली मूर्धा है); घने व चिकने केशपाश जिस मूर्धा पर आभूषणों से सज्जित हैं; माणिक्य की तरह चमकते मस्तक पर विराजमान चन्द्ररेखा के सौंदर्य से जो (मूर्धा) अलंकृत है।।६।।

इति श्रीभवानि स्वरूपं तवेदं प्रपञ्चात्परं चातिसूक्ष्मं प्रसन्नम्।
स्फुरत्वम्ब डिम्भस्य मे हृत्सरोजे सदा वाङ्मयं सर्वतेजोमयं च।।१०।।

अन्वय–हे श्रीभवानि! अम्ब! तव इति इदं प्रपंचात् परम्, अतिसूक्ष्मं प्रसन्नं च वाङ्मयं सर्वतेजोमयं च स्वरूपं मे डिम्भस्य हृत्सरोजे सदा स्फुरतु।

अर्थ–हे श्रीभवानी! हे माता! आपका यों वर्णित यह प्रपंच से परे अत्यन्त सूक्ष्म और प्रसन्न, शब्दात्मक तथा सब तेजों से युक्त रूपात्मक स्वरूप मुझ बालक के हृदय-कमल में हमेशा प्रकट रहा करे। (वर्णित रूप भी मन में दीखे तथा शब्दतः यह वर्णन भी याद बना रहे।)।।१०।।

गणेशाणिमाद्याखिलैः शक्तिवृन्दैः स्फुरच्छ्रीमहाचक्रराजोल्लसन्तीम्।
परां राजराजेश्वरीं त्वां भवानीं शिवाङ्कोपरिस्थां शिवां भावयेऽहम्।।११।

अन्वय–हे भवानि! गणेशाणिमाद्याखिलैः, शक्तिवृन्दैः, (वृतां) स्फुरच्छ्रीमहाचक्रराजोल्लसन्तीम्, शिवाङ्कोपरिस्थाम्, शिवाम्, पराम्, राजराजेश्वरीम्, त्वाम्, भवानीम्, अहम्, भावये।

अर्थ–हे भवानी! गणेशादि व अणिमादि जो समस्त शक्ति-समुदाय हैं, उनसे आप घिरी हैं। देदीप्यमान श्री चक्रराज के मध्य आप सुशोभित हैं। आप भगवान् शंकर के अङ्क में विराजमान हैं, सभी का कल्याण करने वाली हैं। इस प्रकार परा = तुरीय चैतन्य स्वरूपा, राजराजेश्वरी जो आप हैं, उन्हीं आपका, मैं ध्यान करता हूँ।।११।।

त्वमर्कस्त्वमग्निस्त्वमिन्दुस्त्वमापस्त्वमाकाशभूवायवस्त्वं चिदात्मा।
त्वदन्यो न कश्चित्प्रकाशोऽस्ति सर्वं सदानन्दसंवित्स्वरूपं तवेदम्।।१२।।

अन्वय–हे भवानि! त्वम्, अर्कः, (असि) त्वम्, अग्निः, त्वम्, इन्दुः, त्वम्, आपः, त्वम्, आकाशः, त्वम्, भूः, त्वम्, वायवः, त्वम् चिदात्मा, (च) असि, त्वदन्यः, कश्चित्, प्रकाशः, नास्ति, इदम् (परिदृश्यमानम्) सर्वम्, (प्रपञ्चजातम्) तव, सदानन्दसंवित्स्वरूपम्, अस्ति।

अर्थ–हे भवानी! आप ही सूर्य, चन्द्र, अग्नि, जल, आकाश, पृथिवी, वायु व चैतन्यस्वरूप हो, आप से अतिरिक्त प्रकाश नाम की कोई चीज नहीं है, यह दिखलाई देने वाला सारा प्रपञ्च समुदाय, आपकी ही सत्ता से सत्य व प्रिय और ज्ञान रूप वाला है। (अखिल प्रपञ्च केवल नाम-रूपात्मक ही है, परन्तु 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' इस श्रुति के अनुसार उस चैतन्यरूपा आद्या शक्ति की सत्ता आदि से यह सारा प्रपञ्च भी सत् चित् आनन्द रूप वाला

है।)।।१२।।

गुरुस्त्वं शिवस्त्वं च शक्तिस्त्वमेव त्वमेवासि माता पिताऽसि त्वमेव।
त्वमेवासि विद्या त्वमेवासि बुद्धि र्गति र्मे मति र्देवि सर्वं त्वमेव।।१३।।

अन्वय—हे भवानि! हे देवि! त्वम्, गुरुः, (असि) त्वम्, शिवः, त्वम्, शक्तिः, त्वमेव, माता, त्वमेव, पिता त्वमेव, विद्या, त्वमेव, बुद्धिः, त्वमेव, मे (मम) मतिः, मे गतिः, त्वमेव, सर्वम्, असि।

अर्थ—हे भवानी! हे देवि! आप ही मेरी गुरु हैं, आप ही शिव हैं, आप ही शक्ति भी हैं, आप ही माता व पिता हैं, आप ही विद्या, बुद्धि, मति व गति हैं; मेरे लिए तो सब कुछ आप ही हैं।।१३।।

श्रुतीनामगम्यं सुवेदागमाद्यै र्महिम्नो न जानामि पारं तवेदम्।
स्तुतिं कर्तुमिच्छामि ते त्वं भवानि क्षमस्वेदमम्ब प्रमुग्धः किलाहम्।।१४।।

अन्वय—हे भवानि! अहम्, सुवेदागमाद्यैः, ते, स्तुतिम्, कर्तुम्, इच्छामि (परन्तु) श्रुतीनाम्, (अपि) अगम्यम्, तव, महिम्नः, इदं, पारम् न, जानामि, हे अम्ब! त्वम्, इदम्, (अज्ञत्वेऽपि तुष्टूषुत्वम्) क्षमस्व, (यतो हि) अहम्, प्रमुग्धः, किल।

अर्थ—हे भवानी! मैं वेद शास्त्रादि की सहायता से, आपकी स्तुति करना चाहता हूँ, परन्तु वेदों से भी अगम्य अवर्णनीय, आपकी महिमा की इस असीमता को, मैं नहीं जान सकता। अनजान होने पर भी स्तुति कर रहा हूँ, इसके लिये, क्षमा चाहता हूँ क्योंकि अवश्य मैं अत्यन्त मूढ हूँ।।१४।।

शरण्ये वरेण्ये सुकारुण्यपूर्णे हिरण्योदराद्यैरगम्येऽतिपुण्ये।
भवारण्यभीतं च मां पाहि भद्रे नमस्ते नमस्ते नमस्ते भवानि।।१५।।

अन्वय—हे शरण्ये! हे वरेण्ये! हे सुकारुण्यपूर्णे! हे हिरण्योदराद्यैः अगम्ये! हे अतिपुण्ये!, हे भद्रे! भवारण्यभीतम्, माम्, पाहि, च (=एव), हे भवानि! ते नमः, ते नमः, ते नमः, (अस्तु)।

अर्थ—हे शरणागतवत्सले! हे सर्वश्रेष्ठ! हे करुणापूर्ण मूर्ति वाली! हे हिरण्यगर्भ ब्रह्मा आदि से भी अगम्य रूप वाली! अतिपवित्रात्मा स्वरूपे! हे कल्याणकारिणि! मैं इस संसार रूपी अरण्य अर्थात् भवाटवी से भयभीत हूँ। अतः मेरी आप रक्षा अवश्य करें। हे भवानी! मैं आपके लिए बार-बार नमस्कार करता हूँ।।१५।।

इमामन्वहं श्रीभवानीभुजङ्गस्तुतिं यः पठेच्छ्रोतुमिच्छेच्च तस्मै।
स्वकीयं पदं शाश्वतं चैव सारं श्रियं चाष्टसिद्धीश्च देवी ददाति।।१६।।

अन्वय—यः, अन्वहम्, इमाम्, श्रीभवानीभुजङ्गस्तुतिम्, पठेत् श्रोतुमिच्छेत्, च, तस्मै, देवी, स्वकीयम्, शाश्वतं पदम् सारम्, श्रियम्, च, अष्टसिद्धीः, च, ददाति।

अर्थ—जो मनुष्य प्रतिदिन इस श्रीभवानी-भुजङ्ग-प्रयातनामक स्तोत्र का पाठ करता है, अथवा इसको सुनना चाहता है, उसके लिए प्रसन्न होकर देवी अपना परमपद, श्रेष्ठ सम्पदा, और आठ प्रकार की आणिमादि सिद्धियों को भी, प्रदान करती हैं।।१६।।

आनन्दलहरी

भवानि स्तोतुं त्वां प्रभवति चतुर्भिर्न वदनैः
प्रजानामीशानस्त्रिपुरमथनः पञ्चभिरपि।
न षड्भिः सेनानी र्दशशतमुखैरप्यहिपति-
स्तदान्येषां केषां कथय कथमस्मिन्नवसरः।।१।।

अन्वय—हे भवानि! प्रजानाम्, ईशानः, चतुर्भिः, वदनैः, (अपि) त्वाम्, स्तोतुम्, न, प्रभवति, त्रिपुरमथनः, पञ्चभिः, अपि, (वदनैः) त्वाम्, स्तोतुम्, न, प्रभवति, सेनानीः (कार्तिकेयः) षड्भिः, (विद्यमानैः) वदनैः, (अपि) त्वाम्, स्तोतुम्, न प्रभवति (आस्तांमेषां परिमितमुखानां वार्ता), अहिपतिः, दशशतमुखैः, अपि, त्वाम्, स्तोतुम् असमर्थः अस्ति। यदा सर्वसाधनसम्पन्नानां महैश्वर्यशालिनामेषामेतादृशी दशा वर्तते तदा, त्वमेव कथय, अन्येषाम्, केषाम्, अस्मिन्, (तवस्तवविषये) कथम्, अवसरः, (भविष्यति)? न केषामपि सामर्थ्यमित्यर्थः।

अर्थ—हे भवानी! प्रजापति ब्रह्मा जी अपने चारों मुखों से भी, तुम्हारी स्तुति करने में असमर्थ हैं, त्रिपुरनाशक भगवान् शंकर पाँच मुखों से भी, तुम्हारी स्तुति नहीं कर सकते। कार्तिकेय जी छैः मुखों के रहते हुए भी, आपकी स्तुति करने में असमर्थ हैं। इन इनेगिने परिमित मुख वालों की तो बात ही क्या, हजार मुख वाले शेषनाग भी, आपका गुणगान नहीं कर सकते हैं! तब तुम्हीं बताओ, जब इस प्रकार के महिमाशालियों की यह दशा है, तब किसी अन्य व्यक्ति

को किस प्रकार आपकी स्तुति करने का अवसर प्राप्त हो सकता है।।१।।

घृतक्षीरद्राक्षामधुमधुरिमा कैरपि पदै-
र्विशिष्यानाख्येयो भवति रसनामात्रविषयः।
तथा ते सौन्दर्यं परमशिवदृङ्मात्रविषयः
कथंकारं ब्रूमः सकलनिगमागोचरगुणे।।२।।

अन्वय—हे सकलनिगमागोचरगुणे! (देवि) यथा, (केवलम्) रसनामात्र-विषयः, घृतक्षीरद्राक्षामधुमधुरिमा, कैः, अपि, पदैः, विशिष्य, (विशेषेण विशिष्टैः पदै र्वा) अनाख्येयः, भवति, तथा, (एव) परमशिवदृङ्मात्र-विषयः, ते (तव) सौन्दर्यम्, (अपि, विशिष्टैः कैरपि पदैः) अनाख्येयम्, अस्ति, अतः एतादृशमनिर्वचनीयं त्वदीयं सौन्दर्यम् वयम् कथंकारम् ब्रूमः (न कथमपि वक्तुं समर्थाः स्मेत्यर्थः)।

अर्थ—हे समस्त वेदों के द्वारा भी अवर्णनीय गुणों वाली देवि! जिस प्रकार घी, दूध, अंगूर व शहद आदि की मधुरिमा (मिठास) का अनुभव केवल रसना (जीभ) ही कर सकती है, इनकी खास मधुरिमा (मिठास) का वर्णन किन्हीं शब्दों द्वारा नहीं किया जा सकता है, उसी प्रकार आपका दिव्य सौन्दर्य भी, केवल परमशिव की ही दृष्टि का विषय है, किन्हीं शब्दों या वाग्व्यापार द्वारा उसका इदमित्थंतया वर्णन नहीं हो सकता है। जब अखिलज्ञानराशि-स्वरूप वेद भी जिसके सौन्दर्यादि गुणगणों के वर्णन में असमर्थ है, तब सामान्य सन्त, पण्डित अथवा कोई कवि भी, कैसे आपके समस्त सौन्दर्य का सम्पूर्णतया वर्णन कर सकता है।।२।।

मुखे ते ताम्बूलं नयनयुगले कज्जलकला
ललाटे काश्मीरं विलसति गले मौक्तिकलता।
स्फुरत्काञ्ची शाटी पृथुकटितटे हाटकमयी
भजामि त्वां गौरीं नगपतिकिशोरीमविरतम्।।३।।

अन्वय—हे देवि! ते (तव) मुखे, ताम्बूलम्, विलसति, नयनयुगले, कज्जलकला, विलसति, ललाटे, काश्मीरम्, विलसति, गले, मौक्तिकलता, (च) विलसति, पृथुकटितटे, हाटकमयी, स्फुरत्काञ्ची, शाटी, विलसति, (एतादृशीम्, विशिष्टालङ्करणाभरणाम्) नगपतिकिशोरीम्, गौरीम्, त्वाम् (अहम्) अविरतम्, भजामि।

अर्थ—हे देवि! आपके मुख में ताम्बूल (पान) सुशोभित है, और नयनयुगल, कज्जल की रेखाओं से अलङ्कृत है। ललाट में केशर की बिंदिया चमक रही

है, गले में मोती की माला झूल रही है, विशाल कटिभाग में सुनहरे रङ्ग की साड़ी सुशोभित है, जिसमें रत्नमयी करधनी चमक रही है। इस प्रकार विशिष्ट आभरणों से भूषित पर्वतराज हिमालय की किशोरी गौरवर्णा आपका, मैं निरन्तर ध्यान करता हूँ।।३।।

विराजन्मन्दारद्रुमकुसुमहारस्तनतटी
नदद्वीणानादश्रवणविलसत्कुण्डलगुणा।
नताङ्गी मातङ्गीरुचिरगतिभङ्गी भगवती
सती शम्भोरम्भोरुहचटुलचक्षु र्विजयते।। ४।।

अन्वय—(या भगवती भवानी) विराजन्मन्दारद्रुमकुसुमहारस्तनतटी, नदद्वीणानादश्रवणविलसत्कुण्डलगुणा, (अस्ति) (सा) नताङ्गी, मातङ्गीरुचिरगतिभङ्गी, अम्भोरुहचटुलचक्षुः, शम्भोः सती, भगवती, विजयते।

अर्थ—जो भगवती भवानी, सुन्दर पारिजात पुष्पों के हार से सुशोभित है, और वक्षस्थल के समीप बजती हुई वीणा के मधुर स्वर के सरस श्रवण करने में जिसके कानों के कुण्डल हिल रहे हैं, वही झुके हुए अङ्गों वाली, गजगामिनी, कमल की तरह सुन्दर व चञ्चल नेत्रों वाली, भगवान् शंकर की अर्धाङ्गिनी, भगवती भवानी सर्वोत्कृष्ट है, अर्थात् सभी के लिए नमस्करणीय है।।४।।

नवीनार्कभ्राजन्मणिकनकभूषापरिकरै-
र्वृताङ्गी सारङ्गीरुचिरनयनाङ्गीकृतशिवा।
तडित्पीता पीताम्बरललितमञ्जीरसुभगा
ममापर्णा पूर्णा निरवधिसुखैरस्तु सुमुखी।।५।।

अन्वय—(या भगवती) नवीनार्कभ्राजन्मणिकनकभूषापरिकरैः, वृताङ्गी, (अस्ति) सारङ्गीरुचिरनयना, अङ्गीकृतशिवा, तडित्पीता, पीताम्बर-ललितमञ्जीरसुभगा, निरवधिसुखैः, पूर्णा, (पूर्णागिरिस्वरूपा वा) (सा) अपर्णा (पार्वती), मम, (मत्कृते) सुमुखी, अस्तु।

अर्थ—जो भगवती, नवोदित बाल सूर्य की देदीप्यमान अरुण प्रभा के समान मणि व काञ्चन के आभूषणों से अलङ्कृत अङ्गोंवाली हैं, मृगी के समान सुन्दर जिनके नयन हैं, जिन्होंने शिव को पतिरूप में स्वीकार किया है, बिजली के समान जिनका पीत वर्ण है, और पीले वस्त्रों की प्रभा से जिनका मञ्जीर (पायजेब) अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रहा है, निरतिशय आनन्द से परिपूर्णा अथवा पूर्णागिरि स्वरूपा वह अपर्णा, पार्वती मेरे लिए सदा प्रसन्न

रहे।।५।।

हिमाद्रेः सम्भूता सुललितकरैः पल्लवयुता
सुपुष्पा मुक्ताभि र्भ्रमरकलिता चालकभरैः।
कृतस्थाणुस्थाना कुचफलनता सूक्तिसरसा
रुजां हन्त्री गन्त्री विलसति चिदानन्दलतिका।।६।।

अन्वय—रुजाम्, हन्त्री, इयम्, (पार्वती साक्षात्) गन्त्री (जङ्गमरूपा) चिदानन्दलतिका, विलसति, हिमाद्रेः, (सकाशात्) सम्भूता, सुललित-करैः, पल्लवयुता, अस्ति, मुक्ताभिः, सुपुष्पा (चास्ति), अलकभरैः, भ्रमरकलिता, कृतस्थाणुस्थाना, कुचफलनता, सूक्तिसरसा, (चास्ति)।

अर्थ—समस्त सांसारिक रोगों को नष्ट करने वाली, यह पार्वती साक्षात् चलती-फिरती चिदानन्दमयी लता है। जिस प्रकार लता किसी पर्वत में उत्पन्न होकर पल्लव पुष्प फलादि से सुशोभित होती है, उसी प्रकार यह चिदानन्दमयी लता भी पर्वतराज हिमालय से उत्पन्न हुई है, सुन्दर हाथ ही इसके किसलय हैं, गले में सुशोभित मुक्ताहार ही इसका सुन्दर पुष्प है। और उस हार रूपी पुष्प पर झूमने वाले काले काले कुञ्चित केश ही भ्रमर हैं। लता जिस प्रकार किसी वृक्ष (ठूँठ) का आश्रय लेती है, उसी प्रकार यह चिदानन्दमयी लता भगवान् शिव का आश्रय लिए है, और उरोजरूपी फलों से अवनत हुई, यह लता सुन्दर वाणीरूपी-रस से भरी हुई है।।६।।

सपर्णामाकीर्णां कतिपयगुणैः सादरमिह
श्रयन्त्यन्ये वल्लीं मम तु मतिरेवं विलसति।
अपर्णैका सेव्या जगति सकलैर्यत्परिवृतः
पुराणोऽपि स्थाणुः फलति किल कैवल्यपदवीम्।।७।।

अन्वय—अन्ये (तु कतिपये जनाः) इह, कतिपयगुणैः, आकीर्णाम्, सपर्णाम्, वल्लीम्, सादरम्, श्रयन्ति (परन्तु) मम, तु, मतिः, एवम्, विलसति, यत्, इह, जगति, सकलैः, (जनैः) एका, अपर्णा, (एव) सेव्या, यत्परिवृतः, पुराणः, अपि, स्थाणुः, कैवल्यपदवीम्, फलति, किल।

अर्थ—अन्य लोग तो किन्हीं परिमित गुणों से व्याप्त पत्रपुष्पादि-युक्त लता का (द्राक्षादि वल्लियों का) आदरपूर्वक सेवन करते हैं, परन्तु हमारी समझ में तो यही बात आती है कि, इस संसार में सभी लोगों को केवल एक अपर्णा (बिना पत्ते वाली) पार्वती माता का ही सेवन करना चाहिए जिस अपर्णा पार्वती से युक्त हुआ, पुराण पुरुष केवल स्थाणुरूप या स्थाणुवत्

उदासीन साक्षी शिव अपने भक्तों को कैवल्यपद मोक्ष प्रदान करते हैं। (पार्वती जी को अपर्णा–बिना पत्ते वाली कहने का तात्पर्य यह है, कि भगवान् शंकर को वररूप में प्राप्त करने के लिए बाल्यावस्था में भगवती पार्वती ने कठोर तपस्या की, केवल वनस्पतियों के पत्तों को खाकर उन्होंने बहुत समय बिता दिया, बाद में उन पत्तों को भी जब छोड़ दिया, तब से पार्वती का 'अपर्णा' यह नाम पड़ा। वस्तुतः शैव दर्शन के अनुसार भी, स्थाणु शिव केवल प्रकाश है। शक्ति या विमर्श के बिना फलन प्रतिफलन या फलप्रदान अवस्था में परिस्पन्दहीन है। इसी आशय को लेकर अन्यत्र किन्हीं आचार्य का भी यह कहना उचित ही प्रतीत होता है कि 'भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटी फलमिदम्' इत्यादि।)।।७।।

विधात्री धर्माणां त्वमसि सकलाम्नायजननी
त्वमर्थानां मूलं धनदनमनीयाङ्घ्रिकमले।
त्वमादिः कामानां जननि कृतकन्दर्पविजये
सतां मुक्ते बीजं त्वमसि परमब्रह्ममहिषी।।८।।

अन्वय–हे जननि! त्वम्, धर्माणाम्, विधात्री, असि, त्वम्, सकलाम्नायजननी, (असि), हे धनदनमनीयाङ्घ्रिकमले! त्वम्, अर्थानाम्, मूलम्, असि, हे कृतकन्दर्पविजये! त्वम्, कामानाम्, आदिः, असि, त्वम्, सताम्, मुक्तेः, बीजम्, असि, त्वम्, परमब्रह्ममहिषी, असि।

अर्थ–हे मातः! आप समस्त धर्मों की सृष्टि करने वाली हो, और सभी आगमों, शास्त्रों को जन्म देने वाली हो। हे धनपति कुबेर से भी वन्दनीय चरणकमले! देवि! आप ही समस्त वैभव का मूल हो। हे कन्दर्पदर्प-विनाशिनि! भवानि! आप ही सभी कामनाओं की आदिकारण हो। परब्रह्मरूप जो भगवान् शंकर हैं, उनकी आप पटरानी हो। इसीलिए आप ही समस्त सन्तों को मोक्ष प्रदान करने में एकमात्र कारण हो।।८।।

प्रभूता भक्तिस्ते यदपि न ममालोलमनस-
स्त्वया तु श्रीमत्या सदयमवलोक्योऽहमधुना।
पयोदः पानीयं दिशति मधुरं चातकमुखे
भृशं शङ्के कैर्वा विधिभिरनुनीता मम मतिः।।९।।

अन्वय–हे देवि! आलोलमनसः, मम, ते (तव त्वद्विषये वा) यदपि (यद्यपि) प्रभूता, भक्तिः, न, (नास्ति) तथापि, अधुना, अहम्, श्रीमत्या, त्वया, सदयम्, (एव) अवलोक्यः, (अनाराधितोऽयाचितो वा) पयोदः

चातकमुखे, मधुरम्, पानीयम्, दिशति (एव) अहम्, भृशम्, शङ्के, यत्, (त्वद्भक्तिविषये) कैः, वा विधिभिः, मम, मतिः, अनुनीता, भवेत्।

अर्थ—हे देवि! मेरे मन के अत्यन्त चञ्चल होने के कारण, आप में मेरी प्रचुर भक्ति नहीं हो सकी, फिर भी सर्वसौभाग्य-सम्पन्न आप, मुझे इस समय अवश्य दया दृष्टि से देखें। चातक चाहे प्रेम करे या न करे, पर बादल तो उसके मुख में अवश्य मधुर जल गिरा ही देता है। बस मुझे यही शंका है कि, किन प्रकारों से मेरी बुद्धि आपमें लगी रहे।।९।।

कृपापाङ्गालोकं वितर तरसा साधुचरिते
न ते युक्तोपेक्षा मयि शरणदीक्षामुपगते।
न चेदिष्टं दद्यादनुपदमहो कल्पलतिका
विशेषः सामान्यैः कथमितरवल्लीपरिकरैः।।१०।।

अन्वय—हे साधुचरिते! (त्वम् मयि) तरसा, कृपापाङ्गालोकम्, (यथा स्यात् तथा) वितर, शरणदीक्षाम् उपगते, मयि, ते (तव) उपेक्षा, न, युक्ता। अनघे! चेत्, (यदि) कल्पलतिका, अनुपदम्, इष्टम्, न, दद्यात् अहो! तर्हि, सामान्यैः, इतरवल्लीपरिकरैः, (सह) तस्याः, विशेषः, कथम्, स्यात्।

अर्थ—हे साधुचरितों वाली माँ! आप शीघ्र ही अपने कृपाकटाक्षयुक्त नयनों से मुझे निहारो, क्योंकि मैं आपके शरण की दीक्षा ले चुका हूँ। अब मेरी उपेक्षा करना उचित नहीं है। यदि कल्पलता प्रतिपद याचकों की कामना की पूर्ति करने में असमर्थ होय, तो फिर अन्य सामान्य लता-वृन्द से, उसकी विशेषता ही क्या रह जायेगी?।।१०।।

महान्तं विश्वासं तव चरणपङ्केरुहयुगे
निधायान्यन्नैवाश्रितमिह मया दैवतमुमे।
तथापि त्वच्चेतो यदि मयि न जायेत सदयं
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम्।।११।।

अन्वय—हे लम्बोदरजननि! उमे! मया, तव, चरणपङ्केरुहयुगे, महान्तम्, विश्वासम्, निधाय, इह, अन्यत्, दैवतम्, न, एव, आश्रितम्, तथापि, यदि, त्वच्चेतः, मयि, सदयम्, न, जायेत, (तदा) निरालम्बः, (सन्) कम्, शरणम्, यामि।

अर्थ—हे लम्बोदर गणेश जी की माँ उमे! मैंने आपके युगल चरणकमलों में बहुत बड़ा विश्वास रखकर, किसी अन्य देवता का आश्रय नहीं लिया है, इतने पर भी यदि तुम्हारा चित्त मुझपर दया से द्रवित नहीं होता है, तो फिर मैं निराश्रय होकर किसकी शरण में जाऊँ?।।११।।

अयः स्पर्शे लग्नं सपदि लभते हेमपदवीं
यथा रथ्यापाथः शुचि भवति गङ्गौघमिलितम्।
तथा तत्तत्पापैरतिमलिनमन्त्त र्मम यदि
त्वयि प्रेम्णा सक्तं कथमिव न जायेत विमलम्।।१२।।

अन्वय—यथा, अयः, स्पर्शे, लग्नम्, (सत्) सपदि, हेमपदवीम्, लभते, यथा (वा) रथ्यापाथः, गङ्गौघमिलितम्, (सत्) शुचि, भवति, तथा, (एव) तत्-तत्-पापैः, अतिमलिनम्, मम, अन्तः, (अपि) यदि, प्रेम्णा, त्वयि, सक्तम्, (चेत्) (तर्हि) कथम्, इव, विमलम्, न, जायेत।

अर्थ—जिस प्रकार लोहा पारसमणि के स्पर्श से तत्काल सोना बन जाता है, और गलियों का गन्दा पानी भी, पवित्र गङ्गा-प्रवाह में मिलकर पवित्र हो जाता है, इसी प्रकार विभिन्न पापों से अत्यन्त मलिन भी मेरा मन, श्रद्धा व प्रेम से यदि आप में लगा है, तो फिर वह कैसे निर्मल नहीं होगा?।।१२।।

त्वदन्यस्मादिच्छाविषयफललाभे न नियमः
त्वमर्थानामिच्छाधिकमपि समर्था वितरणे।
इति प्राहुः प्राञ्चः कमलभवनाद्यास्त्वयि मन-
स्त्वदासक्तं नक्तंदिवमुचितमीशानि कुरु तत्।।१३।।

अन्वय—हे ईशानि! त्वदन्यस्मात् (देवात्) इच्छाविषयफललाभे, नियमः, न, (परन्तु) त्वम्, (तु) (पुरुषेभ्यः) इच्छाधिकमपि, अर्थानाम्, वितरणे, समर्था (असि) इति कमलभवनाद्याः, प्राञ्चः, त्वयि, (त्वद्विषये) प्राहुः, (मम) मनः, नक्तंदिवम्, त्वदासक्तम्, अस्ति, अतः, यत्, उचितम्, तत्, कुरु। ('त्वमज्ञानामिच्छाधिकम्' इत्यपि पाठः। अज्ञा यदिच्छितुं शक्नुवन्ति ततोऽधिक दातुं समर्थाऽसीत्यर्थः।)

अर्थ—हे भवानि! आप से अतिरिक्त अन्य किसी देवता से मनोवाञ्छित फल प्राप्त होगा, ऐसा कोई नियम नहीं है, परन्तु आप तो पुरुषों को इच्छा से भी अधिक धनधान्यादि के प्रदान करने में समर्थ हो, इस बात को ब्रह्मादि प्राचीन देवता कहा करते हैं। मेरा मन तो रात-दिन तुम में ही लगा रहता है, अब तुम जो उचित समझो, वह करो।।१३।।

स्फुरन्नानारत्नस्फटिकमयभित्तिप्रतिफल-
त्वदाकारं चञ्चच्छशधरकलासौधशिखरम्।
मुकुन्दब्रह्मेन्द्रप्रभृतिपरिवारं विजयते
तवागारं रम्यं त्रिभुवनमहाराजगृहिणि।।१४।।

अन्वय—हे त्रिभुवनमहाराजगृहिणि! (शिवे) स्फुरन्नानारत्नस्फटिक-मयभित्ति-प्रतिफलत्त्वदाकारम्, चञ्चच्छशधरकलासौधशिखरम्, मुकुन्दब्रह्मेन्द्रप्रभृतिपरिवारम्, रम्यम्, तव, आगारम्, विजयते।

अर्थ—हे तीनों लोकों के महाराज जो भगवान् शिव, उनकी गृहिणी शिवे! जिसमें अनेक प्रकार के रत्न और स्फटिक मणि की दीवालों पर आपका आकार प्रतिबिम्बित हो रहा है, और जिसके अट्टालिकाओं के शिखर पर प्रतिबिम्बत हुई चन्द्र की कला सुशोभित हो रही है, ब्रह्मा, विष्णु व इन्द्रादि देवता हमेशा जिस भवन में विराजमान रहते हैं वह रमणीय आपका भवन सर्वोत्कृष्ट है।।१४।।

निवासः कैलासे विधिशतमखाद्याः स्तुतिकराः
कुटुम्बं त्रैलोक्यं कृतकरपुटः सिद्धिनिकरः।
महेशः प्राणेशस्तदवनिधराधीशतनये
न ते सौभाग्यस्य क्वचिदपि मनागस्ति तुलना।।१५।।

अन्वय—हे अवनिधराधीशतनये! (तव) कैलासे, निवासः, विधि-शतमखाद्याः, (तव) स्तुतिकराः, (सन्ति) त्रैलोक्यम्, कुटुम्बम्, अस्ति, सिद्धिनिकरः, कृतकरपुटः, (वर्तते), महेशः, प्राणेशः, (अस्ति), (अतः) क्वचित्, मनाक्, अपि, ते (तव) सौभाग्यस्य, तुलना, न, अस्ति (अनुपमं त्वदीयं सौभाग्यमित्यर्थः)।

अर्थ—हे पर्वतराजनन्दिनी पार्वती जी! आपका निवास स्थान परमपवित्र कैलास है। ब्रह्मा व इन्द्रादि देवता आपकी स्तुति किया करते हैं, समस्त यह त्रिभुवन ही आपका कुटुम्ब है। आठों सिद्धियों का समुदाय आपके सामने हाथ जोड़कर उपस्थित रहता है, और त्रिभुवन-वन्दनीय भगवान् महेश आपके प्राणनाथ हैं! आपके सौभाग्य के किसी अंश-विशेष की भी तुलना नहीं हो सकती है।।१५।।

वृषो वृद्धो यानं विषमशनमाशा निवसनं
श्मशानं क्रीडाभू र्भुजगनिवहो भूषणविधिः।
समग्रा सामग्री जगति विदितैव स्मररिपो-
र्यदेतस्यैश्वर्यं तव जननि सौभाग्यमहिमा।।१६।।

अन्वय—हे जननि! स्मररिपोः, वृद्धः, वृषः, यानम्, (अस्ति), विषम्, अशनम्, (अस्ति), आशाः, (एव) निवसनम्, (अस्ति), श्मशानम्, क्रीडाभूः, भुजगनिवहः, भूषणविधिः (भगवतः शंकरस्य) इयम्, समग्रा,

सामग्री, जगति, विदिता (एव), तथापि, यत्, एतस्य, ऐश्वर्यम्, (विद्यते, तत्सर्वम्) तव, सौभाग्यमहिमा, (अस्ति)।

अर्थ—हे जननि! कामारि भगवान् शिव का बूढ़ा बैल ही वाहन है, विष ही भोजन है, दिशायें ही वस्त्र हैं, श्मशान ही क्रीडा-भूमि अथवा रङ्गभूमि है, सर्प ही आभूषण का काम कर रहे हैं, उनकी इतनी ही यह सारी सामग्री संसार में प्रसिद्ध ही है, फिर भी यह जो उनका महान् ऐश्वर्य है, यह सब आपके ही सौभाग्य की महिमा है।।१६।।

अशेषब्रह्माण्डप्रलयविधिनैसर्गिकमतिः
श्मशानेष्वासीनः कृतभसिततलेपः पशुपतिः।
दधौ कण्ठे हालाहलमखिलभूगोलकृपया
भवत्याः संगत्याः फलमिति च कल्याणि कलये।।१७।।

अन्वय—हे कल्याणि! कृतभसिततलेपः, श्मशानेषु, आसीनः, पशुपतिः, अशेषब्रह्माण्डप्रलयविधिनैसर्गिकमतिः, (अपि; एतादृशः कठोर-मतिरपीत्यर्थः) अखिलभूगोलकृपया; हालाहलम्, कण्ठे, दधौ, (एतत्सर्वमहम्) भवत्याः, संगत्याः, फलम्, इति, कलये।

अर्थ—हे कल्याणि! पार्वती! पशुपति भगवान् शंकर अपने अङ्गों में भस्म रमाकर श्मशान जैसे भयानक स्थानों में बैठने वाले हैं, और स्वभावतः जिनकी बुद्धि समस्त ब्रह्माण्ड के संहार में लगी हुई है, (ऐसे निष्ठुर कठोर स्वभाव वाले होते हुए भी) उन्होंने समस्त भूमण्डल पर दया करके अपने कण्ठ में (समुद्र मंथन से निकले हुए) विष को धारण कर लिया, इसे मैं आपकी संगति का फल समझता हूँ।।१७।।

त्वदीयं सौन्दर्यं निरतिशयमालोक्य परया
भियैवासीद् गङ्गा जलमयतनुः शैलतनये।
तदेतयस्यास्तस्माद् वदनकमलं वीक्ष्य कृपया
प्रतिष्ठामातन्वन्निजशिरसि वासेन गिरिशः।।१८।।

अन्वय—हे शैलतनये! त्वदीयम्, निरतिशयम्, सौन्दर्यम्, आलोक्य, परया, भिया, एव, गङ्गा, जलमयतनुः आसीत्, तस्मात्, (कारणात्) एतस्याः, तद्, (तादृशं दीनम्) वदनकमलम्, वीक्ष्य, कृपया, गिरिशः, निजशिरसि, वासेन, प्रतिष्ठाम्, आतन्वन्, (अस्ति)।

अर्थ—हे पर्वतनन्दिनि! पार्वती! आपके निरतिशय सौन्दर्य को देखकर अत्यन्त भय के कारण गङ्गा जी ने जलमय शरीर धारण कर लिया, इससे गङ्गा

जी के दीन मुखकमल को देखकर दयावश भगवान् शंकर जी ने उन्हें शिर पर निवास देकर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई है।।१८।।

विशालश्रीखण्डद्रवमृगमदाकीर्णघुसृण-
प्रसूनव्यामिश्रं भगवति तवाभ्यङ्गसलिलम्।
समादाय स्रष्टा चलितपदपांसून्निजकरैः
समाधत्ते सृष्टिं विबुधपुरपङ्केरुहदृशाम्।।१९।।

अन्वय—हे भगवति! विशालश्रीखण्डद्रवमृगमदाकीर्णघुसृण-प्रसूनव्यामिश्रम्, तव, अभ्यङ्गसलिलम्, चलितपदपांसून्, (च) निजकरैः, समादाय, स्रष्टा, विबुधपुरपङ्केरुहदृशाम् सृष्टिम्, समाधत्ते।

अर्थ—हे भगवती! विशाल चन्दन के रस, कस्तूरी और केसर के फूल से मिश्रित आपके अनुलेपन के जल को, तथा चलते हुए आपके चरणों की धूलि को, लेकर ब्रह्मा जी सुरपुर की कमलनयना वनिताओं (अप्सराओं) की रचना करते हैं।।१९।।

वसन्ते सानन्दे कुसुमितलताभिः परिवृते
स्फुरन्नानापद्मे सरसि कलहंसालिसुभगे।
सखीभिः खेलन्तीं मलयपवनान्दोलितजले
स्मरेद् यस्त्वां तस्य ज्वरजनितपीडापसरति।।२०।।

अन्वय—हे देवि! सानन्दे, वसन्ते, कुसुमितलताभिः, परिवृते, स्फुरन्नानापद्मे, कलहंसालिसुभगे, मलयपवनान्दोलितजले, सरसि, सखीभिः, (सह) खेलन्तीम्, त्वाम्, यः, स्मरेत्, तस्य, ज्वरजनितपीडा, अपसरति।

अर्थ—हे देवि! हर्षोल्लास युक्त वसन्त ऋतु में, कुसुम युक्त लताओं से घिरे हुए, विकसित अनेक प्रकार के कमलों से सुशोभित, सुन्दर हंसों व भ्रमरों से अलंकृत, मलय पवन से चञ्चल जल वाले सरोवर में, सखियों के साथ क्रीडा करती हुई, आपका जो मनुष्य ध्यान करता है, वह सांसारिक ज्वरजन्य जितने भी सन्ताप हैं, उनसे मुक्त हो जाता है।।२०।।

ललितापञ्चरत्नम्

प्रातः स्मरामि ललितावदनारविन्दम्
बिम्बाधरं पृथुलमौक्तिकशोभिनासम्।

आकर्णदीर्घनयनं मणिकुण्डलाढ्यं
मन्दस्मितं मृगमदोज्ज्वलफालदेशम् ।।१।।

अन्वय–(अहम्) प्रातः, तत् ललितावदनारविन्दम्, स्मरामि, (यत्) बिम्बाधरम्, पृथुलमौक्तिकशोभिनासम्, आकर्णदीर्घनयनम्, मणिकुण्डलाढ्यम्, मन्दस्मितम्, मृगमदोज्ज्वलफालदेशम्, (अस्ति)।

अर्थ–मैं प्रातःकाल श्री ललिता देवी जी के उस मनोहर मुख-कमल का स्मरण करता हूँ, जो (मुख कमल) बिम्ब के समान अधर वाला है, विशाल मौक्तिकाभरण युक्त नासिका से जो सुशोभित है। कान तक फैले हुए विशाल नयनों से जो मुखकमल भूषित है, जो मणिमय कुण्डलों तथा मन्द मुस्कान से युक्त है, जिसका ललाट, मृगमद = कस्तूरी तिलक से सुशोभित है।।१।।

प्रातर्भजामि ललिताभुजकल्पवल्लीं
रक्तांगुलीयलसदङ्गुलिपल्लवाढ्याम्।
माणिक्यहेमवलयाङ्गदशोभमानां
पुण्ड्रेक्षुचापकुसुमेषुसृणी र्दधानाम् ।।२।।

अन्वय–(अहम्) प्रातः, ललिताभुजकल्पवल्लीम्, भजामि (तामेव भुजकल्पवल्लीं वक्ष्यमाणविशेषणै र्विशिनष्टि) रक्तांगुलीयलसदङ्गुलिपल्लवाढ्याम्, माणिक्यहेमवलयाङ्गदशोभमानाम्, पुण्ड्रेक्षुचापकुसुमेषुसृणीः, दधानाम्, (तामित्यर्थः)।

अर्थ–मैं प्रातः काल, श्री ललिता देवी जी के, उस भुजा रूपी कल्पलता का स्मरण करता हूँ, जो लाल अगूँठी से युक्त सुन्दर सुकोमल अङ्गुलिरूपी पल्लवों वाली है, और माणिक्य मणि व सुवर्ण के कङ्कण व केयूर (बाजूबन्द) आदि आभूषणों से भूषित है, एवं जो भुजवल्ली ईख का धनुष, पुष्पमय बाण तथा अङ्कुश को धारण की हुई है।।२।।

प्रात र्नमामि ललिताचरणारविन्दं
भक्तेष्टदाननिरतं भवसिन्धुपोतम्।
पद्मासनादिसुरनायकपूजनीयं
पद्माङ्कुशध्वजसुदर्शनलाञ्छनाढ्यम् ।।३।।

अन्वय–(अहम्) प्रातः, (तत्) ललिताचरणारविन्दम्, नमामि (यच्च) भक्तेष्टदाननिरतम्, भवसिन्धुपोतम्, पद्मासनादिसुरनायकपूजनीयम्, पद्माङ्कुशध्वजसुदर्शनलाञ्छनाढ्यम्, (अस्ति; तादृशमित्यर्थः)।

अर्थ–मैं प्रातःकाल श्री ललिता देवीं जी के उन चरणकमलों को नमस्कार

करता हूँ, जो भक्तों के अभीष्ट फल देने वाले हैं, और इस संसार सागर से पार करने के लिए जहाज के समान हैं, एवं जो चरण ब्रह्मा आदि देवेश्वरों से पूजित हैं, और पद्म, अङ्कुश, ध्वजा, एवं सुदर्शनचक्रादि मङ्गलमय चिह्नों से युक्त हैं।।३।।

प्रातः स्तुवे परशिवां ललितां भवानीं
त्रय्यन्तवेद्यविभवां करुणानवद्याम्।
विश्वस्य सृष्टिविलयस्थितिहेतुभूतां
विद्येश्वरीं निगमवाङ्मनसातिदूराम्।।४।।

अन्वय—(अहम्) प्रातः, परशिवाम्, ललिताम्, भवानीम्, स्तुवे, (कीदृशीमिति विशिनष्टि) त्रय्यन्तवेद्यविभवाम्, करुणानवद्याम्, विश्वस्य सृष्टिविलयस्थितिहेतुभूताम्, विद्येश्वरीम्, निगमवाङ्मनसातिदूराम्।

अर्थ—मैं प्रातःकाल उस परमकल्याणरूपा श्री ललिता भवानी जी की स्तुति करता हूँ, जिनका वैभव केवल वेदान्त के द्वारा ही वेद्य (जानने योग्य) है। जो करुणामयी होने से शुद्ध स्वरूप वाली हैं। विश्व की उत्पत्ति, स्थिति व लय में एकमात्र जो कारण हैं, और विद्या की अधिष्ठात्री देवी हैं। जो वेद, वाणी व मन की गति से भी दूर हैं, अर्थात्, वेदादि शास्त्र भी इदमित्थंतया जिनका वर्णन नहीं कर सकते हैं।।४।।

प्रातर्वदामि ललिते तव पुण्यनाम, कामेश्वरीति कमलेति महेश्वरीति।
श्रीशाम्भवीति जगतां जननी परेति, वाग्देवतेति वचसा त्रिपुरेश्वरीति।।५।।

अन्वय—हे ललिते! (अहम्) तव, पुण्यनाम, कामेश्वरी, इति, कमला, इति, महेश्वरी, इति, श्रीशाम्भवी, इति, जगताम्, जननी, परा, इति, वागृदेवता, इति, त्रिपुरेश्वरी, इति, प्रातः, वचसा, वदामि।

अर्थ—हे ललिते! देवि! मैं तेरे पुण्यनामों को जैसे—कामेश्वरी, कमला, महेश्वरी, श्रीशाम्भवी, जगज्जननी, पराम्बा, वाग्देवी तथा त्रिपुरेश्वरी इत्यादि को प्रातः काल अपनी वाणी द्वारा उच्चारण किया करता हूँ।।५।।

यः श्लोकपञ्चकमिदं ललिताम्बिकायाः
सौभाग्यदं सुललितं पठति प्रभाते।
तस्मै ददाति ललिता झटिति प्रसन्ना
विद्यां श्रियं विमलसौख्यमनन्तकीर्तिम्।।६।।

अन्वय—यः, सौभाग्यदम्, सुललितम्, इदम्, ललिताम्बिकायाः, श्लोकपञ्चकम्, प्रभाते, पठति, तस्मै, झटिति, प्रसन्ना (सती) ललिता,

विद्याम्, श्रियम्, विमलसौख्यम्, अनन्तकीर्तिम्, (च) ददाति।

अर्थ—जो पुरुष माता ललिता के, अत्यन्त सौभाग्यप्रद तथा सुललित इन (पूर्वोक्त) पाँच श्लोकों का, प्रातः काल पाठ करता है, उसके लिए शीघ्र ही प्रसन्न होकर, श्री ललितादेवी विद्या, धन, निर्मल सुख व अनन्त कीर्ति, को प्रदान करती है।।६।।

कल्याणवृष्टिस्तवः

कल्याणवृष्टिभि-रिवामृतपूरिताभि-
र्लक्ष्मीस्वयंवरणमङ्गलदीपिकाभिः।
सेवाभिरम्ब तव पादसरोजमूले
नाकारि किं मनसि भाग्यवतां जनानाम्।।१।।

अन्वय—हे अम्ब! (त्रिपुरसुन्दरि) तव, पादसरोजमूले, अमृतपूरिताभिः, कल्याणवृष्टिभिः, इव (अथवा) लक्ष्मीस्वयंवरणमङ्गलदीपिकाभिः, (तत्समानाभिः, तद्रूपाभिरिव) सेवाभिः, (त्वया) भाग्यवताम्, जनानाम्, मनसि, किम्, किम् न, अकारि, (अर्थात् त्वत्सेवारतानामत एव पुण्यशालिनां तेषां मनसि सर्वविधमेव मङ्गलात्मकं कार्यजातं हर्षोल्लासादिकं वा त्वया सम्पादितमेवेत्यर्थः)।

अर्थ—हे मातः! त्रिपुरसुन्दरि! आपके चरणकमलतलों में, जिन पुण्यात्माओं ने अमृत की बिन्दुओं से परिपूर्ण कल्याणकारिणी-वृष्टि के समान, अथवा लक्ष्मी जी के स्वयंवर के अवसर पर सजायी जाने वाली मांगलिक दीपमालाओं के समान सेवायें समर्पित की हैं, उन महाभाग्यशाली सज्जनों के मन में, आपने कौन-सा मङ्गलमय आनन्दोल्लास प्रदान नहीं किया, अर्थात् उनके मन को आपने उनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर, सभी प्रकार के मङ्गलों से परिपूर्ण कर दिया। तात्पर्य है कि भगवती की सेवा ही समस्त कल्याणों की प्राप्ति का उपाय है।।१।।

एतावदेव जननि स्पृहणीयमास्ते
त्वद्वन्दनेषु सलिलस्थगिते च नेत्रे।
सान्निध्यमुद्यदरुणायुतसोदरस्य
त्वद्विग्रहस्य परया सुधया प्लुतस्य।।२।।

अन्वय—हे जननि! त्रिपुरसुन्दरि मत्कृते तु, मह्यं वा, एतावत्, एव, (वस्तु) स्पृहणीयम्, आस्ते, (यत्) त्वद्वन्दनेषु (मदीये) नेत्रे, सलिल-स्थगिते, (भवतः, अपरञ्च) परया, सुधयाप्लुतस्य, उद्यदरुणायुतसोदरस्य, त्वद्विग्रहस्य, सान्निध्यम्, (अस्तु)।

अर्थ—हे मातः! हे त्रिपुरसुन्दरि! मेरे लिए तो इतनी ही चीज प्रशंसनीय तथा हमेशा प्रार्थनीय है—एक तो आपके भजन-पूजन के अवसर पर मेरे नेत्र प्रमोदाश्रुओं से परिपूर्ण हो जायें, दूसरी बात, कि सुन्दर सुधा के समान स्वच्छ, तथा उदीयमान हजारों अरुणों की द्युति से देदीप्यमान, आपके शरीर (मूर्ति) का सान्निध्य हो।।२।।

ईशत्वनामकलुषाः कति वा न सन्ति
ब्रह्मादयः प्रतिभवं प्रलयाभिभूताः।
एकः स एव जननि स्थिरसिद्धिरास्ते
यः पादयोस्तव सकृत् प्रणतिं करोति।।३।।

अन्वय—हे जननि! (त्रिपुरसुन्दरि!) प्रतिभवम्, प्रलयाभिभूताः, ईशत्वनामकलुषाः, ब्रह्मादयः, कति, वा (देवाः) न सन्ति, (परन्तु) सः, एकः, एव, स्थिरसिद्धिः, आस्ते, यः, सकृत्, (अपि) तव, पादयोः, प्रणतिम्, करोति।

अर्थ—हे मातः! (त्रिपुरसुन्दरि!) प्रत्येक सृष्टि में प्रलय से भयभीत, 'ईश्वर' इस नाम को कलुषित करने वाले, ब्रह्मा आदि बहुत देवता क्या नहीं हैं? परन्तु हे देवि! स्थिरसिद्धिवाला तो एक वही देव अथवा मानव मालूम पड़ता है, जो जीवन में एक बार भी आपके चरणकमलों को, प्रणाम कर लेता है। (अन्य देव ईश कहलाते तो हैं पर उनमें वास्तविक ईशता है नहीं अतः मानो ईश-नाम धारणकर वे उसे कलुषित कर देते हैं। वास्तव ईश एक आप ही हैं।)।।३।।

लब्ध्वा सकृत् त्रिपुरसुन्दरि तावकीनं
कारुण्यकन्दलितकान्तिभरं कटाक्षम्।
कन्दर्पकोटिसुभगास्त्वयि भक्तिभाजः
संमोहयन्ति तरुणी भुंवनत्रयेऽपि।।४।।

अन्वय—हे त्रिपुरसुन्दरि! त्वयि, भक्तिभाजः, (त्वद्भक्ता वा) सकृत् (एकवारमपि) तावकीनम्, कारुण्यकन्दलितकान्तिभरम्, कटाक्षम्, लब्ध्वा, कन्दर्पकोटिसुभगाः, (सन्तः) भुवनत्रये, अपि, तरुणीः, संमोहयन्ति।

अर्थ—हे त्रिपुरसुन्दरि! आपकी भक्ति में तत्पर जन, (अथवा आपके भक्त

जन) एक बार भी, आपके करुणामृत से पल्लवित सौन्दर्यपरिपूर्ण कटाक्ष को प्राप्त कर, आपकी कृपा दृष्टि का पात्र बनकर तीनों लोकों की सुन्दरियों को, संमुग्ध करन में समर्थ हो जाते हैं।।४।।

ह्रींकारमेव तव नाम गृणन्ति वेदा
मातस्त्रिकोणनिलये त्रिपुरे त्रिनेत्रे।
त्वत्संस्मृतौ यमभटाभिभवं विहाय
दीव्यन्ति नन्दनवने सह लोकपालैः।।५।।

अन्वय—हे मातः! त्रिकोणनिलये, (श्रीचक्रमध्यबिन्दुवृत्तरूपे मण्डलविशेषे इत्यर्थः। 'त्रिकोणं मण्डलं चाख्या' इति कालिकापुराणेऽपि उक्तम्)। त्रिपुरे (सुषुम्णा-पिङ्गला-इडा—नाडीत्रयं तु त्रिपुरा। 'मनोबुद्धिस्तथा चित्तं पुरत्रयमुदाहृतम्। तत्र तत्र वसत्येषा तस्मात्तु त्रिपुरा मता। इति त्रिपुरार्णवे।) त्रिनेत्रे (शिवतत्त्व-विषये इत्यर्थः) वेदाः, ह्रींकारमेव (ह्रींकारयुक्तं) तव नाम, गृणन्ति (ह्रीम् अर्थात् सृष्टि-स्थिति-संहारास्तदर्थत्वेन पर्यवस्यन्ति, तान्, करोतीति, ह्रींकारी, इति, स्वतन्त्रतन्त्रे उक्तम्) (अन्ते च जनाः) त्वत्संस्मृतौ, यमभटाभिभवम्, विहाय, नन्दनवने, लोकपालैः, सह, दीव्यन्ति।

अर्थ—हे माता! त्रिकोण में रहने वाली! हे त्रिपुरसुन्दरी! तीन नेत्रों वाली! वेद आपका नाम ह्रींकार ही बताते हैं। आपका भलीभाँति स्मरण हो जाने पर भक्तजन यमदूतों की यातना से बचे रहकर लोकपालों के साथ नन्दनवन में विहार करते हैं। (श्रीचक्र में भगवती का विशेष स्थान त्रिकोण है। इडा सुषुम्णा, पिंगला इन तीन नाडियों को त्रिपुर कहते हैं; ये भगवती का ही विलास हैं। अथवा मन, बुद्धि और चित्त तीन पुर हैं जहाँ रहने वाली माता त्रिपुरा हैं। वे तीन नेत्रों वाली हैं ही। ह्रीं का तात्पर्य सृष्टि-स्थिति-संहार है, ये तीनों करने वाली होने से ह्रींकारी हैं)।।५।।

हन्तुः पुरामधिगलं परिपीयमानः, क्रूरः कथं न भविता गरलस्य वेगः।
नाश्वासनाय यदि मातरिदं तवार्धं देहस्य शश्वदमृताप्लुतशीतलस्य।।६।।

अन्वय—हे मातः! पुराम् हन्तुः, अधिगलम्, अयम्, परिपीयमानः, गरलस्य, वेगः, क्रूरः कथम्, न, भविता, यदि, शश्वदमृताप्लुतशीतलस्य, तव, देहस्य, इदम्, अर्धम् (अङ्गमित्यर्थः) आश्वासनाय, न, (स्यादिति)।

अर्थ—हे मातः! भगवान् शंकर के गले में रुका हुआ, (समुद्र मन्थन के अवसर पर) पिया गया, यह विष का वेग, कितना कडुवा तथा असह्य होता, यदि उनके शरीर के साथ निरन्तर अमृतरस से सना हुआ, अतः एव शीतल,

आपका यह आधा शरीर आश्वासन के लिए नहीं होता। (अर्थात् अमृतमय अतः शीतल, आपके आधे शरीर से जब भगवान् अर्धनारीनरेश्वर हुए, तभी उन्हें इस विषपान को सहन करने की शक्ति भी मिली, अन्यथा तो तीक्ष्ण उस विष से उनका गला जल गया होता)।।६।।

सर्वज्ञतां सदसि वाक्पटुतां प्रसूते
देवि त्वदङ्घ्रिसरसीरुहयोः प्रणामः।
किं च स्फुरन्मुकुटमुज्ज्वलमातपत्रं
द्वे चामरे च महतीं वसुधां ददाति।।७।।

अन्वय—देवि! त्वदङ्घ्रिसरसीरुहयोः, प्रणामः, सदसि, सर्वज्ञताम्, वाक्पटुताम् (च) प्रसूते, किञ्च, स्फुरन्मुकुटम्, उज्ज्वलम्, आतपत्रम्, द्वे चामरे, महतीम्, वसुधाम्, च, ददाति।

अर्थ—हे देवि! आपके चरणकमलों में समर्पित प्रणाम, सभा में सर्वज्ञता तथा वाक्पटुता को प्रदान करता है, और भी, आपको समर्पित प्रणाम चमकते हुए मुकुट, उज्ज्वल छत्र, दो चामर तथा विशाल वसुधा को भी प्रदान करता है, अर्थात् साम्राज्य तक को प्रदान करता है।।७।।

कल्पद्रुमैरभिमतप्रतिपादनेषु
कारुण्यवारिधिभिरम्ब भवत्कटाक्षैः।
आलोकय त्रिपुरसुन्दरि मामनाथं
त्वय्येव भक्तिभरितं त्वयि बद्धतृष्णम्।।८।।

अन्वय—हे अम्ब! हे त्रिपुरसुन्दरि! अभिमतप्रतिपादनेषु (विषयेषु) कारुण्य-वारिधिभिः, कल्पद्रुमैः भवत्कटाक्षैः, त्वयि, एव, भक्तिभरितम्, त्वयि, बद्धतृष्णम्, अनाथम्, माम्, आलोकय।

अर्थ—हे मातः! हे त्रिपुरसुन्दरि! प्रार्थियों के अपने-अपने अभीष्ट वस्तुओं की प्रार्थनाओं के प्रसङ्ग में, करुणावरुणालय के समान अथवा कल्पद्रुम के समान, अपने कटाक्षों से, आप में ही भक्तिनिष्ठ और आपकी ओर ही तृष्णापूर्ण दृष्टि वाले अनाथ मुझ को निहारो।।८।।

हन्तेतरेष्वपि मनांसि निधाय चान्ये
भक्तिं वहन्ति किल पामरदैवतेषु।
त्वामेव देवि मनसा समनुस्मरामि
त्वामेव नौमि शरणं जननि त्वमेव।।९।।

अन्वय—हन्त! अन्ये (केचन जनाः) इतरेषु, पामरदैवतेषु, अपि,

मनांसि, निधाय, भक्तिम्, वहन्ति, किल, हे देवि! (अहम्) तु, त्वाम् एव, मनसा, समनुस्मरामि, त्वाम्, एव, नौमि, हे जननि! (मम तु) त्वम्, एव, शरणम्, (असि)।

अर्थ—बड़े दुःख की बात है कि कुछ लोग अन्य क्षुद्र देवताओं में मन लगाकर भक्तिभावना में तत्पर हैं, परन्तु हे देवि! मैं तो आपका ही केवल मन से स्मरण करता हूँ, केवल आपको ही प्रणाम करता हूँ। हे जननि! मेरे तो एकमात्र आप ही शरण हैं।।९।।

लक्ष्येषु सत्स्वपि कटाक्षनिरीक्षणाना-
मालोकय त्रिपुरसुन्दरि मां कदाचित्।
नूनं मया तु सदृशः करुणैकपात्रं
जातो जनिष्यति जनो न च जायते वा।।१०।।

अन्वय—हे त्रिपुरसुन्दरि! (भवतः) कटाक्षनिरीक्षणानाम्, लक्ष्येषु, सत्सु, अपि, कदाचित्, माम्, आलोकय (यतो हि) नूनम्, मया, सदृशः, तु, करुणैकपात्रम्, जनः, न (कदाचित्) जातः, न, च, जायते, न, वा, जनिष्यति।

अर्थ—हे त्रिपुरसुन्दरि! यद्यपि, आपके कृपा-कटाक्ष द्वारा अवलोकन के अनेक स्थल (व्यक्तिविशेष) हैं, क्योंकि हजारों भक्त आपके कृपामय कटाक्षों के लक्ष्य बनने के लिए लालायित रहते हैं, फिर भी कभी-कभी आप मेरी ओर भी निहारें, क्योंकि मेरे समान कृपापात्र (कृपायोग्य) जन, न तो अतीत में उत्पन्न हुआ, और न वर्तमान में ही कोई है, तथा निकट भविष्य में इसकी आशा भी नहीं की जा सकती है।।१०।।

ह्रीं ह्रीमिति प्रतिदिनं जपतां तवाख्यां
किं नाम दुर्लभमिह त्रिपुराधिवासे।
मालाकिरीटमदवारणमाननीया
तान्सेवते वसुमती स्वयमेव लक्ष्मीः।।११।।

अन्वय—हे त्रिपुराधिवासे! प्रतिदिनम्, ह्रीम्, ह्रीम्, इति, तव, आख्याम्, (नाम) जपताम्, (जनानाम्) इह, (संसारे) किम्, नाम, (वस्तु) दुर्लभम् (अस्ति) (न कोऽपि पदार्थस्तेषामसुलभ इत्यर्थः) (यतो हि) मालाकिरीट-मदवारणमाननीया, वसुमती, लक्ष्मीः, स्वयम्, तान्, एव, सेवते।

अर्थ—हे त्रिपुरनिवासिनि! देवि! जो लोग प्रतिदिन ह्रींकार रूप आपके नाम का जप करते हैं, उनके लिए इस संसार में कौन-सी वस्तु दुर्लभ है! अर्थात् आपके कृपापात्रों को तो यहाँ सभी पदार्थ सुलभ हैं, क्योंकि माला

मुकुट व मदमस्त हाथी आदि से माननीय, वसुमती धन-धान्यस्वरूपा लक्ष्मी, अपने आप पास में आकर ऐसे भक्तों की सेवा करती है।।११।।

सम्पत्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि
साम्राज्यदाननिरतानि सरोरुहाक्षि।
त्वद्वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि
मामेव मातरनिशं कलयन्तु नान्यम्।।१२।।

अन्वय—हे सरोरुहाक्षि! हे मातः! सम्पत्कराणि, सकलेन्द्रियनन्दनानि, साम्राज्यदाननिरतानि, दुरिताहरणोद्यतानि, त्वद्वन्दनानि, अनिशम्, माम्, एव, कलयन्तु, अन्यम्, न।

अर्थ—हे कमल के समान नयनों वाली माँ! सभी प्रकार की सम्पत्तियों को प्रदान करने वाली, सभी इन्द्रियों को संतुष्ट करने वाली, साम्राज्य तक का लाभ कराने वाली, सभी पापों को दूर करने में तत्पर, आपकी जो वन्दनायें (पूजन भजन कीर्तनादि) हैं, वे हमेशा मेरे में बनी रहें, अर्थात् मुझसे अलग न हों।।१२।।

कल्पोपसंहृतिषु कल्पिततताण्डवस्य
देवस्य खण्डपरशोः परभैरवस्य।
पाशाङ्कुशैक्षवशरासनपुष्पबाणा
सा साक्षिणी विजयते तव मूर्तिरेका।।१३।।

अन्वय—परभैरवस्य, कल्पिततताण्डवस्य, देवस्य, खण्डपरशोः, कल्पोपसंहृतिषु, (अवसरेषु) पाशाङ्कुशैक्षवशरासनपुष्पबाणा, एका, सा, तव, मूर्तिः, तत्र, साक्षिणी, (सती) विजयते।

अर्थ—परम भीषण रूप को धारण किये हुए, लीला पूर्वक ताण्डव नृत्य में प्रवृत्त हुए, भगवान् शंकर के तत्तत् कल्पों के उपसंहार के अवसरों में, पाश, अङ्कुश, इक्षु धनुष व पुष्पमय बाण को धारण की हुई, केवल आपकी प्रसिद्ध वह मूर्ति ही, उन कल्पान्त प्रलयों की साक्षिणी है, अतः एव वह सर्वोत्कृष्ट है।।१३।।

लग्नं सदा भवतु मातरिदं तवार्धं
तेजः परं बहुलकुङ्कुमपङ्कशोणम्।
भास्वत्किरीटममृतांशुकलावतंसं
मध्ये त्रिकोणनिलयं परमामृतार्द्रम्।।१४।।

अन्वय—हे मातः! परमामृतार्द्रम्, मध्ये, त्रिकोणनिलयम्, भास्वत्किरीटम्,

अमृतांशुकलावतंसम्, बहुलकुङ्कुमपङ्कशोणम्, परम्, तेजः, इदम्, तव, अर्धम्, (अर्धाङ्गमित्यर्थः) भगवता सह, सदा, लग्नम्, भवतु।

अर्थ—हे मातः! श्रेष्ठ अमृतरस से सिक्त, मध्य में बिन्दु वृत्ताकार त्रिकोण मण्डल वाला, चकमते हुए मुकुट व चन्द्र-कला से भूषित, गहरे केशर द्रव के लेप से लाल कान्ति वाला, परम तेजस्वी यह आपका अर्धाङ्ग, हमेशा भगवान् शंकर के साथ संलग्न रहे।। १४।।

ह्रींकारमेव तव नाम तदेव रूपं
त्वन्नाम दुर्लभमिह त्रिपुरे गृणन्ति।
त्वत्तेजसा परिणतं वियदादिभूतं
सौख्यं तनोति सरसीरुहसंभवादेः।।१५।।

अन्वय—हे देवि! ह्रींकारम्, एव, तव, नाम, अस्ति, तत्, एव, (दिव्यम्) तव, रूपम्, अपि, अस्ति, इह, त्रिपुरे, (जनाः) दुर्लभम्, त्वन्नाम, गृणन्ति, त्वत्तेजसा, परिणतम्, इदम्, वियदादिभूतम्, (भूतपञ्चकमित्यर्थः) सरसीरुहसंभवादेः, सौख्यम्, तनोति।

अर्थ—हे देवि! 'ह्रींकार' ही आपका नाम है, और वही पूर्वोक्त दिव्य आपका रूप है, इस त्रिपुर में, लोग दुर्लभ आपके नाम का जप (भजन-पूजन-वर्णनादि) करते हैं, आपके तेज का परिणाम (कार्य) यह वियदादि पञ्चमहाभूत, ब्रह्मा आदि देवताओं को परम सौख्य प्रदान करते हैं।।१५।।

ह्रींकारत्रयसंपुटेन महता मन्त्रेण संदीपितं
स्तोत्रं यः प्रतिवासरं तव पुरो मातर्जपेन्मन्त्रवित्।
तस्य क्षोणिभुजो भवन्ति वशगा लक्ष्मीश्चिरस्थायिनी
वाणी निर्मलसूक्तिभारभरिता जागर्ति दीर्घं वयः।।१६।।

अन्वय—हे मातः! ह्रींकारत्रयसंपुटेन, महता, मन्त्रेण, संदीपितम्, इदम्, स्तोत्रम्, यः, मन्त्रवित्, प्रतिवासरम्, तव, पुरः, जपेत्, तस्य, क्षोणिभुजः, वशगाः भवन्ति, लक्ष्मीः, चिरस्थायिनी, भवति, वाणी, च, निर्मलसूक्तिभारभरिता, भवति, दीर्घम्, वयः, जागर्ति।

अर्थ—हे मातः! तीन ह्रींकारों से संपुटित, तथा महान् मन्त्र से घटित इस स्तोत्र का, मन्त्रवेत्ता यदि प्रतिदिन आपकी मूर्ति के सामने जप करे, तो राजा लोग भी उसके वश में हो जाते हैं, उसकी लक्ष्मी चिरस्थायिनी होती है, उसकी वाणी स्वच्छ तथा सरस सूक्तियों से सम्पन्न होती है, और वह दीर्घायु होता है।।१६।।

गौरीदशकम्

लीलालब्धस्थापितलुप्ताखिललोकां
लोकातीतै र्योगिभिरन्तश्चिरमृग्याम्।
बालादित्यश्रेणिसमानद्युतिपुञ्जां
गौरीमम्बामम्बुरुहाक्षीमहमीडे।।१।।

अन्वय–लीलालब्धस्थापितलुप्ताखिललोकाम्, लोकातीतैः, योगिभिः, अन्तः, चिरमृग्याम्, बालादित्यश्रेणिसमानद्युतिपुञ्जाम्, अम्बुरुहाक्षीम्, अम्बाम्, गौरीम्, अहम्, ईडे।

अर्थ–लीलामात्र से जिन्होंने इस संसार की सृष्टि, स्थिति तथा अन्त में समाप्ति कर दी है, जो असामान्य दिव्य योगियों के द्वारा (अपने-अपने) अन्तःकरणों में चिरकाल तक ध्येय हैं, नवोदित बालसूर्यों की श्रेणी के समान जिनकी आभा है, ऐसी कमलनयना माता गौरी जी की मैं स्तुति करता हूँ।।१।।

प्रत्याहारध्यानसमाधिस्थितिभाजां
नित्यं चित्ते निर्वृतिकाष्ठां कलयन्तीम्।
सत्यज्ञानानन्दमयीं तां तनुरूपां
गौरीमम्बामम्बुरुहाक्षीमहमीडे।।२।।

अन्वय–प्रत्याहारध्यानसमाधिस्थितिभाजाम्, चित्ते, नित्यम्, निर्वृतिकाष्ठाम्, कलयन्तीम्, ताम्, तनुरूपाम्, सत्यज्ञानानन्दमयीम्, अम्बुरुहाक्षीम्, अम्बाम्, गौरीम्, अहम्, ईडे।

अर्थ–प्रत्याहार धारणा ध्यान व समाधि के द्वारा जो सुस्थिर (निश्चल) हैं उनके अन्तःकरण में जो परमानन्द का स्थायी सम्पादन करती हैं, ऐसी सूक्ष्म रूप वाली, सत्य ज्ञान व आनन्दमयी, कमलनयना माता गौरी जी की, मैं स्तुति करता हूँ।।२।।

चन्द्रापीडानन्दितमन्दस्मितवक्त्रां
चन्द्रापीडालङ्कृतनीलालकभाराम्।
इन्द्रोपेन्द्राद्यर्चितपादाम्बुजयुग्मां
गौरीमम्बामम्बुरुहाक्षीमहमीडे।। ३।।

अन्वय–चन्द्रापीडानन्दितमन्दस्मितवक्त्राम्, (चन्द्रापीडेन चन्द्रमण्डलेन,

चन्द्रापीडद्वारा वा आनन्दिता, अत एव मन्दस्मितयुक्तं वक्त्रं यस्यास्ताम्, चन्द्रापीडनामकराजपुत्रदर्शनेन आनन्दिता वा, चन्द्रापीडस्य गौरीकुलोत्पन्नत्वात्) चन्द्रापीडालङ्कृतनीलालकभाराम्, (चन्द्रापीडम् चन्द्राकारविशिष्टमाभरणम्, अथवा चन्द्राकारेण सज्जीकृतनीलालक-भारविशिष्टाम्, धम्मिलयुक्तामित्यर्थः) इन्द्रोपेन्द्राद्यर्चितपादाम्बुजयुग्माम् अम्बरुहाक्षीम्, अम्बाम्, गौरीम्, अहम्, ईडे।

अर्थ—चन्द्र मण्डल को देखकर जो आनन्दित होती है, अतः हमेशा जिनका मुख मन्द मुस्कान से भरा रहता है, अथवा अपने कुल में उत्पन्न चन्द्रापीड नामक राजकुमार को देखकर, जो हमेशा आनन्दमग्न रहती हैं, जिनके मस्तक पर चन्द्राकार गोल सुसज्जित काले केशों का जूड़ा सुशोभित है, अथवा चन्द्राकार आभरणविशेष से जिनका काले केशों का धम्मिल=जूड़ा सुशोभित है, इन्द्र उपेन्द्र (विष्णु) आदि देवताओं के द्वारा जिनके चरणकमल पूजित हैं, ऐसी कमलनयना माता गौरी जी की, मैं स्तुति करता हूँ।।३।।

आदिक्षान्तामक्षरमूर्त्या विलसन्तीं, भूते भूते भूतकदम्बप्रसवित्रीम्।
शब्दब्रह्मानन्दमयीं तां तडिदाभां, गौरीमम्बामम्बुरुहाक्षीमहमीडे।।४।।

अन्वय—(अहम्) आदिक्षान्ताम्, भूते, भूते, अक्षरमूर्त्या, विलसन्तीम्, भूतकदम्बप्रसवित्रीम्, शब्दब्रह्मानन्दमयीम्, ताम्, तडिदाभाम्, अम्बुरुहाक्षीम्, अम्बाम्, गौरीम्, अहम्, ईडे।

अर्थ—(मैं) सर्वप्रथम अर्थात् सृष्टि के पूर्व, निस्तरङ्ग समुद्र की तरह शान्त व शुद्ध स्वरूप वाली (अथवा, अकार से क्षकार तक सब वर्ण जिनका स्वरूप हैं), बाद में सृष्टिकाल में, अक्षर रूप से प्रत्येक प्राणी में प्रकट होने वाली, तथा प्राणिसमुदाय की जननी, शब्दब्रह्म तथा आनन्द स्वरूप वाली, विद्युत् के समान आभा वाली, कमलनयना माता गौरी जी की, स्तुति करता हूँ।।४।।

मूलाधारादुत्थितवीथ्या विधिरन्ध्रं
सौरं चान्द्रं व्याप्य विहारज्वलिताङ्गीम्।
येयं सूक्ष्मात्सूक्ष्मतनुस्तां सुखरूपां
गौरीमम्बामम्बुरुहाक्षीमहमीडे।। ५।।

अन्वय—(देव्याः) या, इयम्, सूक्ष्मात्, सूक्ष्मतनुः, (वर्तते) (या, च) मूलाधारात्, उत्थितवीथ्या, विधिरन्ध्रम्, (ब्रह्मरन्ध्रम्, आज्ञाचक्रम् वा) सौरम्, चान्द्रम् (मण्डलम्, दक्षिणं वामं च नेत्रद्वयमित्यर्थः) व्याप्य (तिष्ठति) विहारज्वलिताङ्गीम् (नादरूपायाः पश्यन्त्याः तस्या

ज्योत्स्नारूपाया मूर्त्याः विहारेण विलासेन, ज्वलिताङ्गीम् देदीप्य-मानशरीरामित्यर्थः) अत एव सुखरूपाम्, अतिशयानन्दरूपाम्, ताम्, अम्बुरुहाक्षीम्, अम्बाम्, गौरीम्, अहम्, ईडे।

अर्थ—मूलाधार से प्रारम्भ होने वाले मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र को जाने वाली, चान्द्र=सोलह दल वाले और सौर=बारह दल वाले चक्रों को व्याप्त कर उस विहरण से दीप्यमान शरीर वाली जो यह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म शरीर वाली सुख-रूप गौरी हैं उन कमलनयना माता की स्तुति करता हूँ। (कुण्डलिनीरूपा एवं शब्दरूपा देवी का वर्णन है। मूलाधार में वाणी का स्वरूप परा है जो क्रमशः ऊपर उठते हुए स्थूल होती जाती है और पश्यन्ती व मध्यमा बनकर अन्त में वैखरी के रूप में प्रकट होती है।)।।५।।

नित्यः शुद्धो निष्कल एको जगदीशः
साक्षी यस्याः सर्गविधौ संहरणे च।
विश्वत्राणक्रीडनलोलां शिवपत्नीं
गौरीमम्बामम्बुरुहाक्षीमहमीडे।।६।।

अन्वय—यस्याः, सर्गविधौ, संहरणे, च, नित्यः, शुद्धः, निष्कलः, एकः, जगदीशः, एव, साक्षी भवति, विश्वत्राणक्रीडनलोलाम्, ताम्, शिवपत्नीम्, अम्बुरुहाक्षीम्, अम्बाम्, गौरीम्, अहम्, ईडे।

अर्थ—जिस माता गौरी के सृष्टि, स्थिति व संहार के समय, नित्य शुद्ध बुद्ध स्वरूप केवल एक जगदीश्वर ही साक्षी होते हैं, और जो देवी समस्त संसार के परिपालन हेतु अपने लास्य-ललित नृत्यविशेष से उल्लसित होती है, उस शिवपत्नी भवानी कमलनयना माता गौरी जी की मैं स्तुति करता हूँ।।६।।

यस्याः कुक्षौ लीनमखण्डं जगदण्डं, भूयो भूयः प्रादुरभूदुत्थितमेव।
पत्या सार्धं तां रजताद्रौ विहरन्तीं, गौरीमम्बामम्बुरुहाक्षीमहमीडे।।७।।

अन्वय—उत्थितम्, इदम्, अखण्डम्, एव, जगदण्डम्, यस्याः, कुक्षौ, लीनम्, (सत्) भूयः, भूयः, प्रादुरभूत्, रजताद्रौ, पत्या, सार्धम्, विहरन्तीम्, ताम्, अम्बुरुहाक्षीम्, अम्बाम्, गौरीम्, अहम्, ईडे।

अर्थ—स्थूल रूप में दिखाई देने वाला यह समस्त ब्रह्माण्ड, जिनकी कुक्षि में पहिले लीन था, पुनः प्रत्येक सर्ग में प्रादुर्भूत होता रहता है, हिमालय पर्वत में जो देवी अपने पति भगवान् शंकर के साथ विहार करती हैं, उन्हीं कमलनयना माता गौरी जी की मैं स्तुति करता हूँ।।७।।

यस्यामोतं प्रोतमशेषं मणिमाला-सूत्रे यद्वत् क्वापि चरं चाप्यचरं च।
तामध्यात्मज्ञानपदव्या गमनीयां, गौरीमम्बामम्बुरुहाक्षीमहमीडे।।८।।

अन्वय—मणिमालासूत्रे, यद्वत् (मणिगणाः ओतप्रोताः सन्ति तद्वत्,) क्वापि, चरम्, क्वापि च, अचरम्, अशेषम्, (ब्रह्माण्ड) यस्याम्, ओतम्, प्रोतम्, अस्ति, अध्यात्मज्ञानपदव्या, गमनीयाम्, ताम्, अम्बुरुहाक्षीम्, अम्बाम्, गौरीम्, अहम्, ईडे।

अर्थ—मणिमाला के सूत्र में जिस प्रकार मणिगण गुँथे हुए हैं, उसी प्रकार कहीं चर व कहीं अचर रूप यह समस्त ब्रह्माण्ड जिसमें ओतप्रोत है, जिसे केवल अध्यात्मज्ञानमात्र से ही प्राप्त किया जा सकता है, उसी कमलनयना माता गौरी जी की मैं स्तुति करता हूँ।।८।।

नानाकारैः शक्तिकदम्बै र्भुवनानि, व्याप्य स्वैरं क्रीडति येयं स्वयमेका।
कल्याणीं तां कल्पलतामानतिभाजां, गौरीमम्बामम्बुरुहाक्षीमहमीडे।।९।।

अन्वय—या, इयम्, स्वयम्, एका सती, नानाकारैः, शक्तिकदम्बैः ('इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते' इत्यादिवत्) भुवनानि, व्याप्य, स्वैरम्, क्रीडति, आनतिभाजाम्, कल्पलताम्, ताम्, कल्याणीम्, अम्बुरुहाक्षीम्, अम्बाम्, गौरीम्, अहम् ईडे।

अर्थ—जो भगवती स्वयं एक होती हुई भी, नाना प्रकारों के शक्ति-समुदायों के द्वारा सम्पूर्ण भुवनों में व्याप्त होकर, स्वेच्छा विहार करती है, और जो विनम्र भक्तों के लिए कल्पलता के समान है, उस कल्याणकारिणी, कमलनयना माता गौरी जी की मैं स्तुति करता हूँ।।९।।

आशापाशक्लेशविनाशं विदधानां, पादाम्भोजध्यानपराणां पुरुषाणाम्।
ईशामीशार्धाङ्गहरां तामभिरामां, गौरीमम्बामम्बुरुहाक्षीमहमीडे।।१०।।

अन्वय—पादाम्भोजध्यानपराणाम् पुरुषाणाम्, (कृते) आशापाशक्लेश-विनाशम्, विदधानाम्, ईशार्धाङ्गहराम्, ताम्, अभिरामाम्, ईशाम्, अम्बुरुहाक्षीम्, अम्बाम्, गौरीम्, अहम्, ईडे।

अर्थ—जो लोग उस भगवती के चरणकमलों के ध्यान में तल्लीन हैं, ऐसे पुरुषों के आशा रूपी पाश=बन्धन से उत्पन्न जो क्लेश हैं, उनका विनाश करने वाली है, और भगवान् शंकर की अर्धाङ्गिनी है, ऐसी रमणीय मूर्ति वाली उस भवानी, कमलनयना माता गौरी जी की मैं स्तुति करता हूँ।।१०।।

प्रातः काले भावविशुद्धः प्रणिधानाद्
भक्त्या नित्यं जल्पति गौरीदशकं यः।

वाचां सिद्धिं संपदमग्र्यां शिवभक्तिं
तस्यावश्यं पर्वतपुत्री विदधाति।।११।।

अन्वय—यः, प्रातः काले, भावविशुद्धः, (सन्) प्रणिधानात्, भक्त्या, (च) नित्यम्, (इदम्), गौरीदशकम्, जल्पति, तस्य, (कृते) पर्वतपुत्री, अवश्यम्, वाचाम्, सिद्धिम्, अग्र्याम्, सम्पदम्, शिवभक्तिम्, च, विदधाति।

अर्थ—जो मनुष्य प्रातः काल विशुद्ध भावना से, एकाग्रचित्त से और भक्तिपूर्वक हमेशा इस 'गौरीदशक' नामक स्तोत्र का पाठ करता है, उसके लिए पर्वतराज हिमालय-सुता गौरी जी निश्चित ही, वाक्सिद्धि, उत्तम सम्पत्ति, तथा शिवभक्ति को प्रदान करती हैं।।११।।

शारदाभुजङ्गप्रयाताष्टकम्

सुवक्षोजकुम्भां सुधापूर्णकुम्भां, प्रसादावलम्बां प्रपुण्यावलम्बाम्।
सदास्येन्दुबिम्बां सदानोष्ठबिम्बां, भजे शारदाम्बामजस्रं मदम्बाम्।।१।।

अन्वय—(अहम्) सुवक्षोजकुम्भाम्, सुधापूर्णकुम्भाम्, प्रसादावलम्बाम्, प्रपुण्यावलम्बाम्, सदास्येन्दुबिम्बाम्, सदानोष्ठबिम्बाम्, मदम्बाम्, शारदाम्बाम्, अजस्रम्, भजे।

अर्थ—(मैं) सुन्दर कुच-कलश वाली, अमृत से परिपूर्ण कुम्भ को हाथ में धारण करने वाली, प्रसन्नवदना तथा प्रकृष्ट पुण्यों से परिपूर्ण, चन्द्रमण्डल की तरह सदा रमणीय मुखण्डल वाली, वरदानादि से परिपूर्ण ओष्ठ बिम्ब वाली, अथवा अमृतादि जो मदजल है, उससे जिनका ओष्ठ बिम्ब हमेशा भरा ही रहा है, इस प्रकार की जो अपनी माँ 'शारदाम्बा' है उनका भजन करता हूँ।।१।।

कटाक्षे दयार्द्रां करे ज्ञानमुद्रां, कलाभिर्विनिद्रां कलापैः सुभद्राम्।
पुरस्त्रीं विनिद्रां पुरस्तुङ्गभद्रां, भजे शारदाम्बामजस्रं मदम्बाम्।।२।।

अन्वय—(अहम्) कटाक्षे दयार्द्राम्, करे ज्ञानमुद्राम्, कलाभिः, विनिद्राम्, कलापैः, सुभद्राम्, पुरस्त्रीम्, विनिद्राम्, पुरस्तुङ्गभद्राम्, मदम्बाम्, शारदाम्बाम्, अजस्रम्, भजे।

अर्थ—मैं उस 'शारदाम्बा' माँ का भजन करता हूँ, जिसके कटाक्ष दया से

आर्द्र हैं, और जो हाथ में ज्ञानमुद्रा को धारण की हुई है, जो चौंसठ कलाओं से हमेशा जागरूक है, अर्थात् हमेशा जो उन कलाओं से परिपूर्ण है, कलाप=मयूर पिच्छ आदि से जो सुशोभित है, तुङ्गभद्रा नदीतट-वासिनी दिव्य स्त्रीरत्नरूप है।।२।।

ललामाङ्कफालां लसद्गानलोलां, स्वभक्तैकपालां यशःश्रीकपोलाम्।
करे त्वक्षमालां कनत्प्रत्नलोलां, भजे शारदाम्बामजस्रं मदम्बाम्।।३।।

अन्वय–(अहम्) ललामाङ्कफालाम्, लसद्गानलोलाम्, स्वभक्तैकपालाम्, यशःश्रीकपोलाम्, करे, तु, कनत्प्रत्नलोलाम्, अक्षमालाम् (वहन्तीमित्यर्थः), मदम्बाम्, शारदाम्बाम्, अजस्रम्, भजे।

अर्थ–(मैं) ललाट में सुन्दर तिलक वाली, मनोहर संगीत से सुशोभित, अपने भक्तों की रक्षा करने वाली, स्वच्छ यश से सुन्दर कपोलवाली, हाथ में झलकती हुई चञ्चल अक्षमाला को धारण की हुई माता 'शारदाम्बा' का निरन्तर भजन करता हूँ।।३।।

सुसीमन्तवेणीं दृशा निर्जितैणीं, रमत्कीरवाणीं नमद्वज्रपाणिम्।
सुधामन्थरास्यां मुदाऽचिन्त्यवेणीं, भजे शारदाम्बामजस्रं मदम्बाम्।।४।।

अन्वय–(अहम्) सुसीमन्तवेणीम्, दृशा, निर्जितैणीम्, रमत्कीरवाणीम्, नमद्वज्रपाणिम्, सुधामन्थरास्याम्, अचिन्त्यवेणीम्, मदम्बाम्, शारदाम्बाम्, मुदा, अजस्रम्, भजे।

अर्थ–(मैं) केशवेषों से सुसज्जित वेणी (कचकलाप) वाली, अपने नेत्रों के सौन्दर्य से मृगों के नेत्रसौन्दर्य को मात करने वाली, शुक की तरह सुन्दर व मधुर वाणी वाली, इन्द्र की भी वन्दनीया, और सुधापान से अलसाये हुए मुख वाली, अकल्पनीय सुंदर वेणी वाली, जो माँ 'शारदाम्बा' हैं, उनका निरन्तर हर्ष पूर्वक भजन करता हूँ।।४।।

सुशान्तां सुदेहां दृगन्ते कचान्तां, लसत्सल्लताङ्गीमनन्तामचिन्त्याम्।
स्मृतां तापसैः सर्गपूर्वस्थितां तां, भजे शारदाम्बामजस्रं मदम्बाम्।।५।।

अन्वय–(अहम्) सुशान्ताम्, सुदेहाम्, दृगन्ते, कचान्ताम्, लसत्सल्लताङ्गीम्, अनन्ताम्, अचिन्त्याम्, तापसैः, स्मृताम्, सर्गपूर्वस्थिताम्, ताम्, मदम्बाम्, शारदाम्बाम्, अजस्रम्, भजे।

अर्थ–(मैं) शान्त व सुन्दर शरीर वाली, जिसके नेत्रप्रान्त तक केश कलाप बिखरे हुए हैं। जिनका शरीर सुन्दर लता के समान है, जो अनन्त तथा अचिन्त्य हैं, तपस्वी लोग हमेशा जिनका स्मरण किया करते हैं, जो

सृष्टि के पहिले भी विद्यमान हैं, इस प्रकार की जो माँ शारदाम्बा हैं, उनका भजन करता हूँ।।५।।

कुरङ्गे तुरङ्गे मृगेन्द्रे खगेन्द्रे, मराले मदेभे महोक्षेऽधिरूढाम्।
महत्यां नवम्यां सदा सामरूपां, भजे शारदाम्बामजस्रं मदम्बाम्।।६।।

अन्वय–(अहम्) कुरङ्गे, तुरङ्गे, मृगेन्द्रे, खगेन्द्रे, मराले, मदेभे, महोक्षे (च) अधिरूढाम्, महत्याम्, नवम्याम्, (च) सदा सामरूपाम्, (ताम्) मदम्बाम्, शारदाम्बाम्, अजस्रम्, भजे।

अर्थ–जिनका वाहन, मृग, तुरङ्ग, सिंह, गरुड, मराल, मदमस्त हाथी तथा बूढ़ा बैल है, (अर्थात् देवी के जो अनेक रूप हैं, उन रूपों के अनुरूप वाहन भी हैं,) और महानवमी को जिनका सदा शान्त रूप अथवा सामवेद की तरह ललित रूप रहता है, उन्हीं माँ 'शारदाम्बा' का मैं हमेशा भजन किया करता हूँ।।६।।

ज्वलत्कान्तिवह्निं जगन्मोहनाङ्गीं भजन्मानसाम्भोजसुभ्रान्तभृङ्गीम्।
निजस्तोत्रसंगीतनृत्यप्रभाङ्गीं, भजे शारदाम्बामजस्रं मदम्बाम्।।७।।

अन्वय–(अहम्) ज्वलत्कान्तिवह्निम्, जगन्मोहनाङ्गीम्, भजन्मानसाम्भोज-सुभ्रान्तभृङ्गीम्, निजस्तोत्रसंगीतनृत्यप्रभाङ्गीम्, मदम्बाम्, शारदाम्बाम्, अजस्रम्, भजे।

अर्थ–अग्नि के समान देदीप्यमान कान्ति से जो समस्त संसार को मोहित कर लेती हैं, और जो भजन करने वाले भक्तों के मन रूप कमल के लिए परिभ्रमण करने वाली भृङ्गी हैं, और अपने स्तोत्र, संगीत नृत्य आदि से जो उल्लसित होती हैं, उन्हीं माता 'शारदाम्बा' का मैं भजन करता हूँ।।७।।

भवाम्भोजनेत्राजसंपूज्यमानां, लसन्मन्दहासप्रभावक्त्रचिह्नाम्।
चलच्चञ्चलाचारुताटङ्ककर्णां, भजे शारदाम्बामजस्रं मदम्बाम्।।८।।

अन्वय–(अहम्) भवाम्भोजनेत्राजसंपूज्यमानाम्, लसन्मन्दहासप्रभावक्त्र-चिह्नाम्, चलच्चञ्चलाचारुताटङ्ककर्णाम्, मदम्बाम्, शारदाम्बाम्, अजस्रम्, भजे।

अर्थ–भगवान् भव, कमलनयन विष्णु एवं ब्रह्मा से जो (देवी) पूजनीया हैं, स्वभावतः जिनका मुख मनोहर मन्द मुस्कान से भरा रहता है, लटकते हुए चञ्चल आभरणों से जिनके कान सुशोभित हैं, उन्हीं माँ 'शारदाम्बा' का मैं भजन किया करता हूँ।।८।।

अन्नपूर्णास्तुतिः

नित्यानन्दकरी वराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी
निर्धूताखिलघोरपावनकरी प्रत्यक्षमाहेश्वरी।
प्रालेयाचलवंशपावनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी।। १।।

अन्वय–हे अन्नपूर्णे! (त्वम्) नित्यानन्दकरी (असि) वराभयकरी (असि) सौन्दर्यरत्नाकरी (असि) निर्धूताखिलघोरपावनकरी (असि) प्रत्यक्षमाहेश्वरी (असि) प्रालेयाचलवंशपावनकरी (असि) काशीपुराधीश्वरी (चासि) कृपावलम्बनकरी (असि) (मम) माता, अन्नपूर्णा, ईश्वरी, त्वम्, (चासि अतः मह्यम्,) भिक्षाम् देहि।

अर्थ–हे अन्नपूर्णे! आप हमेशा अपने भक्तों को आनन्द प्रदान करने वाली हो, और वररूप में अभय दान देने वाली हो। आप सौन्दर्य की तो रत्नाकर (सागर) हो। अपने भक्तों के समस्त पातकों को दूर कर पवित्र करने वाली हो, प्रत्यक्ष ही अर्थात् सभी के अन्तःकरण में विराजमान आप भगवान् शंकर की अर्धाङ्गिनी हो। हिमालय के वंश को पवित्र करने वाली आप, काशीपुरी की अधिष्ठात्री देवता हो। कृपा के विषय में तो एकमात्र आपका ही अवलम्बन है, अर्थात् दया करने में आपके समान दूसरा कोई नहीं है। आप मेरे लिए तो माता, अन्नपूर्णा व स्वामिनी सब कुछ हो, अतः मुझे शिक्षा प्रदान करें।। १।।

नानारत्नविचित्रभूषणकरी हेमाम्बराडम्बरी
मुक्ताहारविलम्बमानविलसद्वक्षोजकुम्भान्तरी।
काश्मीरागरुवासिता रुचिकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी।।२।।

अन्वय–हे अन्नपूर्णे! (पार्वति!) (त्वम्) नानारत्नविचित्रभूषणकरी (असि) (पुनश्च) हेमाम्बराडम्बरी, मुक्ताहारविलम्बमानविलसद्वक्षोजकुम्भान्तरी (चासि) (अथ च) काश्मीरागरुवासिता (सती) रुचिकरी (असि) काशीपुराधीश्वरी, कृपावलम्बनकरी (त्वम्) (मे) माता, अन्नपूर्णा, ईश्वरी (चासि अतः मह्यम्,) भिक्षाम्, देहि।

अर्थ–हे मातः पार्वती! आप अनेक रत्नों से निर्मित विचित्र आभूषणों

वाली हैं, और स्वर्णमय वस्त्रों से आप अलङ्कृत हैं। आपका मनोहर कुचकुम्भों का जो मध्यान्तर है, वह लटकते हुए स्वच्छ मुक्ताहार से अत्यन्त सुशोभित हो रहा है। आपका शरीर केशर व अगरु आदि से सदा ही सुगन्धित रहता है, अत एव वह सभी के लिए आकर्षक है। आप काशीपुरी की अधीश्वरी हैं, दयार्द्र-हृदया हैं, मेरे लिए तो आप माता, अन्नपूर्णा और ईश्वरी हैं, अतः इस भक्त को अवश्य भिक्षा प्रदान करें।। २।।

योगानन्दकरी रिपुक्षयकरी धर्मार्थनिष्ठाकरी
चन्द्रार्कानलभासमानलहरी त्रैलोक्यरक्षाकरी।
सर्वैश्वर्यसमस्तवाञ्छितकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी।। ३।।

अन्वय—हे अन्नपूर्णे! (त्वम्) योगानन्दकरी (असि) रिपुक्षयकरी (असि) धर्मार्थनिष्ठाकरी (असि) चन्द्रार्कानलभासमानलहरी (सती) त्रैलोक्यरक्षा-करी (असि) सर्वैश्वर्यसमस्तवाञ्छितकरी, काशीपुराधीश्वरी, कृपावलम्बन-करी (त्वम्) (मम) माता, अन्नपूर्णा, ईश्वरी, (चासि मह्यम्,) भिक्षाम्, देहि।

अर्थ—हे अन्नपूर्णे! आप समाधिनिरत योगियों के लिए (धर्ममेघ या निर्विकल्पक समाधि द्वारा) योगजन्य आनन्द प्रदान करती हो, और अपने सेवकों के शत्रुओं का संहार करती हो। आप धर्मार्थादि जो चतुर्विध पुरुषार्थ हैं, उनमें लोगों की निष्ठा को दृढ करती हो। चन्द्र, सूर्य व अग्नि के समान देदीप्यमान सौन्दर्य की छटा से युक्त होकर, तीनों लोकों की रक्षा करती हो। अपने भक्तों के लिए समस्त ऐश्वर्य तथा उनके अभीष्ट कार्यों की सिद्धियों को भी प्रदान करती हो। आप काशीपुरी की अधिष्ठात्री देवी हो, और कृपा के विषय में भक्तों का एकमात्र सहारा आप ही हो, मेरे लिए तो आप माता, अन्नपूर्णा, ईश्वरी आदि सब कुछ हो, अतः मुझे भिक्षा प्रदान करें।। ३।।

कैलासाचलकन्दरालयकरी गौरी ह्युमा शांकरी
कौमारी निगमार्थगोचरकरी ह्योंकारबीजाक्षरी।
मोक्षद्वारकपाटपाटनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी।। ४।।

अन्वय—हे अन्नपूर्णे! (त्वम्) कैलासाचलकन्दरालयकरी (असि) (त्वम् हि, गौरी, उमा, शांकरी, कौमारी (इत्यादि नामभिर्जनै र्जेगीयसे) (त्वम्, हि) निगमार्थगोचरकरी ओंकारबीजाक्षरी (चासि) (त्वमेव) मोक्षद्वारकपाटपाटनकरी (असि) काशीपुराधीश्वरी, कृपावलम्बनकरी

(त्वम्) (मम) माता, अन्नपूर्णा, ईश्वरी (चासि) भिक्षाम्, देहि।

अर्थ—हे अन्नपूर्णे! पार्वती! कैलास पर्वत की कन्दरा को ही आपने अपना निवास स्थान (भवन) बना लिया है। आप गौरी, उमा, शांकरी, कौमारी इन नामों से संसार में विख्यात हैं। सारभूत वेदार्थ जो प्रणवादि वाचक के वाच्य परमेश्वर हैं, वे ही आपके ध्यान के विषय हैं, आप स्वयं 'ओंकार' बीजाक्षर वाली हो, आपके कृपा कटाक्ष से ही मोक्ष के दरवाजे के कठिन कपाट भी सरलतया टूट जाते हैं। आप काशीपुरी की अधिष्ठात्री देवी हो, और परम दयालु हो, मेरे लिए तो आप माता, अन्नपूर्णा, ईश्वरी आदि सब कुछ हो, अतः मुझे अभीष्ट भिक्षा दो।। ४।।

दृश्यादृश्यविभूतिवाहनकरी ब्रह्माण्डभाण्डोदरी
लीलानाटकसूत्रभेदनकरी विज्ञानदीपाङ्कुरी।
श्रीविश्वेशमनःप्रसादनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी।। ५।।

अन्वय—हे अन्नपूर्णे! त्वम् दृश्यादृश्यविभूतिवाहनकरी (असि) ब्रह्माण्डभाण्डोदरी (असि) (पुनः) लीलानाटकसूत्रभेदनकरी (सती) विज्ञानदीपाङ्कुरी (असि) श्रीविश्वेशमनःप्रसादनकरी (त्वम्) काशीपुराधीश्वरी, कृपावलम्बनकरी, (त्वम् मम), तु, माता, अन्नपूर्णा, ईश्वरी (चासि अतः) भिक्षाम्, देहि।

अर्थ—हे अन्नपूर्णे! आप इस दृश्यादृश्यरूप समस्त चराचरात्मक विभूति को धारण करने वाली हो, यह सारा ब्रह्माण्ड आपका ही विराट् स्वरूप है। यह सारा संसार ही लीला नाटक है, इसका सूत्रधार या सूत्रस्थानीय जो माया है, आप उसका भेदन करने वाली हो अर्थात् इस सांसारिक बन्धनों से छुटकारा देने वाली हो, क्योंकि आप स्वयं विज्ञानरूप दीपक की निर्मल प्रभा हो। काशी पुराधीश जो भगवान् विश्वेश विश्वनाथ हैं, हमेशा आप उनके मन को प्रसन्न करने वाली हो। अतः आप स्वयं काशी पुरी की अधिष्ठात्री देवता हो, साक्षात् दयामूर्ति हो, मेरे लिए तो आप माता, अन्नपूर्णा, ईश्वरी आदि सभी कुछ हो, अतः मुझे भिक्षा दो।। ५।।

उर्वीसर्वजनेश्वरी भगवती माता च पूर्णेश्वरी
वेणीनीलसमानकुन्तलहरी नित्यान्नदानेश्वरी।
सर्वानन्दकरी दशाशुभकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी।। ६।।

अन्वय—हे अन्नपूर्णे! (त्वम्) उर्वीसर्वजनेश्वरी (असि) भगवती, माता, पूर्णेश्वरी, च, (असि) (पुनः) वेणीनीलसमानकुन्तलहरी (असि) नित्यान्नदानेश्वरी (असि) सर्वानन्दकरी, दशाशुभकरी, काशीपुराधीश्वरी, (सती) कृपावलम्बनकरी, (मम तु) माता, अन्नपूर्णा, ईश्वरी (चासि) भिक्षाम्, देहि।

अर्थ—हे अन्नपूर्णे! आप इस पृथ्वी में सभी जनों की स्वामिनी हो, और षड्-ऐश्वर्य-सम्पन्ना भगवती माता व पूर्ण ब्रह्मरूपा हो। आपके काले व घुँघराले केशों की चञ्चल वेणी सदा सुशोभित रहती है। हमेशा आप अन्नदान करती रहती हो। अतः सभी को आनन्दित करती हो, और सभी के लिए उनकी दशाओं का शुभ परिणाम प्रदान करती हो, आप काशी पुरी की अधिष्ठात्री देवी हो, दया की एकमात्र अवलम्बन आप ही हो, मेरी तो आप माता, अन्नपूर्णा, ईश्वरी रक्षा करने वाली, आदि सब कुछ हो, अतः मुझे भिक्षा दो।।६।।

आदिक्षान्तसमस्तवर्णनिकरी शम्भोस्त्रिभावाकरी
काश्मीरा त्रिजलेश्वरी त्रिलहरी नित्याङ्कुरा शर्वरी।
कामाकांक्षकरी जनोदयकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी।। ७।।

अन्वय—अन्नपूर्णे! (त्वम्) आदिक्षान्तसमस्तवर्णनिकरी (असि) शम्भोः, त्रिभावाकरी, असि, (त्वम्) काश्मीरा सती, त्रिजलेश्वरी, त्रिलहरी, नित्याङ्कुरा शर्वरी, (इत्यादि नामभिः ख्याता असि) कामाकांक्षकरी, जनोदयकरी काशीपुराधीश्वरी, कृपावलम्बनकरी, (त्वम्) (मम तु) माता, अन्नपूर्णा, ईश्वरी (चासि अतः) भिक्षाम्, देहि।

अर्थ—हे अन्नपूर्णे! आप अकार से लेकर (अथवा श्री विद्या के अनुसार ककार से लेकर) क्षकार पर्यन्त समस्त वर्णरूपा हो, अधिष्ठनरूप शंभु में त्रिदेवों की प्रतीति कराने वाली आप ही हो। कश्मीरनिवासिनी आप कश्मीर में त्रिजलेश्वरी, त्रिलहरी, नित्याङ्कुरा, शर्वरी आदि नामों से विख्यात हो। कामनायें भी स्वयं आपसे आकाङ्क्षा रखती हैं, सभी लोगों की कल्याणकारिणी भी आप ही हो, काशी पुरी की तो आप स्वामिनी हो, कृपा की भी आधारभूता हो, अतः मुझ सेवक को अभीष्ट भिक्षा प्रदान करो।। ७।।

देवी सर्वविचित्ररत्नरुचिरा दाक्षायणी सुन्दरी
वामा स्वादुपयोधरा प्रियकरी सौभाग्यमाहेश्वरी।

भक्ताभीष्टकरी सदाशुभकरी·काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी।। ८।।

अन्वय—हे अन्नपूर्णे! (त्वम्) देवी, सर्वविचित्ररत्नरुचिरा, दाक्षायणी, सुन्दरी, वामा, स्वादुपयोधरा, प्रियकरी, सौभाग्यमाहेश्वरी, भक्ताभीष्टकरी, सदा शुभकरी, काशीपुराधीश्वरी, कृपावलम्बनकरी (त्वम्) (मम तु) माता, अन्नपूर्णा, ईश्वरी (चासि अतः) भिक्षाम्, देहि।

अर्थ—हे अन्नपूर्णे! आप दिव्यरूपा, सभी प्रकार के रत्नों से रुचिरा हैं। आप दक्षसुता, सुन्दरी, तथा भगवान् शंकर के वाम भाग को सुशोभित करने वाली हैं। अमृत-तुल्य व स्वादिष्ट दुग्ध को धारण करने वाले आपके पयोधर हैं। आप सभी की प्रिय और सर्वसौभाग्यपूर्णा महेश्वर-पत्नी हैं। भक्तों को मनोवाञ्छित वर देने वाली, सदा कल्याणकारिणी, काशीपुरी-स्वामिनी, आप कृपा की भी आधारभूता हो। मेरे लिए तो आप माता, अन्नपूर्णा, ईश्वरी आदि सब कुछ हो, अतः मुझे अभीष्ट भिक्षा दो।। ८।।

चन्द्रार्कानलकोटिकोटिसदृशा चन्द्रांशुबिम्बाधरी
चन्द्रार्काग्निसमानकुण्डलधरी चन्द्रार्कवर्णेश्वरी।
मालापुस्तकपाशसाङ्कुशधरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी।। ६।।

अन्वय—हे अन्नपूर्णे! (त्वम्) चन्द्रार्कानलकोटिकोटिसदृशा, (असि) चन्द्रांशुबिम्बाधरी, (चासि) चन्द्रार्काग्निसमानकुण्डलधरी (असि) चन्द्रार्कवर्णा, ईश्वरी (असि) मालापुस्तकपाशसाङ्कुशधरी (त्वम्) काशीपुराधीश्वरी, (सती) कृपावलम्बनकरी (मम तु) माता, अन्नपूर्णा, ईश्वरी (चासि अतः) (मह्यम्) भिक्षाम् देहि।

अर्थ—हे अन्नपूर्णे! आप करोड़ों चन्द्र सूर्य व अग्नि के समान तेजस्विनी हो, आप चन्द्र की किरणों की तरह स्वच्छ, व बिम्ब फल की तरह लाल-लाल ओठ वाली हो, आप चन्द्र सूर्य व अग्नि की प्रभा के समान श्वेत पीत व रक्तवर्णों के कुण्डलों को धारण करती हैं। चन्द्र व सूर्य के रङ्ग से आपका शरीर सुशोभित है व आप सामर्थ्ययुक्त हैं, आपके कण्ठ में स्वच्छ स्फटिक माला है, हाथों में पुस्तक पाश व अङ्कुश सुशोभित हैं। आप काशीपुरी की अधिष्ठात्री देवी हैं, कृपा की आधारभूता हैं, मेरे लिए तो माता, अन्नपूर्णा, ईश्वरी स्वामिनी आदि सभी कुछ हो, अतः भिक्षा दो।। ६।।

क्षत्रत्राणकरी महाभयहरी माता कृपासागरी
साक्षान्मोक्षकरी सदा शिवकरी विश्वेश्वरी श्रीधरी।
दक्षाक्रन्दकरी निरामयकरी क़ाशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी।। १०।।

अन्वय—हे अन्नपूर्णे! (त्वम्) क्षत्रत्राणकरी (असि) महाभयहरी (असि) माता, कृपासागरी (असि) साक्षात्, मोक्षकरी, सदा शिवकरी, विश्वेश्वरी, श्रीधरी, (चासि) दक्षाक्रन्दकरी, निरामयकरी, काशीपुराधीश्वरी (सती) कृपावलम्बनकरी (मम तु) माता, अन्नपूर्णा, ईश्वरी (चासि अतः) भिक्षाम्, देहि।

अर्थ—हे अन्नपूर्णे! आप (महाकाली रूप में) क्षात्र तत्त्व की प्रधानता से, क्षत्रिय राजाओं की रक्षा करने वाली हो, महान् भयों का निवारण करने वाली हो और सज्जनों के ऊपर दया करने वाली, उनकी माँ हो। साक्षात् मोक्ष को प्रदान करने वाली हो, अर्थात् सरस्वती रूप में आप स्वयं जब ज्ञानरूपा हो, तो फिर अपने भक्तों को ज्ञान प्रदान कर मोक्ष देने वाली हो। इस प्रकार आप सभी का कल्याण करने वाली हो, विश्व की स्वामिनी तथा लक्ष्मी स्वरूपा भी आप ही हो। आपने ही दक्ष के यज्ञ का विध्वंस किया। सबको स्वस्थ व नीरोग करने वाली भी आप ही हो, काशी पुरी की तो आप स्वामिनी हैं, और दया के विषय में तो आप ही एकमात्र अवलम्बन हैं। मेरे लिए तो आप, माता, अन्नपूर्णा ईश्वरी रक्षा करने वाली भी हैं अतः मुझे अभीष्ट भिक्षा प्रदान करें।। १०।।

अन्नपूर्णे सदापूर्णे शंकरप्राणवल्लभे।
ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वति।। ११।।

अन्वय—हे अन्नपूर्णे! हे सदापूर्णे! हे शंकरप्राणवल्लभे! हे पार्वति! ज्ञानवैराग्य-सिद्ध्यर्थम्, च (मह्यम्) भिक्षाम्, देहि।

अर्थ—हे अन्नपूर्णे! हे सदा परिपूर्ण रहने वाली! हे भगवान् शंकर की प्राणप्रिये! हे पार्वती! ज्ञान तथा वैराग्य की सिद्धि के लिए आप मुझे भिक्षा दें।। ११।।

माता च पार्वती देवी पिता देवो महेश्वरः।
बान्धवाः शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्।। १२।।

अन्वय—(सम्प्रति भक्तः स्वाभिप्रायं प्रकटयति यत् मम कृते तु) पार्वती, देवी, माता, (अस्ति) देवः, महेश्वरः, पिता (अस्ति) (इमे)

शिवभक्ताः (च मम) बान्धवाः, सन्ति, भुवनत्रयम्, स्वदेशः, अस्ति।

अर्थ—भक्त कहता है कि, पार्वती देवी ही मेरी माँ है, और महादेव शंकर ही मेरे पिता हैं, अन्य जो शिवभक्त हैं, वे ही मेरे बान्धव हैं, और तीनों भुवन ही अपना देश है।। १२।।

काशीपञ्चकम्

मनोनिवृत्तिः परमोपशान्तिः सा तीर्थवर्या मणिकर्णिका च।
ज्ञानप्रवाहा विमलादिगङ्गा सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा।। १।।

अन्वय—(यत्र) मनोनिवृत्तिः, परमोपशान्तिः, च तीर्थवर्या, मणिकर्णिका, सा; ज्ञानप्रवाहा, विमलादिङ्गा सा निजबोधरूपा, काशिका, अहम् (अस्मि)।

अर्थ—जहाँ मन का विषय वासनाओं से निवृत्त होना और परम शान्ति को प्राप्त करना ही तीर्थों में श्रेष्ठ 'मणिकर्णिका' है, ज्ञानप्रवाह ही मलादिरहित गङ्गा जी हैं, मैं वही प्रसिद्ध आत्मज्ञान रूपा काशी हूँ।। १।।

यस्यामिदं कल्पितमिन्द्रजालं चराचरं भाति मनोविलासम्।
सच्चित्सुखैका परमात्मरूपा सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा।। २।।

अन्वय—यस्याम्, इदम्, (परिदृश्यमानम्) चराचरम्, मनोविलासम्, इन्द्रजालम्, इव, कल्पितम्, भाति, (वस्तुतः) सत्-चित्-सुखैका, परमात्मरूपा सा, निजबोधरूपा, अहम् काशिका (अस्मि)।

अर्थ—मैं वह आत्मबोधरूप काशी हूँ जिसकी वास्तविकता सच्चिदानन्द परमात्मा है एवं जिस अधिष्ठान में यह स्थावर-जङ्गम इन्द्रजालरूप संसार कल्पित हुआ उसी तरह मिथ्या ही प्रतीत होता है जैसे मनोराज्य अनुभव में आया करते हैं।। २।।

कोशेषु पञ्चस्वधिराजमाना, बुद्धिर्भवानी प्रतिदेहगेहम्।
साक्षी शिवः सर्वगतोऽन्तरात्मा, सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा।। ३।।

अन्वय—(या नगरी,) पञ्चसु, कोशेषु अधिराजमाना, (वर्तते, यत्र,) प्रतिदेहगेहम्, बुद्धिः, भवानी, (विराजते,) सर्वगतः अन्तरात्मा, साक्षी, शिवः, (च विराजते) सा, निजबोधरूपा, अहम्, काशिका, (अस्मि)।

अर्थ—पाँच कोशों को अपने अधिकार में रखते हुए प्रकाशमान आत्मरूप बोध वह काशी है जो मेरा स्वरूप है। प्रत्येक शरीर रूप घर में बुद्धि के रूप में भवानी और सर्वव्यापक प्रत्यगात्मा साक्षी के रूप में शिव ही विराजमान हैं। (आत्मज्ञान हो जाने पर जीवभाव मिटकर शिवभाव ही रह जाता है।)।। ३।।

काश्यां हि काशते काशी, काशी सर्वप्रकाशिका।
सा काशी विदिता येन तेन प्राप्ता हि काशिका।। ४।।

अन्वय—हि, काशी, काश्याम्, (एव) काशते, (अतः) काशी (ज्ञानद्वारा) सर्वप्रकाशिका, (अस्ति) येन (पुण्यात्मना) सा, काशी, विदिता, तेन, हि, (एव) काशिका, प्राप्ता।

अर्थ—ज्ञानवान् या ज्ञानी ज्ञानरूपा काशी में ही सुशोभित होता है। कोई भी स्वच्छ या चमकीली वस्तु तभी सुशोभित होती है, जब वह उपयुक्त या स्वच्छ जगह पर हो, जहाँ उसकी उपयोगिता का आकलन हो, इसी प्रकार ज्ञान अथवा ज्ञानवान् की कसौटी भी ज्ञाननिष्ठारूप काशी ही है। जो व्यक्ति काशी की इस विलक्षण गरिमा व महिमा से परिचित है, वस्तुतः वही उसे प्राप्त करने का अधिकारी है, या वही मोक्षपद का लाभ कर सकता है।।४।।

काशी क्षेत्रं शरीरं त्रिभुवनजननी व्यापिनी ज्ञानगङ्गा
भक्तिः श्रद्धा गयेयं निजगुरुचरणध्यानयोगः प्रयागः।
विश्वेशोऽयं तुरीयः सकलजनमनःसाक्षिभूतोऽन्तरात्मा
देहे सर्वं मदीये यदि वसति पुनस्तीर्थमन्यत् किमस्ति।। ५।।

अन्वय—(वस्तुतस्तु, ज्ञानदृष्ट्या इदम्) शरीरमेव, काशी क्षेत्रम्, अस्ति, व्यापिनी, ज्ञानगङ्गा, एव, त्रिभुवनजननी, (माता पार्वती अन्नपूर्णा वा अस्ति), श्रद्धासमन्विता, इयम्, भक्तिः, एव, गया (वर्तते), निजगुरुचरण-ध्यानयोगः, प्रयागः, (अस्ति) सकलजनमनःसाक्षिभूतः, अन्तरात्मा, तुरीयः (एव) विश्वेशः (काशीविश्वनाथः शिवः) अस्ति। मदीये, देहे (एव) एतत्सर्वम्, पूर्वोक्तम्, वसति, चेत्, तर्हि, पुनः, अन्यत्, तीर्थम्, किम्, अस्ति! (न किमपीत्यर्थः)।

अर्थ—परमार्थतः ज्ञानदृष्टि से यदि देखा जाय, तो यह शरीर ही काशी नगरी है। इसमें व्यापक जो ज्ञानधारा बह रही है, वही तीनों लोकों की माता पार्वती या अन्नपूर्णा है। अन्तःकरण में श्रद्धा-समन्वित जो भक्ति है, वही गया है (या गयातीर्थ है)। अपने गुरुजी के चरणकमलों का जो एकाग्र ध्यान है, वही प्रयाग है। सभी प्राणियों का साक्षी, सबका अन्तरात्मा, जो तुरीय चैतन्य

वही काशीविश्वनाथ हैं। जब हमारे शरीर में ही ये काशी, गया, प्रयाग आदि श्रेष्ठ तीर्थ निवास कर रहे हैं, तो फिर दूर में स्थित बाह्य तीर्थों से हमें क्या प्रयोजन?।। ५।।

श्रीगङ्गाष्टकम्

भगवति तव तीरे नीरमात्राशनोऽहम्
विगतविषयतृष्णः कृष्णमाराधयामि।
सकलकलुषभङ्गे स्वर्गसोपानसङ्गे
तरलतरतरङ्गे देवि गङ्गे प्रसीद।।१।।

अन्वय—हे भगवति! (गङ्गे!) अहम्, तव, तीरे, नीरमात्राशनः, विगतविषयतृष्णः, (सन्) कृष्णम्, आराधयामि, हे सकलकलुषभङ्गे! हे स्वर्गसोपानसङ्गे! हे तरलतरतरङ्गे! हे गङ्गे! हे देवि! प्रसीद।

अर्थ—हे भगवति गङ्गे! तुम्हारे तट पर, मैं केवल जल पीते हुए, विषय-तृष्णा से रहित होकर, भगवान् श्री कृष्ण की आराधना करता हूँ। हे समस्त पापों का नाश करने वाली! हे स्वर्ग के लिए सोपानस्वरूपे! हे चञ्चल तरङ्गों वाली माता गङ्गे! मुझ पर प्रसन्न हो जाओ।।१।।

भगवति भवलीलामौलिमाले तवाम्भः-
कणमणुपरिमाणं प्राणिनो ये स्पृशन्ति।
अमरनगरनारीचामरग्राहिणीनां
विगतकलिकलङ्कातङ्कमङ्के लुठन्ति।।२।।

अन्वय—हे भगवति! हे भवलीलामौलिमाले! ये, प्राणिनः, अणुपरिमाणम्, (अपि) तव, अम्भःकणम्, स्पृशन्ति (ते) अमरनगरनारीचामर-ग्राहिणीनाम्,अङ्के, विगतकलिकलङ्कातङ्कम्, (यथा स्यात् तथा) लुठन्ति।

अर्थ—हे भवानी! गङ्गे! हे भगवान् शंकर के लीलामय मस्तक पर माला-सी! जो प्राणी आपके जलबिन्दु का अणुमात्र भी स्पर्श करते हैं, वे कलि कलङ्क के भय से रहित होकर, स्वर्गलोक की चामरधारिणी अप्सराओं की गोद में बैठते हैं।।२।।

ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती
स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती।

क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमूर्निर्भरं भर्त्सयन्ती
पाथोधिं पूरयन्ती सुरनगरसरित् पावनी नः पुनातु ।।३।।

अन्वय—पावनी, सुरनगरसरित्, ब्रह्माण्डम्, खण्डयन्ती, हरशिरसि, जटावल्लिम्, उल्लासयन्ती, स्वर्लोकाद्, आपतन्ती, कनकगिरिगुहागण्ड-शैलात्, स्खलन्ती, क्षोणीपृष्ठे, लुठन्ती, दुरितचयचमूः, निर्भरम्, (यथा स्यात् तथा) भर्त्सयन्ती, पाथोधिम्, पूरयन्ती, (सती) नः (अस्मान्) पुनातु।

अर्थ—परमपवित्र देवनदी भागीरथी, ब्रह्माण्ड को विदीर्ण करती हुई, भगवान् शंकर की जटावल्लियों को उल्लसित करती हुई, स्वर्ग लोक से निकलती हुई, सुमेरु पर्वत की गुहा व क्षुद्र पर्वतमाला से गुजरती हुई, पृथ्वी पर लोटती हुई, पाप समूह रूपी सेना को दूर भगाती हुई, हम लोगों को पवित्र करे।।३।।

मज्जन्मातङ्गकुम्भच्युतमदमदिरामोदमत्तालिजालं
स्नानैः सिद्धाङ्गनानां कुचयुगविगलत्कुंकुमासंगपिङ्गम्।
सायं प्रात र्मुनीनां कुशकुसुमचयैश्छन्नतीरस्थनीरं
पायान्नो गाङ्गमम्भः करिकलभकराक्रान्तरंहस्तरङ्गम्।।४।।

अन्वय—मज्जन्मातङ्गकुम्भच्युतमदमदिरामोदमत्तालिजालम्, स्नानैः, सिद्धाङ्गनानाम्, कुचयुगविगलत्कुंकुमासंगपिङ्गम्, सायम्, प्रातः, मुनीनाम्, कुशकुसुमचयैः, छन्नतीरस्थनीरम्, करिकलभकराक्रान्तरंहस्तरङ्गम्, गाङ्गम्, अम्भः, नः, (अस्मान्) पायात्।

अर्थ—भगवती भागीरथी का वह पवित्र जल, हम लोगों का कल्याण करे, जिसमें स्नान करते हुए हाथियों के कुम्भस्थल से च्युत मदरूपी मदिरा के आमोद-सुगन्ध से भ्रमरगण मत्त हो रहा है, जिसमें सिद्धाङ्गनायें स्नान करती हैं, अतः स्नान काल में उनके कुचों से निकलते हुए कुंकुम के सम्पर्क से जो जल कुछ पीला सा हो गया है, सायंकाल व प्रातः काल पूजा के अवसर पर, मुनियों के द्वारा समर्पित कुश व कुसुमादि सामग्री से, जिसका तीरस्थ नीर व्याप्त है, और हाथी के बच्चों के शुण्डादण्डों द्वारा जिसकी वेगयुक्त तरङ्गें आलोडित हो रही हैं।।४।।

आदावादिपितामहस्य नियमव्यापारपात्रे जलं
पश्चात् पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनम्।
भूयः शम्भुजटाविभूषणमणि र्जह्नो र्महर्षेरियं
कन्या कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी भूतले।।५।।

अन्वय—या, इयम्, महर्षेः, जह्नोः, कल्मषनाशिनी, कन्या, भगवती, भागीरथी, भूतले, (दरीदृश्यते) सा, आदौ, आदिपितामहस्य, नियमव्यापारपात्रे, (कमण्डलौ, इत्यर्थः) जलम्, (जलरूपेण स्थिता आसीत्)। पश्चात्, पन्नगशायिनः, भगवतः, (विष्णोः) पावनम्, पादोदकम्, (पादोदकरूपेण स्थिताऽभवत्)। भूयः, शम्भुजटाविभूषणमणिः, (अभवत्) (अर्थात् शम्भुजटाजूटेषु मणिरिव विराजमाना अवर्तत) (इदानीं तु) भूतले, (भगीरथ-प्रयत्नादागता सती) भागीरथी नाम्ना गीयते (इति)।

अर्थ—जह्नु महर्षि की कन्या पापनाशिनी यह भगवती भागीरथी, इस समय जो इस पृथिवी में दिखाई दे रही है, वह पहिले आदिपितामह ब्रह्मा के कमण्डलु में जलरूप में थी, फिर शेषशायी भगवान् विष्णु के पवित्र पादोदक के रूप में परिणत हुई। तत्पश्चात् भगवान् शंकर के जटाजूटों में मणि की तरह सुशोभित हुई। फिर राजा भगीरथ के तप के प्रभाव से भूतल पर बहते हुए सब के पाप धो रही है।।५।।

शैलेन्द्रादवतारिणी निजजले मज्जज्जनोत्तारिणी
पारावारविहारिणी भवभयश्रेणीसमुत्सारिणी।
शेषाहेरनुकारिणी हरशिरोवल्लीदलाकारिणी
काशीप्रान्तविहारिणी विजयते गङ्गा मनोहारिणी।।६।।

अन्वय—(इयम्, भगवती भागीरथी) शैलेन्द्राद् अवतारिणी (अस्ति); निजजले, मज्जज्जनोत्तारिणी, च, (अस्ति), पारावारविहारिणी (सती) भवभयश्रेणीसमुत्सारिणी (चास्ति); शेषाहेः अनुकारिणी, हरशिरोवल्ली-दलाकारिणी (च) काशीप्रान्तविहारिणी, मनोहारिणी, गङ्गा, विजयते।

अर्थ—यह भगवती भागीरथी, हिमालय पर्वत से निकलती हुई, अपने जल में स्नान करने वालों का उद्धार करने वाली है, समुद्र में विहरण करती हुई, यह संसार के भयादि समस्त संकटों को दूर करने वाली है, शेषनाग की तरह स्वच्छ व विशाल है और भगवान् शंकर के शिर में लता की तरह सुशोभित है, काशी के प्रान्तभाग को पवित्र करने वाली, सकलजनमनोहारिणी यह 'गङ्गा' सर्वोत्कृष्ट है, अर्थातु सभी की वन्दनीया, अभिनन्दनीया है।।६।।

कुतो भीतिर्वीचिस्तव यदि गता लोचनपथं
त्वमापीता पीताम्बरपुरनिवासं वितरसि।
त्वदुत्सङ्गे गङ्गे पतति यदि कायस्तनुभृतां
तदा मातः शातक्रतवपदलाभोऽप्यतिलघुः।।७।।

अन्वय—हे गङ्गे! यदि, तव, वीचिः, (नृणाम्) लोचनपथम्, गता, (चेत्, तदा संसारसम्बन्धिनी), भीतिः, कुतः? त्वम्, आपीता, (सती) पीताम्बरपुरनिवासम्, वितरसि, हे मातः! यदि, तनुभृताम्, कायः, त्वदुत्सङ्गे, पतति, तदा, शातक्रतवपदलाभः, अपि, अतिलघुः भवति।

अर्थ—हे गङ्गे! यदि आपकी तरङ्गें मनुष्यों के नयनगोचर हो जाती हैं, तो फिर उनके लिए सांसारिक भय कहाँ रह जाता है? मनुष्य यदि एक बार भी आपके जल का आचमन कर लेता है, तो आप उसे वैकुण्ठ लोक का निवास प्रदान करती हो। हे मातः! यदि कदाचित् प्राणियों का शरीर आपकी गोद में छूट जाय, तो फिर उसके लिए तो महेन्द्र पद की प्राप्ति भी अत्यन्त तुच्छ है।।७।।

गङ्गे त्रैलोक्यसारे सकलसुरवधूधौतविस्तीर्णतोये
पूर्णब्रह्मस्वरूपे हरिचरणरजोहारिणि स्वर्गमार्गे।
प्रायश्चित्तं यदि स्यात्तव जलकणिका ब्रह्महत्यादिपापे
कस्त्वा स्तोतुं समर्थस्त्रिजगदघहरे देवि गङ्गे प्रसीद।।८।।

अन्वय—हे गङ्गे! हे त्रैलोक्यसारे! हे सकलसुरवधूधौतविस्तीर्णतोये! हे पूर्णब्रह्मस्वरूपे! हे हरिचरणरजोहारिणि! हे स्वर्गमार्गे! ब्रह्महत्यादिपापे, (विषये) यदि, तव, जलकणिका, (अपि) सुलभा, स्यात्, तदा, (तदेव) प्रायश्चित्तम्, भवेत्, अतः हे त्रिजगदघहरे! देवि! त्वा, (त्वाम्) स्तोतुम्, कः, समर्थः, (स्यात्) हे गङ्गे! प्रसीद।

अर्थ—हे गङ्गे! हे तीन लोकों में एकमात्र सारस्वरूपे! हे समस्त देवाङ्गनाओं के स्वच्छन्द स्नान के लिए विस्तृत जलरूपे! हे पूर्णब्रह्मस्वरूपे! हे भगवान् के चरणकमलों को प्रक्षालन करने वाली गङ्गे! ब्रह्महत्यादि महापापों के प्रसंग में, यदि आपके जल का कणमात्र भी सुलभ हो जाय, तो वही उन पापों का प्रायश्चित्त है। हे तीन लोकों के पापों का नाश करने वाली गङ्गे! तुम्हारी स्तुति करने में कौन समर्थ है! हे देवि गङ्गे! आप प्रसन्न हो जाओ।।८।।

मातः शाम्भवि शम्भुसङ्गमिलिते मौलौ निधायाञ्जलिं
त्वत्तीरे वपुषोऽवसानसमये नारायणाङ्घ्रिद्वयम्।
सानन्दं स्मरतो भविष्यति मम प्राणप्रयाणोत्सवे
भूयाद् भक्तिरविच्युता हरिहराद्वैतात्मिका शाश्वती।।९।।

अन्वय—हे मातः! हे शाम्भवि! (हे जाह्नवि इति पाठभेदः) हे शम्भुसङ्गमिलिते! त्वत्तीरे मौलौ, अञ्जलिम् निधाय, सानन्दम्,

नारायणाङ्घ्रिद्वयम्, स्मरतः, मम, वपुषः अवसानसमये, भविष्यति, प्राणप्रयाणोत्सवे अविच्युता, हरिहराद्वैतात्मिका, शाश्वती, भक्तिः, भूयात्।

अर्थ—हे शिवसङ्गिनि मातः गङ्गे! शरीर शान्त होने के अवसर पर, प्राणों के प्रयाणरूपी उत्सव में, तुम्हारे तीर पर, शिर नवाकर हाथ जोड़े हुए, आनन्द पूर्वक भगवान् नारायण के चरणयुगल का ध्यान करते हुए, मेरी अविचल भाव से, हरि व हर में अभेदात्मिका नित्य भक्ति बनी रहे।।९।।

गङ्गाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेत् प्रयतो नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति।।१०।।

अन्वय—यः, नरः, प्रयतः, (सन्) इदम्, पुण्यम्, गङ्गाष्टकम्, पठेत्, सः, सर्वपापविनिर्मुक्तः, विष्णुलोकम्, गच्छति।

अर्थ—जो मनुष्य शुद्ध होकर, इस पवित्र 'गङ्गाष्टक' का पाठ करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर, वैकुण्ठलोक में जाता है।।१०।।

षट्पदीस्तोत्रम्

अविनयमपनय विष्णो, दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम्।
भूतदयां विस्तारय, तारय संसारसागरतः।। १।।

अन्वय—हे विष्णो! (मदीयम्) अविनयम्, अपनय, मनः, दमय, विषयमृगतृष्णाम्, शमय, भूतदयाम्, विस्तारय, संसारसागरतः, तारय।

अर्थ—हे भगवन्! (विष्णो!) मेरा अविनय दूर कीजिए, मेरे मन का दमन कीजिए, और विषयों की ओर जो मेरी मृगतृष्णा (लालसा) है, उसे शान्त कीजिए। प्राणियों के विषय में मेरे दयाभाव का विस्तार कीजिए, और इस संसार सागर से मुझे पार लगाइये।। १।।

दिव्यधुनीमकरन्दे, परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे।
श्रीपतिपदारविन्दे, भवभयखेदच्छिदे वन्दे।। २।।

अन्वय—(अहम्) दिव्यधुनीमकरन्दे, परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे, भवभयखेदच्छिदे, श्रीपतिपदारविन्दे, वन्दे।

अर्थ—जो चरणारविन्द, मन्दाकिनी के मकरन्द (पुष्परस) के सुगन्ध के उपभोग से सत् चित् व आनन्द स्वरूप हैं, और इस संसाररूपी भय से उत्पन्न जो खेद (कष्ट या श्रम) है, उसको दूर करने वाले हैं, उन्हीं श्रीपति (लक्ष्मीपति)

भगवान् के चरणकमलों की मैं वन्दना करता हूँ।। २।।

सत्यपि भेदापगमे, नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः, क्वचन समुद्रो न तारङ्गः।। ३।।

अन्वय–हे नाथ! भेदापगमे, सति, अपि, अहम्, तव, त्वम्, मामकीनः, न, हि, सामुद्रः तरङ्गः, क्वचन (कथमपि) तारङ्गः, समुद्रः, न, (भवतीत्यर्थः)।

अर्थ–हे नाथ! यद्यपि 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' इस अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार तो आप (परमात्मा) और मुझ (जीव) में कोई भेद नहीं है, फिर भी उपास्य-उपासक-भाव के लिए (अथवा व्यवहार दशा में) मैं आपका हूँ, आप मेरे नहीं, क्योंकि जैसे समुद्र व तरङ्ग दोनों जल एक-से होते हुए भी, समुद्र में ही तरङ्गों को समझा जाता है, न कि तरङ्ग में समुद्र की सम्भावना होती है अर्थात् व्यापक में ही व्याप्य समा सकता है, न कि व्याप्य परिच्छिन्न में, व्यापक।। ३।।

उद्धृतनग, नगभिदनुज, दनुजकुलामित्र, मित्रशशिदृष्टे।
दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः।। ४।।

अन्वय–हे उद्धृतनग! हे नगभिदनुज! हे दनुजकुलामित्र! हे मित्रशशिदृष्टे! प्रभवति, भवति, दृष्टे, सति, किम्, भवतिरस्कारः, न, भवति, (अपितु भवत्येवेति, काक्वा, व्यज्यते)।

अर्थ–हे गोवर्धन-धारिन्! हे इन्द्र के अनुज (उपेन्द्र, वामन)! हे राक्षसकुल के शत्रु! हे सूर्यचन्द्र रूपी नेत्र वाले! प्रभावपूर्ण आप जैसे प्रभु के दर्शन हो जाने पर (भक्त की) क्या इस संसार के प्रति उपेक्षा नहीं हो जाती है? अपितु अवश्य इस संसार के प्रति उपेक्षा (अर्थात् जन्ममरणाभावरूप मुक्ति) हो जाती है।। ४।।

मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवतावता सदा वसुधाम्।
परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम्।। ५।।

अन्वय–हे परमेश्वर! मत्स्यादिभिः, अवतारैः, अवतारवता, सदा वसुधाम्, अवता, भवता, भवतापभीतः, अहम्, परिपाल्यः।

अर्थ–हे परमेश्वर! मत्स्यादि अवतारों से अवतरित होकर, इस पृथ्वी की सदा रक्षा करने वाले आप सांसारिक त्रिविध ताप से सन्तप्त मेरी रक्षा करें।।५।।

दामोदर गुणमन्दिर, सुन्दरवदनारविन्द गोविन्द।
भवजलधिमथनमन्दर, परमं दरमपनय मे त्वम्।। ६।।

अन्वय–हे दामोदर! (दाम उदरे यस्य तत्सम्बुद्धौ) हे गुणमन्दिर! हे सुन्दरवदनारविन्द! हे गोविन्द! हे भवजलधिमथनमन्दर! त्वम्, मे, परमम्, दरम्, अपनय।

अर्थ–हे दामोदर! हे गुणों के मन्दिर! हे सुन्दर मुखारविन्द गोविन्द! हे संसार रूपी सागर को मथने के लिए मन्दराचलरूप! आप मेरे इस महान् (सांसारिक) भय को दूर कीजिए।। ६।।

नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ।
इति षट्पदी मदीये वदनसरोजे सदा वसतु।। ७।।

अन्वय–हे करुणामय नारायण! अहम्, तावकौ, चरणौ, शरणम्, करवाणि, इति, षट्पदी, सदा, मदीये, वदनसरोजे, वसतु।

अर्थ–हे करुणामय नारायण! अब मैं आपके चरणों की शरण में हूँ। यह पूर्वोक्त षट्पदी (छ श्लोकों की स्तुति रूपी भ्रमरी) हमेशा मेरे मुखकमल में निवास करे।। ७।।

मोहमुद्गरः

(चर्पटपञ्जरिका स्तोत्रम्)

भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते।
सम्प्राप्ते संनिहिते काले न हि न हि रक्षति डुकृञ् करणे।। १।।

अन्वय–हे मूढमते! गोविन्दम् भज, गोविन्दम् भज, गोविन्दम् भज, (निरन्तरं गोविन्दविषयकं ध्यानं कुरु इत्यर्थः) यतो हि काले, संनिहिते, प्राप्ते सति, डुकृञ् करणे, (करणार्थको डुकृञ् धातुरित्यर्थः) न हि न हि, रक्षति।

अर्थ–हे मन्दमति! तुम निरन्तर गोविन्द का भजन करो, क्योंकि मृत्यु के समीप आ जाने पर करणार्थक 'डुकृञ्' धातु तुम्हारी रक्षा नहीं करेगी। (व्याकरण का कोई पण्डित अपनी वृद्धावस्था में भी हमेशा अभ्यासवश धातुपाठ करता रहता था, उसी को देखकर, आचार्य शंकर ने कहा कि 'हे ब्राह्मण देवता! कम से कम अब इस वृद्धावस्था में (जबकि मृत्यु शिर पर मंडरा रही है) तो भगवान् का भजन कर लो'।)।। १।।

मूढ जहीहि धनागमतृष्णां कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम्।
यल्लभसे निजकर्मोपात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम्।। २।।

अन्वय—हे मूढ! धनागमतृष्णाम्, जहीहि, सद्बुद्धिम्, कुरु, मनसि, वितृष्णाम्, कुरु, (तृष्णारहितं मनो विधेहीत्यर्थः) निजकर्मोपात्तम्, यत्, वित्तम्, लभसे, तेन, चित्तम्, विनोदय।

अर्थ—हे मूढ! धन-सञ्चय की लालसा को छोड़ दो, सद्बुद्धि धारण करो, मन से सभी प्रकार की तृष्णाओं को हटा दो, अपने पुरुषार्थ के अनुसार जो कुछ मिल जाता है, उसी से अपने चित्त को प्रसन्न रक्खो।। २।।

नारीस्तनभरनाभीदेशं दृष्ट्वा मा गा मोहावेशम्।
एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचिन्तय वारं वारम्।। ३।।

अन्वय—नारीस्तनभरनाभीदेशं, दृष्ट्वा, मोहावेशम्, मा, गाः, एतत्, मांसवसादिविकारम्, मनसि, वारम्, वारम्, विचिन्तय।

अर्थ—नारियों के प्रशस्त पयोधर व नाभी जघनादि प्रदेशों को देखकर, मोह के वशीभूत मत हो जाओ, क्योंकि यह सब तो मांस व मज्जा आदि का विकार है, इसी बात को अपने मन में बार बार लाना चाहिए।। ३।।

नलिनीदलगतजलमतितरलं तद्वज्जीवितमतिशयचपलम्।
विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं लोकं शोकहतं च समस्तम्।। ४।।

अन्वय—नलिनीदलगतजलम्, अति-तरलम्, (भवति), तद्वत्, जीवितम्, (ततोऽपि) अतिशयचपलम्, (अस्ति), समस्तम्, लोकम्, शोकहतम्, व्याध्यभिमानग्रस्तम्, विद्धि।

अर्थ—जिस प्रकार कमल के पत्ते में स्थित जल चञ्चल (अस्थिर) है, उसी प्रकार यह जीवन कहीं उससे भी अत्यन्त चञ्चल व अस्थिर है, इस प्रकार यह सारा संसार चिन्ताग्रस्त तथा आधि-व्याधि-आदि से व राग-द्वेष-मूलक अभिमान से ग्रस्त समझो।। ४।।

यावद् वित्तोपार्जनसक्तस्तावन्निजपरिवारो रक्तः।
पश्चाज्जीवति जर्जरदेहे वार्तां कोऽपि न पृच्छति गेहे।। ५।।

अन्वय—यावत्, त्वम्, वित्तोपार्जनसक्तः, असि, तावत्, निजपरिवारः, रक्तः, भवति, पश्चात्, जर्जरदेहे, जीवति, सति, गेहे, कोऽपि, वार्ताम्, न, पृच्छति।

अर्थ—अरे! जब तक तू धन कमाने में मस्त है, तभी तक तेरा परिवार तुझसे प्रेम करेगा, जब तू जरा से जर्जरित शरीर वाला हो जायेगा (अर्थात् धन कमाने में असमर्थ होगा), तब घर में तेरे से कोई बात भी नहीं करेगा।।५।।

यावत्पवनो निवसति देहे, तावत्पृच्छति कुशलं गेहे।
गतवति वायौ देहापाये भार्या बिभ्यति तस्मिन् काये।। ६।।

अन्वय–पवनः, यावत्, देहे, निवसति, (जनः) तावत्, गेहे, कुशलम्, पृच्छति, देहापाये, सति, वायौ, गतवति, पुनः, तस्मिन्, काये, भार्या, अपि, बिभ्यति।

अर्थ–जब तक इस शरीर में प्राण वायु रहता है, तभी तक लोग घर में कुशल प्रश्न भी करते हैं, इस प्राणवायु के निकल जाने पर, जब शरीर नष्ट (चेतनाशून्य) हो जाता है, तब उस प्राणशून्य शरीर को देखकर, अपनी प्राणप्रिय भार्या भी, उससे डरती है।। ६।।

बालस्तावत् क्रीडासक्तस्तरुणस्तावत् तरुणीरक्तः।
वृद्धस्तावत् चिन्तामग्नः पारे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः।। ७।।

अन्वय–यावत्, बालः, तावत्, सः, क्रीडासक्तः, यावत्, तरुणः, तावत्, तरुणीरक्तः, (अस्ति) यावत् (च) वृद्धः, तावत्, सः, चिन्तामग्नः (भवति) अतः कोऽपि, पारे ब्रह्मणि, न, लग्नः, (नानाविधचिन्तासन्तानसन्तप्तः सन् तद्विषयकं ध्यानं कर्तुमवसरमेव न लभते, अतः सावधानतया स्वस्थजीवनदशायामेव गोविन्दभजनाभ्यासो विधेयः)।

अर्थ–जब तक बाल्यावस्था रहती है, तब तक तो लोग खेलकूद में ही मस्त रहते हैं। जब युवावस्था आ जाती है, तब युवतियों के साथ अनेक विषय-वासनाओं में आसक्त हो जाते हैं। अब जब वृद्धावस्था आयी, तो फिर गृहस्थ जीवन की सारी जिम्मेदारी सिर पर आ जाती है अतः व्यक्ति नाना प्रकार की चिन्ता से ग्रस्त रहता है। अब बताइये, परब्रह्म विषयक भजन करने का अवसर ही कहाँ है? अतः व्यक्ति को चाहिए कि वह पहिले से अर्थात् स्वस्थ दशा में ही नित्यप्रति कुछ भगवद्भजन का अभ्यास कर ले, भजन पूजनादि भार केवल वृद्धावस्था पर ही नहीं छोड़ देना चाहिए, क्योंकि वृद्धावस्था तो एक तरह से असमर्थ दशा है, उस अवस्था में मनुष्य कोई भी जिम्मेदारी अच्छी तरह नहीं निभा सकता है।। ७।।

का ते कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः।
कस्य त्वं कः कुत आयातस्तत्त्वं चिन्तय यदिदंभ्रातः।। ८।।

अन्वय–अरे भ्रातः! का, ते, कान्ता, कः, ते, पुत्रः, त्वम्, कः, कस्य कुतः, आयातः, इत्थम्, अयम्, संसारः, अतीव, विचित्रः, अस्ति (विविध-चित्रयुक्तो वा अस्ति) यत्, इदम्, (रहस्यम्) तत्, त्वम्, चिन्तय।

अर्थ—अरे भाई! कौन तुम्हारी स्त्री, कौन तुम्हारा पुत्र, और खुद तुम कौन हो, किसके हो, कहाँ से आये हो? इस प्रकार का विचार करने पर तो, यह संसार अतीव विचित्र मालूम पड़ता है। अर्थात् यह संसार तो विश्व-विधाता, जो सर्वश्रेष्ठ कलाकार है, उसके द्वारा निर्मित एक चित्र है, अर्थात् सत्य अधिष्ठानभूत जो चैतन्य है उसमें यह चित्र भी कल्पित ही है। इसे तुम एकदम सत्य मत समझो। जब यह संसार ही कल्पित है, तो फिर इसके अन्तर्गत जो पत्नी पुत्रादि का सम्बन्ध वह भी नितरां असत्य ही समझो, यह तो केवल व्यवहार के लिए जोड़ा गया है, इसे ही परमार्थ न समझो। इस संसार के मिथ्यात्व का चिन्तन करो।। ८।।

सत्सङ्गत्वे निःसङ्गत्वं निःसङ्गत्वे निर्मोहत्वम्।
निर्मोहत्वे निश्चलितत्वं निश्चलितत्वे जीवन्मुक्तिः।। ९।।

अन्वय—सत्सङ्गत्वे, सति, निःसङ्गत्वम्, (आपाततो विरोधात् कारण-कार्ययोर्वैचित्र्यमित्यर्थः) निःसङ्गत्वे, सति, निर्मोहत्वम्, निर्मोहत्वे, सति, निश्चलितत्वम्, निश्चलितत्वे, जीवन्मुक्तिः भवति।

अर्थ—सत्सङ्ग से निःसङ्गता अर्थात् संसार-विषयक आसक्ति समाप्त होती है, और अनासक्त व्यक्ति का मोह (अज्ञान) नष्ट हो जाता है। अज्ञान के नष्ट हो जाने पर व्यक्ति को आत्मविषयक दृढ निष्ठा हो जाती है, यही आत्मनिष्ठा या ज्ञाननिष्ठा मोक्ष का कारण है।। ९।।

वयसि गते कः कामविकारः शुष्के नीरे कः कासारः।
क्षीणे वित्ते कः परिवारो ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः।। १०।।

अन्वय—(यथा) वयसि, गते, कामविकारः, कः, (कीदृशः! कथञ्चिदपि कामविकारो न भवतीत्यर्थः) (यथा च) नीरे, शुष्के, सति, कासारः, कः, (किमात्मक इत्यर्थः, नीररहितस्य कासारस्य का कासारता? न कापीत्यर्थः) यथा वा वित्ते क्षीणे सति परिवारः कः (क्षीणवित्तस्य परिवारस्यापि समीचीना स्थिति र्न भवतीत्यर्थः तथैव) तत्त्वे ज्ञाते संसारः अपि, कः, (न कोऽपीत्यर्थः)।

अर्थ—अवस्था के बीत जाने पर, जिस प्रकार कामविकार नष्ट हो जाता है, जल के सूख जाने पर जलाशय की शोभा नहीं रह जाती है, और धन के नष्ट हो जाने पर जैसे परिवार की कोई स्थिति नहीं रह जाती है, उसी प्रकार ब्रह्मविषयक ज्ञान हो जाने पर, संसार की स्थिति नहीं रह जाती है।। १०।।

मा कुरु धनजनयौवनगर्वं हरति निमेषात् कालः सर्वम्।
मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा।। ११।।

अन्वय—हे मूढ! त्वम्, धनजनयौवनगर्वम्, मा, कुरु, कालः, निमेषात्, सर्वम्, हरति, इदम्, अखिलम्, मायामयम्, हित्वा, ब्रह्मपदम्, विदित्वा, प्रविश।

अर्थ—हे मूढ! तू धन, जन तथा यौवन का गर्व मत कर, क्योंकि काल पलकभर में इन सबको हर लेता है। अतः इस मायामय सम्पूर्ण प्रपञ्च को छोड़कर, ब्रह्म पद को जान कर, उसी में प्रवेश कर (श्रुति का भी यही कथन है कि 'तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' इत्यादि।)।।११।।

दिनयामिन्यौ सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः।। १२।।

अन्वय—हे मूढ! दिनयामिन्यौ, सायम्, प्रातः, शिशिरवसन्तौ (च) पुनः, आयातः, (चकारात् क्रमेणान्वयः) इत्थम्, कालः, क्रीडति, आयुः, (च) गच्छति, तदपि, (तथापि) आशा वायुः, न, मुञ्चति।

अर्थ—हे मूढ! दिन और रात, सायंकाल और प्रातःकाल, शिशिर वसन्तादि ऋतुयें आती हैं, और जाती रहती हैं। इन्हीं दिन रात व ऋतुओं के आवागमन द्वारा काल अपनी क्रीडा करता रहता है। (वस्तुतः समय का गमनागमन चक्र तो चलता ही रहेगा, क्योंकि किन्हीं दार्शनिकों के मत में काल आकाशादि भी नित्य पदार्थ हैं।) सच बात तो यह है कि इस चक्कर में मनुष्य की आयु ही खत्म होती है, आयु के क्षीण होने पर भी आशापाश उसे बाँधे ही रहता है।।१२।।

का ते कान्ताधनगतचिन्ता वातुल किं तव नास्ति नियन्ता।
त्रिजगति सज्जनसङ्गतिरेका भवति भवार्णवतरणे नौका।। १३।।

अन्वय—हे वातुल! ते, कान्ताधनगतचिन्ता का (इति आक्षेपे, तादृशी चिन्ता त्वया न विधेयेत्यर्थः), तव कश्चन, नियन्ता, नास्ति, किम्? त्रिजगति, भवार्णवतरणे, एका, सज्जनसङ्गतिः (एव) नौका, भवति।

अर्थ—हे वातरोग पीडित! अथवा असम्बद्ध प्रलापिन्! तुम स्त्री व धन विषयक चिन्ता क्यों करते हो? व्यर्थ की इस चिन्ता को छोड़ो। तुम्हारी इन स्वच्छन्द वृत्तियों का नियामक कोई नहीं है क्या? तीनों भुवनों में भवसागर को पार करने के लिए, एकमात्र सत्सङ्गति ही नौका है।। १३।।

जटिलो मुण्डी लुञ्चितकेशः काषायाम्बरबहुकृतवेषः।
पश्यन्नपि च न पश्यति मूढो ह्युदरनिमित्तं बहुकृतवेषः।। १४।।

अन्वय—कश्चित्, जटिलः, कोऽपि मुण्डी, कश्चित्, लुञ्चितकेशः, काषायाम्बरबहुकृतवेषः, (इत्थम्,) उदरनिमित्तम्, बहुकृतवेषः, (अयम्), मूढः, पश्यन्, अपि, च, न, पश्यति।

अर्थ—उस परम तत्त्व परमात्मा की खोज में कोई जटाधारी है, जैसे वैष्णवसाधु; कोई मुण्डन किये हुए है, जैसे संन्यासी आदि; कोई केशों का लुञ्चन करते हैं, जैसे जैन मुनि आदि; कोई कषाय (गेरुवा) वस्त्रों से अनेक प्रकार का वेष बनाते हैं; इस प्रकार उदर-पूर्ति के लिए अनेक प्रकार की वेषभूषा बनाते हुए भी, ये लोग सभी प्रकार के वेषभूषा से शून्य, अर्थात् निरुपाधि निरञ्जन उस परमात्मा को जानते हुए भी, नहीं जानते हैं। (अर्थात् जब शास्त्रों में कह दिया है कि, यह परमात्मा तो निःसङ्ग एवं निरञ्जन अर्थात् शुद्ध मुक्त स्वरूप है, तो फिर वह किसी प्रकार के वेषभूषादि उपाधियों से कैसे सम्बन्धित या सीमित होगा? इस प्रकार के शास्त्रोपदेश को जानते हुए भी ये लोग मनमानी वेषभूषा से न जानते हुए से हैं)।। १४।।

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम्।।१५।।

अन्वय—अङ्गम्, गलितम्, मुण्डम्, पलितम्, तुण्डम्, दशनविहीनम्, जातम्, वृद्धः, सन्, दण्डम्, गृहीत्वा, याति, तदपि, आशापिण्डम्, न, मुञ्चति, (इति, आश्चर्यमेतत्, तस्मात्, निरन्तरं गोविन्दभजनं विधेय-मित्यर्थः)।

अर्थ—अङ्ग गलित अर्थात् शिथिल हो चुका, शिर के बाल पक गये, मुख में भी अब दाँत नहीं रहे, एकदम वृद्धावस्था में, अब केवल लाठी के सहारे चल रहा है, परन्तु आश्चर्य है कि, अभी भी आशारूपी ग्रास को नहीं छोड़ रहा है, अर्थात् मन में लालसा बनी ही रहती है।। १५।।

अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू रात्रौ चिबुकसमर्पितजानुः।
करतलभिक्षा तरुतलवासस्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः।। १६।।

अन्वय—(दिवा) अग्रे वह्निः, भवति, पृष्ठे च, भानुः, भवति, (वह्निभानुभ्यां दिवा शरीरस्य सन्तपनम्, संरक्षणञ्च भवतीत्यर्थः)। रात्रौ (वह्निसूर्ययोरभावे शीतार्तिभिया) चिबुकसमर्पितजानुः, भवति। करतलभिक्षा, तरुतलवासः, तदपि, आशापाशः न, मुञ्चति, (अस्य

प्रपञ्चात्मकस्य बन्धनस्य दुरुच्छेदत्वात् ।)

अर्थ–दिन में आगे अग्नि तथा पीछे सूर्य की किरणों द्वारा शरीर को तपाया जाता है, रात्रि में शीत के भय से किसी तरह जानुओं में ठुड्डी दबाकर सोया जाता है, पात्र के अभाव में, हाथ में ही भिक्षा ले ली जाती है, वृक्ष के नीचे ही निवास रहता है, यह सब होते हुए भी आशा रूपी पाश नहीं छोड़ता है। (आश्चर्य यही है कि अकिञ्चनदशा में भी सांसारिक कुछ न कुछ बन्धन बना ही रहता है। अतः यह भवपाश भी सहसा छोड़ा नहीं जा सकता, इसलिए इससे यति को हमेशा सावधान रहना चाहिए)।। १६।।

कुरुते गङ्गासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम्।
ज्ञानविहीनः सर्वमतेन मुक्तिं न भजति जन्मशतेन।। १७।।

अन्वय–यद्यपि, गङ्गासागरगमनम्, कुरुते, व्रतपरिपालनम्, कुरुते, अथवा दानम्, कुरुते, तथापि, सर्वमतेन, ज्ञानविहीनः, सन् जन्मशतेन, अपि, मुक्तिम्, न, भजति ('ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' इति सर्वसम्मत-सिद्धान्तात्)।

अर्थ–यद्यपि गङ्गासागरादि अनेक तीर्थों की यात्रा करता है, अनेक प्रकार के व्रतों का भी पालन करता है, ब्राह्मणादि को प्रचुर दान भी देता है, तथापि यदि ज्ञानरहित है, अर्थात् आत्मविषयक ज्ञान नहीं है, तो सैकड़ों जन्मों में भी मुक्ति नहीं मिल सकती है, क्योंकि 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती है यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है।। १७।।

सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः शय्या भूतलमजिनं वासः।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः।। १८।।

अन्वय–सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः शय्या भूतलम्, अजिनम्, वासः, सर्वपरिग्रहभोगत्यागः, एतादृशः, विरागः, कस्य, (सचेतसः) सुखम्, न, करोति।

अर्थ–जहाँ कहीं भी देवमन्दिर अथवा वृक्षतल मिल जाय, वहीं निवास कर लेना, पृथ्वी को ही सुन्दर शय्या मान लेना, मृगचर्म से शरीर को ढक लेना, सभी प्रकार के परिग्रह व भोगों का त्याग जिसमें है, ऐसा वैराग्य किसको सुखी नहीं बनाता! अर्थात् इस प्रकार के वैराग्य में सभी सुखी रहते हैं।। १८।।

योगरतो वा भोगरतो वा सङ्गरतो वा सङ्गविहीनः।
यस्य ब्रह्मणि रमते चित्तं नन्दति नन्दति नन्दत्येव।। १९।।

अन्वय–योगरतः, वा (अथवा) भोगरतः, सङ्गरतः, वा (अथवा) सङ्गविहीनः, यस्य, ब्रह्मणि, चित्तम्, रमते, सः, (निश्चितम्) नन्दति, नन्दति, नन्दति एव।

अर्थ–योगाभ्यास में निरन्तर संलग्न रहे, अथवा धर्मशास्त्रानुसार भोगों में संलग्न रहे। अपने वर्णाश्रम धर्मानुसार गृहस्थादि में आसक्त रहे, अथवा आसक्ति-रहित हो। यदि चित्त, परब्रह्म परमात्मा में रमता है, तो वह निश्चित ही सुखी है, आनन्दमग्न है।। १६।।

भगवद्गीता किञ्चिदधीता, गङ्गाजललवकणिका पीता।
सकृदपि येन मुरारिसमर्चा क्रियते तस्य यमेन न चर्चा।।२०।।

अन्वय–येन, जनेन, भगवद्गीता, किञ्चित्, अधीता, गङ्गाजललवकणिका पीता, सकृदपि, मुरारिसमर्चा, कृता, तस्य, जनस्य, यमेन, चर्चा, अपि, न, क्रियते।

अर्थ–जिस मनुष्य ने थोड़ा भी भगवद्गीता का अध्ययन कर लिया है, और गङ्गाजल के एक बूँद से भी आचमन कर लिया है, एक बार भी भगवान् विष्णु का पूजन कर लिया है, तो फिर यमराज उसकी चर्चा तक नहीं करते हैं। (यद्यपि समयानुसार उसको इस लोक से प्रस्थान करना ही है, तथापि अन्त समय में, 'यमराज' धर्मराज के रूप में उसे दर्शन देते हैं)।। २०।।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्।
इह संसारे बहुदुस्तारे कृपयाऽपारे पाहि मुरारे।। २१।।

अन्वय–हे मुरारे! इह, संसारे, पुनः, अपि (पुनः पुनः इत्यर्थः) जननम्, भवति, पुनः, अपि, मरणम्, भवति, पुनः, अपि, जननीजठरे, शयनम्, भवति, अतः, बहुदुस्तारे, अपारे, अस्मिन्, संसारे, कृपया, (माम्) पाहि।

अर्थ–हे मुरारे! इस संसार में पुनः पुनः जन्म लेना होता है, और पुनः पुनः मरण भी होता है, तथा बार बार जननी के जठर में शयन होता है। अतः इस प्रकार के बहुत दुस्तर अर्थात् अति कठिन इस असीम भवसागर से मुझे पार कीजिए, मैं आपकी शरण में हूँ।। २१।।

रथ्याकर्पटविरचितकन्थः पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः।
योगी योगनियोजितचित्तो, रमते बालोन्मत्तवदेव।। २२।।

अन्वय–रथ्याकर्पटविरचितकन्थः पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः, योगनियोजितचित्तः, योगी, बालोन्मत्तवत्, एव, रमते।

अर्थ—गली में पड़े हुए चिथड़ों से ही जो अपने शरीर के आच्छादन का कार्य कर लेते हैं, पुण्य व अपुण्य अर्थात् विधि व निषेध से जो परे हैं, जिन्होंने अपना चित्त समाहित कर लिया है, ऐसे परमहंस परिव्राजक योगी लोग, अबोध बालक या उन्मत्त की तरह ही, रमण करते हुए दिखाई देते हैं।

कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः का मे जननी को मे तातः।
इति परिभावय वारं वारं विश्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम्।। २३।।

अन्वय—हे मूढ! स्वप्नविचारम्, विश्वम्, त्यक्त्वा, त्वम्, कः, अहम्, कः, (अहम्), कुतः, आयातः, का मे जननी, कः, मे तातः, इति वारम्, वारम्, परिभावय।

अर्थ—हे मूढ! स्वप्न के समान इस संसार की आस्था को छोड़कर, 'तुम कौन हो, मैं कौन हूँ, मैं कहाँ से आया हूँ और मेरे जननी तथा जनक कौन हैं?' बार-बार इन पर विचार कर। (अर्थात्, 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्य के द्वारा त्वम् जीव तथा मैं ब्रह्म कौन है? एक ही हैं या अलग-अलग हैं। 'कुत आयातः' का तात्पर्य है 'जन्माद्यस्य यतः' के अनुसार उसी परब्रह्म परमात्मा से जब उत्पत्ति स्थिति व लय है, तो फिर हम सभी का अवधिभूत भी वही परब्रह्म परमात्मा ही है। 'का मे जननी को मे तातः' का तात्पर्य है, क्या निमित्तोपादान उभयविध कारण वही ब्रह्म है, अथवा केवल निमित्तिकारण ब्रह्म और उपादान कारण माया है? इत्यादि इस संसार रूपी पहेली के अनेक पक्ष वाले दार्शनिक प्रश्न बनते हैं, जिनके बार-बार मनन और अभ्यास से, परमार्थ तत्त्व का बोध हो सकता है।)।। २३।।

त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णु र्व्यर्थं कुप्यसि मय्यसहिष्णुः।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं सर्वत्रोत्सृज भेदज्ञानम्।। २४।।

अन्वय—हे मूढ! त्वयि, मयि, अन्यत्र, च, एक एव (व्यापकः) विष्णुः, अस्ति (सर्वं खल्विदं ब्रह्म इति सिद्धान्तात्)। असहिष्णुः, सन्, त्वम्, व्यर्थम्, मयि, कुप्यसि, सर्वस्मिन्, अपि, (एकम्,) आत्मानम्, पश्य, सर्वत्र, भेदज्ञानम्, उत्सृज।

अर्थ—हे मूढ! तुझ में मुझ में तथा अन्यत्र, और सभी जगह एक ही वासुदेव व्याप्त है। तुम तो असहनशील होकर, अथवा ईर्ष्यावश, व्यर्थ मेरे लिए क्रुद्ध हो रहे हो! ईर्ष्यारागद्वेषादि को छोड़कर, एक ही परमात्मा को सर्वत्र व्याप्त जानो इसलिए कहीं भी भेदबुद्धि मत करो।। २४।।

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ।

भव समचित्तः सर्वत्र त्वं वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम्।। २५।।

अन्वय–हे मूढ! यदि, त्वम्, अचिरात्, विष्णुत्वम्, वाञ्छसि, चेत्, तदा, शत्रौ, मित्रे, पुत्रे, बन्धौ (विषये) विग्रहसन्धौ, यत्नम्, मा कुरु, सर्वत्र समचित्तः, भव।

अर्थ–हे मूढ! यदि तुम शीघ्र ही विष्णुत्व को अर्थात् वैकुण्ठ लोक अथवा मोक्ष को प्राप्त करना चाहते हो तो, फिर शत्रु आदि में वैरभाव और मित्र पुत्रादि बन्धु-बान्धवों में प्रेमभाव को छोड़ दो, सभी के विषय में समदर्शी बनो अर्थात् सभी में व्याप्त एक वासुदेव का ही दर्शन करो।। २५।।

कामं क्रोधं लोभं मोहं त्यक्त्वात्मानं भावय कोऽहम्।

आत्मज्ञानविहीना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः।। २६।।

अन्वय–कामम्, क्रोधम्, लोभम्, मोहम्, त्यक्त्वा, अहम्, कः, (इति) आत्मानम्, भावय, ये, मूढाः, आत्मज्ञानविहीनाः, (आत्मविषयकज्ञान-रहिताः) सन्ति, ते, नरकनिगूढाः, सन्तः, पच्यन्ते।

अर्थ–काम, क्रोध, लोभ व मोह को छोड़कर 'मैं कौन हूँ' इस प्रकार अपने स्वरूप को पहचानो। जो मूढ आत्मविषयक ज्ञान से रहित हैं, वे घोर नरक में पड़े-पड़े पकाये जाते हैं।। २६।।

गेयं गीतानामसहस्रम् ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम्।

नेयं सज्जनसङ्गे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम्।। २७।।

अन्वय–हे मूढ! (त्वया स्वजीवने) गीतानामसहस्रम्, गेयम्, अजस्रम्, श्रीपतिरूपम्, ध्येयम्, सज्जनसङ्गे चित्तम्, नेयम्, दीनजनाय च वित्तम्, देयम्।

अर्थ–हे मूढ! तुम्हें अपने जीवन में, कम से कम, गीता व विष्णु सहस्र नाम का पाठ करना चाहिए। और हमेशा भगवान् विष्णु के स्वरूप का ध्यान करना चाहिए, सज्जनों की सङ्गति में मन लगाना चाहिए, दीन-दुखियों के लिए कुछ द्रव्य का भी दान करना चाहिए।। २७।।

सुखतः क्रियते रामाभोगः पश्चाद्धन्त शरीरे रोगः।

यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न मुञ्चति पापाचरणम्।। २८।।

अन्वय–पूर्वम्, (यथेच्छं) सुखतः रामाभोगः, क्रियते, हन्त, पश्चात्, शरीरे, रोगः (भवति) लोके, यद्यपि, अन्ते, मरणमेव, शरणम्, अस्ति, तथापि, जनः पापाचरणम्, न, मुञ्चति (दुःखास्पदमेतदित्यर्थः)।

अर्थ–लोग पहिले स्त्री-सम्भोगादि विषय-वासनाओं में अत्यन्त आसक्त हो जाते हैं, परन्तु पीछे शरीर में अनेक रोग घर कर लेते हैं, यद्यपि मनुष्य यह जानता है कि, इस संसार में मुझे एक दिन अवश्य मृत्यु की शरण में जाना है, फिर भी पापाचरण से विरत नहीं होता है, यही बड़े खेद की बात है।। २८।।

अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता रीतिः।। २६।।

अन्वय–हे मूढ! अर्थम्, नित्यम्, अनर्थम्, भावय, ततः, सुखलेशः, (अपि) नास्ति, इति सत्यम्, धनभाजाम्, पुत्रात्, अपि, भीतिः (दृष्टा) एषा रीतिः सर्वत्र विहिता।

अर्थ–हे मूढ! अर्थ (धन) को नित्य अनर्थ (दुःखदायक) समझो, धन से सुखलेश (थोड़े से सुख) की भी सम्भावना मत करो, बड़े बड़े धनकुबेरों को तो अपने पुत्रों से भी भय रहता है, इस बात को संसार के व्यवहार में तुम सर्वत्र देख सकते हो।। २६।।

प्राणायामं प्रत्याहारं नित्यानित्यविवेकविचारम्।
जाप्यसमेतसमाधिविधानं कुर्ववधानं महदवधानम्।। ३०।।

अन्वय–(तस्मात्) प्राणायामम् (तत्पूर्वकम्) प्रत्याहारम् (धारणा-ध्यानादीनामप्युपलक्षणमेतत्) ततः, नित्यानित्यविवेकविचारम्, कुरु, अवधानम्, कुरु, (एतदेव) महत्, अवधानम्, (अस्ति)।

अर्थ–इसीलिए अर्थात् अर्थ अनर्थ की जड़ है, अतः सन्ध्यावन्दनादि नित्यकर्म व प्राणायाम पूर्वक शरीर को शुद्ध कर, विषय-वासनओं से चित्त को हटा करके धारणा ध्यानादि अन्तरङ्ग साधनों द्वारा, अन्तःकरण को स्वच्छ करके, इस संसार में कौन-सी वस्तु नित्य है, तथा कौन अनित्य है इस प्रकार का विचार करो, और विधि पूर्वक भगवन्नाम का हमेशा स्मरण करो। इसी बात का ध्यान रक्खो, और इसी को महान् निश्चय भी समझो।। ३०।।

गुरुचरणाम्बुजनिर्भरभक्तः संसारादचिराद् भव मुक्तः।
सेन्द्रियमानसनियमादेवं द्रक्ष्यसि निजहृदयस्थं देवम्।। ३१।।

अन्वय–हे मूढ! त्वम्, गुरुचरणाम्बुजनिर्भरभक्तः, सन्, अस्मात्, संसारात्, अचिरात्, मुक्तः भव, एवम्, सेन्द्रियमानसनियमात्, निजहृदय-स्थम्, देवम्, द्रक्ष्यसि।

अर्थ–हे मूढ! तुम अपने गुरु जी के चरणकमलों के अनन्य भक्त बन

जाओ, तब इस संसार से तुम शीघ्र ही मुक्त हो जाओगे, इस प्रकार इन्द्रिय सहित मन का निग्रह करके, अपने हृदय में स्थित देव परमात्मा को भी तुम देख सकोगे।। ३१।।

हरिस्तुतिः

स्तोष्ये भक्त्या विष्णुमनादिं जगदादिं, यस्मिन्नेतत् संसृतिचक्रं भ्रमतीत्थम्।
यस्मिन् दृष्टे नश्यति तत् संसृतिचक्रं, तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।।१।।

अन्वय–(अहम्) जगदादिम्, अनादिम्, विष्णुम्, भक्त्या, स्तोष्ये, यस्मिन्, एतत्, संसृतिचक्रम्, इत्थम्, भ्रमति, यस्मिन्, दृष्टे (सति) तत्, संसृतिचक्रम्, नश्यति, संसारध्वान्तविनाशम्, तम्, हरिम्, ईडे।

अर्थ–इस संसार के जो आदि कारण हैं, और स्वयं अनादि हैं, ऐसे भगवान् विष्णु की, मैं भक्तिपूर्वक स्तुति करूँगा। जिस भगवान् विष्णु में यह अनादि संसार चक्र इस नियमित प्रकार से घूमता रहता है, जिस भगवान् का साक्षात्कार कर लेने पर, यह संसार चक्र नष्ट हो जाता है, इस संसार रूपी अन्धकार के विनाशक, उस भगवान् विष्णु की मैं स्तुति करता हूँ।। १।।

यस्यैकांशादित्थमशेषं जगदेतत्, प्रादुर्भूतं येन पिनद्धं पुनरित्थम्।
येन व्याप्तं येन विबुद्धं सुखदुःखैस्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।।२।।

अन्वय–इत्थम्, यस्य, एकांशात्, एतत्, अशेषम्, जगत्, प्रादुर्भूतम्, इत्थम्, पुनः, येन (चैतन्येन) इदम्, पिनद्धम्, (अस्ति) येन च व्याप्तम्, येन सुखदुःखैः, विबुद्धम्, (अस्ति) संसारध्वान्तविनाशम्, तम्, हरिम्, (अहम्) ईडे।

अर्थ–इस प्रकार जिस परब्रह्म परमात्मा के एकांश से, यह सारा संसार प्रादुर्भूत हुआ है (वेद में भी कहा है कि 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्याऽमृतं दिवि' इत्यादि); इस प्रकार जिस चैतन्य में यह सारा संसार पिरोया हुआ सा मालूम पड़ता है; और जिससे यह (संसार) व्याप्त है; (अन्तःकरणावच्छिन्न हुए) जिससे यह जगत् 'सुख'–इस प्रकारका व 'दुःख'–इस प्रकार का समझा जाता है; ऐसे संसार रूपी अन्धकार के नाशक, उस भगवान् विष्णु की मैं स्तुति करता हूँ।। २।।

सर्वज्ञो यो यश्च हि सर्वः सकलो यो
यश्चानन्दोऽनन्तगुणो यो गुणधामा।
यश्चाव्यक्तो व्यस्तसमस्तः सदसद्य-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। ३।।

अन्वय—यः, सर्वज्ञः, (अस्ति) यः, सर्वः, सकलः, च, अस्ति, यः, आनन्दः, अनन्तगुणः, (अस्ति) यः, गुणधामा, (अस्ति) यः, अव्यक्तः (भूत्वाऽपि) व्यस्तसमस्तः, च (अस्ति) यः, सत् असत्, च, (अस्ति) संसारध्वान्तविनाशम्, तम्, हरिम्, (अहम्) ईडे।

अर्थ—जो भगवान् सर्वज्ञ, सबकुछ व समस्त कलाओं से सम्पन्न है; जो आनन्दमय अनन्त गुणों वाला, तथा गुणों का स्थान या अधिष्ठान है; जो अव्यक्त होते हुए भी, व्यष्टि समष्टि सभी में व्याप्त है; जो (अस्ति भाति इत्यादि के द्वारा) सत्, तथा सूक्ष्म होने से असत् (अदृश्य) भी है; ऐसे संसार रूपी अन्धकार के विनाशक उस भगवान् की मैं स्तुति करता हूँ।। ३।।

यस्मादन्यन्नास्त्यपि नैवं परमार्थं, दृश्यादन्यो निर्विषयज्ञानमयत्वात्।
ज्ञातृज्ञानज्ञेयविहीनोऽपि सदा ज्ञस्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। ४।।

अन्वय—एवम्, यस्मात्, अन्यत्, परमार्थं अपि न, अस्ति, निर्विषयज्ञानमयत्वात् यः, दृश्यात्, अन्यः, (अस्ति) यः, ज्ञातृज्ञानज्ञेयविहीनः, अपि, सदा, ज्ञः, (ज्ञानरूपः) अस्ति संसारध्वान्तविनाशम्, तम्, हरिम्, (अहम्) ईडे।

अर्थ—जिस परब्रह्म परमात्मा के अतिरिक्त कोई 'परम सत्' (वस्तु) भी नहीं है, निर्विकल्पक ज्ञान का विषय होने से जो इस दृश्य जगत् से भिन्न है, जो ज्ञाता, ज्ञान व ज्ञेय इस त्रिपुटी से शून्य होने पर भी, सदा नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त ज्ञानरूप ही है, ऐसे संसार रूपी अज्ञान के विनाशक, भगवान् विष्णु की मैं स्तुति करता हूँ।। ४।।

आचार्येभ्यो लब्धसुसूक्ष्माच्युततत्त्वा वैराग्येणाभ्यासबलाच्चैव द्रढिम्ना।
भक्त्यैकाग्र्यध्यानपरा यं विदुरीशं, तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।५।।

अन्वय—आचार्येभ्यः, लब्धसुसूक्ष्माच्युततत्त्वाः, द्रढिम्ना, वैराग्येण, अभ्यासबलात्, च, भक्त्यैकाग्र्यध्यानपराः, यम्, ईशम्, विदुः, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम्, (अहम्) ईडे।

अर्थ—अनेक आचार्यों से भगवान् के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व को जानकर, लोग दृढ वैराग्य व अभ्यास तथा एकाग्र भक्ति के द्वारा जिस परमात्मा के

ध्यान में निमग्न होते हैं, उसी संसार रूपी अज्ञान के विनाशक, भगवान् की मैं स्तुति करता हूँ।। ५।।

प्राणानायम्योमिति चित्तं हृदि रुध्वा, नान्यत् स्मृत्वा तत् पुनरत्रैव विलाप्य।
क्षीणे चित्ते भादृशिरस्मीति विदुर्यं, तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।।६।।

अन्वय–(जनाः) 'ओम्,' इति मन्त्रद्वारा प्राणान्, आयम्य, हृदि, चित्तम्, रुध्वा, अन्यत्, (किमपि) न, स्मृत्वा, पुनः, अत्र, एव, तत्, विलाप्य, चित्ते, क्षीणे, सति, (अहम्) भादृशिःअस्मि इति (इत्थम्), यम्, विदुः, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ–लोग (साधक जन) 'ओम्' इस मन्त्र के द्वारा प्राणायाम करके, हृदय देश में चित्त को एकाग्र करके, और किसी बाह्य विषय का चिन्तन न करके, हृदय में ही चित्त को लीन कर लेते हैं, इस प्रकार चित्त के क्षीण हो जाने पर, अर्थात् चित्त द्वारा दृश्यमान बाह्य संसार के नष्ट हो जाने पर, केवल ज्योति व द्रष्टा स्वरूप जो आत्मा है, उसमें 'अहमस्मि' इत्याकारक भावना द्वारा, जिस परमात्मा को जानते हैं, उसी संसार रूपी अज्ञान के विनाशक, भगवान् हरि की मैं स्तुति करता हूँ।। ६।।

यं ब्रह्माख्यं देवमनन्यं परिपूर्णं, हृत्स्थं भक्तैर्लभ्यमजं सूक्ष्ममतर्क्यम्।
ध्यात्वात्मस्थं ब्रह्मविदो यं विदुरीशं, तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।।७।।

अन्वय–ब्रह्मविदः, हृत्स्थम्, भक्तैः, लभ्यम्, अजम्, सूक्ष्मम्, अतर्क्यम्, अनन्यम्, परिपूर्णम्, आत्मस्थम्, यम्, ब्रह्माख्यम्, देवम्, ध्यात्वा, यम्, ईशम्, विदुः, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम्, (अहम्) ईडे।

अर्थ–ब्रह्मवेत्ता (ज्ञानी लोग) सबके हृदय में विराजमान, भक्तों के द्वारा प्राप्य, अति सूक्ष्म, अतर्क्य अर्थात् जिसके विषय में किसी प्रकार का सन्देह व तर्क नहीं किया जा सकता है, ऐसे अनन्य अर्थात् प्रत्यगात्मासे अभिन्न, परिपूर्ण, नित्य आत्मा में सन्निहित जिस ब्रह्मरूप देव का ध्यान कर, परमात्मा के विषय में जान सके, उसी संसार रूपी अज्ञान के विनाशक, भगवान् हरि की मैं स्तुति करता हूँ। अर्थात् भगवान् का ध्यान उनका साक्षात्कार करने का उपाय बनता है।। ७।।

मात्रातीतं स्वात्मविकासात्मविबोधं, ज्ञेयातीतं ज्ञानमयं हृद्युपलभ्य।
भावग्राह्यानन्दमनन्यं च विदु र्यं, तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।।८।।

अन्वय–(साधकाः) ज्ञेयातीतम्, मात्रातीतम्, स्वात्मविकासात्मविबोधम्, (अत एव) ज्ञानमयम्, यम्, हृदि, उपलभ्य, अनन्यम्, (यम्) भावग्राह्या-

नन्दम्, च, विदुः, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ—साधक लोग, इस दृश्य जगत् से परे, और पञ्च तन्मात्राओं से भी परे, अपनी आत्मा के विकासरूप और स्वप्रकाश, जो केवल ज्ञानमय है, ऐसे देव का अनन्यरूप से हृदय में चिन्तन कर, निरन्तर उस देव-विषयक धारणा से, जिस निरतिशय आनन्द को प्राप्त करते हैं, मैं संसार रूपी अज्ञान के विनाशक, उसी भगवान् की स्तुति करता हूँ।। ८।।

यद्यद्वेद्यं वस्तु सतत्त्वं विषयाख्यं, तत्तद् ब्रह्मैवेति विदित्वा तदहं च।
ध्यायन्त्येवं यं सनकाद्या मुनयोऽजं, तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।।९।।

अन्वय—(इह जगति) यत्, यत्, विषयाख्यम्, सतत्त्वम्, वस्तु, वेद्यम् (अस्ति), तत्, तत्, (सर्वम्) ब्रह्म, एव, इति, विदित्वा; अहम्, च, तत्, इति, विदित्वा; एवम्, सनकाद्याः, मुनयः, यम्, अजम्, ध्यायन्ति, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम्, (अहम्) ईडे।

अर्थ—इस संसार में जो जो विषय कहलाने वाली और असद्विलक्षण वस्तु वह सब ब्रह्म ही है, ऐसा जानकर, और अहम्-पद वाच्य जो जीव है, उसे भी ब्रह्म ही जानकर, सनकादि मुनिजन, जिस अजन्मा परमेश्वर का ध्यान करते हैं, मैं भी उसी संसाररूपी अज्ञान के विनाशक, परमात्मा की स्तुति करता हूँ।।९।।

यद्यद्वेद्यं तत्तदहं नेति विहाय
स्वात्मज्योतिर्ज्ञानमयानन्दमवाप्य।
तस्मिन्नस्मीत्यात्मविदो यं विदुरीशं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। १०।।

अन्वय—(इह जगति) यत्, यत्, वेद्यम् (अस्ति) तत्, तत्, अहम्, (आत्मा) न, (इति सर्वम्) विहाय, ज्ञानमयानन्दम् स्वात्मज्योतिः अवाप्य, आत्मविदः, तस्मिन्, (अहम्) अस्मि इति यम्, ईशम्, विदुः, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, ह.रिम्, (अहम्) ईडे।

अर्थ—इस संसार में जो-जो पदार्थ वेद्य हैं, अर्थात् ज्ञान के विषय हैं, वे-वे पदार्थ आत्मा नहीं हैं, इस तरह सभी दृश्यवर्ग का त्यागकर, अवशिष्ट आत्मज्योति, स्वयंप्रकाश, ज्ञानमय तथा आनन्दमय, जो वस्तु है, उसको प्राप्तकर, उसी में 'अहम् अस्मि' (मैं ही वह सच्चिदानन्द हूँ) इस प्रकार की वृत्ति को बनाकर, आत्मज्ञानी जिस प्रभु को जानते हैं, मैं भी संसार रूपी अज्ञान के विनाशक, उसी प्रभु की स्तुति करता हूँ। (जिस निरुपाधि आत्मा को ईश्वर समझते हैं उस श्री हरि की यह स्तुति है)।। १०।।

हित्वा हित्वा दृश्यमशेषं सविकल्पं
मत्वा शिष्टं भादृशिमात्रं गगनाभम्।
त्यक्त्वा देहं यं प्रविशन्त्यच्युतभक्ता-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। ११।।

अन्वय—अशेषम्, सविकल्पम्, दृश्यम्, हित्वा, हित्वा, शिष्टम्, गगनाभम्, भादृशिमात्रम्, मत्वा, देहम्, त्यक्त्वा, अच्युतभक्ताः, यम्, प्रविशन्ति, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम्, (अहम्) ईडे।

अर्थ—जितना भी सविकल्पक (नाम रूप संज्ञादि सहित) दृश्य (संसार) है, उसको छोड़कर, बचा हुआ जो आकाश की तरह व्यापक, प्रकाशमय चैतन्य है, उसे ही परमार्थ सत्य समझते हुए, इस भौतिक देह को छोड़कर, अच्युतभक्त, जिस चैतन्य में प्रवेश करते हैं, मैं उसी संसार रूपी अज्ञान के विनाशक, परमात्मा की स्तुति करता हूँ।। ११।।

सर्वत्रास्ते सर्वशरीरे न च सर्वः, सर्वं वेत्त्येवेह न यं वेत्ति च सर्वः।
सर्वत्रान्तर्यामितयेत्थं यमयन्यस्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। १२।।

अन्वय—यः (परमात्मा) सर्वत्र, सर्वशरीरे, आस्ते (सः) च सर्वः, न, (जगद् न ब्रह्म किन्तु जगदधिष्ठानं ब्रह्मेत्यर्थः) यः, इह, सर्वम्, वेत्ति, एव, (परन्तु) सर्वः (जनः) यम्, च, न, वेत्ति इत्थम्, यः, सर्वत्र, अन्तर्यामितया, सर्वम्, यमयन्, आस्ते, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम्, (अहम्) ईडे।

अर्थ—जो प्रभु सर्वत्र हैं, और सभी के शरीर में हैं, परन्तु वे ही यह सब अर्थात् संसार नहीं हैं, (वे नाम-रूपात्मक नहीं वरन् उसके अधिष्ठान हैं), वे प्रभु सब कुछ जानते हैं, परन्तु सभी लोग उन प्रभु को नहीं जानते हैं, इस प्रकार सर्वत्र अन्तर्यामीरूप में वे सबका नियमन किये हुए हैं, ऐसे संसार रूपी अज्ञान के विनाशक, प्रभु की मैं स्तुति करता हूँ।। १२।।

सर्वं दृष्ट्वा स्वात्मनि युक्त्या जगदेतद्
दृष्ट्वात्मानं चैवमजं सर्वजनेषु।
सर्वात्मैकोऽस्मीति विदुर्यं जनहृत्स्थं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। १३।।

अन्वय—युक्त्या, सर्वम्, एतत्, जगत्, स्वात्मनि, दृष्ट्वा, एवम्, सर्वजनेषु, च, अजम्, आत्मानम्, दृष्ट्वा, (अहम्) सर्वात्मा, एकः, अस्मि, इति, जनहृत्स्थम्, यम्, विदुः तम्, संसारध्वान्तविनाशम्,

हरिम्, (अहम्) ईडे।

अर्थ—युक्तिपूर्वक इस समस्त जगत् को निज आत्मा में (अध्यस्त) देखकर, इसी प्रकार सभी प्राणियों में भी आज आत्मा को जानकर, फिर 'मैं भी सर्वात्मा, एक ही हूँ', इस प्रकार सभी जनों के हृदय में स्थित जिस आत्मा को विद्वान् जानते हैं, उसी संसाररूपी अज्ञान के विनाशक, आत्मा की मैं स्तुति करता हूँ।। १३।।

सर्वत्रैकः पश्यति जिघ्रत्यथ भुङ्क्ते
स्प्रष्टा श्रोता बुध्यति चेत्याहुरिमं यम्।
साक्षी चास्ते कर्तृषु पश्यन्निति चान्ये
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। १४।।

अन्वय—यः, (आत्मा) सर्वत्र, एकः, (सन्) पश्यति, जिघ्रति, अथ, भुङ्क्ते, इमम्, यम्, (च) स्प्रष्टा, श्रोता, बुध्यति, इति आहुः, अन्ये कर्तृषु पश्यन्, साक्षी, यः, आस्ते, इति, आहुः, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ—यही एक आत्मा सर्वत्र देखता है, सूँघता है, और भोग करता है, इसी को लोग स्पर्श करने वाला, सुनने वाला, और जानने वाला भी कहते हैं। प्रकृति के कार्यकलापों का यह केवल साक्षीमात्र है, उन्हें प्रकाशित करते हुए विद्यमान रहता है। इसी संसार रूपी अज्ञान के विनाशक, आत्मा की मैं स्तुति करता हूँ।। १४।।

पश्यञ्शृण्वन्नत्र विजानन्रसयन् सन्, जिघ्रन्बिभ्रद्देहमिमं जीवतयेत्थम्।
इत्यात्मानं यं विदुरीशं विषयज्ञं, तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।।१६।।

अन्वय—यः, जीवतया, अत्र (लोके) पश्यन्, शृण्वन्, विजानन्, रसयन्, जिघ्रन्, सन्, बिभ्रद् (आस्ते), इमं, देहम्, विषयज्ञम्, यम्, आत्मानम्, ईशम्, इति, विदुः, तम्, संसारध्वान्तविनाशम् हरिम् (अहम्) ईडे।।१५।।

अर्थ—जो परमात्मा जीवरूप में, इस देह को धारण करता हुआ, सब कुछ देखता है, सुनता है, जानता है, चखता और सूँघता भी है, इस प्रकार जीवरूप धारण किये जिस विषयज्ञ आत्मा को लोग ईश्वर (परमात्मा) समझते हैं, मैं उसी संसाररूपी अज्ञान के विनाशक, आत्मा की स्तुति करता हूँ।। १५।।

जाग्रद् दृष्ट्वा स्थूलपदार्थानथ मायां
दृष्ट्वा स्वप्नेऽथापि सुषुप्तौ सुखनिद्राम्।

इत्यात्मानं वीक्ष्य मुदास्ते च तुरीये
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। १६।।

अन्वय—जाग्रत्, (जाग्रदवस्थायामित्यर्थः) स्थूलपदार्थान्, दृष्ट्वा, अथ, स्वप्ने, मायाम्, (सुप्तस्य विज्ञानं स्वप्न इत्यर्थः) दृष्ट्वा, अथ, सुषुप्तौ, अपि, सुखनिद्राम्, दृष्ट्वा, (एतासु तिसृषु अवस्थासु च सर्वदा सन्तम्) आत्मानम् वीक्ष्य, एतादृशे, यस्मिन्, तुरीये, (जनः) मुदा, आस्ते, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ—जाग्रत् अवस्था में स्थूल पदार्थों को देखकर, स्वप्नावस्था में मायामय पदार्थों को देखकर, और सुषुप्तावस्था में भी गाढ निद्रा के आनन्द का अनुभव कर, फिर इन तीनों अवस्थाओं में सर्वदा वर्तमान आत्मा को समझकर, (यद्यपि ये अवस्थायें परस्पर विलक्षण हैं, परन्तु इन तीनों अवस्थाओं में सर्वथा अनुस्यूत रहने वाला, ज्ञानरूप आत्मा हमेशा एकरूप ही है) लोग जिस तुरीय चैतन्य में ही आनन्दमग्न रहते हैं, मैं उसी संसाररूप अन्धकार के विनाशक, आत्मा की स्तुति करता हूँ।। १६।।

पश्यञ्छुद्धोऽप्यक्षर एको गुणभेदाद्
नानाकारान् स्फाटिकवद् भाति विचित्रः।
भिन्नश्छिन्नश्चायमजः कर्मफलैर्य-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। १७।।

अन्वय—यः, एकः, अजः, शुद्धः, अक्षरः, (अपि) गुणभेदात् विचित्रः कर्मफलैः, छिन्नः, भिन्नः, (सन्) नानाकारान्, पश्यन्, (जपाकुसुमादिसन्निधानात्) स्फाटिकवत्, भाति, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम्, ईडे।

अर्थ—जो परमात्मा, एक, अज, शुद्ध, अक्षर होता हुआ भी, तत् तत् सत्त्वादि गुणों के भेद से, विविध रूप को धारण करता हुआ तथा जीव रूप से किये अपने कर्मफलों के उपभोग के लिए, अलग-अलग मानो अंशरूपों को धारण करता हुआ, जपाकुसुमादि के सन्निधान में स्फटिकमणि की तरह, अनेक रूपों में प्रतीत होता है, उसी संसार रूपी अज्ञान के विनाशक, आत्मा की मैं स्तुति करता हूँ।। १७।।

ब्रह्मा विष्णू रुद्रहुताशौ रविचन्द्राविन्द्रो वायुर्यज्ञ इतीत्थं परिकल्प्य।
एकं सन्तं यं बहुधाहुर्मतिभेदात्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। १८।।

अन्वय—मतिभेदात्, यम्, एकम्, सन्तम्, ब्रह्मा, विष्णुः, रुद्रहुताशौ,

रविचन्द्रौ, इन्द्रः, वायुः, यज्ञः, इति, इत्थम्, परिकल्प्य, बहुधा, आहुः, तम्, संसारध्वान्तविनाशम् हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ—मतिभेद से, अर्थात् प्रकृति के प्रथम परिणामभूत जो महान् मति या बुद्धि उसके आधारभूत सत्त्वादि गुणों के भेद से, जिस एक सदा वर्तमान आत्मा को ही, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, अग्नि, रवि, चन्द्र, वायु, यज्ञ इत्यादि रूप में परिकल्पना कर, अनेक प्रकार से कहते हैं, (जैसा कि कहा है, 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' इत्यादि), मैं उसी संसार रूपी अज्ञान के विनाशक आत्मा की स्तुति करता हूँ।। १८।।

सत्यं ज्ञानं शुद्धमनन्तं व्यतिरिक्तं

शान्तं गूढं निष्कलमानन्दमनन्यम्।

इत्याहादौ यं वरुणोऽसौ भृगवेऽजं

तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। १९।।

अन्वय—यम्, अजम्, आदौ, असौ, वरुणः, भृगवे, सत्यम्, ज्ञानम्, शुद्धम्, अनन्तम्, व्यतिरिक्तम्, शान्तम्, गूढम्, निष्कलम्, आनन्दम्, अनन्यम्, इति, आह, तम्, संसारध्वान्तविनाशम् हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ—जिस अजन्मा परमात्मा के विषय में, सर्वप्रथम वरुण ने अपने पुत्र भृगु के लिए 'यह सत्य, ज्ञान, शुद्ध, अनन्त व इस संसार से अतिरिक्त (अलग) है, शान्त, सूक्ष्म, निरंश, आनन्द एवं अनन्य (एक) है, ऐसा उपदेश दिया, उसी संसार रूप अज्ञान के विनाशक, आत्मा की मैं स्तुति करता हूँ।।१९।।

कोशानेतान्पञ्च रसादीनतिहाय

ब्रह्मास्मीति स्वात्मनि निश्चित्य दृशिस्थम्।

पित्रा शिष्टो वेद भृगुर्यं यजुरन्ते

तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। २०।।

अन्वय—एतान्, पञ्च, कोशान्, (तथा) (पञ्च) रसादीन, अतिहाय, (अहम्) ब्रह्म अस्मि, (इति) स्वात्मनि, दृशिस्थं, निश्चित्य, पित्रा, शिष्टः, भृगुः, यम्, यजुरन्ते, वेद, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ—इन अन्नमयादि पाँच कोशों को, तथा रूपरसादि पाँच विषयों को, छोड़कर 'मैं ज्ञानरूप से स्थित ब्रह्म हूँ', इस प्रकार अपने बारे में समझकर पिता के द्वारा उपदिष्ट भृगु जिस परमात्मा को यजुर्वेद के अध्ययन के बाद

अर्थात् वेदान्त ग्रन्थ उपनिषदों के अध्ययन से, जान सका, मैं उसी संसाररूपी अज्ञान के विनाशक, आत्मा की स्तुति करता हूँ।। २०।।

येनाविष्टो यस्य च शक्त्या यदधीनः
क्षेत्रज्ञोऽयं कारयिता जन्तुषु कर्तुः।
कर्त्ता भोक्तात्मात्र हि यच्छक्त्यधिरूढ-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। २१।।

अन्वय—येन आविष्टः, अयम् आत्मा क्षेत्रज्ञः, यस्य शक्त्या च अयं जन्तुषु (यस्य कस्यापि) कर्तुः कारयिता, यदधीनः (च अयं) कर्ता, अत्र, (कर्तृत्वे सिद्धे) यच्छक्त्यधिरुढः भोक्ता हि, तं संसार-ध्वान्तविनाशम् हरिम् ईडे।

अर्थ—यह आत्मा जिससे व्याप्त रहकर क्षेत्रज्ञ (शरीररूप क्षेत्र का प्रकाशक) बनता है; जिसकी शक्ति से यह प्राणियों में जो कोई भी करने को उद्यत हो उसे प्रेरणा देकर कराने वाला बनता है; जिसके अधीन रहकर ही यह कर्मों का अनुष्ठाता बनता है; और कर्ता बनने पर कर्मफलों का भोक्ता भी जिसकी दी शक्ति को अंगीकार करके ही बनता है; उस संसाररूप अँधेरा मिटाने वाले हरि की स्तुति करता हूँ। (साक्षी, ईश्वर, प्रमाता—तीनों अधिष्ठान हरि है)।।२१।।

सृष्ट्वा सर्वं स्वात्मतयैवेत्थमतर्क्यं
व्याप्याथान्तः कृत्स्नमिदं सृष्टमशेषम्।
सच्च त्यच्चाभूत् परमात्मा स य एक-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। २२।।

अन्वय—यः, एकः, एव, इत्थम्, अतर्क्यम्, इदम्, सर्वम्, स्वात्मतया, एव, सृष्ट्वा, अथ, यत्, (इदम्) अशेषम्, सृष्टम् (अस्ति) इदम्, कृत्स्नम्, अन्तः, व्याप्य, सः, परमात्मा, सच्च त्यच्च, अभूत्, तम्, संसारध्वान्तविनाशम् हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ—जो परमात्मा अकेला ही, इस प्रकार के अचिन्त्यरचनारूप और अतर्कनीय इस समस्त संसार का स्वयं (निमित्तोपादान कारण बनकर) निर्माता बना, फिर इस संसार की सृष्टि करके, इसी में प्रविष्ट भी हो गया, पुनः वही सत् और त्यत् भी (अमूर्त और मूर्त, अमृत और मर्त्य) हुआ, मैं उसी संसार 'रूपी अज्ञान के विनाशक, आत्मा की स्तुति करता हूँ।। २२।।

वेदान्तैश्चाध्यात्मिकशास्त्रैश्च पुराणैः
शास्त्रैश्चान्यैः सात्वततन्त्रैश्च यमीशम्।

दृष्ट्वाथान्तश्चेतसि बुद्ध्वा विविशुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। २३।।

अन्वय—वेदान्तैः, आध्यात्मिकशास्त्रैः, पुराणैः, च, अन्यैः, शास्त्रैः, सात्त्वततन्त्रैः, च, यम्, ईशम्, अन्तश्चेतसि, बुद्ध्वा, अथ, दृष्ट्वा, च, (यतयः) यम्, विविशुः, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ—वेदान्त, आध्यात्मिकशास्त्र, पुराण व अन्य शास्त्र, वैष्णव तन्त्र आदि के द्वारा जिस परमेश्वर का लोग अपने अन्तःकरण में मनन कर साक्षात्कार करते हैं, और संयतचित्त, यत्नशील यति लोग, अन्त में जिस परमात्मा में ही लीन हो जाते हैं, मैं उसी संसार रूपी अज्ञान के विनाशक, आत्मा की स्तुति करता हूँ।। २३।।

श्रद्धाभक्तिध्यानशमाद्यै र्यतमानै र्ज्ञातुं शक्यो देव इहैवाशु य ईशः।।
दुर्विज्ञेयो जन्मशतैश्चापि विना तैस्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। २४।।

अन्वय—श्रद्धाभक्तिध्यानशमाद्यैः, यतमानैः, (प्रयत्नपरायणैरित्यर्थः) यः, देवः, ईशः, इह, एव, आशु, ज्ञातुम्, शक्यः, (अथ) तैः, विना, यः, (ईशः) जन्मशतैः, अपि, च, दुर्विज्ञेयः (भवति) तम्, संसारध्वान्त-विनाशम्, हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ—श्रद्धा भक्ति धारणा व ध्यान, शम-दमादि के द्वारा प्रयत्न-परायण यति लोग जिस परमात्मा को इसी संसार में रहकर भी, जल्दी जान जाते हैं, और इसके विपरीत श्रद्धा शमदमादि के अभाव में तो, सैकड़ों जन्मों में, प्रयत्न करने पर भी, जिस परमात्मा को नहीं जान सकते हैं, उसी संसार रूपी अज्ञान के विनाशक परमात्मा की मैं स्तुति करता हूँ।। २४।।

यस्यातर्क्यं स्वात्मविभूतेः परमार्थं, सर्वं खल्वित्यत्र निरुक्तं श्रुतिविद्भिः।
तज्जादित्वादब्धितरङ्गाभमभिन्नं, तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।।२५।।

अन्वय—स्वात्मविभूतेः, यस्य, श्रुतिविद्भिः, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, इति, अतर्क्यम्, परमार्थम्, (सत्यम्) निरुक्तम्, (अस्ति) तज्जादित्वात् अब्धि-तरङ्गाभम्, (इदम्, जगदपि) तस्मात् (परमेश्वरात्) अभिन्नम्, अस्ति, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ—स्वतः सिद्ध परमैश्वर्य वाले, जिस परमात्मा के विषय में, वेदज्ञों ने 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस प्रकार के अकाट्य परम सत्य वचन कहे हैं, और उसी परमात्मा से उत्पन्न होने के कारण यह नश्वर जगत् भी उससे

अभिन्न माना जाता है, अर्थात् उसी की सत्ता के कारण इस क्षणभङ्गुर जगत् का भी अस्तित्व स्वीकार किया जाता है, मैं उसी संसाररूपी अज्ञान के विनाशक, आत्मा की स्तुति करता हूँ।२५।।

दृष्ट्वा गीतास्वक्षरतत्त्वं विधिनाजं
भक्त्या गुर्व्या लभ्य हृदिस्थं दृशिमात्रम्।
ध्यात्वा तस्मिन्नस्म्यहमित्यत्र विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। २५।।

अन्वय—गीतासु, अजम्, अक्षरतत्त्वम्, विधिना, दृष्ट्वा, गुर्व्या, भक्त्या ध्यात्वा, हृदिस्थम्, दृशिमात्रम्, आलभ्य, तस्मिन्, 'अहम् अस्मि' इति अत्र यम्, विदुः, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ—गीता के विविध प्रसंगों में, उस अज-अनादि-अक्षरतत्त्व को विधिपूर्वक जानकर, फिर अत्यन्त भक्ति द्वारा सबके हृदय में विद्यमान, जो केवल साक्षी मात्र है, उसका किंचित् लाभ अर्थात् अदृढ साक्षात्कार पाकर, पुनः उसमें 'अहमस्मि' (मैं ही वह ब्रह्म हूँ) ऐसा निदिध्यासन कर जिसके विषय में इस जन्म में ही दृढ ज्ञान होता है, मैं उसी संसाररूपी अज्ञान के नाशक, आत्मा की स्तुति करता हूँ।। २६।।

क्षेत्रज्ञत्वं प्राप्य विभुः पञ्चमुखै र्यो
भुङ्क्तेऽजस्रं भोग्यपदार्थान् प्रकृतिस्थः।
क्षेत्रे क्षेत्रेऽप्स्विन्दुवदेको बहुधास्ते
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। २७।।

अन्वय—यः, विभुः, (व्यापकोऽपि सन्) पञ्चमुखैः, (सान्तःकरणैर्ज्ञा-नेन्द्रियैः सहित इत्यर्थः) क्षेत्रज्ञत्वम्, प्राप्य, प्रकृतिस्थः, (सन्) अजस्रम्, भोग्यपदार्थान्, भुङ्क्ते (अथ च) क्षेत्रे, क्षेत्रे, अप्सु, इन्दुवत् (एकोऽपि) बहुधा, आस्ते, तम्, संसारध्वान्तविनाशम् हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ—व्यापक होता हुआ भी, जो प्रभु अन्तःकरण इंद्रियादि उपाधियों के द्वारा, क्षेत्रज्ञता को प्राप्त कर, प्रकृतिस्थ होकर प्रकृतिकार्यों में तादात्म्य रखकर अनेक प्रकार के भोग्य पदार्थों का निरन्तर उपभोग करता है, और प्रतिशरीर में जल में प्रतिबिम्बत चन्द्रमा की तरह, अनेक मालूम पड़ता है, मैं उसी संसाररूपी अज्ञान के विनाशक, परमात्मा की स्तुति करता हूँ।। २७।।

युक्त्यालोड्य व्यासवचांस्यत्र हि लभ्यः
क्षेत्रक्षेत्रज्ञान्तरविद्भिः पुरुषाख्यः।

योऽहं सोऽसौ सोऽस्म्यहमेवेति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। २८।।

अन्वय–अत्र, क्षेत्रक्षेत्रज्ञान्तरविद्भिः, युक्त्या, व्यासवचांसि, आलोड्य, (सः) (परमः) पुरुषाख्यः, लभ्यः, यः, अहम्, असौ, सः, सः, एव, अहम्, अस्मि, इति, यम्, विदुः, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ–शरीर व शरीरी अर्थात् देह व आत्मा के अन्तर को जानने वाले जो विवेकज्ञान-सम्पन्न हैं, वे युक्ति-पूर्वक भगवान् व्यास के वचनों का, अर्थात् ब्रह्मसूत्र इत्यादि का अनुशीलन करें, तो उस परम पुरुष परमात्मा को यहीं प्राप्त कर सकते हैं, जो यह अहंकारास्पद जीव है, वही तो चैतन्य ब्रह्म है, जो चैतन्य है, वही मैं हूँ–इस प्रकार लोग जिसके विषय में जानते हैं, मैं उसी संसार रूपी अज्ञान के विनाशक, आत्मा की स्तुति करता हूँ।। २८।।

एकीकृत्यानेकशरीरस्थमिमं ज्ञं
यं विज्ञायेहैव स एवाशु भवन्ति।
यस्मिँल्लीना नेह पुनर्जन्म लभन्ते
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। २९।।

अन्वय–अनेकशरीरस्थम्, इमम्, ज्ञम्, एकीकृत्य, (एकत्वेन ज्ञात्वेत्यर्थः) इह, (सर्वशरीरेषु) (स एव एक आत्मेति) यम्, विज्ञाय, यस्मिन्, आशु, लीनाः, भवन्ति, इह, च पुनः, जन्म, न, लभन्ते, तम्, संसार-ध्वान्तविनाशम् हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ–जीवरूप से अनेक शरीरों में विद्यमान, इस आत्मा को एक समझकर, वही एक परमात्मा सभी शरीरों में व्याप्त है, ऐसा निश्चय कर, लोग जिसमें लीन हो जाते हैं, और फिर इस संसार में जन्म नहीं लेते, मैं उसी संसाररूपी अज्ञान के विनाशक, आत्मा की स्तुति करता हूँ।। २९।।

द्वन्द्वैकत्वं यच्च मधुब्राह्मणवाक्यैः
कृत्वा शक्रोपासनमासाद्य विभूत्या।
योऽसौ सोऽहं सोऽस्म्यहमेवेति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। ३०।।

अन्वय–मधुब्राह्मणवाक्यैः, विभूत्या, यत् शक्रोपासनम्, कृत्वा, द्वन्द्वैकत्वम्, च आसाद्य, यः, असौ, सः, अहम् सः, अहम् एव, अस्मि, इति, यम्, विदुः, तम् संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ–पृथ्वी, जलादि विभूतियों के सहारे इन्द्र अर्थात् आत्मा की मधु-

ब्राह्मण के (बृ. २.५) अनुसार उपासना करके, द्वन्द्व अर्थात् वहाँ कहे जोड़ों की एकता को जानकर, जो यह अहंपद-वाच्य जीव है, वही ब्रह्म है, और जो तत्पदवाच्य ब्रह्म है, वही मैं हूँ—इस प्रकार का जिसके विषय में ज्ञान होता है, मैं उसी संसाररूपी अज्ञान के विनाशक, आत्मा की स्तुति करता हूँ। (वहाँ पृथ्वी, जल आदि अनेक स्थलों का उल्लेखकर उन्हें और सारे भूतों को परस्पर कार्य बताया है तथा पृथ्वी आदि में होने वाले एवं अध्यात्म में होने वाले चेतन पुरुष की एकता बतायी है। गौडपादाचार्य ने (अद्वैतप्र. श्लो. १२) भी इस प्रसंग को उद्धृत किया है। मधु सुखद वस्तु होने से ब्रह्मविद्या का प्रतीक है अतः ब्रह्मविद्याबोधक प्रसंग मधुब्राह्मण कहा गया है।)। ३०।।

योऽयं देहे चेष्टयितान्तःकरणस्थः, सूर्ये चासौ तापयिता सोऽस्म्यहमेव।
इत्यात्मैक्योपासनया यं विदुरीशं, तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।।३१।।

अन्वय—यः, अयम् (आत्मा) अन्तःकरणस्थः, सन्, देहे, चेष्टयिता, (अस्ति) असौ, सूर्ये, तापयिता, (वर्तते) सः, एव, अहमस्मि इति, (इत्थम्) आत्मैक्योपासनया, (जनाः) यम्, ईशम्, विदुः, तम्, संसार-ध्वान्तविनाशम्, हरिम्, (अहम्) ईडे।

अर्थ—जो यह आत्मा (जीव) के अन्तःकरण में स्थित होकर, सम्पूर्ण शरीर की चेष्टाओं का प्रवर्तक है, वही सूर्य में तपनशक्ति का भी संचालक है, तथा वही 'आत्मा अहम् अस्मि' इत्यादि महावाक्यों का अर्थ भी है, इस प्रकार आत्मा के एकत्व अर्थात् अद्वैत की उपासना से, जो लोग उस परमात्मा का ज्ञान कर सके, मैं भी उसी संसाररूपी अज्ञान के नाशक, आत्मा की उपासना करता हूँ।। ३१।।

विज्ञानांशो यस्य सतः शक्त्यधिरूढो
बुद्धि बुध्यत्यत्र बहिर्बोध्यपदार्थान्।
नैवान्तःस्थं बुध्यति यं बोधयितारं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। ३२।।

अन्वय—यस्य, सतः (परमात्मनः) शक्त्यधिरूढः, विज्ञानांशः, अत्र, (संसारे) बहिः, बोध्यपदार्थान्, बुध्यति, यम्, अन्तःस्थम्, बोधयितारम्, न, एव, बुध्यति, तम्, संसारध्वान्तविनाशम् (बोधयितारम्) हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ—जिस परमात्मा की शक्ति के उपर आश्रित विज्ञानांश रूप बुद्धि या विज्ञानमय कोष इस संसार में केवल बाह्य, जो बोध्य पदार्थ हैं, उनको ही

जानती है, जिस अन्तःस्थित बोधयिता (ज्ञाता चैतन्य) को नहीं जानती है, मैं उसी संसाररूपी अज्ञान के नाशक, आत्मा की स्तुति करता हूँ।। ३२।।

कोऽयं देहे देव इतीत्थं सुविचार्य
ज्ञाता श्रोताऽऽनन्दयिता चैष हि देवः।
इत्यालोच्य ज्ञांशम् इहास्मीति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। ३३।।

अन्वय—देहे, अयम्, देवः, कः? इति, सुविचार्य; एष; हि देवः, (यः) ज्ञाता, श्रोता, आनन्दयिता, अस्ति, इति, यम्, ज्ञांशम्, इह, आलोच्य, अहम्, अस्मि, इति, विदुः, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम्, अहम्, ईडे।

अर्थ—इस शरीर में (सम्पूर्ण इन्द्रियादियों के कार्य-कलापों का संचालक) यह देव कौन है? इसका विचार कर, ज्ञाता, श्रोता, आनन्द करने वाला, ही देव (आत्मा) है वही इस शरीर के अखिल क्रिया-कलापों का विधायक है—इस प्रकार जिस ज्ञानांश को लोग जानते हैं, उसी संसाररूपी अज्ञान के विनाशक, आत्मा (ज्ञानांश) की मैं स्तुति करता हूँ।। ३३।।

को ह्येवान्यादात्मनि न स्यादयमेष, ह्येवानन्दः प्राणिति चापानिति चेति।
इत्यस्तित्वं वक्त्युपपत्या श्रुतिरेषा, तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। ३४।।

अन्वय—यदि, अस्मिन्, आत्मनि (देहे) अयम्, न, स्यात्, कः हि, एव अन्यात्? हि एषः, आनन्दः, एव प्राणिति, च, अपानिति च। इति, एषा, श्रुतिः, उपपत्या, (यस्य, आत्मनः) अस्तित्वम्, वक्ति, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ—यदि इस शरीर में यह आनन्दरूप आत्मा न होता तो, फिर कौन इस शरीर की प्राणापानादि प्रक्रिया को सम्पन्न करता? यों श्रुति (तै. २.७) भी उपपत्ति के द्वारा जिस आत्मा के अस्तित्व का व्याख्यान करती है, मैं उसी संसार रूपी अज्ञान के विनाशंक, आत्मा की स्तुति करता हूँ।। ३४।।

प्राणो वाहं वाक्छ्रवणादीनि मनो वा
बुद्धि र्वाऽहं व्यस्त उताहोऽपि समस्तः।
इत्यालोच्य ज्ञप्तिरिहास्मीति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। ३५।।

अन्वय—किम् (अहम्) प्राणः, (अर्थात् प्राण आत्मपदवाच्यः किम्)? अथवा वाक्श्रवणादीनि, मनः, बुद्धिः, वा (आत्मपदवाच्यः)? (एतेषाम्)

व्यस्तः, समस्तः, वा (अर्थात् व्यष्टिः, समष्टिः, वा) अहम्, अस्मि? इति आलोच्य, (पूर्वपक्षत्वेन विचार्य) इह (सिद्धान्ते केवलम्) ज्ञप्तिः, अस्मि, इति यम्, विदुः, तम्, संसारध्वान्तविनाशम् हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ—क्या प्राण, वाणी, श्रोत्र, मन, बुद्धि—ये आत्मा हैं? अथवा इनका व्यक्तिगतरूप या समुदायरूप में मिला समस्तरूप आत्मा है? इस प्रकार पूर्वपक्ष के रूप में इनपर विचार करके, सिद्धान्त में केवल ज्ञप्तिरूप (ज्ञाता) ही आत्मा अथवा अहम्-पद वाच्य है, इस प्रकार का निश्चय जिस आत्मा के विषय में लोग करते हैं, मं उसी संसाररूपी अज्ञान के विनाशक, आत्मा की स्तुति करता हूँ।। ३५।।

नाहं प्राणो नैव शरीरं न मनोऽहं
नाहं बुद्धि र्नाहमहङ्कारधियौ च।
योऽत्र ज्ञांशः सोऽस्म्यहमेवेति विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। ३६।।

अन्वय—अहम्, प्राणः, न, अहम्, शरीरम्, न, अहम्, मनः, न, अहम्, बुद्धिः, न, अहम्, अहङ्कारधियौ, च, न, अत्र, यः, ज्ञांशः (अस्ति) सः, एव, अहम्, अस्मि, इति, यम्, विदुः, तम्, संसार-ध्वान्तविनाशम्, हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ—मैं प्राण नहीं हूँ, न मैं शरीर हूँ, मैं मन, बुद्धि, व अहंकारादि भी नहीं हूँ। इस शरीर में जो ज्ञानांश प्रतिभासित होता है, वही अहम्-पद वाच्य मैं हूँ; जिस परमात्मा के विषय में लोग इस प्रकार का विचार करते हैं, मैं उसी संसाररूपी अज्ञान के विनाशक, परमात्मा की स्तुति करता हूँ।। ३६।।

सत्तामात्रं केवलविज्ञानमजं सत्सूक्ष्मं नित्यं तत्त्वमसीत्यात्मसुताय।
साम्नामन्ते प्राह पिता यं विभुमाद्यं, तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।३७।।

अन्वय—पिता, आत्मसुताय, साम्नाम्, अन्ते, यम्, आद्यम्, विभुम्, सत्तामात्रम्, केवलविज्ञानम्, अजम्, सत्, सूक्ष्मम्, नित्यम्, तत्त्वम-सीत्यादिवाक्यैः, प्राह, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ—पिता आरुणि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु के लिए सामवेद के अन्त में (छान्दोग्य उपनिषत् में) जिस परमतत्त्व आदि विभु के विषय में कहा है कि वह केवल सद्रूप है, निर्विकल्प अनुभव है, उसके जन्मादि विकार नहीं होते, वह भावरूप, सूक्ष्म और नित्य है तथा वह प्रत्यगात्मा से अभिन्न है, मैं उसी

संसार रूपी अज्ञान के विनाशक, परमात्मा की स्तुति करता हूँ।। ३७।।

मूर्तामूर्ते पूर्वमपोह्याथ समाधौ
दृश्यं सर्वं नेति च नेतीति विहाय।
चैतन्यांशे स्वात्मनि सन्तं च विदुर्यं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। ३८।।

अन्वय—पूर्वम्, मूर्तामूर्ते, अपोह्य, अथ, समाधौ, नेति, च, नेतीति (कृत्वा) (निषेधविधिना यावत्पदार्थजातम् निषिध्येत्यर्थः) सर्वम्, दृश्यम्, विहाय, स्वात्मनि, चैतन्यांशे, च, सन्तम्, यम्, (योगिनः) विदुः, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ—सर्वप्रथम स्थूल मूर्त पृथिव्यादि तथा सूक्ष्म अमूर्त आकाशादि पदार्थों का निषेध करके, अर्थात् ये मूर्तामूर्त पदार्थ आत्मा नहीं हैं इस प्रकार का विचार कर, इसके बाद समाधि द्वारा अर्थात् चित्त की एकाग्रता को ।स्थर करके, समस्त स्थूल सूक्ष्म पदार्थों को निषेध-विधि से छोड़कर (अर्थात् सब दृश्यों से रहित अवस्था का अनुभव कर) पुनः अपने अन्तःकरण से उपहित चैतन्यांश में, विद्यमान जिस परम तत्त्व को जानते हैं, अर्थात् 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' इस प्रकार साक्षात्कार करते हैं, मैं उसी संसार रूपी अज्ञान के विनाशक, आत्मा की स्तुति करता हूँ।। ३८।।

ओतप्रोतं यत्र च सर्वं गगनान्तं
योऽस्थूलानण्वादिषु सिद्धोऽक्षरसंज्ञः।
ज्ञाताऽतोऽन्यो नेत्युपलभ्यो न च वेद्य-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। ३९।।

अन्वय—यत्र, च, (अधिष्ठानभूते यस्मिन् परब्रह्मणि, इत्यर्थः) गगनान्तम्, सर्वम् (वस्तु) ओतप्रोतम्, (अस्ति) यः, (आत्मा) अस्थूलानण्वादिषु (श्रुतिवाक्येषु) सिद्धः, अक्षरसंज्ञः, च, (अस्ति) अतः, अन्यः, ज्ञाता, न, इति, उपलभ्यः, न, च वेद्यः, (ज्ञेयः ज्ञानविषय इत्यर्थः अपि तु स्वयं ज्ञानमयः) एतादृशः, यः आत्मा अस्ति, तम्, संसारध्वान्तविनाशम् हरिम्, आत्मानम्, अहम् ईडे।

अर्थ—अधिष्ठानभूत जिस परब्रह्म परमात्मा में, गगनपर्यन्त यह सारा जड वर्ग ओतप्रोत है, जो परमात्मा इन 'अस्थूलम् अनणु' इत्यादि वेदवाक्यों से सिद्ध व अक्षर संज्ञक है, जो स्वयं किसी प्रकार के ज्ञान का विषय भी नहीं है, अपितु स्वयं ज्ञानस्वरूप है, संसार में इससे अतिरिक्त कोई ज्ञाता भी नहीं

है, इस प्रकार जो आत्मा इस संसार रूपी अज्ञान का विनाशक है, मैं उसी आत्मा की स्तुति करता हूँ।। ३६।।

तावत्सर्वं सत्यमिवाभाति यदेतद् यावत्सोऽस्मीत्यात्मनि यो ज्ञो न हि दृष्टः।
दृष्टे यस्मिन् सर्वमसत्यं भवतीदं, तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। ४०।।

अन्वय—यावत्, आत्मनि (अन्तःकरणावच्छिन्ने चैतन्ये, इत्यर्थः) यः, ज्ञः (आत्मा) सः, अहम् अस्मि, इति, न हि, दृष्टः, तावत्, यत्, एतत्, सर्वम्, सत्यम्, इव, आभाति, यस्मिन्, (परब्रह्मणि) दृष्टे, (साक्षात्कृते) सति, इदम्, सर्वम्, असत्यम्, भवति, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम्, अहम्, ईडे।

अर्थ—जब तक अपने अन्तःकरण में, जो ज्ञानरूप परमात्मा है वही मैं हूँ, ऐसा ज्ञान नहीं हो जाता है, तब तक यह सारा संसार सत्य सा लगता है। परन्तु जब उस परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है, तो फिर यह सारा संसार असत्य मालूम पड़ता है, इस प्रकार का जो परमात्मा है, मैं उसी संसाररूपी अज्ञान के विनाशक, परमात्मा की स्तुति करता हूँ।। ४०।।

रागामुक्तं लोहयुतं हेम यथाग्नौ, योगाष्टाङ्गैरुज्ज्वलितज्ञानमयाग्नौ।
दग्ध्वात्मानं ज्ञं परिशिष्टं च विदुर्यं, तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।४१।।

अन्वय—यथा, रागामुक्तम् (रङ्गसहितम्) लोहयुतम् (वा) हेम (सुवर्णम्) अग्नौ, दग्धम्, सत् परिशिष्टं सुवर्णम् (विशुद्धम् भवति) तथा, योगाष्टाङ्गैः, उज्ज्वलितज्ञानमयाग्नौ, आत्मानम् (देहेन्द्रियाद्यन्तःकरणयुतं चिदाभासमित्यर्थः) दग्ध्वा (संशोध्य) परिशिष्टम्, यम्, ज्ञम्, (विशुद्धात्मानम्) विदुः, तम्, संसारध्वान्तविनाशम् हरिम् (अहम्) ईडे।

अर्थ—जिस प्रकार रांगा या लोहे से मिश्रित, अशुद्ध सोना, आग में तपाये जाने पर खरा, शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार यह देहेन्द्रिय अन्तःकरण आदि सहित चिदाभास (जीव) भी, अष्टा॰ योग द्वारा उद्दीपित ज्ञानमयाग्नि में तपाये जाने पर, शुद्ध होकर केवल विशुद्ध जो ज्ञानांश या ज्ञानस्वरूप आत्मा वही अवशिष्ट रहता है, मैं उसी संसाररूपी अज्ञान के विनाशक, आत्मा की स्तुति करता हूँ।। ४१।।

यं विज्ञानज्योतिषमाद्यं सुविभान्तं
हृद्यर्केन्द्वग्न्योकसमीड्यं तडिदाभम्।
भक्त्याराध्येहैव विशन्त्यात्मनि सन्तं
तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। ४२।।

अन्वय—अर्क-इन्दु-अग्नि-ओक-समीड्यम्, तडिदाभम्, आद्यम्, विज्ञानज्योतिषम्, हृदि, सुविभान्तम्, इह, एव भक्त्या, आराध्य, यम्, सन्तम् (योगिनः) विशन्ति, तम्, संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम्, (अहम्) ईडे।

अर्थ—सूर्य चन्द्र व अग्नि के समान तेजोमय, विद्युत् के समान स्फुरण-स्वभाव वाले सर्वकारण तथा ज्ञान-प्रकाश युक्त, अपने अन्तःकरण में देदीप्यमान जिस आत्मज्योति की यहाँ सम्यक् आराधना करके, अन्त में जिसमें प्रवेश करते हैं, मैं उसी संसार रूपी अज्ञान के विनाशक, आत्मा की स्तुति करता हूँ।। ४२।।

पायाद् भक्तं स्वात्मनि सन्तं पुरुषं यो
भक्त्या स्तौतीत्याङ्गिरसं विष्णुरिमं माम्।
इत्यात्मानं स्वात्मनि संहृत्य सदैक-
स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे।। ४३।।

अन्वय—इमम् आङ्गिरसं मां भक्त्या स्तौति इति स्वात्मनि भक्तं सन्तं पुरुषं यः विष्णुः पायाद्; आत्मानम् स्वात्मनि इति (उक्तपालनकर्मणा) संहृत्य सदा एकः (चास्ते), तं संसारध्वान्तविनाशम्, हरिम् अहम् ईडे।

अर्थ—आंगिरस (सभी अंगों के रसरूप) प्रत्यक्षतः उपलब्ध मेरी भक्ति से स्तुति कर रहा है—ऐसा देखकर अपने में भक्ति रखने वाले पुरुषार्थी का जो विष्णु पालन करते हैं तथा इस पालन के लिये ही जीव को खुद में विलीन कर हमेशा रहने वाले अद्वैत में प्रतिष्ठित होते हैं, उन श्री हरि की स्तुति करता हूँ जो संसार के सकारण नाश में सक्षम हैं।। ४३।।

अच्युताष्टकम्

अच्युतं केशवं रामनारायणं, कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं, जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे।। १।।

अन्वय—(अहम्) अच्युतम्, केशवम्, रामनारायणम्, कृष्णदामोदरम्, वासुदेवम्, हरिम्, श्रीधरम्, माधवम्, गोपिकावल्लभम्, जानकीनायकम्, रामचन्द्रम्, भजे।

अर्थ—मैं अच्युत, केशव, राम, नारायण, कृष्ण, दामोदर, वासुदेव, हरि, श्रीधर, माधव, गोपिकावल्लभ, जानकीनायक तथा श्रीराम चन्द्र जी का भजन

करता हूँ।। १।।

अच्युतं केशवं सत्यभामाधवं, माधवं श्रीधरं राधिकाराधितम्।
इन्दिरामन्दिरं चेतसा सुन्दरं, देवकीनन्दनं नन्दजं सन्दधे।। २।।

अन्वय–(अहम्) अच्युतम्, केशवम्, सत्यभामाधवम्, माधवम्, श्रीधरम्, राधिकाराधितम्, इन्दिरामन्दिरम्, सुन्दरम्, देवकीनन्दनम्, नन्दजम्, चेतसा, सन्दधे।

अर्थ–मैं अच्युत, केशव, सत्यभामापति, लक्ष्मीपति, श्रीधर, राधिका जी द्वारा आराधित, लक्ष्मी जी के निवासभूत परम सुन्दर, देवकीनन्दन नन्दकुमार का चित्त से ध्यान करता हूँ।। २।।

विष्णवे जिष्णवे शङ्खिने चक्रिणे, रुक्मिणीरागिणे जानकीजानये।
वल्लवीवल्लभायार्चितायात्मने, कंसविध्वंसिने वंशिने ते नमः।। ३।।

अन्वय–(यो भगवान् विभुरस्ति तस्मै) विष्णवे, जिष्णवे, शङ्खिने, चक्रिणे, रुक्मिणीरागिणे, जानकीजानये, वल्लवीवल्लभाय अर्चिताय, आत्मने, कंसविध्वंसिने, वंशिने, ते, नमः।

अर्थ–जो भगवान् व्यापक हैं, विजयी हैं, शङ्ख और चक्र को धारण किये हुए हैं, जो रुक्मिणी जी के परम प्रिय हैं, जगज्जननी जानकी जी जिन की धर्मपत्नी हैं और जो व्रजाङ्गनाओं के प्राणाधार हैं, उन परम पूज्य, आत्मस्वरूप, कंसविनाशक, वंशीविभूषित, भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।। ३।।

कृष्ण गोविन्द हे राम नारायण, श्रीपते वासुदेवाजित श्रीनिधे।
अच्युतानन्त हे माधवाधोक्षज, द्वारकानायक द्रौपदीरक्षक।। ४।।

अन्वय–हे कृष्ण! हे गोविन्द! हे राम! हे नारायण! हे श्रीपते! हे वासुदेव! हे अजित! हे श्रीनिधे! अच्युत! हे अनन्त! हे माधव! हे अधोक्षज! हे द्वारकानायक! हे द्रौपदीरक्षक! (ते नमः)।

अर्थ–हे कृष्ण! हे गोविन्द! हे राम! हे नारायण! हे रमानाथ! हे वासुदेव! हे अजित! हे शोभाधाम! हे अच्युत! हे अनन्त! हे माधव! अधोक्षज! (इन्द्रियातीत) हे द्वारकानाथ! हे द्रौपदीरक्षक! आपको नमस्कार है।। ४।।

राक्षसक्षोभितः सीतया शोभितो, दण्डकारण्यभूपुण्यताकारणम्।
लक्ष्मणेनान्वितो वानरैः सेवितोऽगस्त्यसंपूजितो राघवः पातु माम्।।५।।

अन्वय–(यः, राघवः) राक्षसक्षोभितः, (राक्षसेषु क्षोभितः क्रुद्ध इत्यर्थः) सीतया, शोभितः, दण्डकारण्यभूपुण्यताकारणम् (च, योऽस्ति) (यः) लक्ष्मणेन, अन्वितः, यश्च, वानरैः, सेवितः, अगस्त्यसम्पूजितः, (अस्ति

सः) राघवः, माम्, पातु।

अर्थ—जो भगवान् रामचन्द्र, राक्षसों पर क्रुद्ध हैं, जो सीता जी से सुशोभित हैं जो भगवान्, दण्डकारण्य की भूमि के पवित्रता के कारण हैं, जो श्री लक्ष्मण जी से युक्त हैं, और वानरों से सेवित हैं, तथा श्रीअगस्त्य मुनि से पूजित हैं, वे रघुवंशी भगवान् राम मेरी रक्षा करें।।५।।

धेनुकारिष्टहाऽनिष्टकृद् द्वेषिणां, केशिहा कंसहृद् वंशिकावादकः।
पूतनाकोपकः सूरजाखेलनो, बालगोपालकः पातु मां सर्वदा।। ६।।

अन्वय—धेनुकारिष्टहा, द्वेषिणाम्, अनिष्टकृत्, केशिहा, कंसहृत्, वंशिकावादकः, पूतनाकोपकः, सूरजाखेलनः, बालगोपालकः, माम्, सर्वदा, पातु।

अर्थ—धेनुक और अरिष्टासुर आदि का नाश करने वाले, शत्रुओं का विध्वंस करने वाले, केशी व कंस का वध करने वाले, वन्शी को बजाने वाले, पूतना के उपर कोप करने वाले, यमुनातट-विहारी बालगोपाल भगवान् कृष्ण, हमेशा मेरी रक्षा करें।। ६।।

विद्युदुद्योतवत् प्रस्फुरद्वाससं, प्रावृडम्भोदवत् प्रोल्लसद्विग्रहम्।
वन्यया मालया शोभितोरःस्थलं, लोहिताङ्घ्रिद्वयं वारिजाक्षं भजे।। ७।।

अन्वय—विद्युदुद्योतवत्, प्रस्फुरद्वाससम्, प्रावृडम्भोदवत्, प्रोल्लसद्विग्रहम्, वन्यया, मालया, शोभितोरःस्थलम्, लोहिताङ्घ्रिद्वयम्, वारिजाक्षम्, भजे।

अर्थ—विद्युत् प्रभा के समान जिनका पीताम्बर सुशोभित हो रहा है, और वर्षा ऋतु के मेघों के समान जिनका श्याम शरीर शोभायमान है, जिनका वक्षस्थल वनमाला से विभूषित है, जिनके चरणयुगल अरुण वर्ण के हैं, ऐसे कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण का मैं भजन करता हूँ।। ७।।

कुञ्चितैः कुन्तलै भ्राजमानाननं, रत्नमौलिं लसत्कुण्डलं गण्डयोः।
हारकेयूरकं कङ्कणप्रोज्ज्वलं, किङ्किणी मञ्जुलं श्यामलं तं भजे।। ८।।

अन्वय—कुञ्चितैः, कुन्तलैः, भ्राजमानाननम्, रत्नमौलिम्, गण्डयोः, लसत्कुण्डलम्, हारकेयूरकम्, कङ्कणप्रोज्ज्वलम्, किङ्किणीमञ्जुलम्, तम्, श्यामलम्, (श्रीकृष्णम् अहम्) भजे।

अर्थ—जिनका मुख घुंघराले, काले काले बालों से सुशोभित है, जिनके मस्तक में रत्नजडित मुकुट सुशोभित है, कपोलस्थल में जिनके कुण्डल सुशोभित हैं, इस प्रकार उज्ज्वल हार, केयूर (बाजूबन्द) कङ्कण, (कड़े) व किङ्किणी (करधनी) से मनोहर उस श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण का, मैं भजन करता

हूँ।। ८।।

अच्युतस्याष्टकं यः पठेदिष्टदं, प्रेमतः प्रत्यहं पूरुषः सस्पृहम्।
वृत्ततः सुन्दरं वेद्यविश्वम्भरं, तस्य वश्यो हरिर्जायते सत्वरम्।। ६।।

अन्वय—यः, पुरुषः, वृत्ततः, सुन्दरम्, इष्टदम्, (इदम्) अच्युतस्य, अष्टकम्, प्रत्यहम्, प्रेमतः, सस्पृहम्, पठेत्, तस्य वेद्यविश्वंभरः (हरिः) सत्वरम्, वश्यः, जायते।

अर्थ—जो पुरुष अत्यन्त सुन्दर छन्दवाले अभीष्ट फल को देने वाले, इस विश्वंभर-प्रतिपादक 'अच्युताष्टक स्तोत्र' का प्रतिदिन, श्रद्धा व लगन के साथ पाठ करता है, विश्वविधाता भगवान् हरि शीघ्र ही उसके वश में हो जाते हैं।। ६।।

कृष्णाष्टकम्

श्रियाश्लिष्टो विष्णुः स्थिरचरवपुर्वेदविषयो
धियां साक्षी शुद्धो हरिरसुरहन्ताऽब्जनयनः।
गदी शङ्खी चक्री विमलवनमाली स्थिररुचिः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः।। १।।

अन्वय—श्रिया, श्लिष्टः, विष्णुः, स्थिरचरवपुः, वेदविषयः, धियाम्, साक्षी, शुद्धः, हरिः, असुरहन्ता, अब्जनयनः, गदी, शङ्खी, चक्री, विमलवनमाली, स्थिररुचिः, शरण्यः, लोकेशः, कृष्णः, मम, अक्षिविषयः, भवतु।

अर्थ—जो लक्ष्मी जी द्वारा आलिङ्गित हैं, और सर्वत्र व्यापक हैं, यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जिनका शरीर है, जो वेद के द्वारा जानने योग्य हैं, और समस्त बुद्धियों के साक्षी, व शुद्ध बुद्ध स्वरूप वाले हैं, पापों का हरण करने वाले भी हैं, दैत्यों का संहार करने वाले, तथा कमल के समान नेत्रों वाले हैं, ऐसे शङ्ख, चक्र, गदा व विमल वनमाला को धारण किये हुए, स्थिरकान्तिमय, शरणागतवत्सल, समस्त लोकों के स्वामी श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रों के विषय हों, अर्थात् हमेशा मैं उनके दर्शन करता रहूँ।। १।।

यतः सर्वं जातं वियदनिलमुख्यं जगदिदं
स्थितौ निःशेषं योऽवति निजसुखांशेन मधुहा।

लये सर्वं स्वस्मिन् हरति कलया यस्तु स विभुः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ।। २ ।।

अन्वय—यतः, वियदनिलमुख्यं, इदम्, सर्वम्, जगत्, जातम्, स्थितौ, यः, मधुहा, निजसुखांशेन, निःशेषम्, अवति, लये, तु, यः, विभुः, कलया, सर्वम्, स्वस्मिन्, हरति, सः (विभुः) शरण्यः, लोकेशः, कृष्णः, मम, अक्षिविषयः, भवतु ।

अर्थ—जिस (परब्रह्म परमात्मा) से (सृष्टिकाल में) आकाश व पवनादि सहित यह सारा संसार उत्पन्न हुआ है, स्थिति (पालन) के अवसर पर भी, जो मधुसूदन अपने आनंदांश से इस सम्पूर्ण संसार की रक्षा करते हैं, तथा लय (संहार) के समय जो लीलामात्र से, इसे अपने में ही लीन कर लेते हैं, वे विभु शरणागत-वत्सल निखिल भुवनेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र मेरे नेत्रों के विषय हों ।। २ ।।

असूनायम्यादौ यमनियममुख्यैः सुकरणै-
र्निरुद्ध्येदं चित्तं हृदि विलयमानीय सकलम् ।
यमीड्यं पश्यन्ति प्रवरमतयो मायिनमसौ
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ।।३ ।।

अन्वय—ईड्यम्, मायिनम्, (यम्) प्रवरमतयः, यमनियममुख्यैः, सुकरणैः, आदौ, असून्, आयम्य, चित्तम्, निरुद्ध्य, हृदि, इदम्, सकलम्, विलयम्, आनीय, यम्, पश्यन्ति, (असौ) शरण्यः, लोकेशः, कृष्णः, मम, अक्षिविषयः, भवतु ।

अर्थ—जिस स्तवनीय मायापति भगवान् को, श्रेष्ठ बुद्धि वाले बुधजन, यमनियमादि साधनों द्वारा, सर्वप्रथम प्राणों को अपने वश में करके, फिर चित्त का निरोध कर, इस सम्पूर्ण बाह्य जगत् को लीन कर, अपने अन्तःकरण में ही जिनका ध्यान करते हैं, वे शरणागत-वत्सल निखिल-भुवनेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र, मेरे नेत्रों के विषय हों ।। ३ ।।

पृथिव्यां तिष्ठन्यो यमयति महीं वेद न धरा
यमित्यादौ वेदो वदति जगतामीशममलम् ।
नियन्तारं ध्येयं मुनिसुरनृणां मोक्षदमसौ
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ।। ४ ।।

अन्वय—यः, पृथिव्याम्, तिष्ठन्, महीम्, यमयति, यम्, धरा, न, वेद, इत्यादौ वेदः, यम्, जगताम्, ईशम्, अमलम्, नियन्तारम्, ध्येयम्,

मुनिसुरनृणाम्, मोक्षदम्, वदति, असौ, शरण्यः, लोकेशः, कृष्णः, मम, अक्षिविषयः, भवतु।

अर्थ—पृथिवी में रहकर जो पृथिवी का नियमन करते हैं, परन्तु पृथिवी जिन्हें नहीं जानती है (यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिवीं यमयति, यं पृथिवी न वेद) इत्यादि श्रुतियों से वेद जिस जगत् के स्वामी को, अमलस्वरूप, नियामक, ध्येय और मुनि देवता व मनुष्यों को मोक्ष देने वाला बतलाता है, वे शरणागतवत्सल अखिलभुवनेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रों के विषय हों।।४।।

महेन्द्रादि र्देवो जयति दितिजान्यस्य बलतो
न कस्य स्वातन्त्र्यं क्वचिदपि कृतौ यत्कृतिमृते।
बलाराते र्गर्वं परिहरति योऽसौ विजयिनः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः।।५।।

अन्वय—यस्य, बलतः, महेन्द्रादिः, देवः, दितिजान्, जयति, यत्कृतिम्, ऋते, कस्य, क्वचिदपि, कृतौ, स्वातन्त्र्यम्, न, यः, विजयिनः, बलारातेः, गर्वम्, परिहरति, असौ, शरण्यः, लोकेशः, कृष्णः, मम, अक्षिविषयः, भवतु।

अर्थ—जिनके बल से महेन्द्रादि देवगण दैत्यों को जीतते हैं, जिनकी कृति के बिना, किसी भी कार्य में कोई स्वतन्त्र नहीं है, और जो राक्षसों के बलाभिमान को व विजयाभिमान को हर लेते हैं, वे शरणागतवत्सल, अखिल-भुवनेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण मेरे नेत्रों के विषय हों।।५।।

विना यस्य ध्यानं व्रजति पशुतां सूकरमुखां
विना यस्य ज्ञानं जनिमृतिभयं याति जनता।
विना यस्य स्मृत्या कृमिशतजनिं याति स विभुः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः।।६।।

अन्वय—यस्य, ध्यानम्, विना (मनुजः) सूकरमुखाम्, पशुताम्, व्रजति, यस्य, ज्ञानम्, विना, जनता, जनिमृतिभयम्, याति, यस्य, स्मृत्या, विना (मनुजः) कृमिशतजनिम्, याति, सः, विभुः, शरण्यः, लोकेशः, कृष्णः, मम, अक्षिविषयः, भवतु।

अर्थ—जिनके ध्यान के विना मनुष्य, सूकर प्रमुख पशु योनियों में भटकता है, जिनके ज्ञान के बिना जनता, जन्म मरण के भय को प्राप्त करती है, जिनका स्मरण किये बिना, सैकड़ों कीटपतङ्गादि योनियों में गिरना पड़ता

है, वे विभु शरणागत वत्सल, अखिल-भुवनेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रों के विषय हों।। ६।।

नरातङ्कोट्टङ्कः शरणशरणो भ्रन्तिहरणो
घनश्यामो वामो व्रजशिशुवयस्योऽर्जुनसखः।
स्वयंभू भूतानां जनक उचिताचारसुखदः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः।। ७।।

अन्वय–यः, नरातङ्कोट्टङ्कः, शरणशरणः, भ्रान्तिहरणः, घनश्यामः, वामः, व्रजशिशुवयस्यः, अर्जुनसखः, स्वयम्भूः, भूतानाम्, जनकः, उचिताचार-सुखदः, अस्ति, सः शरण्यः, लोकेशः, कृष्णः, मम, अक्षिविषयः भवतु।

अर्थ–जो भगवान् मनुष्यों के आतङ्क (भय) को दूर करते हैं, शरणागतों को शरण देने वाले हैं, और भ्रम को दूर करने वाले हैं, जो मेघ की तरह श्यामवर्ण हैं और सुन्दर हैं, जो व्रज बालकों के साथी हैं, और अर्जुन के सखा हैं, स्वयंभू हैं, तथा प्राणियों के पिता हैं, जो उचित आचार व विचार वालों को सुख देने वाले हैं, वे शरणागत-वत्सल अखिल-भुवनेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रों के विषय हों।। ७।।

यदा धर्मग्लानि र्भवति जगतां क्षोभकरणी
तदा लोकस्वामी प्रकटितवपुः सेतुधृदजः।
सतां धाता स्वच्छो निगमगणगीतो व्रजपतिः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः।। ८।।

अन्वय–यदा, जगताम्, क्षोभकरणी धर्मग्लानिः, भवति, तदा, सेतुधृत्, लोकस्वामी, अजः, सताम्, धाता, स्वच्छः, निगमगणगीतः, व्रजपतिः, प्रकटितवपुः, भवति, असौ, शरण्यः, लोकेशः, कृष्णः, मम, अक्षिविषयः, भवतु।

अर्थ–जब संसार को क्षुब्ध कर देने वाला, धर्म का ह्रास होता है, तब लोकमर्यादा की रक्षा करने वाले, लोकस्वामी, अजन्मा, सन्तों के रक्षक, स्वच्छ (गुणातीत) वेदवर्णित, व्रजपति, भगवान् ही अवतार रूप में शरीर धारण करते हैं, वे ही शरणागत-वत्सल अखिल-भुवनेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र, मेरे नेत्रों के विषय हों, अर्थात् मैं हमेशा उनके दर्शन करता रहूँ।। ८।।

गोविन्दाष्टकम्

सत्यं ज्ञानमनन्तं नित्यमनाकाशं परमाकाशं
गोष्ठप्राङ्गणरिङ्गणलोलमनायासं परमायासम्।
मायाकल्पितनानाकारमनाकारं भुवनाकारं
क्ष्मामानाथमनाथं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्।। १।।

अन्वय—सत्यम्, ज्ञानम्, अनन्तम्, नित्यम्, अनाकाशम्, (अपि) परमाकाशम्, गोष्ठप्राङ्गणरिङ्गणलोलम्, अनायासम्, परमायासम्, अनाकारम्, (अपि) मायाकल्पितनानाकारम्, भुवनाकारम्, क्ष्मामानाथम्, (अपि) अनाथम्, (एतादृशम्) परमानन्दम्, गोविन्दम्, प्रणमत।

अर्थ—जो सत्य-ज्ञानस्वरूप, अनन्त एवं नित्य हैं आकाश से भिन्न होने पर भी (व्यापकता की दृष्टि से) महाकाश के समान हैं, जो व्रज के प्राङ्गण में अनेक प्रकार की बाल-लीलाओं से चञ्चल दिखाई देते हैं, जो वास्तव में कोई भी चेष्टा नहीं करते लेकिन जगदुत्पादनादि महान् आयासों वाले प्रतीत होते हैं, स्वयं आकारहीन होने पर भी, मायावश नाना प्रकार के आकारों को धारण करते हैं तथा विराट् या विश्वरूप में प्रकट होते हैं, जो पृथ्वीनाथ और लक्ष्मीनाथ होते हुए भी, स्वयं अनाथ (बिना स्वामी के) हैं। ऐसे आनन्दमय भगवान् गोविन्द की वन्दना करो।। १।।

मृत्स्नामत्सीहेति यशोदाताडनशैशवसन्त्रासं
व्यादितवक्त्रालोकितलोकालोकचतुर्दशलोकालिम्।
लोकत्रयपुरमूलस्तम्भं लोकालोकमनालोकं
लोकेशं परमेशं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्।। २।।

अन्वय—'(किम्, त्वम्) इह मृत्स्नाम्, अत्सि?' इति, यशोदाताडन-शैशवसन्त्रासम्, व्यादितवक्त्रालोकितलोकालोकचतुर्दशलोकालिम्, लोकत्रयपुरमूलस्तम्भम्, अनालोकम्, लोकालोकम्, लोकेशम्, परमेशम्, परमानन्दम्, गोविन्दम्, प्रणमत।

अर्थ—'क्या तू मिट्टी खा रहा है?' इस प्रकार पूछती हुई यशोदा के द्वारा मारे जाने का जिन्हें शैशव-कालोचित भय हो रहा है; मिट्टी न खाने का प्रमाण देने के लिए, जिनके फैलाए हुए मुँह में, लोकालोकसहित चतुर्दश भुवन दिखलाई देते हैं; त्रिभुवनरूपी नगर के जो आधार स्तम्भ हैं, आलोक

से परे (दर्शनातीत) होते हुए भी, जो विश्व के प्रकाशक हैं, ऐसे परमानन्दमय लोकनाथ, परमेश्वर गोविन्द को, प्रणाम करो।। २।।

त्रैविष्टपरिपुवीरघ्नं क्षितिभारघ्नं भवरोगघ्नं
कैवल्यं नवनीताहारमनाहारं भुवनाहारम्।
वैमल्यस्फुटचेतोवृत्तिविशेषाभासमनाभासं
शैवं केवलशान्तं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्।। ३।।

अन्वय—त्रैविष्टपरिपुवीरघ्नम्, क्षितिभारघ्नम्, भवरोगघ्नम्, कैवल्यम्, अनाहारम्, (अपि) नवनीताहारम्, भुवनाहारम्, अनाभासम्, (अपि) वैमल्यस्फुटचेतोवृत्तिविशेषाभासम्, केवलशान्तम्, शैवम्, परमानन्दम्, गोविन्दम्, प्रणमत।

अर्थ—जो देवताओं के शत्रु दैत्यवीरों के नाशक हैं, पृथ्वी का भार हरने वाले हैं, और संसार के रोगों को मिटा देने वाले हैं, जो कैवल्य मोक्ष रूप हैं, आहार-रहित होकर भी, जो नवनीतभोजी (माखनचोर) तथा विश्वभक्षी (विश्व का संहार करने वाले) हैं, आभास (अन्तः करण में प्रतिफलित चैतन्य अथवा चैतन्य से प्रकाशित देहेन्द्रियादि) से भिन्न होने पर भी, मलादि दोष से रहित स्वच्छ प्रस्फुरित चित्तवृत्ति में जिनका विशेष रूप से आभास मिलता है, ऐसे अद्वितीय, शान्त, शिव (कल्याणमय) आनन्दस्वरूप गोविन्द की वन्दना करो।। ३।।

गोपालं भूलीलाविग्रहगोपालं कुलगोपालं
गोपीखेलनगोवर्धनधृतिलीलालालितगोपालम्।
गोभि र्निगदितगोविन्दस्फुटनामानं बहुनामानं
गोधीगोचरदूरं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्।। ४।।

अन्वय—गोपालम्, भूलीलाविग्रहगोपालम्, कुलगोपालम्, गोपीखेलन-गोवर्धनधृतिलीलालालितगोपालम्, गोभिः, निगदितगोविन्दस्फुटनामानम्, बहुनामानम्, गोधीगोचरदूरम्, परमानन्दम्, गोविन्दम्, प्रणमत।

अर्थ—जो गायों के रक्षक हैं, इस पृथ्वी में लीला के लिए ही जिन्होंने गोपाल शरीर धारण किया है, जो कुल (वंश) से भी गोपाल (ग्वाले) हैं, गोपियों के साथ खेलते हुए, जिन्होंने गोवर्धन पर्वत को लीलापूर्वक धारण कर गोप जनों की रक्षा की, गायों ने स्पष्ट रूप से (अथवा वेदों में स्पष्ट रूप से) जिनका गोविन्द यह नाम बतलाया था (या वर्णित है), जिनके अनेक नाम हैं, जो इन्द्रिय-मन व बुद्धि के भी विषय नहीं हैं, ऐसे परमानन्द रूप गोविन्द

को प्रणाम करो।। ४।।

गोपीमण्डलगोष्ठीभेदं भेदावस्थमभेदाभं
शश्वद्गोखुरनिर्धूतोद्गतधूलीधूसरसौभाग्यम्।
श्रद्धाभक्तिगृहीतानन्दमचिन्त्यं चिन्तितसद्भावं
चिन्तामणिमहिमानं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्।। ५।।

अन्वय—गोपीमण्डलगोष्ठीभेदम्, भेदावस्थम्, अभेदाभम्, शश्वद्गोखुर-निर्धूतोद्गतधूलीधूसरसौभाग्यम्, श्रद्धाभक्तिगृहीतानन्दम् अचिन्त्यम्, चिन्तितसद्भावम्, चिन्तामणिमहिमानम्, परमानन्दम्, गोविन्दम्, प्रणमत।

अर्थ—जो गोपीजनों की गोष्ठी के भीतर प्रवेश करने वाले हैं, भेदावस्था में रहकर भी, जो अभिन्न भासित होते हैं, जिन्हें हमेशा गायों के खुरों से उपर उड़ी हुई धूलि से धूसर होने का सौभाग्य प्राप्त है, जो श्रद्धा व भक्ति से आनन्दित होने वाले हैं, अचिन्त्य होते हुए भी, जिनके सद्भाव का चिन्तन किया जाता है, ऐसे चिन्तामणि के समान महिमावाले, आनन्दमय भगवान् गोविन्द को प्रणाम करो।। ५।।

स्नानव्याकुलयोषिद्वस्त्रमुपादायागमुपारूढं
व्यादित्सन्तीरथ दिग्वस्त्रा दातुमुपाकर्षन्तं ताः।
निर्धूतद्वयशोकविमोहं बुद्धं बुद्धेरन्तःस्थं
सत्तामात्रशरीरं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्।। ६।।

अन्वय—स्नानव्याकुलयोषिद्वस्त्रम्, उपादाय, अगम्, (वृक्षम्) उपारूढम्, (यदा) दिग्वस्त्राः, ताः, व्यादित्सन्तीः, अथ, दातुम्, उपाकर्षन्तम्, निर्धूतद्वयशोकविमोहम्, बुद्धम्, बुद्धेरन्तःस्थम्, सत्तामात्रशरीरम्, परमानन्दम्, गोविन्दम्, प्रणमत।

अर्थ—स्नान में व्यस्त हुई, गोपाङ्गनाओं के वस्त्रों को हरण कर जो (कदम्ब) वृक्ष पर चढ़ गये थे, जब उन गोपियों ने वस्त्र लेना चाहा तो, वस्त्र देने के लिए उन्हें समीप में बुलाने लगे (ऐसा होने पर भी) जो शोक व मोह दोनों को मिटाने वाले हैं, ज्ञानस्वरूप, बुद्धिरूपी गुहा में स्थित, सत्तामात्र जिनका शरीर है, ऐसे परमानन्दमय गोविन्द को प्रणाम करो।। ६।।

कान्तं कारणकारणमादिमनादिं कालमनाभासं
कालिन्दीगतकालियशिरसि सुनृत्यन्तं मुहुरत्यन्तम्।
कालं कालकलातीतं कलिताशेषं कलिदोषघ्नं
कालत्रयगतिहेतुं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्।। ७।।

अन्वय—कान्तम्, कारणकारणम्, आदिम्, (अपि) अनादिम्, कालम्, अनाभासम्, कालिन्दीगतकालियशिरसि, मुहुः, अत्यन्तम्, सु नृत्यन्तम्, कालम्, (अपि) कालकलातीतम्, कलिताशेषम्, कलिदोषघ्नम्, कालत्रयगतिहेतुम्, परमानन्दम्, गोविन्दम्, प्रणमत।

अर्थ—जो कमनीय हैं, और कारणों के भी कारण हैं, आदि होते हुए भी अनादि हैं, काल-स्वरूप और आभास-रहित हैं, यमुना-जल में स्थित कालिय नाग के मस्तक पर जो बार-बार नाच करते थे, स्वयं कालस्वरूप होते हुए भी, काल की कलाओं से अतीत हैं, जो सर्वज्ञ और कलि के दोषों को दूर करने वाले हैं, और तीनों कालों (भूत, भविष्यत्, वर्तमान) की गति को जानने वाले हैं, ऐसे परमानन्द स्वरूप, गोविन्द को प्रणाम करो।। ७।।

वृन्दावनभुवि वृन्दारकगणवृन्दाराध्यम् वन्देऽहं
कुन्दाभामलमन्दस्मेरसुधानन्दं सुमहानन्दम्।
वन्द्याशेषमहामुनिमानसवन्द्यानन्दपदद्वन्द्वं
वन्द्याशेषगुणाब्धिं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्।। ८।।

अन्वय—वृन्दावनभुवि, वृन्दारकगणवृन्दाराध्यम्, कुन्दाभामलमन्दस्मेरसुधानन्दम्, सुमहानन्दम्, (सुहृदानन्दम् वा) अहम्, वन्दे, वन्द्याशेषमहामुनिमानसवन्द्यानन्दपदद्वन्द्वम्, वन्द्याशेषगुणाब्धिम् परमानन्दम्, गोविन्दम्, प्रणमत।

अर्थ—जो वृन्दावन की भूमि में, देवगण तथा वृन्दा नाम की वनदेवता के आराध्य देव हैं, जिनकी कुन्द के समान स्वच्छ व मन्द मुस्कान में अमृत का सा आनन्द भरा है, जो महान् आनन्दस्वरूप अथवा मित्रों को परमानन्द प्रदान करने वाले हैं, ऐसे भगवान् की मैं वन्दना करता हूँ। जिनके वन्दनीय चरण-युगल परम श्रेष्ठ महामुनियों के भी मानस-पटल पर विराजमान हैं, ऐसे समस्त शुभ गुणों के सागर परमानन्दमय जो भगवान् गोविन्द हैं, उनको प्रणाम करो।। ८।।

गोविन्दाष्टकमेतदधीते गोविन्दार्पितचेता यो
गोविन्दाच्युत माधव विष्णो गोकुलनायक कृष्णेति।
गोविन्दाङ्घ्रिसरोजध्यानसुधाजलधौतसमस्ताघो
गोविन्दं परमानन्दामृतमन्तस्स्थं स तमभ्येति।। ९।।

अन्वय—यः, गोविन्दार्पितचेताः, हे गोविन्द! हे अच्युत! हे माधव! हे विष्णो! हे गोकुलनायक! हे कृष्ण! (इत्यादि समुच्चारणेन) गोविन्दा-

ङ्घ्रिसरोजध्यानसुधाजलधौतसमस्ताघः, (सन्) एतत्, गोविन्दाष्टकम्, अधीते, सः, अन्तस्स्थम्, परमानन्दामृतम्, तम्, गोविन्दम्, अभ्येति।

अर्थ—जो मनुष्य भगवान् गोविन्द में, अपना चित्त समर्पित कर, हे गोविन्द! अच्युत! माधव! विष्णो! गोकुलनायक! हे कृष्ण! इत्यादि नामोच्चारण पूर्वक भगवान् के चरणकमलों के ध्यान रूपी सुधाजल से अपने समस्त पापों को धोकर, इस 'गोविन्दाष्टक' का पाठ करता है, वह अपने अन्तःकरण में विद्यमान, परमानन्दामृतरूप भगवान् गोविन्द को प्राप्त कर लेता है।। ८।।

भगवन्मानसपूजा

हृदम्भोजे कृष्णः सजलजलदश्यामलतनुः
सरोजाक्षः स्रग्वी मुकुटकटकाद्याभरणवान्।
शरद्राकानाथप्रतिमवदनः श्रीमुरलिकां
वहन्ध्येयो गोपीगणपरिवृतः कुङ्कुमचितः।।१।।

अन्वय—सजलजलदश्यामलतनुः, सरोजाक्षः, स्रग्वी, मुकुटकटकाद्याभरणवान्, शरद्राकानाथप्रतिमवदनः, श्रीमुरलिकाम्, वहन्, कुङ्कुमचितः, गोपीगणपरिवृतः कृष्णः, हृदम्भोजे, ध्येयः।

अर्थ—जल से भरे मेघों के समान श्यामवर्ण का है शरीर जिनका, ऐसे कमलनयन, वनमालाविभूषित, मुकुट, कटक, केयूर आदि आभरणों से अलङ्कृत, शरद् पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाले, श्रीमुरली को बजाने वाले, केशरयुक्त चन्दन से चर्चित, गोपियों से घिर हुए, श्रीकृष्ण का हमेशा ध्यान करना चाहिए।। १।।

पयोम्भोधेर्द्वीपान्मम हृदयमायाहि भगवन्
मणिव्रातभ्राजत्कनकवरपीठं भज हरे।
सुचिह्नौ ते पादौ यदुकुलज नेनेज्मि सुजलै-
र्गृहाणेदं दूर्वाफलजलवदर्घ्यं मुररिपो।। २।।

अन्वय—हे भगवन्! पयोम्भोधेः, द्वीपात्, मम, हृदयम्,आयाहि, हे हरे! मणिव्रातभ्राजत्कनकवरपीठम्, भज, हे यदुकुलज, सुचिह्नौ, ते, पादौ, सुजलैः, नेनेज्मि, हे मुररिपो! इदम्, दूर्वाफलजलवत्, अर्घ्यम्, गृहाण।

अर्थ—हे भगवन्! क्षीरसागर-स्थित द्वीप से शीघ्र ही मेरे हृदय में आईए। हे हरे! यह अनेक मणिगणों से सुसज्जित, सुवर्णनिर्मित श्रेष्ठ सिंहासन है, इसे आप अलङ्कृत कीजिए। हे यदुकुल में उत्पन्न होने वाले यदुनाथ! सर्वलक्षण-सम्पन्न अत एव सुन्दर आपके चरणकमलों को, मैं स्वच्छ जल से धोना चाहता हूँ। हे मुररिपो! यह दूर्वा, फल व जलादि से युक्त अर्घ्य है, इसे आप ग्रहण कीजिए।। २।।

त्वमाचामोपेन्द्र त्रिदशसरिदम्भोऽतिशिशिरं
भजस्वेमं पञ्चामृतफलरसाप्लावमघहन्।
द्युनद्याः कालिन्द्या अपि कनककुम्भस्थितमिदं
जलं तेन स्नानं कुरु कुरु कुरुष्वाचमनकम्।। ३।।

अन्वय—हे उपेन्द्र! त्वम्, इदम्, अतिशिशिरम्, त्रिदशसरिदम्भः, आचाम, हे अघहन्! इमम्, पञ्चामृतफलरसाप्लावम्, भजस्व, (अपि च) कनककुम्भस्थितम्, इदम्, द्युनद्याः, कालिन्द्याः, अपि (च) जलम्, वर्तते, तेन, स्नानम्, कुरु, कुरु, आचमनकम्, च, कुरुष्व।

अर्थ—हे उपेन्द्र! अत्यन्त शीतल यह मन्दाकिनी का जल है, आप इससे आचमन करें, और यह फलों के रसों से आप्लावित, पञ्चामृत है, इसे ग्रहण करें। और भी, यह स्वर्णकलश में गङ्गा जी व यमुना जी का जल रक्खा हुआ है, इससे आप स्नान करें, और आचमन करें।। ३।।

तडिद्वर्णे वस्त्रे भज विजयकान्ताधिहरण
प्रलम्बारिभ्रातर्मृदुलमुपवीतं कुरु गले।
ललाटे पाटीरं मृगमदयुतं धारय हरे
गृहाणेदं माल्यं शतदलतुलस्यादिरचितम्।। ४।।

अन्वय—हे विजयकान्ताधिहरण! तडिद्वर्णे वस्त्रे, भज, हे प्रलम्बारिभ्रातः, इदम्, मृदुलम्, उपवीतम्, गले, कुरु, हे हरे! मृगमदयुतम्, इदम्, पाटीरम्, ललाटे, धारय, (अन्यच्च) इदम्, शतदलतुलस्या-दिरचितम्, माल्यम्, गृहाण।

अर्थ—हे विजयपूर्वक कान्ताओं का हरण करने वाले! ये विद्युत् के समान पीले वस्त्र हैं, इन्हें ग्रहण कीजिए। हे बलदेव के भाई! यह कोमल यज्ञोपवीत है, इसे कण्ठ में धारण करो। हे हरे! यह कस्तूरी केशर युक्त चन्दन है, इसे आप अपने ललाट में धारण कीजिए। और यह कमल तुलसी आदि विविध पुष्पों से निर्मित माला है, इसे ग्रहण कीजिए।। ४।।

दशाङ्गं धूपं सद्वरद चरणाग्रेऽर्पितमिदं
मुखं दीपेनेन्दुप्रभविरजसं देव कलये।
इमौ पाणी वाणीपतिनुत सकर्पूररजसा
विशोध्याग्रे दत्तं सलिलमिदमाचाम नृहरे।। ५।।

अन्वय—हे सद्वरद! (ते) चरणाग्रे, अर्पितम्, इदम्, दशाङ्गम्, धूपम्, अस्ति, हे देव! दीपेन इन्दुप्रभविरजसम्, ते, मुखम्, कलये, हे वाणीपतिनुत! इमौ, पाणी, (तव) सेवायाम्, निरतौ, स्तः, हे नृहरे! (तवाग्रे) सकर्पूररजसा, विशोध्य, इदम्, सलिलम्, दत्तम्, आचाम।

अर्थ—हे सुन्दर वर देने वाले। भगवन्! यह दशाङ्ग धूप आपके चरणों के आगे समर्पित किया है। देव! (आरती करते समय) दीपक के द्वारा, आपके चन्द्र के समान सुन्दर व स्वच्छ मुख को देखता हूँ। हे ब्रह्मा जी से वन्दनीय! मेरे ये हाथ हमेशा आपकी सेवा में निरत हैं। हे नरनारायण! यह कपूर आदि से संशोधित जल, आपको समर्पित किया है, इससे आचमन कीजिए।। ५।।

सदातृप्तान्नं षड्रसवदखिलव्यञ्जनयुतं
सुवर्णे पात्रे गोघृतचषकयुक्ते स्थितमिदम्।
यशोदासूनो तत्परमदययाशान सखिभिः
प्रसादं वाञ्छद्भिः सह तदनु नीरं पिब विभो।। ६।।

अन्वय—हे यशोदासूनो! हे सदातृप्त! इदम्, षड्रसवद् अखिलव्यञ्जनयुतम्, अन्नम्, गोघृतचषकयुक्ते सुवर्णे, पात्रे, स्थितम्, तत्, प्रसादम्, वाञ्छद्भिः, सखिभः सह परमदयया, अशान, हे विभो! तदनु, नीरम्, पिब।

अर्थ—हे यशोदातनय! हे हमेशा तृप्त रहने वाले! यह छै रसों से युक्त समस्त व्यञ्जनों से परिपूर्ण भोजन, जिसमें गाये के घी का प्याला भी है, कञ्चनथाल में परोसा हुआ है, आपकी प्रसन्नता की कामना करने वाले जो मित्र हैं, उनके साथ आप उक्त भोजन को ग्रहण करें। हे विभो! भोजन ग्रहण कर लेने के बाद, आपकी सेवा में समर्पित इस जल को भी ग्रहण करें।। ६।।

सचूर्णं ताम्बूलं मुखशुचिकरं भक्षय हरे
फलं स्वादु प्रीत्या परिमलवदास्वादय चिरम्।
सपर्यापर्याप्त्यै कनकमणिजातं स्थितमिदं
प्रदीपैरारार्तिं जलधितनयाश्लिष्ट रचये।। ७।।

अन्वय—हे हरे! मुखशुचिकरम्, सचूर्णम्, ताम्बूलम्, भक्षय, चिरम् (यावत्) परिमलवत्, स्वादु, फलम्, प्रीत्या, आस्वादय, स्थितम्, इदम्,

कनकमणिजातम्, ते, सपर्यापर्याप्त्यै, (अस्ति) हे जलधितनयाश्लिष्ट! प्रदीपैः, ते, आरार्तिम्, रचये।

अर्थ—हे हरे! मुखशुद्धि के लिए यह चूर्ण (पराग) सहित ताम्बूल है, इसे चर्वण करें। धैर्य व बड़े प्रेम से इन सुगन्धित व स्वादिष्ट फलों का आस्वादन करें। उपस्थित यह सुवर्ण व मणियों की राशि, आपकी पूजा के लिए पर्याप्त है। हे सदा लक्ष्मी-संयुक्त! प्रदीपों से अब मैं आपकी आरती करता हूँ।। ७।।

विजातीयैः पुष्पैरतिसुरभिभि र्विल्वतुलसी-
युतैश्चेमं पुष्पाञ्जलिमजित ते मूर्ध्नि निदधे।
तव प्रादक्षिण्यक्रमणमघविध्वंसि रचितं
चतुर्वारं विष्णो जनिपथगतेश्चान्तविदुषा।। ८।।

अन्वय—हे अजित! बिल्वतुलसीयुतैः, अतिसुरभिभिः, विजातीयैः, पुष्पैः, (रचितम्) (इमम्) पुष्पाञ्जलिम्, ते, मूर्ध्नि निदधे, हे विष्णो! जनिपथगतेः, अन्तविदुषा (मया) तव, चतुर्वारम्, अघविध्वंसि, प्रादक्षिण्यक्रमणम्, रचितम्।

अर्थ—हे अजेय, भगवन्! बिल्व व तुलसीदल सहित, अति सुगन्धित अनेक प्रकार के पुष्पों से रचित इस पुष्पाञ्जलि को मैं आपके मस्तक में समर्पित कर रहा हूँ। हे विष्णो! इस जनन-मरण रूप संसार का अन्त (आपकी परिक्रमा का फल है यह) जानने वाले मैंने आपकी पाप नाशक प्रदक्षिणा चार बार की है।। ८।।

नमस्कारोऽष्टाङ्गः सकलदुरितध्वंसनपटुः
कृतं नृत्यं गीतं स्तुतिरपि रमाकान्त त इयम्।
तव प्रीत्यै भूयादहमपि च दासस्तव विभो
कृतं छिद्रं पूर्णं कुरु कुरु नमस्तेऽस्तु भगवन्।। ९।।

अन्वय—हे रमाकान्त! ते तुभ्यम्, सकलदुरितध्वंसनपटुः, अष्टाङ्गः, नमस्कारः, (मया विहित इत्यर्थः) गीतम्, नृत्यम्, (अपि) कृतम्, इयम्, (मया क्रियमाणा) स्तुतिरपि, तव, प्रीत्यै, भूयात्, हे विभो! अहम्, अपि, तव, दासः, (अस्मि)। कृतम्, (मत्कृतिविषये) यत्, छिद्रम्, (अपूर्णम्) अस्ति, तत्, त्वम्, पूर्णम्, कुरु, कुरु, हे भगवन्! ते, नमः, अस्तु।

अर्थ—हे रमाकान्त! मैंने आपके लिए समस्त पापों का नाशक, यह साष्टाङ्ग प्रणाम किया, आपकी प्रसन्नता के लिए यह नृत्य व गीत भी प्रस्तुत

किया है, मेरे द्वारा की गई यह स्तुति, अपकी प्रसन्नता के लिए होय। हे विभो! मैं भी आपका दास हूँ, मैंने जो कुछ भी कार्य आपकी पूजा के प्रसङ्ग में किये हैं, उनमें जो गलती से कमी हो, उसे आप पूर्ण करें। हे भगवन्! आपको मैं (फिर एक बार) नमस्कार करता हूँ।। ६।।

सदा सेव्यः कृष्णः सजलघननीलः करतले
दधानो दध्यन्नं तदनु नवनीतं मुरलिकाम्।
कदाचित् कान्तानां कुचकलशपत्रालिरचना-
समासक्तः स्निग्धैः सह शिशुविहारं विरचयन्।। १०।।

अन्वय—करतले, दध्यन्नम्, दधानः, तदनु, (करतले) नवनीतम्, मुरलिकाम्, च, दधानः, कदाचित्, कान्तानाम्, कुचकलशपत्रा-लिरचनासमासक्तः, स्निग्धैः, सह, शिशुविहारम्, विरचयन्, सजल-घननीलः, कृष्णः, सदा सेव्यः।

अर्थ—करतल में दही-भात लिए हुए, कभी मक्खन व मुरली को धारण किए हुए, कभी-कभी गोपिकाओं के कुचकलशों में पत्रादि रचना में संलग्न हुए, इस प्रकार अपने प्रिय मित्रों के साथ बाल-लीलाओं को करने वाले, जलभरे नीले मेघ के समान सुन्दर, श्री कृष्णचन्द्र सदा सेवनीय हैं।। १०।।

निर्गुण-मानस-पूजा

शिष्य उवाच

अखण्डे सच्चिदानन्दे निर्विकल्पैकरूपिणि।
स्थितेऽद्वितीयभावेऽपि कथं पूजा विधीयते।। १।।

अन्वय—शिष्यः उवाच—अखण्डे, सच्चिदानन्दे, निर्विकल्पैकरूपिणि, अद्वितीयभावे स्थिते, कथम्, पूजा, विधीयते।

अर्थ—शिष्य ने पूछा—हे गुरो! अखण्ड सच्चिदानन्द, एकमात्र निर्विकल्पक, अद्वितीय भाव के स्थिर (निश्चय) हो जाने पर, बतलाइए फिर पूजा किस प्रकार की जाय?।। १।।

पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम्।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यं च शुद्धस्याचमनं कुतः।। २।।

अन्वय—हे गुरो! पूर्णस्य, (सर्वत्र व्याप्तस्येत्यर्थः) कुत्र, आवाहनम्,

भवेत्? सर्वाधारस्य (च) आसनम्, (आसनदानं) कथं संभवेत्? (स्वतः) स्वच्छस्य, पाद्यम्, अर्घ्यम्, च, कथम्? (पाद्येनार्घ्येण, च न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः) (तथा) शुद्धस्य, (परमात्मनः) आचमनम्, कुतः (कस्मात्? अर्थात् आचमनसमर्पणेन का पवित्रतेत्यर्थः)।

अर्थ—हे गुरो! जो परमात्मा सर्वत्र व्याप्त हैं, उनका फिर आवाहन कहाँ और किसलिए किया जाय? जो अखिल ब्रह्माण्ड के आधार हैं, फिर उनके लिए आसन का दान किस प्रकार किया जाय, या आसन के लिए फिर कौन सी वस्तु दी जाय, अथवा, सर्वाधार रूप महान् उस परमात्मा की एक गजभर आसन में स्थिति कैसी? स्वभावतः स्फटिकमणि की तरह जो निर्मल है, फिर उन्हें पाद्य, अर्घ्य, स्नानादि से क्या प्रयोजन? अर्थात् मलादि के अपसारण-हेतु ही तो ये सब स्नानादि क्रियायें विहित हैं, स्वतः स्वच्छ के लिए तो फिर इन क्रियाओं का भी कोई उपयोग नहीं हैं। 'हृद्गाभिः पूयते विप्रः' इत्यादि धर्मशास्त्रोक्त नियमानुसार ब्राह्मण इतने जल से आचमन करे जो हृदय तक पहुँच जाय, तब वह पवित्र माना जाता है, परन्तु जो स्वतः शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला है, आचमन से उसका क्या मतलब?।। २।।

निर्मलस्य कुतः स्नानं वासो विश्वोदरस्य च।
अगोत्रस्य त्ववर्णस्य कुतस्तस्योपवीतकम्।। ३।।

अन्वय—हे गुरो! निर्मलस्य, स्नानम्, कुतः, (मलापसारणैकप्रयोजनस्य स्नानस्य तत्र कापेक्षेत्यर्थः) विश्वोदरस्य, वासः, (वस्त्रम्) च, (कुत इत्यर्थः) अगोत्रस्य, अवर्णस्य, तस्य, तु, उपवीतकम्, कुतः, (यतो हि गोत्रवर्णपूर्वकमेव तत्संस्कारात्, गोत्रवर्णादिरहिताय परमात्मने यज्ञोपवीतदानं किमर्थमित्यर्थः)।

अर्थ—हे गुरो! स्वभावतः निर्मल परमात्मा के लिए स्नानार्पणादि क्रिया क्यों, किस लिए? सारा विश्व जिनके पेट में समाया है, फिर उन्हें वस्त्र पहिनाने का क्या मतलब? जो वर्ण तथा गोत्र से रहित हैं, अर्थात् परमात्मा की न तो कोई जाति है, न कोई वर्ण है, और न कोई गोत्र ही है, तब यज्ञोपवीत उन्हें किस हिसाब से समर्पण किया जाय?।। ३।।

निर्लेपस्य कुतो गन्धः पुष्पं निर्वासनस्य च।
निर्विशेषस्य का भूषा कोऽलंकारो निराकृतेः।। ४।।

अन्वय—हे गुरो! निर्लेपस्य, गन्धः, कुतः, निर्वासनस्य, च, पुष्पम्, कुतः, निर्विशेषस्य, भूषा, का, निराकृतेः, अलङ्कारः, कः।

अर्थ—हे गुरो! निर्लिप्त को चन्दनादि गन्ध कैसा? अर्थात् जो परमात्मा निर्लेप हैं, किसी प्रकार के किसी सांसारिक पदार्थ से असंपृक्त हैं, (अछूते हैं) उन्हें फिर गन्धादि का समर्पण कैसे किया जाय? जिसमें किसी भी प्रकार की वासना नहीं है, उन्हें पुष्पों के समर्पण से क्या लाभ? जो निर्विशेष हैं अर्थात् किसी प्रकार की नाम जात्यादि संज्ञाओं से अलग हैं, किसी प्रकार की उपाधि, धर्म, व विशेषण से रहित हैं, तो फिर उन्हें वस्त्रालङ्कारादि भूषा से क्या मतलब? जो निराकार हैं, उन्हें अलङ्कार से क्या प्रयोजन?।। ४।।

निरञ्जनस्य किं धूपै र्दीपै र्वा सर्वसाक्षिणः।
निजानन्दैकतृप्तस्य नैवेद्यं किं भवेदिह।। ५।।

अन्वय—हे गुरो! निरञ्जनस्य, धूपैः, किम्, (न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः) सर्वसाक्षिणः, दीपैः, किम्। निजानन्दैकतृप्तस्य, इह, नैवेद्यम्, किम्, भवेत् (अर्थात् परिपूर्णकामस्य स्वात्मानन्दस्य विनश्वरेण भौतिकेन नैवेद्येन किम्)?

अर्थ—हे गुरो! निरञ्जन (निरुपाधि) को धूप से क्या? जो सारे ब्रह्माण्डों का साक्षी है, उसको पुनः दीप से क्या, अर्थात् क्या दीप उस सर्वसाक्षी परमात्मा के अपने दर्शन हेतु दिया जाता है, या उस परमात्मा को देखने के लिए जलाया जाता है? यह दोनों प्रकार से अनुचित है क्योंकि जो सर्वसाक्षी है, अर्थात् सभी को देखने वाला है, फिर उसको किसी पदार्थ के दर्शन हेतु दीपक की कोई आवश्यकता नहीं है, कहा भी है 'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्, नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः' इत्यादि। यदि उस परमात्मा के दर्शनार्थ दीपक जलाया जाता है, तो फिर जो सर्वसाक्षी है, अर्थात् अखिल ब्रह्माण्डों का द्रष्टा है, इतने बड़े विराट् स्वरूप वाले को एक छोटे से दीप से अच्छी तरह कैसे देखा जा सकता है? जो स्वयं आत्मानन्दमात्र से तृप्त है, नित्य है, उसको भौतिक पदार्थों से निर्मित, विनश्वर दूसरे दिन बासी हो जाने वाले, थोड़े से इस नैवेद्य से क्या लाभ होगा?।। ५।।

विश्वानन्दयितुस्तस्य किं ताम्बूलं प्रकल्प्यते।
स्वयं प्रकाशचिद्रूपो योऽसावर्कादिभासकः।
गीयते श्रुतिभिस्तस्य नीराजनविधिः कुतः।। ६।।

अन्वय—विश्वानन्दयितुः, तस्य, ताम्बूलम्, किम्, प्रकल्प्यते। यः, स्वयंप्रकाशचिद्रूपः, अर्कादिभासकः, च, अस्ति, तस्य, नीराजन-विधिः श्रुतिभिः कुतः गीयते।

अर्थ—विश्व को आनन्दित करने वाले के लिए, ताम्बूल की क्या आवश्यकता है जो स्वयंप्रकाश, चित्स्वरूप और सूर्य चन्द्रादि का भी प्रकाशक है, ऐसे के लिये वेद नीराजन (आरती) का विधान क्यों करते हैं?।। ६।।

प्रदक्षिणमनन्तस्य ह्यद्वयस्य कुतो नतिः।

वेदवाक्यैरवेद्यस्य कुतः स्तोत्रं विधीयते।। ७।।

अन्वय—अनन्तस्य, प्रदक्षिणम्, (कुतः)? अद्वयस्य, हि, (च) नतिः, कुतः? वेदवाक्यैः, अवेद्यस्य, कुतः (कथम्) स्तोत्रम्, विधीयते।

अर्थ—जो अनन्त है, उसकी प्रदक्षिणा कैसे की जाय? जो अद्वैत (केवल) है, उसको नमस्कार कैसे किया जाय, क्योंकि स्वापकर्ष-बोधन पूर्वक परोत्कर्ष ज्ञापनादि नमन तो द्वैतावस्था में ही सम्पन्न होता है। वेद वाक्यों से भी जो नहीं जाना जाता है, भला साधारण भक्त उसकी स्तुति कैसे करेगा?

अन्तर्बहिश्च पूर्णस्य कथमुद्वासनं भवेत्।। ८।।

अन्वय—अन्तः, बहिः, च, पूर्णस्य, उद्वासनम्, कथम्, भवेत्।

अर्थ—जो बाहर और भीतर सब ओर परिपूर्ण हैं, उनका फिर उद्‌वासन (विसर्जन) किस प्रकार होगा?।। ८।।

श्रीगुरुरुवाच

आराधयामि मणिसन्निभमात्मलिङ्गं

मायापुरीहृदयपङ्कजसन्निविष्टम्।

श्रद्धानदीविमलचित्तजलाभिषेकै-

र्नित्यं समाधिकुसुमैरपुनर्भवाय।। ९।।

अन्वय—श्रीगुरुः, उवाच — हे शिष्य! (अहम् तु) मायापुरीहृदय-पङ्कजसन्निविष्टम्, मणिसन्निभम्, आत्मलिङ्गम्, नित्यम्, श्रद्धानदीविमल-चित्तजलाभिषेकैः, समाधिकुसुमैः, (च) अपुनर्भवाय, आराधयामि।

अर्थ—शिष्य के पूर्वोक्त प्रश्नों के उत्तर में गुरु जी ने कहा—हे वत्स! मैं तो, मायापुरी रूपी हृदय-कमल में प्रतिष्ठित, स्फटिकमणि की तरह स्वच्छ, उस आत्मारूपी लिङ्ग की, हमेशा श्रद्धारूपी नदी में बहने वाले निर्मल चित्त रूपी जल के अभिषेक से, और समाधिस्थ चित्त की एकाग्रतारूपी पुष्पों से, मोक्ष के लिए आराधना किया करता हूँ।। ९।।

अयमेकोऽवशिष्टोऽस्मीत्येवमावाहयेच्छिवम्।

आसनं कल्पयेत् पश्चात् स्वप्रतिष्ठात्मचिन्तनम्।। १०।।

अन्वय—(प्रथमम्) अयम्, एकः, अवशिष्टः, अस्मि, इति, एवं, शिवम्,

आवाहयेत्। पश्चात्, स्वप्रतिष्ठात्मचिन्तनम्, आसनम्, कल्पयेत्।

अर्थ–सर्वप्रथम तो 'नेति' इस सिद्धान्त के द्वारा सारे नाम-रूपों का बाध कर 'अकेला यह प्रत्यगात्मा ही बचा हूँ' यह निश्चय रूप आवाहन करे, तत्पश्चात् जो किसी अन्य पर स्थित नहीं उस आत्मा के इस स्वरूप का विचाररूप आसन अर्पित करे।। १०।।

पुण्यपापरजःसङ्गो मम नास्तीति वेदनम्।
पाद्यं समर्पयेद् विद्वान् सर्वकल्मषनाशनम्।। ११।।

अन्वय–विद्वान्, पुण्यपापरजःसङ्गः, मम, नास्ति, इति, वेदनम्, सर्वकल्मषनाशनम्, पाद्यम्, समर्पयेत्।

. अर्थ–विद्वान् को चाहिए कि पुण्य (धर्म) पाप (अधर्म) रूपी धूलि का सम्पर्क भी मेरे (आत्मा) में नहीं है, इसी प्रकार के ज्ञानात्मक, सर्वपापनाशक पाद्य का समर्पण करे।। ११।।

अनादिकल्पविधृतमूलाज्ञानजलाञ्जलिम्।
विसृजेदात्मलिङ्गस्य तदेवार्घ्यसमर्पणम्।। १२।।

अन्वय–(विद्वान्) आत्मलिङ्गस्य, (उपरि) अनादिकल्पविधृतमूला-ज्ञानजलाञ्जलिम्, विसृजेत्, तत्, एव, अर्घ्यसमर्पणम् (अस्ति)।

अर्थ–विद्वान् को चाहिए कि वह अनादि कल्प-कल्पान्तरों से सञ्चित, जो मूलाज्ञान (मायांश) रूपी जल है, उसे आत्मलिङ्ग के उपर समर्पण कर दे, अर्थात् आत्मसाक्षात्कार की स्थिति में तो फिर अनेक जन्म-जन्मान्तरों से सञ्चित अज्ञान का विलय हो जाता है, यही अज्ञान रूपी जल का विसर्जन (त्याग) ही अर्घ्यदान है।। १२।।

ब्रह्मानन्दाब्धिकल्लोलकणकोट्यंशलेशकम्।
पिबन्तीन्द्रादय इति ध्यानमाचमनं मतम्।। १३।।

अन्वय–इन्द्रादयः, ब्रह्मानन्दाब्धिकल्लोलकणकोट्यंशलेशकम्, पिबन्ति, इति, ध्यानम्, एव, आचमनम्, मतम्।

अर्थ–इन्द्रादि देवता, ब्रह्मानन्द रूपी समुद्र की लहर से, निकली हुई एक बूँद के करोड़वें हिस्से का पान करते हैं–इस प्रकार का ध्यान करना ही, आचमन है।। १३।।

ब्रह्मानन्दजलेनैव लोकाः सर्वे परिप्लुताः।
अक्लेद्योऽयमिति ध्यानमभिषेचनमात्मनः।। १४।।

अन्वय–सर्वे, लोकाः, ब्रह्मानन्दजलेन, परिप्लुताः, सन्ति, इति,

ध्यानम्, एव, आत्मनः, अभिषेचनम्, (अस्ति) कृतेभिषेचनेऽपि, अयमात्मा, अक्लेद्य एव भवति, (अथवा, इदम्, परिप्लवनम्, अभिषेचनम्, वा अक्लेद्यम्, एव, भवति, इति लिङ्गव्यत्ययेनापि, अन्वयः, कार्यः)।

अर्थ—ये समस्त लोक ब्रह्मानन्द से ही आप्लावित हैं, इस प्रकार का ध्यान ही आत्मा का स्नान, किं वा अभिषेचन है। आश्चर्य यह है कि इस प्रकार के स्नान करने से भी आत्मा कभी भी गीला (भीगा हुआ) नहीं होता है! अथवा यह जो आनन्दजलात्मक स्नान है, इसमें कोई भीगता भी नहीं है।। १४।।

निरावरणचैतन्यं प्रकाशोऽस्मीति चिन्तनम्।
आत्मलिङ्गस्य सद्वस्त्रमित्येवं चिन्तयेन्मुनिः।। १५।।

अन्वय—अहम्, निरावरणचैतन्यम्, अस्मि (तथा च) प्रकाशः, (च) अस्मि, इति, चिन्तनम्, एव, आत्मलिङ्गस्य, सद्वस्त्रम्, अस्ति, इति, एवम्, मुनिः, चिन्तयेत्।

अर्थ—मैं निरावरण चैतन्य हूँ। वस्त्रादि से चैतन्य का कभी भी आवरण आच्छादन नहीं हो सकता है। भर्तृहरि का तो यहाँ तक कहना है, कि दिशा व काल तक चैतन्य को अपनी परिधि में नहीं बाँध सकते, तब वस्त्र से भला चैतन्य का आच्छादन कैसे होगा? अतः यह प्रकाशरूप जो आत्मा है, उसका जो चिन्तन है, मननशील मुनि, उसी को आत्मलिङ्ग का सद्वस्त्र समझे।। १५।।

त्रिगुणात्माशेषलोकमालिकासूत्रमस्म्यहम्।
इति निश्चय एवात्र ह्युपवीतं परं मतम्।। १६।।

अन्वय—अहम्, त्रिगुणात्माशेषलोकमालिकासूत्रम्, अस्मि, अत्र, इति, निश्चयः, एव, हि, परम्, उपवीतम्, मतम्।

अर्थ—मैं सत्त्व, रज व तमोगुणात्मक जो अनेक लोकों की माला है, उसी का सूत्रस्थानीय सूत्रधार हूँ, अर्थात् अधिष्ठानभूत मेरे ही में समस्त भुवन गुथे हुए हैं, जैसा कि गीता में भी कहा है—'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव' इत्यादि, भगवद्पूजन के प्रसङ्ग में, इस प्रकार के निश्चयात्मक विचार को ही उत्तम उपवीत (यज्ञोपवीत) समझे।। १६।।

अनेकवासनामिश्रप्रपञ्चोऽयं धृतो मया।
नान्येनेत्यनुसन्धानमात्मनश्चन्दनं भवेत्।। १७।।

अन्वय—अयम्, अनेकवासनामिश्रप्रपञ्चः, मया धृतः, न, अन्येन, (केनचित् जडेनेत्यर्थः) इति, अनुसन्धानम्, आत्मनः, चन्दनम्, भवेत्।

अर्थ—यह जो अनेक प्रकार की वासनाओं का केन्द्रभूत संसार है, इसको मैंने (चैतन्य ने) ही धारण किया है, और किसी प्रकृति-परमाणु आदि जडवर्ग ने इसे धारण नहीं किया है, इस प्रकार का अनुशीलन करना ही, आत्मा का अनेक सुगन्धित द्रव्य मिश्रित सुन्दर चन्दन है।। १७।।

रजःसत्त्वतमोवृत्तित्यागरूपैस्तिलाक्षतैः।
आत्मलिङ्गं यजेन्नित्यं जीवन्मुक्तिप्रसिद्धये।। १८।।

अन्वय—रजःसत्त्वतमोवृत्तित्यागरूपैः, तिलाक्षतैः, जीवन्मुक्तिप्रसिद्धये, नित्यम्, आत्मलिङ्गम्, यजेत्।

अर्थ—जीवन्मुक्ति की सिद्धि के लिए, सत्त्व, रज व तमोवृत्ति के त्यागरूप तिलाक्षत से, हमेशा आत्मलिङ्ग की पूजा करे।। १८।।

ईश्वरो गुरुरात्मेति भेदत्रयविवर्जितैः।
बिल्वपत्रैरद्वितीयैरात्मलिङ्गं यजेच्छिवम्।। १९।।

अन्वय—ईश्वरः, गुरुः, आत्मा, इति, भेदत्रयविवर्जितैः, (ईश्वरत्व-गुरुत्वादि-संज्ञोपाध्यादिकं विहाय चैतन्यरूपेणैकरूपं निश्चित्येत्यर्थः एतादृशैः) अद्वितीयैः (द्वैतभावनाविवर्जितैः) बिल्वपत्रैः, आत्मलिङ्गम्, शिवम्, यजेत्।

अर्थ—ईश्वर, गुरु व आत्मा इन तीनों में एक अद्वितीय चैतन्य की दृष्टि से, कोई भेद नहीं है, इस प्रकार की अद्वैत भावना रूपी बिल्वपत्र से, आत्मलिङ्ग रूपी शिव की पूजा करे।। १९।।

समस्तवासनात्यागं धूपं तस्य विचिन्तयेत्।
ज्योतिर्मयात्मविज्ञानं दीपं संदर्शयेद् बुधः।। २०।।

अन्वय—बुधः, तस्य (आमनः कृते) समस्तवासनात्यागम्, धूपम्, विचिन्तयेत् (तदनन्तरम्) ज्योतिर्मयात्मविज्ञानम्, दीपम्, (च) संदर्शयेत्।

अर्थ—विद्वान् को चाहिए कि आत्मा के लिए, समस्त वासनाओं के त्यागरूप धूप को समर्पण करे, तत्पश्चात् प्रकाशमय आत्मज्ञान रूपी दीपक को दिखलाये।। २०।।

नैवेद्यमात्मलिङ्गस्य ब्रह्माण्डाख्यं महोदनम्।
पिबानन्दरसं स्वादु मृत्युरस्योपसेचनम्।। २१।।

अन्वय—अस्य, आत्मलिङ्गस्य, ब्रह्माण्डाख्यम्, महोदनम्, नैवेद्यम्

(अस्ति), मृत्युः, उपसेचनम्, (अस्ति)। स्वादु, आनन्दरसम्, च पिब।

अर्थ—इस आत्मलिङ्ग का ब्रह्माण्ड रूपी उत्तम भात नैवेद्य है जिसके साथ मृत्युरूपी लगावन (दाल, चटनी) है। हे आत्मदेव! स्वादिष्ट आनन्दरस रूपी पेय वस्तु पीजिये।। २१।।

अज्ञानोच्छिष्टहस्तस्य क्षालनं ज्ञानवारिणा।
विशुद्धस्यात्मलिङ्गस्य हस्तप्रक्षालनं स्मरेत्।। २२।।

अन्वय—अज्ञानोच्छिष्टहस्तस्य, ज्ञानवारिणा, (यत्) क्षालनम्, (अस्ति) (तदेव) विशुद्धस्य, आत्मलिङ्गस्य, (नैवेद्यान्ते) हस्तप्रक्षालनम् स्मरेत्।

अर्थ—अज्ञान से जूठे हाथ का, जो ज्ञानरूपी जल से प्रक्षालन है, वही विशुद्ध आत्मलिङ्ग का (नैवेद्य समर्पण के बाद) हाथ धुलाना है।। २२।।

रागादिगुणशून्यस्य शिवस्य परमात्मनः।
सरागविषयाभ्यासत्यागस्ताम्बूलचर्वणम्।। २३।।

अन्वय—रागादिगुणशून्यस्य, परमात्मनः, शिवस्य (कृते) (यः) सरागविषयाभ्यासत्यागः, (अस्ति) (स एव) तस्य, ताम्बूलचर्वणम्, (ताम्बूलसमर्पणम् वा अस्ति) (सरागविषयाणाम् ताम्बूले रागसहित-परागादिचूर्णमिश्रितानां पदार्थानां चर्वणाभ्यासत्यागव्याजेन, मया एते कषाया विषयाः परित्यक्ताः शिवसन्निधाविति ज्ञापनमेव तस्य कृते ताम्बूलादिसमर्पणमस्ति)।

अर्थ—राग-सहित विषयों का पुनः पुनः भोग करने से विरत होना रागादि सभी प्रकार की विषय-वासनाओं से शून्य, परमात्मा शिव का पान चबाना है। (ताम्बूल-समर्पण के समय यह संकल्प दुहराये कि मैं विषयभोग में रस नहीं लूँगा और रागवश विषयाकृष्ट नहीं होऊँगा)।। २३।।

अज्ञानध्वान्तविध्वंसप्रचण्डमतिभास्करम्।
आत्मनो ब्रह्मताज्ञानं नीराजनमिहात्मनः।। २४।।

अन्वय—अज्ञानध्वान्तविध्वंस-प्रचण्डम् अतिभास्करम्, आत्मनः, ब्रह्मताज्ञानम्, (अहं ब्रह्मास्मीत्याकारकं ज्ञानमित्यर्थः) इह, आत्मनः, नीराजनम्, (स्मृतम्)।

अर्थ—अज्ञानान्धकार के विनाश में पूर्ण सक्षम, सूर्य से भी अधिक तेजस्वी जो आत्मा की व्यापक आनन्दरूपता का ज्ञान है वह अध्यात्म पूजा में आत्मा की आरती है।। २४।।

विविधब्रह्मसंदृष्टिमालिकाभिरलंकृतम्।
पूर्णानन्दात्मतादृष्टिं पुष्पाञ्जलिमनुस्मरेत्।। २५।।

अन्वय—विविधब्रह्मसंदृष्टिमालिकाभिः, अलङ्कृतम्, पूर्णानन्दात्मता-दृष्टिम्, पुष्पाञ्जलिम्, अनुस्मरेत्।

अर्थ—संसारदशा में नाना प्रकार का उपलब्ध होता जो परमात्मा उसे बार-बार हर अनुभव में सही पहचानते रहना मानो फूलमालाएँ है जिससे सजी पुष्पांजलि है यह निश्चय कि आत्मा पूर्ण और आनन्दरूप है। आत्मा की पूर्णता व आनंदरूपता को सदा याद रखे तो आत्मदेव को पुष्पांजलि अर्पित होगी।। २५।।

परिभ्रमन्ति ब्रह्माण्डसहस्राणि मयीश्वरे।
कूटस्थाचलरूपोऽहमिति ध्यानं प्रदक्षिणम्।। २६।।

अन्वय—मयि, ईश्वरे, ब्रह्माण्डसहस्राणि, परिभ्रमन्ति (किन्तु) अहम्, कूटस्थाचलरूपः, (अस्मि) इति, ध्यानम्, एव, प्रदक्षिणम्, (मतम्)।

अर्थ—ईश्वर-रूप मुझ में, हजारों ब्रह्माण्ड चक्कर काटते रहते हैं, परन्तु मैं (ईश्वर) कूटस्थ एवं अचल हूँ, इस प्रकार का ध्यान करना ही, आत्मा की प्रदक्षिणा है।। २६।।

विश्ववन्द्योऽहमेवास्मि नास्ति वन्द्यो मदन्यकः।
इत्यालोचनमेवात्र स्वात्मलिङ्गस्य वन्दनम्।। २७।।

अन्वय—अहम्, एव, विश्ववन्द्यः, अस्मि, मदन्यकः, (कश्चिदन्यः) वन्द्यः नास्ति, अत्र, इति, आलोचनम्, एव, स्वात्मलिङ्गस्य, वन्दनम्, अस्ति।

अर्थ—मैं (आत्मा) ही विश्व का वन्दनीय हूँ, मुझ से अतिरिक्त कोई अन्य वन्दनीय नहीं है। इस प्रकार का विचार करना ही, निर्गुण की मानसिक पूजा में आत्मलिङ्ग को नमस्कार करना है।। २७।।

आत्मनः सत्क्रिया प्रोक्ता कर्तव्याभावभावना।
नामरूपव्यतीतात्मचिन्तनं नामकीर्तनम्।। २८।।

अन्वय—कर्तव्याभावभावना, एव आत्मनः,सत्क्रिया, प्रोक्ता, नामरूप-व्यतीतात्मचिन्तनम्, एव, (आत्मनः) नामकीर्तनम्, प्रोक्तम्।

अर्थ—मैं किसी प्रकार की क्रिया (कर्म) का आश्रय नहीं हूँ, अर्थात् मेरे में किसी प्रकार का कर्तृत्व कर्मत्वादि नहीं है, इस प्रकार की भावना रखना ही आत्मा का सत्कार है, और यह आत्मा नामरूपात्मक नहीं है, इस प्रकार का चिन्तन ही आत्मा का कीर्तन है।। २८।।

श्रवणं तस्य देवस्य श्रोतव्याभावचिन्तनम्।
मननं त्वात्मलिङ्गस्य मन्तव्याभावचिन्तनम्।। २९।।

अन्वय–तस्य, देवस्य (आत्मनः) श्रोतव्याभावचिन्तनम्, एव, श्रवणम्, (अस्ति) मन्तव्याभावचिन्तनम्, एव, तु, आत्मलिङ्गस्य, मननम् (अस्ति)।

अर्थ–उस आत्मा के विषय में शब्द द्वारा कुछ भी श्रवणीय नहीं है, इस प्रकार का विचार ही श्रवण है, क्योंकि वह किसी नाम वाला नहीं है। रूपात्मक न होने से, वह मन्तव्य नहीं, उसका मनन भी सम्भव नहीं है। अतः उसके विषय में यह चिन्तन ही मनन है।। २९।।

ध्यातव्याभावविज्ञानं निदिध्यासनमात्मनः।
समस्तभ्रान्तिविक्षेपराहित्येनात्मनिष्ठता।। ३०।।
समाधिरात्मनो नाम नान्यच्चित्तस्य विभ्रमः।
तत्रैव ब्रह्मणि सदा चित्तविश्रान्तिरिष्यते।। ३१।।

अन्वय–ध्यातव्याऽभावविज्ञानम् आत्मनः निदिध्यासनम् (अस्ति) समस्तभ्रान्तिविक्षेपराहित्येन आत्मनिष्ठता आत्मनः समाधिः नाम, अन्यत् चित्तस्य विभ्रमः (समाधिः) न। एवं तत्र ब्रह्मणि सदा चित्तविश्रान्तिः इष्यते।

अर्थ–आत्मा ध्यान का विषय होने के अयोग्य है यह अनुभव आत्म-सम्बन्धी निदिध्यासन है। सारे भ्रमरूप विक्षेप हटाकर केवल आत्मरूप से स्थिति आत्मसम्बन्धी समाधि है, इससे अन्य जो चित्त की क्रियाएँ वे समाधि नहीं। इस तरह निर्गुण परमात्मा में चित्त हमेशा स्थिर रहे यही मुमुक्षु को अभीष्ट है।। ३०।।

एवं वेदान्तकल्पोक्तस्वात्मलिङ्गप्रपूजनम्।
कुर्वन्नामरणं वाऽपि क्षणं वा सुसमाहितः।। ३२।।

अन्वय–एवम् (पूर्वोक्तप्रकारेण) वेदान्तकल्पोक्तस्वात्मलिङ्गप्रपूजनम्, सुसमाहितः, सन्, आमरणम्, वा, कुर्वन्, क्षणम्, अपि, वा, कुर्वन्, (मोक्षं समश्नुते इति अग्रेणान्वयः)।

अर्थ–पूर्वोक्त प्रकार से वेदान्तोक्त विधि से, आत्मलिङ्ग का प्रकृष्ट पूजन, सावधानी-पूर्वक या एकाग्रमन से चाहे आजीवन करता रहे, चाहे क्षणमात्र भी करे, तो मोक्ष को प्राप्त होता है।। ३२।।

सर्वदुर्वासनाजालं पदपांसुमिव त्यजेत्।
विधूयाज्ञानदुःखौघं मोक्षानन्दं समश्नुते।। ३३।।

अन्वय–(पूर्वोक्तवेदान्तसिद्धान्तानुसारमात्मलिङ्गार्चनमाचरन् नरः) सर्वदुर्वासनाजालम्, पदपांसुम्, इव त्यजेत् (तत्पश्चात्) अज्ञानदुःखौघम्, विधूय, मोक्षानन्दम्, समश्नुते।

अर्थ–पूर्वोक्त वेदान्त सिद्धान्तानुसार मनुष्य आत्मलिङ्ग की अर्चना करता हुआ, सभी प्रकार के दुर्वासनाओं के जाल को उसी प्रकार छोड़ देता है, जैसे पैरों में लगी हुई धूल छोड़ दी जाती है, (धो दी जाती है)। इन वासनाओं को छोड़ देने के बाद, फिर अज्ञान-जन्य समस्त दुःखों को दूर कर, मोक्षानन्द का अनुभव करता है।। ३३।।

प्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम्।
यत्स्वप्नजागरसुषुप्तमवैति नित्यं
तद् ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसङ्घः।। १।।

अन्वय–(अहम्) प्रातः, हृदि, संस्फुरत्, तत्,' आत्मतत्त्वम्, स्मरामि, यत्, सत्, चित्, सुखम्, (अस्ति) परमहंसगतिम्, तुरीयम्, (चास्ति) यत्, च, नित्यम्, स्वप्नजागरसुषुप्तम्, अवैति, तद्, एव, निष्कलम्, ब्रह्म, अहम्, (अस्मि) न, च, भूतसङ्घः (अहमस्मीत्यर्थः)।

अर्थ–मैं हृदय में स्फुरित होने वाले, आत्मतत्त्व का प्रातः काल स्मरण करता हूँ, जो सत् चित् तथा आनन्दमय है, जिसे परमहंसों का प्राप्य स्थान माना है, और स्वप्न जाग्रदादि तीन अवस्थाओं से विलक्षण तुरीयावस्था वाला, अर्थात् तुरीय चैतन्य जिसे कहते हैं। जो हम सभी लोगों की स्वप्न सुषुप्ति व जाग्रत् अवस्था का साक्षी है, अर्थात् स्वप्न व सुषुति अवस्थाओं में, जब समस्त इन्द्रियों का व्यापार विरत हो जाता है उस दशा में भी, और जाग्रत् अवस्था में जब इन्द्रिय वर्ग तत्तत् कार्यों में प्रवृत्त होता है, तब भी, जो हमेशा प्रकाशमान ही रहता है, ऐसा निष्कलंक निरञ्जन शुद्ध मुक्त स्वभाव वाला, ब्रह्म ही मैं हूँ, न कि पञ्चभूतों का यह शरीर मैं हूँ।। १।।

प्रातर्भजामि मनसां वचसामगम्यं
वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण।

यन्नेति नेति वचनै र्निगमा अवोचं-

स्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्र्यम् ।। २ ।।

अन्वय—मनसाम्, वचसाम्, अपि, अगम्यम्, यम्, (देवदेवम्), अजम्, अच्युतम्, अग्र्यम्, आहुः, यदनुग्रहेण, निखिलाः, वाचः, विभान्ति, निगमाः, यम्, नेति नेति, इति वचनैः, अवोचन्, तम्, देवदेवम्, अहम्, प्रातः, भजामि।

अर्थ—जो देव, मन तथा वाणी से भी अगम्य है, लोग जिसे अजन्मा, अच्युत तथा आदिपुरुष कहते हैं, जिसके अनुग्रह से समस्त वाणी प्रकाशित होती हैं, वेद जिस देव को 'नेति नेति' शब्दों द्वारा कहते हैं, उसी देवों के भी देव परब्रह्म का मैं प्रातः काल भजन करता हूँ।। २।।

प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं, पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम्।

यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तौ, रज्ज्वां भुजङ्गम इव प्रतिभासितं वै।।३।।

अन्वय—यस्मिन्, अशेषमूर्तौ, इदम्, अशेषम्, जगत्, वै, (निश्चयेन) रज्ज्वाम्, भुजङ्गमः इव, प्रतिभासितम्, (अस्ति) (तत्) तमसः, परम्, अर्कवर्णम्, पूर्णम्, सनातनपदम्, पुरुषोत्तमाख्यम्, (अहम्) प्रातः, नमामि।

अर्थ—जिस अधिष्ठानभूत्, सर्वस्वरूप परमेश्वर में, यह समस्त संसार, रज्जु में सर्प के समान प्रतिभासित हो रहा है, उस अज्ञानातीत, दिव्य ज्योति-स्वरूप, पूर्ण, सनातन पुरुषोत्तम को, मैं प्रातः काल नमस्कार करता हूँ।। ३।।

श्लोकत्रयमिदं पुण्यं लोकत्रयविभूषणम्।

प्रातः काले पठेद्यस्तु स गच्छेत्परमं पदम्।। ४।।

अन्वय—पुण्यम्, इदम्, श्लोकत्रयम्, लोकत्रयविभूषणम् (अस्ति) यः (नरः) प्रातः काले (इदम् श्लोकत्रयम्) पठेत्, (सः) परमम्, पदम्, गच्छेत्।

अर्थ—ये तीन पवित्र श्लोक तीनों लोकों के भूषण हैं। जो मनुष्य प्रातः काल इनका पाठ करता है, वह परम पद को प्राप्त करता है।। ४।।

अद्वैतपञ्चरत्नम्

नाहं देहो नेन्द्रियाण्यन्तरङ्गो, नाहंकारः प्राणवर्गो न बुद्धिः।

दारापत्यक्षेत्रवित्तादिदूरः, साक्षी नित्यः प्रत्यगात्मा शिवोऽहम्।। १।।

अन्वय—अहम्, देहः, न, (अहम्) इन्द्रियाणि, न, (अहम्) अन्तरङ्गः,

(अहंकारः) न, अहम्, प्राणवर्गः, न, (अहम्) बुद्धिः, न, (अहम्) दारापत्यक्षेत्र-वित्तादिदूरः, (सन्) साक्षी, नित्यः, प्रत्यगात्मा, शिवः, (अस्मि)।

अर्थ—मैं न तो देह हूँ, न इन्द्रिय और न अन्तः स्थित अहंकार ही हूँ। मैं प्राणवर्ग (प्राण अपान व्यान समान उदान) भी नहीं हूँ, न मैं बुद्धि ही हूँ, तथा स्त्री पुत्र खेत वित्तादि से अलग, साक्षी, नित्य, प्रत्यक् चैतन्यरूप केवल शिव हूँ।।१।।

रज्ज्वज्ञानाद् भाति रज्जौ यथाहिः
स्वात्माज्ञानादात्मनो जीवभावः।
आप्तोक्त्याऽहिभ्रान्तिनाशे स रज्जु-
र्जीवो नाहं देशिकोक्त्या शिवोऽहम्।। २।।

अन्वय—यथा, रज्ज्वज्ञानात्, रज्जौ, अहिः, भाति, (तथैव) स्वात्माज्ञानात्, आत्मनः, जीवभावः, (भाति। पुनः) आप्तोक्त्या, (यथा) अहिभ्रान्तिनाशे, सति, सः, रज्जुः, एव (भवति तथैव) देशिकोक्त्या, अहम्, जीवः, न, अपि, तु, शिवः (अस्मि)।

अर्थ—जैसे रज्जुविषयक अज्ञान के कारण रज्जु में, सर्प की भ्रान्ति होती है, वैसे ही आत्मविषयक अज्ञान के कारण नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त भी मैंने अपनी आत्मा को, देहेन्द्रियादि परिच्छिन्न जीव समझा हुआ है। किसी आप्त-जन के द्वारा (या प्रकाश के द्वारा) बतला देने पर, रज्जु में सर्प-विषयक भ्रान्ति के नाश हो जाने पर, जिस प्रकार रज्जु में यथार्थ रज्जु बुद्धि हो जाती है, उसी प्रकार श्रीगुरु जी के उपदेश से आत्मा में देहेन्द्रियादि परिच्छिन्न जीव-बुद्धि न होकर, 'मैं तो केवल शिव हूँ,' इस प्रकार की बुद्धि होती है।। २।।

आभातीदं विश्वमात्मन्यसत्यं, सत्यज्ञानानन्दरूपे विमोहात्।
निद्रामोहात् स्वप्नवत्तन्नसत्यं, शुद्धः पूर्णो नित्य एकः शिवोऽहम्।। ३।।

अन्वय—सत्यज्ञानानन्दरूपे, आत्मनि, असत्यम्, (अपि) इदम्, विश्वम्, विमोहात्, आभाति (आ-समन्तात् सत्यमिव भातीत्यर्थः) (परन्तु) निद्रामोहात्, स्वप्नवत्, तत्, सत्यम्, न, अहम्, (तु) शुद्धः, पूर्णः, नित्यः, एकः, शिवः (अस्मि)।

अर्थ—सत्य ज्ञान और आनन्दरूप इस आत्मा में, असत्य भी यह संसार आत्मविषयक यथार्थ ज्ञान के अभाव में, अथवा आत्मविषयक विमोह (अयथार्थ ज्ञान) के कारण, (सत्य-सा) प्रतीत होता है, परन्तु यह संसार निद्रा के मोह से उत्पन्न स्वप्न की तरह सत्य नहीं है, इसकी अपेक्षा आत्मा तो शुद्ध परिपूर्ण,

नित्य, एक और शिवरूप है।। ३।।

नाहं जातो न प्रवृद्धो न नष्टो, देहस्योक्ताः प्राकृताः सर्वधर्माः।
कर्तृत्वादिश्चिन्मयस्यास्ति नाहंकारस्यैव ह्यात्मनो मे शिवोऽहम्।। ४।।

अन्वय—अहम्, (आत्मा) न, जातः, न, प्रवृद्धः, न, नष्टः, इमे, प्राकृताः, सर्वधर्माः, देहस्य, उक्ताः, (नत्वात्मनः), हि, कर्तृत्वादिः, अहंकारस्य, एव, चिन्मयस्य, आत्मनः, मे, न, अहम्, (तु) शिवः (केवलम् शिवरूपोऽस्मि)।

अर्थ—आत्मा न तो उत्पन्न होता है, न बढ़ता है और न नष्ट ही होता है, ये अस्ति जायते वर्धते इत्यादि छह भावविकार मेरे में नहीं हैं, ये समस्त प्राकृत धर्म तो, देह के कहे गये हैं, और जो कर्तृत्व-भोक्तृत्वादि धर्म हैं, वे भी अहंकार (अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य जीव) के ही हैं, न कि चैतन्यरूप मुझ आत्मा के, मैं तो केवल शिवरूप हूँ।। ४।।

मत्तो नान्यत् किञ्चिदत्रास्ति विश्वं, सत्यं बाह्यं वस्तु मायोपक्लृप्तम्।
आदर्शान्तर्भासमानस्य तुल्यं, मय्यद्वैते भाति तस्माच्छिवोऽहम्।। ५।।

अन्वय—अत्र, (अस्मिन् चराचरे जगति) मत्तः, अन्यत् किञ्चित्, अपि, नास्ति, इदम्, बाह्यम्, विश्वम्, तु, मायोपक्लृप्तम्, सत्, सत्यम्, वस्तु, इव, आभाति, (परन्तु एतत्सर्वम्) अद्वैते, मयि, आदर्शान्तर्भासमानस्य, तुल्यम्, भाति, तस्मात्, अहम्, तु, केवलः, शिवः, अस्मि।

अर्थ—इस दृश्यमान चराचर जगत् में, मेरे (आत्मा) से अतिरिक्त कुछ भी तो नहीं है, यह जो बाह्य जगत् वस्तुरूप में सत्य-सा प्रतीत हो रहा है, यह सब माया का ही खेल है, अर्थात् यह प्रपञ्च मायानिर्मित है। अद्वैतरूप मेरे (आत्मा) में, यह इस तरह प्रतिबिम्बित हो रहा है, जिस प्रकार शीशे में कोई वस्तु प्रतिबिम्बित होती है, अर्थात् प्रतिबिम्ब की जितनी सत्यता है, उतनी सत्यता इस जगत् की भी है, यह तो केवल प्रतीतिमात्र है। इसलिए इससे अतिरिक्त मैं (आत्मा) तो, केवल शिवरूप ही हूँ।। ५।।

अद्वैतानुभूतिः

अहमानन्दसत्यादिलक्षणः केवलः शिवः।
सदानन्दादिरूपं यत्तेनाहमचलोऽद्वयः।। १।।

अन्वय—अहम्, आनन्दसत्यादिलक्षणः, केवलः, शिवः, (अस्मि) यत्, (मम) सदानन्दादिरूपम्, (अस्ति) तेन, अहम्, अचलः, अद्वयः, (च) (अस्मि)।

अर्थ—मैं (आत्मा) आनन्द-सत्यादिस्वरूप वाला केवल शिव हूँ। मेरा यह जो सदा आनन्द, सत्य व चित् रूप है, इससे मैं स्थिर, अद्वैत (एक) हूँ।। १।।

अक्षिदोषाद्यथैकोऽपि द्वयवद् भाति चन्द्रमाः।
एकोऽप्यात्मा तथा भाति द्वयवद् मायया मृषा।। २।।

अन्वय—यथा, एकः, अपि, चन्द्रमाः, अक्षिदोषात्, द्वयवत्, भाति, तथा, एकः, अपि, आत्मा, मायया, मृषा, द्वयवत्, भाति।

अर्थ—जिस प्रकार एक ही चन्द्रमा, आँख के दोष के कारण, दो मालूम पड़ते हैं, उसी प्रकार एक ही आत्मा में, माया के कारण, झूठमूठ में, द्वैत बुद्धि हो जाती है, अर्थात् जीव जगत् व आत्मा को लेकर, व्यर्थ में द्वैतभावना बन जाती है।। २।।

अक्षिदोषविहीनानामेक एव यथा शशी।
मायादोषविहीनानामात्मैवैकस्तथा सदा।। ३।।

अन्वय—यथा, अक्षिदोषविहीनानाम्, एकः, एव, शशी, (भवति) तथा, मायादोषविहीनानाम्, सदा, एकः, एव, आत्मा, भवति।

अर्थ—जिस प्रकार नेत्ररोग से रहित लोगों को एक ही चन्द्रमा दिखाई देता है, उसी प्रकार माया दोष से रहित जो लोग हैं, उन्हें हमेशा एक ही आत्मा दिखलाई देता है।। ३।।

द्वित्वं भात्यक्षिदोषेण चन्द्रे स्वे मायया जगद्।
द्वित्वं मृषा यथा चन्द्रे मृषा द्वैतं तथात्मनि।। ४।।

अन्वय—यथा, अक्षिदोषेण, चन्द्रे, द्वित्वम्, भाति, तथा, स्वे, मायया, जगद्, (भाति)। यथा, चन्द्रे द्वित्वम्, मृषा (अस्ति) तथा आत्मनि (अपि) द्वैतम्, मृषा, अस्ति।

अर्थ—जैसे आँख के दोष के कारण, चन्द्र दो की तरह मालूम पड़ता है, उसी प्रकाद्र माया के कारण अपने में अर्थात् आत्मा में यह जगत् भी मालूम पड़ता है। जिस प्रकार नेत्र दोषोत्पन्न चन्द्र का द्वित्व मिथ्या है, उसी प्रकार आत्मा में प्रतीत होने वाला यह जगद्रूप द्वैत भी मिथ्या है।। ४।।

आत्मनः कार्यमाकाशो विनात्मानं न सम्भवेत्।
कार्यस्य पूर्णता सिद्धा किं पुनः पूर्णतात्मनः।। ५।।

अन्वय—आत्मनः कार्यम्, आकाशः, आत्मानम्, विना, (सः) न, सम्भवेत्, कार्यस्य, (कार्यभूतस्याकाशस्य महत्त्वव्यापकत्वादिभिः) पूर्णता, सिद्धा, आत्मनः, पूर्णता, किं, पुनः, (अर्थात् कैमुतिकन्यायेन, आत्मनः पूर्णतायाम् न सन्देहः)।

अर्थ—आत्मा का कार्य आकाश है, आत्मा आकाश का कारण हुआ (वेद में भी ऐसा ही कहा है 'आत्मनआकाशः संभूतः' इत्यादि) तब कारण आत्मा के बिना कार्य आकाश कैसे हो सकता है, कथमपि नहीं हो सकता है, क्योंकि यह नियम है कि कारण के बिना कार्य नहीं होता है, जैसे—बीज के बिना वृक्ष, दही कि बिना घी, इत्यादि। दूसरा नियम यह है कि 'कारणगुणाः कार्यगुणानारभन्ते' अर्थात् कारण गुण ही कार्य के गुणों का निर्माण करते हैं। इस नियम से जब कार्यभूत आकाश ही अपेक्षाकृत अन्य पदार्थों से व्यापक व पूर्ण है, तो फिर आत्मा व्यापक व पूर्ण है, इसमें कहना ही क्या, अर्थात् उसकी पूर्णता तो स्वतः सिद्ध है।। ५।।

कार्यभूतो यथाकाश एक एव न हि द्विधा।
हेतुभूतस्तथात्माऽयमेक एक एव विजानतः ।। ६।।

अन्वय—यथा, कार्यभूतः, (अयम्) आकाशः, एकः, एव, द्विधा, नहि, (भवति) तथा विजानतः, (विज्ञस्य पुरुषस्य कृते) हेतुभूतः, अयम्, आत्मा, (अपि) एकः, एव, भवति।

अर्थ—जैसे कार्यभूत यह आकाश एक ही है, दो नहीं हैं, वैसे ही विज्ञ पुरुष (विद्वान्) के लिए, हेतुभूत यह आत्मा भी एक ही है।। ६।।

एकोऽपि द्वयवद् भाति यथाकाश उपाधितः।
एकोऽपि द्वयवत्पूर्णस्तथात्माऽयमुपाधितः।। ७।।

अन्वय—यथा, एकः, अपि, आकाशः, उपाधितः, द्वयवत्, भाति, तथा, एकः, अपि, पूर्णः, अयम्, आत्मा, उपाधितः, द्वयवत्, भाति।

अर्थ—जैसे एक ही आकाश, (घट मठादि) उपाधियों के द्वारा दो (अनेक) हो जाता है, उसी प्रकार एक ही पूर्ण यह आत्मा (अंतःकरणादि) उपाधि के द्वारा अनेक मालूम पड़ता है।। ७।।

कारणोपाधिचैतन्यं कार्यसंस्थचितोऽधिकम्।
न घटाभ्रान्मृदाकाशः कुत्रचिन्नाधिको भवेत्।। ८।।

अन्वय—कारणोपाधिचैतन्यम्, कार्यसंस्थचितः, अधिकम् यथा, घटाभ्रात्, (घटाकाशात्) मृदाकाशः, कुत्रचित् अधिकः, न, भवेत् (इति) न।

अर्थ—जैसे घटाकाश से मिट्टी-आकाश अधिक न हो ऐसा कहीं नहीं होता (क्योंकि कारण व्यापक होने से मिट्टी घटका कारण होने की वजह से घट से व्यापक होगी तो उससे निरूपित आकाश भी घटाकाश से व्यापक होगा), उसी तरह कार्योपाधि में परिच्छिन्न चैतन्य (जीव) की अपेक्षा कारण उपाधि वाला (ईश्वर) चैतन्य अधिक (व्यापक, समर्थ) ही है।। ८।।

निर्गतोपाधिराकाश एक एव यथा भवेत्।
एक एव तथात्माऽयं निर्गतोपाधिकः सदा।। ९।।

अन्वय—यथा, निर्गतोपाधिः, आकाशः, एकः, एव, भवेत्, तथा, निर्गतोपाधिकः, अयम्, आत्मा (अपि) सदा, एकः, एव।

अर्थ—जैसे (घटमठादि) उपाधि से रहित यह आकाश एक ही है, उसी प्रकार (देहेन्द्रियादि तथा विराट् आदि) उपाधि से रहित यह आत्मा भी एक ही है।। ९।।

आकाशादन्य आकाश आकाशस्य यथा न हि।
एकत्वादात्मनो नान्य आत्मा सिध्यति चात्मनः।। १०।।

अन्वय—यथा, आकाशात्, अन्यः, आकाशस्य (सम्बन्धी कश्चित्) आकाशः, न हि (तथा एव) आत्मनः, एकत्वात्, आत्मनः, सम्बन्धी, अन्यः, (कश्चित्) आत्मा, न, सिध्यति।

अर्थ—जिस प्रकार महाकाश से अन्य (महाकाश सम्बन्धी) कोई आकाश नहीं मालूम पड़ता है, उसी प्रकार आत्मा के एक होने से (आत्मा का सम्बन्धी) अतिरिक्त कोई आत्मा सिद्ध नहीं होता है।। १०।।

मेघयोगाद् यथा नीरं करकाकारतामियात्।
मायायोगात्तथैवात्मा प्रपञ्चाकारतामियात्।। ११।।

अन्वय—यथा, मेघयोगात्, नीरम्, करकाकारताम्, इयात्, तथा, एव, मायायोगात्, आत्मा प्रपञ्चाकारताम्, इयात्।

अर्थ—जिस प्रकार मेघ के संबंध से जल, करक (ओले इत्यादि) के आकार को धारण करता है, उसी प्रकार माया के सम्बन्ध से आत्मा भी, प्रपञ्चाकार को धारण करता है, अर्थात् संसारी बनता है।। ११।।

वर्षोपल इवाभाति नीरमेवाभ्रयोगतः।
वर्षोपलविनाशेन नीरनाशो यथा न हि।। १२।।
आत्मैवायं तथा भाति मायायोगात्प्रपञ्चवत्।
प्रपञ्चस्य विनाशेन स्वात्मनाशो न हि क्वचित्।। १३।।

अन्वय–यथा, अभ्रयोगतः, नीरम्, एव, वर्षोपल, इव, आभाति, (परन्तु) यथा, वर्षोपलविनाशेन, नीरनाशः, न हि, भवति, तथा मायायोगात्, अयम्, एव, आत्मा, प्रपञ्चवत्, भाति, प्रपञ्चस्य, विनाशेन, क्वचित्, स्वात्मनाशः, न हि, भवति।

अर्थ–जैसे जल ही मेघ के सम्बन्ध से ओले की तरह मालूम पड़ता है, परन्तु ओले के नाश से जल का विनाश नहीं होता है।। १२।। वैसे ही माया के योग से यह आत्मा ही प्रपञ्च की तरह मालूम पड़ता है, परन्तु प्रपञ्च के विनाश से कभी भी आत्मा का विनाश नहीं होता है।। १३।।

जलादन्य इवाभाति जलोत्थो बुद्बुदो यथा।
तथात्मनः पृथगिव प्रपञ्चोऽयमनेकधा।। १४।।

अन्वय–यथा, जलोत्थः, बुद्बुदः, जलात्, अन्य, इव, आभाति, तथा, अयम्, (आत्मनः सकाशाज्जातः) प्रपञ्चः, (अपि) आत्मनः, पृथक्, इव, अनेकधा, भाति।

अर्थ–जिस प्रकार जल से ही उत्पन्न हुआ बुलबुला, जल से अलग-सा मालूम पड़ता है, उसी प्रकार आत्मा से ही उत्पन्न हुआ यह प्रपञ्च भी आत्मा से अलग-सा अनेक प्रकार का प्रतीत होता है।। १४।।

यथा बुद्बुदनाशेन जलनाशो न कर्हिचित्।
तथा प्रपञ्चनाशेन नाशः स्यादात्मनो न हि ।। १५।।

अन्वय–यथा, बुद्बुदनाशेन, कर्हिचित्, जलनाशः, न, भवति, तथा, प्रपञ्चनाशेन, आत्मनः, नाशः, न हि, स्यात्।

अर्थ–जिस प्रकार बुलबुलों के नाश से, कभी भी जल का नाश नहीं होता है, उसी प्रकार प्रपञ्च के नाश से, कभी भी आत्मा का नाश नहीं होता है।। १५।।

अहिनिर्ल्वयनीजातः शुच्यादिर्नाहिमाप्नुयात्।
तथा स्थूलादिसंभूतः शुच्यादिर्नाप्नुयादिमम्।। १६।।

अन्वय–यथा, अहिनिर्ल्वयनीजातः, शुच्यादिः, अहिम्, न, आप्नुयात्, तथा, स्थूलादिसम्भूतः, शुच्यादिः, इमम् (आत्मानम) न, आप्नुयात्।

अर्थ–जिस प्रकार सर्प की कैंचुली में सम्पादित सफाई आदि सर्प को प्राप्त नहीं होती है, उसी प्रकार स्थूल शरीर आदि में सम्पादित स्वच्छता आदि भी, आत्मा को प्राप्त नहीं होती है।। १६।।

त्यक्तां त्वचमहिर्यद्वदात्मत्वेन न मन्यते।
आत्मत्वेन सदा ज्ञानी त्यक्तदेहत्रयं तथा।। १७।।

अन्वय—यद्वत्, अहिः, त्यक्ताम्, त्वचम्, आत्मत्वेन, न मन्यते, तथा, ज्ञानी, सदा, त्यक्तदेहत्रयम्, आत्मत्वेन, न, मन्यते।

अर्थ—जिस प्रकार सर्प छोड़ी हुई कैंचुली को अपना स्वरूप नहीं समझता है, उसी प्रकार ज्ञानी भी, हमेशा छूटने वाले अर्थात् नष्ट होने वाले स्थूल, लिङ्ग व कारण नामक इन तीनों शरीरों को भी, आत्मा नहीं समझता है।।१७।।

अहिनिर्ल्वयनीनाशादहे र्नाशो यथा न हि।
देहत्रयविनाशेन नात्मनाशस्तथा भवेत्।। १८।।

अन्वय—यथा, अहिनिर्ल्वयनीनाशात्, अहेः, नाशः, न हि, (भवेत्) तथा, देहत्रयविनाशेन, आत्मनाशः, न, भवेत्।

अर्थ—जिस प्रकार सर्प की कैंचुली के नाश से, सर्प का नाश नहीं होता है, उसी प्रकार इन स्थूल सूक्ष्म व कारण रूप तीनों शरीरों के नाश से, आत्मा का नाश नहीं होता है।। १८।।

तक्रादि लवणोपेतमज्ञैर्लवणवद्यथा।
आत्मा स्थूलादिसंयुक्तो दृश्यते स्थूलकादिवत्।। १९।।

अन्वय—लवणोपेतम्, तक्रादि, यथा, अज्ञैः, लवणवत्, (मन्यते) तथा, स्थूलादिसंयुक्तः, आत्मा (अपि) अज्ञैः, स्थूलकादिवत्, दृश्यते।

अर्थ—लवण से युक्त छाछ आदि को मूर्ख लोग जिस प्रकार लवण ही मान लेते हैं, उसी प्रकार स्थूल शरीर से संयुक्त आत्मा को भी मूर्ख लोग स्थूल शरीर ही मान लेते हैं।। १९।।

अयःकाष्ठादिकं यद्वद् वह्निवद् वह्नियोगतः।
भाति स्थूलादिकं सर्वमात्मवत् स्वात्मयोगतः।। २०।।

अन्वय—यद्वत्, अयःकाष्ठादिकम्, वह्नियोगतः, वह्निवत्, भाति (तद्वत्) स्वात्मयोगतः, सर्वम्, स्थूलादिकम्, आत्मवत्, भाति।

अर्थ—जिस प्रकार वह्नि के संयोग से लोहे का गोला लकड़ी आदि वह्नि के समान मालूम पड़ते हैं, उसी प्रकार अपनी आत्मा के संयोग से यह सभी स्थूल देहादि भी, आत्मा की तरह मालूम पड़ता है।। २०।।

दाहको नैव दाह्यं स्याद् दाह्यं तद्वन्न दाहकः।
नैवात्माऽयमनात्मा स्यादनात्माऽयं न चात्मकः।। २१।।

अन्वय–(यद्वत्) दाहकः, दाह्यम्, न, एव, स्यात्, दाह्यम्, अपि, दाहकः, न, स्यात्, तद्वत्, अयम्, आत्मा, अनात्मा, न, एव, स्यात्, न, च, अयम्, अनात्मा, आत्मकः स्यात्।

अर्थ–जिस प्रकार दाहक अग्नि दाह्य काष्ठादि नहीं है, और दाह्य काष्ठादि दाहक अग्नि नहीं है, अर्थात् ये दोनों परस्पर भिन्न हैं, उसी प्रकार आत्मा अनात्मा नहीं है, और अनात्मा आत्मा नहीं है, अर्थात् आत्मा व अनात्मा में परस्पर भेद है।। २१।।

प्रमेयादित्रयं सार्धं भानुना घटकुड्यवत्।
येन भाति स एवाहं प्रमेयादिविलक्षणः।। २२।।

अन्वय–भानुना, घटकुड्यवत्, प्रमेयादित्रयम्, सार्धम्, येन (आत्मना) भाति, स, एव, प्रमेयादिविलक्षणः, अहम्, अस्मि।

अर्थ–सूर्य के द्वारा, घट व भित्ति की तरह, जिस परमात्मा द्वारा, प्रमेयादि तीनों (प्रमेय, प्रमाता, प्रमाण) एक साथ प्रकाशित होते हैं, वही प्रमेयादि से विलक्षण, अर्थात् प्रमेयादि से भिन्न मैं (आत्मा) हूँ।। २२।।

भानुस्फुरणतो यद्वत् स्फुरतीव घटादिकम्।
स्फुरतीव प्रमेयादिरात्मस्फुरणतस्तथा।। २३।।

अन्वय–यद्वत्, भानुस्फुरणतः, घटादिकम्, स्फुरति, इव, तथा (तद्वत्) आत्मस्फुरणतः, प्रमेयादिः, स्फुरति, इव।

अर्थ–जिस प्रकार सूर्य के स्फुरण=प्रकाश से घटादि भी प्रकाशयुक्त से मालूम पड़ते हैं, उसी प्रकार आत्मा के प्रकाश से, वे प्रमेयादि (प्रमेय, प्रमाता, प्रमाण) भी प्रकाशयुक्त से मालूम पड़ते हैं। तात्पर्य यह है कि 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' इस श्रुति-सिद्धान्त के अनुसार उसी परमात्मा के प्रकाश से, सब प्रमेयादि प्रकाशित होते हैं, उसी की सत्ता से इनका भी अस्तित्व है।।२३।।

पिष्टादि र्गुडसम्पर्काद् गुडवत्प्रीतिमान् यथा।
आत्मयोगात् प्रमेयादिरात्मवत् प्रीतिमान् भवेत्।। २४।।

अन्वय–यथा, गुडसम्पर्कात्, पिष्टादिः, गुडवत्, प्रीतिमान्, भवति, तथा, आत्मयोगात् प्रमेयादिः, आत्मवत्, प्रीतिमान् भवेत्।

अर्थ–जिस प्रकार गुड के सम्पर्क से पिष्टादि चूर्ण भी, गुड की तरह स्वादिष्ट मीठा होता है, उसी प्रकार आत्मा के सम्बन्ध से, ये सब प्रमेयादि भी आत्मा की ही तरह प्रिय मालूम पड़ते हैं। वस्तुतः प्रमेयादि जड, व चेतनवर्ग जितना भी है, वह सब स्वतः प्रिय नहीं है, यथाकथञ्चित् उसमें प्रियता मान

भी ली जाय, तो भी वह सब त्रिगुणात्मक होने से अप्रियादि लवलेशों से ही संवलित है, इस प्रकार के पदार्थों में भी जो प्रियत्व बुद्धि होती है, उसका कारण है आत्म-सम्पर्क, क्योंकि संसार में वही एकमात्र सर्वप्रिय वस्तु है। याज्ञवल्क्य का मैत्रेयी के प्रति यही उपदेश भी है 'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति'।। २४।।

घटनीरान्नपिष्टानामुष्णत्वं वह्नियोगतः।
वह्निं विना कथं तेषामुष्णता स्याद्यथा क्वचित्।। २५।।
भूतभौतिकदेहानां स्फूर्तिता स्वात्मयोगतः।
विनात्मानं कथं तेषां स्फूर्तिता स्यात्तथा क्वचित्।। २६।।

अन्वय—यथा, घटनीरान्नपिष्टानाम्, उष्णत्वम्, वह्नियोगतः, भवति, वह्निम्, विना, तेषाम्, उष्णता, क्वचित्, कथम्, स्यात्, तथा, भूतभौतिकदेहानाम्, (अपि) स्फूर्तिता, स्वात्मयोगतः, स्यात्, आत्मानम्, विना, तेषाम्, स्फूर्तिता, क्वचित्, कथम्, स्यात्,।

अर्थ—जिस प्रकार घट, जल, अन्न, और चूर्णादि पदार्थों की उष्णता, अग्नि के संयोग से ही होती है, अग्नि के बिना उनमें कथमपि उष्णता नहीं आ सकती है, उसी प्रकार भूत-भौतिक देहों में भी, अर्थात् जड-चेतन वर्ग में भी जो स्फुरणात्मक चेतना है, वह आत्मा के सम्बन्ध से ही है, आत्मा के बिना उन पदार्थों में स्फुरणात्मक प्रकाश कहाँ से आ सकता है। कहने का अभिप्राय यह है, कि इन भौतिक पदार्थों में तो केवल नाम-रूपता मात्र है, न कि सत्ता, भान व प्रियता। यह सत्तात्मक, स्फुरणात्मक तथा आनन्दात्मक जो स्वरूप है, वह तो आत्मा का है, अतः आत्मा के स्फुरण से ही इनमें भी स्फूर्ति आती है।। २६।।

नानाविधेषु कुम्भेषु वसत्येकं नभो यथा।
नानाविधेषु देहेषु तद्वदेको वसाम्यहम्।। २७।।

अन्वय—यथा, नानाविधेषु, कुम्भेषु, एकम्, नभः, वसति, तद्वत्, नानाविधेषु, देहेषु, एकः, अहम्, वसामि।

अर्थ—जिस प्रकार अनेक प्रकार के घड़ों में, एक ही आकाश रहता है उसी प्रकार अनेक प्रकार के शरीरों में भी केवल अद्वितीय मैं ही रहता हूँ।।२७।।

नानाविधत्वं कुम्भानां न यात्येव यथा नभः।
नानाविधत्वं देहानां तद्वदेव न याम्यहम्।। २८।।

अन्वय–यथा, नभः, कुम्भानाम्, नानाविधत्वम्, न, एव, याति, तद्वत्, अहम्, (अपि) देहानाम्, नानाविधत्वम्, न, यामि।

अर्थ–जिस प्रकार आकाश कुम्भों की अनेक-प्रकारता को प्राप्त नहीं करता है, उसी प्रकार 'मैं' (आत्मा) भी, शरीरों की अनेक-प्रकारता को प्राप्त नहीं करता हूँ।। २८।।

यथा घटेषु नष्टेषु घटाकाशो न नश्यति।
तथा देहेषु नष्टेषु नैव नश्यामि सर्वगः।। २९।।

अन्वय–यथा, घटेषु, नष्टेषु, (सत्सु) घटाकाशः, न, नश्यति, तथा, देहेषु, नष्टेषु, (सत्सु) सर्वगः, (अहम्) न, एव, नश्यामि।

अर्थ–जिस प्रकार घटों के नष्ट हो जाने पर भी, घटाकाश नष्ट नहीं होता है, उसी प्रकार शरीरों के नष्ट हो जाने पर भी, सर्वव्यापक शरीरी (आत्मा) कभी भी नष्ट नहीं होता है।। २९।।

उत्तमादीनि पुष्पाणि वर्तन्ते सूत्रके यथा।
उत्तमाद्यास्तथा देहा वर्तन्ते मयि सर्वदा।। ३०।।

अन्वय–यथा, उत्तमादीनि, पुष्पाणि, सूत्रके, वर्तन्ते, तथा, उत्तमाद्याः, देहाः, सर्वदा, मयि, वर्तन्ते।

अर्थ–जिस प्रकार माला के उत्तमोत्तम फूल एक सूत्र में पिरोये रहते हैं, उसी प्रकार उत्तमोत्तम देह भी मुझ परमात्मा में हमेशा अनुस्यूत रहते हैं।।३०।।

यथा न संस्पृशेत् सूत्रं पुष्पाणामुत्तमादिता।
तथा नैकं सर्वगं मां देहानामुत्तमादिता।। ३१।।

अन्वय–यथा, पुष्पाणाम्, उत्तमादिता, सूत्रम्, न, संस्पृशेत्, तथा, देहानाम् (अपि) उत्तमादिता, सर्वगम्, एकम्, माम्, न, संस्पृशेत्।

अर्थ–जिस प्रकार पुष्पों की श्रेष्ठता का सूत्र पर कोई असर नहीं होता है, उसी प्रकार देहों की उत्तमता का भी सर्वव्यापक, अद्वितीय एक मुझ पर कोई असर नहीं होता है।। ३१।।

पुष्पेषु तेषु नष्टेषु यद्वत् सूत्रं न नश्यति।
तथा देहेषु नष्टेषु नैव नश्याम्यहं सदा।। ३२।।

अन्वय–यद्वत्, तेषु, पुष्पेषु, नष्टेषु, (सत्सु) सूत्रम्, न, नश्यति, तथा देहेषु नष्टेषु, अहम्, सदा, न, एव, नश्यामि।

अर्थ–जिस प्रकार उन पुष्पों के नष्ट हो जाने पर भी सूत्र (डोरी) नष्ट नहीं होता है, उसी प्रकार शरीरों के नष्ट हो जाने पर भी, मैं कभी भी नष्ट

नहीं होता हूँ।। ३२।।

पर्यङ्करज्जुरन्ध्रेषु नानेवैकापि सूर्यभा।
एकोप्यनेकवद् भाति तथा क्षेत्रेषु सर्वगः।। ३३।।

अन्वय–यथा, एका, अपि, सूर्यभा, पर्यङ्करज्जुरन्ध्रेषु, नाना, इव, भाति, तथा, एकः, अपि, सर्वगः, क्षेत्रेषु, अनेकवत्, भाति।

अर्थ–जिस प्रकार एक ही सूर्य की प्रभा, पलङ्ग की रस्सी के छिद्रों में अनेक सी मालूम पड़ती है, उसी प्रकार एक ही सर्वव्यापक यह परमात्मा भी तत्तत् देहों में अनेक-सा मालूम पड़ता है।। ३३।।

रज्जुरन्ध्रस्थदोषादि सूर्यभां न स्पृशेद् यथा।
तथा क्षेत्रस्थदोषादि सर्वगं मां न संस्पृशेत्।। ३४।।

अन्वय–यथा, रज्जुरन्ध्रस्थदोषादि, (सर्पाकारत्वदीर्घत्वादि) सूर्यभाम्, न, स्पृशेत्, तथा, क्षेत्रस्थदोषादि, (सुखित्वदुःखित्वादि) सर्वगम्, माम्, न, संस्पृशेत्।

अर्थ–जिस प्रकार रस्सी व छिद्र में स्थित दोषादि, (सर्पाकारता, दीर्घता इत्यादि दोष) सूर्य की प्रभा से कोई सम्बन्ध नहीं रखते, उसी प्रकार क्षेत्रस्थ (शरीर में स्थित) सुखित्व, दुःखित्वादि दोषों का भी सर्वव्यापक मुझ से कोई सम्बन्ध नहीं है।। ३४।।

तद्रज्जुरन्ध्रनाशेषु नैव नश्यति सूर्यभा।
तथा क्षेत्रविनाशेषु नैव नश्यामि सर्वगः।। ३५।।

अन्वय–(यथा) तद्रज्जुरन्ध्रनाशेषु, सूर्यभा, न, एव, नश्यति, तथा, क्षेत्रविनाशेषु, सर्वगः (अहम्) न, एव, नश्यामि।

अर्थ–जिस प्रकार उस रस्सी व छिद्र के विनाश हो जाने पर भी, सूर्य की प्रभा का नाश नहीं होता है, उसी प्रकार शरीरों के नाश हो जाने पर भी, सर्वव्यापक मेरा नाश नहीं होता है।। ३५।।

देहो नाहं प्रदृश्यत्वाद् भौतिकत्वान्न चेन्द्रियम्।
प्राणो नाहमनेकत्वान्मनो नाहं चलत्वतः।। ३६।।

अन्वय–(देहस्य) प्रदृश्यत्वात् (हेतोः) अहम्, देहः, न। (इन्द्रियाणाम्) भौतिकत्वात्, (च) अहम्, इन्द्रियम्, न। (प्राणापानादिभिः प्राणानाम्) अनेकत्वात्, अहम्, प्राणः, न। (मनसः) चलत्वतः (चञ्चलत्वात्) अहम्, मनः, न।

अर्थ–शरीर के दृश्य होने के कारण मैं शरीर नहीं हूँ, बल्कि शरीर से

अलग हूँ। इन्द्रियों के भौतिक (पञ्चमहाभूत-निर्मित) होने से, मैं इन्द्रिय भी नहीं हूँ। प्राण, अपान, व्यान, उदानादि भेदों से प्राण के अनेक होने के कारण मैं प्राण भी नहीं हूँ। मन के चञ्चल होने से मैं मन भी नहीं हूँ। कहने का तात्पर्य यह है कि उक्त देहेन्द्रियों के लक्षणों से लक्षित न होने के कारण 'मैं' देहेन्द्रियों से पृथक् हूँ।। ३६।।

बुद्धि र्नाहं विकारित्वात्तमो नाहं जडत्वतः।
देहेन्द्रियादिकं नाहं विनाशित्वाद्घटादिवत्।। ३७।।

अन्वय—विकारित्वात्, (हेतोः) अहम्, बुद्धिः, न, जडत्वतः, अहम्, तमः, न, घटादिवत्, विनाशित्वात् (हेतोः) अहम्, देहेन्द्रियादिकम्, न, (अस्मीत्यर्थः)।

अर्थ—बुद्धि विकार-युक्त होने से मैं बुद्धि नहीं हूँ। बुद्धि तत्त्व प्रकृति का प्रथम परिणाम है, अतः विकारी है। तमोगुण-प्रधान जो स्थावर जड वर्ग है, वह भी मैं नहीं हूँ। न मैं 'तमस्' ही हूँ, क्योंकि वह स्वयं जड है (सत्त्व व रज की सहायता से कभी-कभी वह सक्रिय होता है)। रजःप्रधान जो देहेन्द्रियादि वर्ग है, वह भी मैं नहीं हूँ, क्योंकि ये सब घटादि की तरह विनाशशील हैं।।३७।।

देहेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्यज्ञानानि भासयन्।
अहंकारं तथा भामि चैतेषामभिमानिनम्।। ३८।।

अन्वय—अहम्, देहेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्यज्ञानानि, भासयन्, (अस्मि) तथा च, एतेषाम्, अभिमानिनम्, अहंकारम्, (अपि) भासयन्, भामि।

अर्थ—मैं (आत्मा) देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि व अज्ञान को प्रकाशित करता हुआ, इनके अभिमानी अहंकार को भी प्रकाशित करता हुआ, स्वयं भासित होता हूँ।। ३८।।

सर्वं जगदिदं नाहं विषयत्वादिदंधियः।
अहं नाहं सुषुप्त्यादावहमः साक्षितः सदा।। ३९।।

अन्वय—इदम्, सर्वम्, जगत्, इदंधियः, विषयत्वात्, अहम्, न। सुषुप्तौ, सदा, अहमः, साक्षितः, अहम्, अहम्, न।

अर्थ—यह सारा जगत् तो इदंबुद्धि का विषय है (इदन्तया ज्ञेय है) अतः जगत् 'मैं' नहीं हूँ। सुषुप्ति (गाढ निद्रा) अवस्था में 'सुखमहमस्वाप्सम् न किञ्चिदवेदिषम्' इत्यादि प्रमाणों से सुख तथा अज्ञान का साक्षी होने के कारण 'मैं' (आत्मा) वह अहंकार नहीं हूँ जो सुषुप्ति में रहता नहीं है।।३९।।

सुप्तौ यथा निर्विकारस्तथाऽवस्थाद्वयेऽपि च।
द्वयोर्मात्राभियोगेन विकारीव विभाम्यहम्।। ४०।।

अन्वय—यथा, सुप्तौ, अहम्, निर्विकारः, तथा, अवस्थाद्वये (जाग्रत्स्वप्नयोः) अपि, निर्विकारः (अहम्, अस्मि) द्वयोः, मात्राभियोगेन, अहम्, विकारी, इव, विभामि।

अर्थ—जिस प्रकार सुषुप्ति अवस्था में 'मैं' निर्विकार हूँ, उसी प्रकार जाग्रत् व स्वप्नावस्था में भी 'मैं' निर्विकार ही हूँ। उस समय उन दोनों अवस्थाओं के विषयों के साथ सम्पर्क होने से लोगों को 'मैं' विकारी (परिवर्तनों वाला) जैसा मालूम पड़ता हूँ।। ४०।।

उपाधिनीलरक्ताद्यैः स्फटिको नैव लिप्यते।
तथाऽऽत्मा कोशजैः सर्वैः कामाद्यै र्नैव लिप्यते।। ४१।।

अन्वय—यथा, उपाधिनीलरक्ताद्यैः, स्फटिकः, न, एव, लिप्यते, तथा, कोशजैः, सर्वैः, कामाद्यैः, (च) आत्मा, न, एव लिप्यते।

अर्थ—जिस प्रकार उपाधिभूत (समीपस्थित) नीले व लाल पुष्पों के सम्बन्ध से स्वच्छ स्फटिक लिप्त नहीं रहता है, अर्थात् स्फटिक मणि की स्वच्छता व धवलता में उन नील रक्त वर्णों का कोई असर नहीं होता है, उसी प्रकार पञ्चकोश (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय व आनन्दमय) से सम्बद्ध इन कामादि विकारों से, आत्मा भी लिप्त नहीं रहता है, यद्यपि आत्मा के सन्निकट होने से इनका सम्बन्ध रहता है, फिर भी स्फटिक की तरह आत्मा के स्वरूप में इनसे किसी प्रकार का विकार नहीं आता है।। ४१।।

फालेन भ्राम्यमाणेन भ्रमतीव यथा मही।
अगोऽप्यात्मा विमूढेन चलतीव प्रदृश्यते।। ४२।।

अन्वय—यथा, भ्राम्यमाणेन, फालेन, मही, भ्रमति, इव (दृश्यते) तथा, अगः, आत्मा, अपि, विमूढेन, चलति, इव, प्रदृश्यते।

अर्थ—जिस प्रकार जब सिर में चक्कर आता है तब पृथिवी भी घूमती हुई जैसी लगती है, उसी प्रकार अचल आत्मा को भी मूढ, चलता हुआ जैसा देखता है।। ४२।।

देहत्रयमिदं नित्यमात्मत्वेनाभिमन्यते।
यावत्तावदयं मूढो नानायोनिषु जायते।। ४३।।

अन्वय—यावत्, अयम्, मूढः, इदम्, देहत्रयम्, आत्मत्वेन, अभिमन्यते, तावत्, नानायोनिषु, जायते।

अर्थ—जब तक यह मूर्ख, कारण, सूक्ष्म व स्थूल इन तीनों देहों को आत्मा मानता रहेगा, तब तक (अवश्य) अनेक प्रकार की योनियों में पैदा होता रहेगा।। ४३।।

निद्रादेहजदुःखादि र्जाग्रद्देहं न संस्पृशेत्।
जाग्रद्देहजदुःखादिस्तथात्मानं न संस्पृशेत्।। ४४।।

अन्वय—यथा, निद्रादेहजदुःखादिः, जाग्रद्देहम्, न, संस्पृशेत्, तथा, जाग्रद्देहजदुःखादिः, आत्मानम्, न, संस्पृशेत्।

अर्थ—जिस प्रकार निद्रादेह (निद्राजन्य जो स्वप्न, उसमें अनुभूत जो देह) के दुःख आदि जाग्रत् अवस्था वाले देह में कुछ भी असर नहीं करते हैं, उसी प्रकार जाग्रत् अवस्था के देह के दुःखों का, आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं रहता है, अर्थात् उन देहजन्य दुःखों का आत्मा पर कोई असर नहीं पड़ता है।। ४४।।

जाग्रद्देहवदाभाति निद्रादेहस्तु निद्रया।
निद्रादेहविनाशेन जाग्रद्देहो न नश्यति।। ४५।।
तथाऽयमात्मवद् भाति जाग्रद्देहस्तु जागरात्।
जाग्रद्देहविनाशेन नात्मा नश्यति कर्हिचित्।। ४६।।

अन्वय—यथा, निद्रादेहः, तु, निद्रया, जाग्रद्देहवत्, आभाति, निद्रादेहविनाशेन, जाग्रद्देहः, न, नश्यति, तथा, अयम्, जाग्रद्देहः, तु, जागरात्, आत्मवत्, आभाति, जाग्रद्देहविनाशेन कर्हिचित् (अपि) आत्मा, न, नश्यति।

अर्थ—जैसे निद्रादेह निद्रा के कारण जाग्रद्देह की तरह मालूम पड़ता है, और निद्रादेह के विनाश से, अर्थात् स्वप्न में देखे हुए देह के विनाश से, जाग्रद्देह नष्ट नहीं होता है, वैसे ही यह जाग्रद्देह भी, जाग्रत् अवस्था में चैतन्य की छाया से चैतन्य (आत्मा) की तरह मालूम पड़ता है, परन्तु इस जाग्रद्देह के विनाश से, कभी भी आत्मा का नाश नहीं होता है।। ४५।।४६।।

हित्वाऽयं स्वाप्निकं देहं जाग्रद्देहमपेक्षते।
जाग्रद्देहप्रबुद्धोऽयं हित्वात्मानं यथा तथा।। ४७।।

अन्वय—यथा, अयम्, (जनः) स्वाप्निकम्, देहम्, हित्वा, जाग्रद्देहम्, अपेक्षते, तथा, जाग्रद्देहप्रबुद्धः, अयम्, (जाग्रद्देहमपि क्षणभङ्गुरं मत्वा तम् जाग्रद्देहमपि) हित्वा, आत्मानम्, अपेक्षते।

अर्थ—जिस प्रकार यह (साधकजन) स्वप्न-कालिक शरीर को छोड़कर,

जाग्रत् अवस्था वाले शरीर की इच्छा रखता है, उसी प्रकार इस जाग्रत् अवस्था वाले शरीर को भी स्वप्नकालिक शरीर की तरह क्षणभङ्गुर समझ कर, (एक स्थिर तत्त्व) आत्मा की इच्छा करता है। (तात्पर्य है कि जाग्रत् की अपेक्षा से जैसे स्वप्न हेय है वैसे परमार्थ की अपेक्षा से जाग्रत् हेय है।)।। ४७।।

स्वप्नभोगे यथैवेच्छा प्रबुद्धस्य न विद्यते।
असत्स्वर्गादिके भोगे नैवेच्छा ज्ञानिनस्तथा।। ४८।।

अन्वय—यथा, प्रबुद्धस्य, स्वप्नभोगे, इच्छा, न, एव, विद्यते, तथा, ज्ञानिनः, असत्स्वर्गादिके, भोगे, इच्छा, न, एव, (भवति)।

अर्थ—जिस प्रकार जगे हुए व्यक्ति को स्वप्न भोग की अर्थात् स्वप्न-कालिक भोग्य पदार्थों की इच्छा नहीं होती है, उसी प्रकार ज्ञानी को भी असत्, विनाशशील जो स्वर्गस्थ भोग्य पदार्थ हैं, उनके लिये इच्छा नहीं होती है।।४८।।

भोक्तु र्बहि र्यथा भोग्यः सर्पो दृषदि कल्पितः।
रूपशीलादयश्चात्मभोगा भोग्यस्वरूपकाः।। ४९।।

अन्वय—यथा, दृषदि, कल्पितः, भोग्यः, सर्पः, भोक्तुः, बहिः, अस्ति, च (तथा) रूपशीलादयः, आत्मभोगाः, भोग्यस्वरूपकाः, (भोक्तुर्बहिः सन्ति)।

अर्थ—जिस प्रकार शिलाखण्ड में कल्पित जो भोग्य सर्प है, वह भोक्ता से बाह्य अर्थात् उसके स्वरूप से बहिर्भूत है, उसी प्रकार रूप शील आदि जो गुण आत्मा द्वारा भोगे जाते हैं, ये भी विषयस्वरूप हैं, भोक्ता आत्मा से पृथक् बाह्य हैं। (रूप से स्थूल देह के धर्म, शील से सूक्ष्म के और आदि से कारण देह के धर्म समझने चाहिये। 'ये मेरे धर्म हैं' इस अभिमान से होता सुख-दुःख इनका भोग है)।। ४९।।

ज्ञस्य नास्त्येव संसारो यद्वदज्ञस्य कर्मिणः।
जानतो नैव भीर्यद्वद्रज्जुसर्पमजानतः।। ५०।।

अन्वय—यद्वत्, अज्ञस्य, कर्मिणः, संसारः, (अस्ति) तद्वत्, ज्ञस्य, संसारः, नास्ति, एव, यद्वत्, रज्जुसर्पम्, अजानतः (जनस्य) भीः, भवति, तद्वत्, रज्जुसर्पम्, जानतः, (जनस्य) भीः, न, एव, भवति।

अर्थ—जिस प्रकार अज्ञ (अविद्वान्) कर्मी (कर्मकाण्ड में ही निमग्न) को यह संसार सत्य लगता है, उस प्रकार विद्वान् को यह संसार सत्य नहीं मालूम

पड़ता है, क्योंकि जिसको रस्सी में कल्पित सर्प का सही ज्ञान नहीं है, उसी को उससे भय होगा, पर जिसने रस्सी को अच्छी तरह देख लिया है, उसको उस रस्सी से सर्प का भय क्यों होगा! सर्प जिस प्रकार रस्सी में कल्पित है, उसी प्रकार यह संसार भी अधिष्ठानभूत इस चैतन्य में कल्पित है, कल्पित वस्तु से विज्ञ को कोई भय शोकादि नहीं होते हैं।। ५०।।

सैन्धवस्य घनो यद्वज्जलयोगाज्जलं भवेत्।
स्वात्मयोगात्तथा बुद्धिरात्मैव ब्रह्मवेदिनः।। ५१।।

अन्वय—यद्वत्, सैन्धवस्य, घनः, जलयोगात्, जलम्, भवेत्, तथा, ब्रह्मवेदिनः, बुद्धिः, स्वात्मयोगात्, आत्मा, एव, भवति।

अर्थ—जिस प्रकार नमक की डली, जल के सम्पर्क से (घुलमिलकर) जल ही हो जाती है, उसी प्रकार ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी की बुद्धि भी आत्मसम्पर्क से आत्मा ही हो जाती है। (जैसे नमक जल नहीं हो जाता, जल जैसा लगता है वैसे बुद्धि आत्मा जैसी हो जाती है। गीताभाष्य में बताया है कि जैसा आत्मा है वैसी बुद्धि हो जाये यही आत्माकार बुद्धि या आत्मज्ञान है)।। ५१।।

तोयाश्रयेषु सर्वेषु भानुरेकोऽप्यनेकवत्।
एकोऽप्यात्मा तथा भाति सर्वक्षेत्रेष्वनेकवत्।। ५२।।

अन्वय—यथा, एकः, अपि, भानुः, सर्वेषु, तोयाश्रयेषु, अनेकवत्, भाति, तथा, एकः, अपि, आत्मा, सर्वक्षेत्रेषु, अनेकवत्, भाति।

अर्थ—जिस प्रकार एक ही सूर्य, सभी नदी तालाब पोखरा इत्यादि जला-धारों में अनेक जैसा मालूम पड़ता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा, सभी शरीरों या प्रत्येक शरीर में अनेक-सा मालूम पड़ता है।। ५२।।

भानोरन्य इवाभाति जलभानु र्जले यथा।
आत्मनोऽन्य इवाभासो भाति बुद्धौ तथात्मनः।। ५३।।

अन्वय—यथा, जले, जलभानुः, भानोः, अन्य, इव, आभाति, तथा, बुद्धौ, आत्मनः, आभासः, (अपि) आत्मनः, अन्य, इव, भाति।

अर्थ—जिस प्रकार जल में प्रतिबिम्बित जलसूर्य, बिम्बभूत सूर्य से पृथक्-सा मालूम पड़ता है, उसी प्रकार बुद्धि में प्रतिबिम्बित चिदाभास भी (या आत्माभास भी) आत्मा से अन्य-सा मालमू पड़ता है। (यद्यपि बिम्ब से अतिरिक्त प्रतिबिम्ब की अपनी कोई पृथक् सत्ता नहीं है, फिर भी प्रतीत पृथक् होता है। प्रतिबिम्ब के व्यावहारिक प्रयोग हैं पर इतने मात्र से वह सत्य नहीं हो जाता, इसी प्रकार चिदाभास संसरणादि का भोक्ता होने पर भी सत्य नहीं है।)।। ५३।।

बिम्वं विना यथा तीरे प्रतिबिम्वो भवेत् कथम्।
विनात्मानं तथा बुद्धौ चिदाभासो भवेत् कथम्।। ५४।।

अन्वय–यथा, नीरे, बिम्बम्, विना, कथम्, प्रतिबिम्बः, भवेत्, (न कथमपीत्यर्थः) तथा, बुद्धौ, आत्मानम्, विना, चिदाभासः, कथम्, भवेत्, (कथमपि न भविष्यतीत्यर्थः)।

अर्थ–जिस प्रकार जल में बिम्ब (असली सूर्यादि) के बिना प्रतिबिम्ब (परछाई में दिखलाई देने वाला सूर्य) नहीं हो सकता है, उसी प्रकार बुद्धि में भी आत्मा के बिना चिदाभास (चिच्छाया) कैसे हो सकता है।। ५४।।

प्रतिविम्बचलत्वाद्या यथा विम्बस्य कर्हिचित्।
न भवेयुस्तथाऽऽभासकर्तृत्वाद्यास्तु नात्मनः।। ५५।।

अन्वय–यथा, प्रतिबिम्बचलत्वाद्याः, (प्रतिबिम्बे स्थिताश्चलत्व-कम्पनादिधर्माः) बिम्बस्य, कर्हिचित्, (अपि) न, भवेयुः, तथा, आभास-कर्तृत्वाद्याः (चिदाभासे स्थिताः कर्तृत्वभोक्तृत्वाद्या धर्माः अपि) आत्मनः, कर्हिचित् (अपि) न भवेयुः।

अर्थ–जिस प्रकार प्रतिबिम्ब में स्थित चलन कम्पनादि धर्म, बिम्ब में कभी भी नहीं होते हैं, उसी प्रकार चिदाभास में स्थित, कर्तृत्व भोक्तृत्वादि धर्म भी, आत्मा के कभी भी नहीं होते हैं।। ५५।।

जले शैत्यादिकं यद्वज्जलभानुं न संस्पृशेत्।
बुद्धेः कर्मादिकं तद्वच्चिदाभासं न संस्पृशेत्।। ५६।।

अन्वय–यद्वत्, जले, (स्थितम्) शैत्यादिकम्, जलभानुम्, न, संस्पृशेत्, तद्वत्, बुद्धेः, कर्मादिकम्, चिदाभासम्, न, संस्पृशेत्।

अर्थ–जिस प्रकार जल में वर्तमान शीतलतादिक धर्म, जल में प्रतिबिम्बित जल-सूर्य को स्पर्श नहीं करते हैं, (जलसूर्य पर जैसे उन शीतलतादि धर्मों का असर नहीं होता है) उसी प्रकार बुद्धि में स्थित जो क्रियायें हैं, उनका असर चिदाभास पर नहीं होता है।। ५६।।

बुद्धेः कर्तृत्व-भोक्तृत्व-दुःखित्वाद्यैस्तु संयुतः।
चिदाभासो विकारीव शरावस्थाम्बुभानुवत्।। ५७।।

अन्वय–बुद्धेः, कर्तृत्वभोक्तृत्वदुःखित्वाद्यैः, तु, संयुतः, चिदाभासः, शरावस्थाम्बुभानुवत्, विकारी, इव, आभाति।

अर्थ–बुद्धि के कर्तृत्व, भोक्तृत्व, दुःख, सुखादि धर्मों से संयुक्त चिदाभास (जीव) कसोरे या कटोरे में स्थित जल में प्रतिबिम्बित सूर्य की तरह, अपने

को भी विकारयुक्त मानता है।। ५७।।

शरावस्थोदके नष्टे तत्स्थो भानुर्विनष्टवत्।
बुद्धे र्लये तथा सुप्तौ नष्टवत् प्रतिभात्ययम्।। ५८।।

अन्वय—यथा, शरावस्थोदके, नष्टे, (सति) तत्स्थः, भानुः, विनष्टवत् भाति, तथा, सुप्तौ, बुद्धेः, लये, (सति) अयम्, (चिदाभासः), अपि, नष्टवत्, प्रतिभाति।

अर्थ—जिस प्रकार शरावस्थ (कसोरे में स्थित) जल के नष्ट हो जाने पर, उसमें प्रतिबिम्बित सूर्य भी नष्ट-सा मालूम पड़ता है, उसी प्रकार सुषुप्ति अवस्था में, बुद्धि के लीन हो जाने पर, यह चिदाभास भी नष्ट हुआ-सा प्रतीत होता है।। ५८।।

जलस्थार्कं जलं चोर्मिं भासयन् भाति भास्करः।
आत्माभासं धियं बुद्धेः कर्तृत्वदीनयं तथा।। ५६।।

अन्वय—यथा, भास्करः, जलस्थार्कम्, जलम्, ऊर्मिम्, च, भासयन्, भाति, तथा, अयम्, आत्मा (अपि) आत्माभासम्, (चिदाभासमित्यर्थः) धियम्, बुद्धेः, कर्तृत्वादीन्, (अपि) भासयन्, भाति।

अर्थ—जिस प्रकार सूर्य जल में प्रतिबिम्बित सूर्य को, जल को, और जल की लहरों को भी प्रकाशित करता हुआ स्वयं भी प्रकाशित होता है, उसी प्रकार यह आत्मा भी चिदाभास को, बुद्धि को, और बुद्धि में स्थित जो कर्तृत्वादि (सुखित्व दुःखित्वादि) धर्म हैं, उनको प्रकाशित करता हुआ, स्वयं भी प्रकाशित होता है।। ५६।।

मेघावभासको भानुर्मेघच्छन्नोऽवभासते।
मोहावभासकस्तद्वन्मोहच्छन्नो विभात्ययम्।। ६०।।

अन्वय—यथा, मेघावभासकः, भानुः, मेघच्छन्नः, (भूत्वा) अवभासते, तद्वत्, मोहावभासकः, अयम्, (आत्मा) मोहच्छन्नः, (भूत्वा) विभाति।

अर्थ—जिस प्रकार मेघों का प्रकाशक सूर्य, स्वयं मेघों से ढका है—ऐसा प्रतीत होता है, उसी प्रकार मोह को प्रकाशित करने वाला यह आत्मा भी, स्वयं मोह से ढका हुआ-सा प्रतीत होता है।। ६०।।

भास्यं मेघादिकं भानुर्भासयन्प्रतिभासते।
तथा स्थूलादिकं भास्यं भासयन्प्रतिभात्ययम्।। ६१।।

अन्वय—यथा, भानुः, भास्यम्, मेघादिकम्, भासयन्, प्रतिभासते, तथा, भास्यम्, स्थूलादिकम्, भासयन्, अयम्, (आत्मा) प्रतिभाति।

अर्थ–जिस प्रकार भास्य (प्रकाश्य) घटपटादि को प्रकाशित करता हुआ सूर्य, स्वयं भी प्रकाशित होता है, उसी प्रकार भास्य (प्रकाश्य) जो स्थूल सूक्ष्म व कारण शरीर हैं, उनको प्रकाशित करता हुआ, यह आत्मा भी स्वयं प्रकाशित होता है।। ६१।।

सर्वप्रकाशको भानुः प्रकाश्यै र्नैव दूष्यते।
सर्वप्रकाशको ह्यात्मा सर्वैस्तद्वन्न दूष्यते।। ६२।।

अन्वय–यथा, सर्वप्रकाशकः, भानुः, प्रकाश्यैः, (घटपटादिभिः) न, एव, दूष्यते, तद्वत्, सर्वप्रकाशकः, आत्मा, हि, सर्वैः, (दृश्यैरित्यर्थः) न, दूष्यते।

अर्थ–जिस प्रकार सभी वस्तुओं का प्रकाशक सूर्य, प्रकाश्य घटपटादियों से दूषित नहीं होता है, उसी प्रकार सर्वप्रकाशक यह आत्मा भी, प्रकाश्य जो प्रपञ्च है, उससे दूषित नहीं होता है।। ६२।।

मुकुरस्थं मुखं यद्वन्मुखवत् प्रथते मृषा।
बुद्धिस्थाभासकस्तद्वदात्मवत् प्रथते मृषा।। ६३।।

अन्वय–यद्वत्, मुकुरस्थम्, मुखम्, मुखवत्, मृषा, प्रथते, तद्वत्, बुद्धिस्थाभासकः, (कुत्सित आभासः) आत्मवत्, मृषा, प्रथते।

अर्थ–जिस प्रकार दर्पण में स्थित मुखप्रतिबिम्ब मिथ्या ही मुख जैसा लगता है उसी प्रकार बुद्धि में प्रतिबिम्बित हुआ जो विषयावभासक (चिदाभास) है वह मिथ्या ही आत्मा जैसा लगता है। (अर्थात् चिदाभास का आत्मा लगना मिथ्या है)।। ६३।।

मुकुरस्थस्य नाशेन मुखनाशो भवेत् कथम्।
बुद्धिस्थाभासनाशेन नाशो नैवात्मनः क्वचित्।। ६४।।

अन्वय–मुकुरस्थस्य, नाशेन, मुखनाशः, कथम्, भवेत्, (न कथमपीत्यर्थः) बुद्धिस्थाभासनाशेन क्वचित्, आत्मनः, नाशः, न (भवति)।

अर्थ–दर्पण में स्थित प्रतिबिम्ब के नाश से मुख का नाश कैसे हो सकता है? अर्थात् कभी भी मुख का नाश नहीं होता है। बुद्धिस्थ चिदाभास के नाश से (चिदाभास से उपलक्षित बुद्धि व देहेन्द्रियादि के नाश से) आत्मा का नाश कभी-भी नहीं होता है। (तात्पर्य यह है कि उपाधि के नाश से उपधेय (आत्मादि) का नाश नहीं होता है। यहाँ दर्पण व बुद्धिवृत्ति देहेन्द्रियादि उपाधि हैं, प्रतिबिम्ब व आभास उपधेय हैं)।। ६४।।

ताम्रकल्पितदेवादिस्ताम्रादन्य इव स्फुरेत्।
प्रतिभास्यादिरूपेण तथात्मोत्थमिदं जगत्।। ६५।।

अन्वय—ताम्रकल्पितदेवादिः, (ताम्रनिर्मितदेवादिप्रतिमेत्यर्थः), यथा, ताम्रात्, अन्य, इव, स्फुरेत्, तथा, आत्मोत्थम्, इदम्, जगत्, (अपि) प्रतिभास्यादिरूपेण, (आत्मनोऽन्य इव) स्फुरेत्।

अर्थ—जैसे ताम्रादि धातुओं से निर्मित देवादि प्रतिमायें, ताँबे से अलग-सी मालूम पड़ती हैं, वैसे ही आत्मा से उत्पन्न यह जगत् भी प्रकाश्य, ज्ञेय, सद्विलक्षण आदि अपने रूपों वाला दीखने से आत्मा से अलग-सा मालूम पड़ता है। (तात्पर्य यह कि जिस प्रकार ताम्रादि से निर्मित मूर्तियाँ ताम्ररूप ही हैं, केवल उनमें कुछ रूपरेखा का ही अन्तर रहता है, मूलतः सब ताम्र ही हैं; उसी प्रकार आत्मा से जायमान यह सारा जगत् भी आत्मरूप ही है; थोड़ा-सा कल्पित सम्बन्ध व कल्पित रूपों व नामों का ही तो इसमें पृथक् आभास होता है। यह जो अलगाव ('नानेव') दीखता है यह मिथ्या है क्योंकि जिन नाम-रूप-कर्मों के कारण दीखता है वे मिथ्या हैं। वास्तव में 'अनुत्पन्नम् इदं जगत्' के अनुसार अजाति ही परमार्थ है)।। ६५।।

ईशजीवात्मवद् भाति यथैकमपि ताम्रकम्।
एकोऽप्यात्मा तथैवायमीशजीवादिवन्मृषा।। ६६।।

अन्वय—यथा, एकम्, अपि, ताम्रकम्, ईशजीवात्मवत्, भाति, (अर्थात् उपास्योपासकरूपेण भातीत्यर्थः) तथा, अयम्, एकः, अपि, आत्मा, मृषा, ईशजीवादिवत्, भाति।

अर्थ—जिस प्रकार एक ही ताँबा किसी मूर्ति में ईश्वर की तरह और राजा आदि की मूर्तियों में जीवात्मा की तरह प्रतीत होता है, उसी प्रकार एक ही यह आत्मा भी, ईश्वर जीव जगत् इस प्रकार के नाना रूपों में मिथ्या ही भासित होता है, सही रूप में तो यह सब आत्मा ही है।। ६६।।

यथेश्वरादिनाशेन ताम्रनाशो न विद्यते।
तथेश्वरादि नाशेन नाशो नैवात्मनः सदा।। ६७।।

अन्वय—यथा, ईश्वरादिनाशेन (ताम्रप्रतिमारूपेण स्थितस्येश्वरस्य नाशेनेत्यर्थः), ताम्रनाशः, न, विद्यते, तथा, ईश्वरादिनाशेन, (मायोपाधि-हिरण्यगर्भजगदादिनाशेनेत्यर्थः) आत्मनः, सदा, न, एव, नाशः।

अर्थ—जिस प्रकार ताम्र-प्रतिमा में प्रतिष्ठित देवादि के नाश से ताम्र का नाश नहीं होता है, उसी प्रकार मायोपाधि से विशिष्ट ईश्वर, जीव, जगत् के

नाश से आत्मा का नाश कभी भी नहीं होता है।। ६७।।

अध्यस्तो रज्जुसर्पोऽयं सत्यवद्रज्जुसत्तया।
तथा जगदिदं भाति सत्यवत् स्वात्मसत्तया।। ६८।।

अन्वय—यथा, अध्यस्तः, अयम्, रज्जुसर्पः, रज्जुसत्तया, सत्यवत्, भाति, तथा, आत्मसत्तया, इदम्, जगत्, अपि, सत्यवत्, भाति।

अर्थ—जिस प्रकार रज्जु में अध्यस्त (कल्पित) यह सर्प, रस्सी की सत्ता से सत्य सर्प-सा मालूम पड़ता है, उसी प्रकार आत्मा की सत्ता से ही यह जगत् भी सत्य-सा मालूम पड़ता है।। ६८।।

अध्यस्ताहेरभावेन रज्जुरेवावशिष्यते।
तथा जगदभावेन सदात्मैवावशिष्यते।। ६९।।

अन्वय—अध्यस्ताहेः, अभावेन, यथा रज्जुः एव, अवशिष्यते, तथा, जगदभावेन, सदा, आत्मा, एव, अवशिष्यते।

अर्थ—अध्यस्त (रज्जु में कल्पित) सर्प के अभाव में, जैसे केवल रस्सी ही अवशिष्ट रह जाती है, वैसे ही जगत् के अभाव में, केवल परमात्मा ही अवशिष्ट रह जाता है।। ६९।।

स्फटिके रक्तता यद्वदुपाधेर्नीलताम्बरे।
यथा जगदिदं भाति तथा सत्यमिवाद्वये।। ७०।।

अन्वय—यथा, उपाधेः, (सकाशात्) स्फटिके, रक्तता, अम्बरे (च) नीलता, भाति, तथा, अद्वये (कल्पितत्वात्) इदम्, जगत्, अपि, सत्यम्, इव, भाति।

अर्थ—जिस प्रकार जपाकुसुमादि उपाधि के कारण स्फटिक मणि में रक्तता और दूरतादि उपाधि के कारण आकाश में नीलता मालूम पड़ती है, उसी प्रकार अद्वैत में कल्पित होने के कारण यह संसार भी सत्य-सा प्रतीत होता है। (जैसे 'स्फटिक लाल है', 'आकाश नीला है' आदि सामानाधिकरण्य प्रतीत होता है वैसे 'जगत् सत्य है' यह सामानाधिकरण्य प्रतीत होता है। वस्तुतस्तु 'जगत् नहीं है' प्रतीत होना चाहिये, उसकी जगह 'जगत् है' यह सामानाधिकरण्य प्रतीति भी उक्त ढंग से ही सम्भव है।)।। ७०।।

स्फटिके रक्तता मिथ्या मृषा खे नीलता यथा।
तथा जगदिदं मिथ्या एकस्मिन्नद्वये मयि।। ७१।।

अन्वय—यथा, स्फटिके, रक्तता, मिथ्या, यथा च, खे, नीलता, मृषा, तथा, एकस्मिन्, अद्वये, मयि, इदम्, जगत्, अपि, मिथ्या अस्ति।

अर्थ—जैसे स्फटिक मणि की रक्तता मिथ्या है और आकाश की नीलिमा मिथ्या है, वैसे ही एक अद्वैत में कल्पित यह सारा जगत् भी मिथ्या है।।७१।।

जीवेश्वरादिभावेन भेदं पश्यति मूढधीः।
निर्भेदे निर्विशेषेऽस्मिन् कथं भेदो भवेद् ध्रुवम्।। ७२।।

अन्वय—मूढधीः, जीवेश्वरादिभावेन, भेदम्, पश्यति, निर्भेदे, निर्विशेषे, अस्मिन्, (अद्वैते) ध्रुवम्, भेदः, कथम्, भवेत्।

अर्थ—मूर्ख व्यक्ति जीव व ईश्वर में परस्पर भेद देखता है, परन्तु भेदशून्य, व निरुपाधिक इस अद्वैत तत्त्व में कोई भेद हो ही कैसे सकता है?।। ७२।।

लिङ्गस्य धारणादेव शिवोऽयं जीवतां व्रजेत्।
लिङ्गनाशे शिवस्यास्य जीवतावेशता कुतः।। ७३।।

अन्वय—अयम्, शिवः, लिङ्गधारणात्, एव, जीवताम्, व्रजेत्। लिङ्गनाशे, (मलापगमे सति) अस्य, शिवस्य, जीवतावेशता, कुतः।

अर्थ—लिंग शरीर (कार्योपाधि) में तादात्म्याध्यास करने से ही प्रत्यग्रूप शिव में जीवता की प्रतीति होती है। लिंगभंग अर्थात् कार्योपाधिका बाध होने पर इस शिव में जो जीवता का आवेश है वह क्यों रहेगा? अर्थात् उपाधिबाध से जीवभाव भी बाधित हो जायेगा।। ७३।।

शिव एव सदा जीवो जीव एव सदा शिवः।
वेत्त्यैक्यमनयो र्यस्तु स आत्मज्ञो न चेतरः।। ७४।।

अन्वय—शिवः, एव, सदा, जीवः, जीवः, एव, सदा, शिवः, यः, तु, अनयोः, ऐक्यम्, वेत्ति, सः, आत्मज्ञः, न, इतरः, (आत्मज्ञ इत्यर्थः)।

अर्थ—शिव ही सदा जीव है, और जीव ही सदा शिव है, जो इन दोनों के अभेद को जनता है, वस्तुतः वही आत्मज्ञ है, भेद मानने वाला नहीं।। ७४।।

क्षीरयोगाद् यथा नीरं क्षीरवद् दृश्यते मृषा।
आत्मयोगादनात्माऽयमात्मवद् दृश्यते तथा।। ७५।।

अन्वय—यथा, नीरम्, क्षीरयोगात्, मृषा, क्षीरवत्, दृश्यते, तथा, अयम्, अनात्मा, अपि, आत्मयोगात्, (मृषा) आत्मवत्, दृश्यते।

अर्थ—जैसे जल दूध के सम्पर्क से दूध की ही तरह दिखाई देता है, पर वह वास्तविक या शुद्ध दूध नहीं होता है, वैसे ही यह अनात्मा देहेन्द्रियादि भी, आत्मा के सम्पर्क से आत्मा की ही तरह दिखाई देता है, वस्तुतः देहेन्द्रियादि आत्मा है नहीं।। ७५।।

नीरात्क्षीरं पृथक्कृत्य हंसो भवति नान्यथा।
स्थूलादेः स्वं पृथक्कृत्य मुक्तो भवति नान्यथा।। ७६।।

अन्वय—यथा, नीरात्, क्षीरम्, पृथक्कृत्य हंसः, भवति, अन्यथा, हंसः, न भवतीत्यर्थः, तथा, स्थूलादेः, स्वम्, पृथक्कृत्य, (जनः), मुक्तः, भवति, अन्यथा (एतत्सर्वमकृत्वेत्यर्थः) मुक्तः, न, भवति, अपि तु बद्धः तिष्ठति।

अर्थ—जिस प्रकार जल से दूध को पृथक् करने पर ही हंस वास्तव में हंस होता है, अन्यथा नहीं, इसी प्रकार स्थूल अन्नमयादि कोषों से आत्मा को पृथक् जानने वाला जन ही मुक्त हो जाता है, अन्यथा, स्थूलादि अर्थात् अन्नमयादि कोषों को ही आत्मा मानने वाला कभी भी मुक्त नहीं होता है। ७६।।

क्षीरनीरविवेकज्ञो हंस एव न चेतरः।
आत्मानात्मविवेकज्ञो यतिरेव न चेतरः।। ७७।।

अन्वय—यथा, क्षीरनीरविवेकज्ञः, हंसः, एव, भवति, न, च, इतरः, तथा, आत्मानात्मविवेकज्ञः, यतिः, एव, भवति, न, च, इतरः।

अर्थ—जिस प्रकार क्षीर-नीर विवेकी हंस ही होता है, और कोई भी पक्षी नहीं, इसी प्रकार आत्मा और अनात्मा का विवेचन करने वाल यति ही होता है, अन्य कोई साधारण पुरुष नहीं।। ७७।।

अध्यस्तचोरजः स्थाणोर्विकारः स्यान्नहि क्वचित्।
नात्मनो निर्विकारस्य विकारो विश्वजस्तथा।। ७८।।

अन्वय—यथा, स्थाणोः, अध्यस्तचोरजः, विकारः, क्वचित्, न हि, स्यात्, तथा, निर्विकारस्य, आत्मनः, (अपि) विश्वजः, विकारः न।

अर्थ—जिस प्रकार ऐसा कभी कहीं नहीं होता कि स्थाणु (ठूँठ) में कल्पित चोर से कोई विकार उत्पन्न हो जाये उसी प्रकार निर्विकार आत्मा में भी, विश्व-सम्बन्धी विकार नहीं होता है। (तात्पर्य यह है कि यदि अंधेरे में दूर से ठूँठ (स्थाणु, शाखापत्ररहित वृक्ष का तनामात्र) दिखाई दे, तो उसमें चोर की कल्पना हो जाती है, कि शायद दूर खड़ा यह कोई चोर है; पर जब प्रकाश लाकर आगे बढ़ते हैं, तो वहाँ सिवाय उस ठूँठे के कुछ भी नहीं दिखाई देता है। वह कल्पित चोर जिस प्रकार उस स्थाणु का (दूध व दही की तरह) परिणाम या विकार नहीं है, उसी प्रकार चैतन्य में कल्पित यह विश्व भी आत्मा (ब्रह्म) का परिणाम, विकार न होकर विवर्त है, यही अद्वैत वेदान्त का

सिद्धान्त है। ऐसे कल्पित चोर से जैसे ठूँठ अप्रभावित रहता है वैसे अध्यस्त भूत-भौतिक सारे प्रपंच और इसकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं से आत्मा अप्रभावित रहता है।)।।७८।।

ज्ञाते स्थाणौ कुतश्चोरश्चोराभावे भयं कुतः।
ज्ञाते स्वस्मिन् कुतो विश्वं विश्वाभावे कुतोऽखिलम्।। ७९।।

अन्वय—स्थाणौ, ज्ञाते, सति, चोरः, कुतः (न कोऽपि तत्र चोर इत्यर्थः)। चोराभावे, सति, भयम्, कुतः। (इत्थम्) स्वस्मिन् ज्ञाते (सति) विश्वम्, कुतः, विश्वाभावे, सति, अखिलम्, पदार्थजातम्, कुतः।

अर्थ—स्थाणु का ज्ञान हो जाने पर, फिर चोर कहाँ? अर्थात् चोर की तो कोई सत्ता ही नहीं है। जब चोर ही नहीं फिर तत्सम्बन्धी भय कहाँ? इसी प्रकार आत्मस्वरूप के ज्ञान के हो जाने पर यह संसार कहाँ रह जाता है? जब संसार ही नहीं फिर संसार में होने वाला यह सारा भय मोह शोक कहाँ?।।७९।।

गुणवृत्तित्रयं भाति परस्परविलक्षणम्।
सत्यात्मलक्षणे यस्मिन् स एवाहं निरंशकः।। ८०।।

अन्वय—परस्परविलक्षणम्, गुणवृत्तित्रयम्, यस्मिन्, सत्यात्मलक्षणे, भाति, सः, एव, निरंशकः, अहम्, अस्मि।

अर्थ—आपस में एक दूसरे से विलक्षण, ये सत्त्वादि गुणवृत्तियाँ (तीनों गुणों के एक-दूसरे से सर्वथा अलग-अलग बर्ताव या प्रभाव) जिस सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा में भासित होती हैं, वही अखण्ड सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा 'मैं' हूँ।। ८०।।

देहत्रयमिदं भाति यस्मिन् ब्रह्मणि सत्यवत्।
तदेवाहं परं ब्रह्म देहत्रयविलक्षणः।। ८१।।

अन्वय—यस्मिन्, ब्रह्मणि, इदम्, देहत्रयम्, सत्यवत्, भाति, तत्, एव, देहत्रयविलक्षणः, अहम्, परम्, ब्रह्म, अस्मि।

अर्थ—जिस अधिष्ठानभूत ब्रह्म में, यह कारण, सूक्ष्म व स्थूल, तीनों प्रकार का देह प्रतीत होता है, वह तीनों देहों से विलक्षण परब्रह्म 'मैं' ही हूँ।।८१।।

जाग्रदादित्रयं यस्मिन् प्रत्यगात्मनि सत्यवत्।
स एवाहं परं ब्रह्म जाग्रदादिविलक्षणः।। ८२।।

अन्वय—यस्मिन्, प्रत्यगात्मनि, (इदम्) जाग्रदादित्रयम्, सत्यवत् (भाति) सः, एव, अहम्, जाग्रदादिविलक्षणः, परम्, ब्रह्म, अस्मि।

अर्थ—जिस प्रत्यगात्मा चैतन्य में, यह जाग्रत्, स्वप्न सुषुप्ति, अवस्था

वाला संसार सत्य मालूम पड़ता है, 'मैं' वही जाग्रदादि से विलक्षण 'परब्रह्म' हूँ।। ८२।।

विश्वादिकत्रयं यस्मिन् परमात्मनि सत्यवत्।
स एव परमात्माऽहं विश्वादिकविलक्षणः।। ८३।।

अन्वय—यस्मिन्, परमात्मनि, इदम्, विश्वादिकत्रयम्, (प्राज्ञतैजसविश्वानां-त्रयं क्रमशः कारणसूक्ष्मस्थूलशरीराणां व्यष्टिभूतम्) सत्यवत्, भाति, सः, एव, अहम्, विश्वादिकविलक्षणः, परमात्मा, अस्मि।

अर्थ—जिस परमात्मा में, यह विश्वादि—कारण सूक्ष्म व स्थूल शरीरों की व्यष्टि प्राज्ञ, तैजस व विश्व यह—त्रिक सत्य-सा मालूम पड़ता है, 'मैं' उन तीनों से विलक्षण वह 'परमात्मा' हूँ।। ८३।।

विराडादित्रयं भाति यस्मिन् साक्षिणि सत्यवत्।
स एव सच्चिदानन्दलक्षणोऽहं स्वयंप्रभः।। ८४।।

अन्वय—यस्मिन्, साक्षिणि (इदम्) विराडादित्रयम् (ईश्वर-हिरण्यगर्भ-वैश्वानराणां त्रयं क्रमशः कारणसूक्ष्मस्थूलशरीराणां समष्टिभूतम्), सत्यवत् भाति, सः, एव, स्वयंप्रभः, सच्चिदानन्दलक्षणः, अहम्, (अस्मि)।

अर्थ—जिस साक्षी में, यह विराडादि (कारण सूक्ष्म व स्थूल शरीरों की समष्टि ईश्वर हिरण्यगर्भ, व विराड्) शरीरों की तीनों समष्टियाँ सत्य-सी मालूम पड़ती हैं, 'मैं' वही स्वयंप्रकाश सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा हूँ।।८४।।

अनात्मश्रीविगर्हणम्

लब्धा विद्या राजमान्या ततः किं, प्राप्ता संपत्प्राभवाढ्या ततः किम्।
भुक्ता नारी सुन्दराङ्गी ततः किं, येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्।।१।।

अन्वय—येन, (जनेन) स्वात्मा न, एव, साक्षात्कृतः, तेन, यदि, राजमान्या, विद्या, लब्धा (भवेत्) ततः, किम्, (अभूत्) प्राभवाढ्या, संपत् (यदि) प्राप्ता, ततः, किम्, (अभूत्) सुन्दराङ्गी, नारी, (यदि) भुक्ता, ततः, किम् (अभूत्)? न किमप्यभूत् स्वात्मसाक्षात्कारं विनेत्यर्थः।

अर्थ—जिस व्यक्ति ने आत्मसाक्षात्कार न करके, राजमान्य विद्या को प्राप्त भी कर लिया तो क्या हुआ? प्रभावशाली सम्पत्ति प्राप्त कर ली, तो भी उससे कुछ होना नहीं। सुन्दराङ्गी स्त्री का भोग कर लिया, तो इससे भी

कौन-सा प्रशंसनीय कार्य बना! अर्थात् ये सब क्षणभङ्गुर पदार्थ आत्मसाक्षात्कार के बिना व्यर्थ हैं।। १।।

केयूराद्यै र्भूषितो वा ततः किं, कौशेयाद्यैरावृतो वा ततः किम्।
तृप्तो मिष्टान्नादिना वा ततः किं, येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्।।२।

अन्वय—(कामम्) केयूराद्यैः, भूषितः, यदि स्यात्, ततः, किम्, कौशेयाद्यैः, आवृतः, यदि स्यात् ततः, अपि, किम्, यदि, मिष्टान्नादिना, नितान्तम्, तृप्तः, स्यात्, ततः, किम्, अभूत्, येन, स्वात्मा, नैव, साक्षात्कृतः।

अर्थ—भले ही लोग अपना शरीर केयूरादि से अलङ्कृत करें, रेशमी वस्त्रों से आच्छादित करें, केवल मिष्टान्नादि भोजन से ही तृप्त हो जायें, पर यह सब कुछ तब तक व्यर्थ ही मालूम पड़ता है, जब तक कि व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार न कर ले।। २।।

दृष्टा नाना चारुदेशास्ततः किं, पुष्टाश्चेष्टा बन्धुवर्गास्ततः किम्।
नष्टं द्रारिद्र्याादिदुःखं ततः किं, येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्।।३।।

अन्वय—येन, (जनेनं भारते जन्म गृहीत्वाऽपि) यदि, स्वात्मा, न, एव, साक्षात्कृतः, तदा, तेन, नाना, चारुदेशाः, दृष्टाः, चेत्, ततः, किम्, अभूत्, इष्टाः, बन्धुवर्गाः, पुष्टाः, चेत्, ततः, किम्, अभूत्, दारिद्र्यादिदुःखम्, नष्टम्, चेत्, ततः, किम्, अभूत्! स्वात्मसाक्षात्कारं विना चैतेषां दर्शनपोषणनाशनं सर्वं व्यर्थमेवास्तीत्यर्थः।

अर्थ—पुण्यभूमि इस भारतवर्ष में भी जन्म लेकर, जिसने आत्म-साक्षात्कार की ओर प्रयत्न न करके, अनेक सुन्दर से सुन्दर देशों की सैर भी कर ली, अपने बन्धु वर्गों का पोषण कर लिया, और काफी धनी भी बन गया, तो उससे क्या लाभ? क्योंकि ये सब तो नश्वर हैं।। ३।।

स्नातस्तीर्थे जह्नुजादौ ततः किं
दानं दत्तं द्व्यष्टसंख्यं ततः किम्।
जप्ता मन्त्राः कोटिशो वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्।। ४।।

अन्वय—येन, स्वात्मा, नैव, साक्षात्कृतः, यदि, तेन, जह्नुजादौ, तीर्थे, स्नातम्, चेत्, ततः, किम्, अभूत्, द्व्यष्टसंख्यम्, दानम्, दत्तम्, चेत्, ततः, किम्, कोटिशः, मन्त्राः, जप्ताः, चेत्, ततः, किम्, (न किमपीत्यर्थः)।

अर्थ—भले ही गंगा आदि पवित्र तीर्थों में स्नान कर चुका हो, सोलह प्रकार के दान दे चुका हो, करोड़ों मन्त्रों को ही क्यों न जप लिया हो, परन्तु यदि उसने आत्म-साक्षात्कार की ओर कोई ध्यान नहीं दिया तो, ये सब व्यर्थ हैं।। ४।।

गोत्रं सम्यग्भूषितं वा ततः किं, गात्रं भस्माच्छादितं वा ततः किम्।
रुद्राक्षादिःसंधृतो वा ततः किं, येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्।।५।।

अन्वय—येन, स्वात्मा, नैव, साक्षात्कृतः, तेन, यदि (वा) सम्यक्, स्वीयम्, गोत्रम्, भूषितम्, वा, ततः, किम्, अभूत्, गात्रम्, भस्माच्छादितम्, वा चेत्, ततः, किम्, (शरीरे) रुद्राक्षादिः, संधृतः, वा (चेत्) ततः किम्! न किमपीत्यर्थः।

अर्थ—आत्मसाक्षात्कार न करके, अपने कुल में यदि बहुत बड़ा नाम भी कमा लिया तो क्या? भस्मादि उपकरणों से शरीर को आच्छादित कर लिया तो भी क्या? यदि शरीर में रुद्राक्षादि मालायें पहन लीं, तो उनसे इस जीवन का उद्धार होने का नहीं।। ५।।

अन्नैर्विप्रास्तर्पिता वा ततः किं
यज्ञै र्देवास्तोषिता वा ततः किम्।
कीर्त्या व्याप्ताः सर्वलोकास्ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्।। ६।।

अन्वय—यदि, अन्नैः, विप्राः, तर्पिताः, वा चेत्, ततः, किम्, अभूत्, यज्ञैः, देवाः, तोषिताः, वा, ततः किम्, यदि सर्वलोकाः, कीर्त्या, व्याप्ताः, वा ततः, किम्, येन, स्वात्मा, न, एव, साक्षात्कृतः।। ६।।

अर्थ—यदि अन्न से सारे ब्राह्मणों को सन्तुष्ट भी कर लिया, तो क्या हुआ? यज्ञ से सारे देवताओं को भी प्रसन्न कर लिया तो भी कुछ नहीं। सारे लोक कीर्ति से व्याप्त भी हो गये तो भी क्या हुआ, यदि स्वयं अपने आप को व्यक्ति ने नहीं पहचाना।। ६।।

कायः क्लिष्टश्चोपवासैस्ततः किं, लब्धाः पुत्राः स्वीयपत्न्यास्ततः किम्।
प्राणायामः साधितो वा ततः किं, येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्।।७।

अन्वय—येन, स्वात्मा, न, एव, साक्षात्कृतः, (यदि तेन) उपवासैः, कायः, क्लिष्टः, चेत्, ततः, किम्, स्वीयपत्न्याः, (सकाशात्) पुत्राः, लब्धाः, (भवेयुः) ततः, किम्? (चिरजीवनार्थम्) यदि प्राणायामः (अपि) साधितः, चेत्, ततः, किम्?

अर्थ—जिसने स्वयं अपने आप को न जानकर, यदि व्रतोपवासों के द्वारा शरीर क्षीण भी कर लिया, तो उससे क्या? अपनी पत्नी से सुन्दर पुत्रों को प्राप्त कर भी लिया तो उससे क्या? दीर्घ जीवन हेतु यदि प्राणायाम को भी सिद्ध कर लिया तो भी उससे कोई बड़ा लाभ नहीं है।। ७।।

युद्धे शत्रु र्निर्जितो वा ततः किं
भूयो मित्रैः पूरितो वा ततः किम्।
योगैः प्राप्ताः सिद्धयो वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्।। ८।।

अन्वय—यदि, युद्धे, शत्रुः, (अपि) निर्जितः, वा, चेत्, ततः, किम्, अभूत्, भूयः, (पुनः) मित्रैः, पूरितः, वा (चेत्) ततः, किम्, योगैः, सिद्धयः, (अपि) यदि, प्राप्ताः (भवेयुः) वा (चेत्) ततः, किम्, येन, स्वात्मा, न, एव, साक्षात्कृतः।

अर्थ—युद्ध में प्रबल शत्रुओं को जीत लेना, हमेशा इष्ट मित्रों से परिपूर्ण हो जाना, अष्टाङ्गयोग द्वारा सभी प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त कर लेना भी तब तक कोई मायने नहीं रखता है जब तक कि जीव खुद अपने को न पहचान ले।। ८।।

अब्धिः पद्भ्यां लङ्घितो वा ततः किं
वायुः कुम्भे स्थापितो वा ततः किम्।
मेरुः पाणावुद्धृतो वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्।। ९।।

अन्वय—यदि, अब्धिः, (अपि) पद्भ्याम्, लङ्घितः, वा (चेत्) ततः, किम्, अभूत्, यदि वायुः, (अपि) कुम्भे, स्थापितः, वा (चेत्) ततः, किम्, यदि, पाणौ, मेरुः, उद्धृतः, वा (चेत्) ततः, किम्, येन, स्वात्मा, न, एव, साक्षात्कृतः।

अर्थ—भले ही समुद्र को पैदल लाँघ जाय, वायु को समेटकर घड़े में भर ले, सुमेरु को उखाड़कर अपने हाथों में रख ले, परन्तु तब तक यह सब व्यर्थ ही मालूम पड़ता है, जब तक कि मनुष्य स्वयं अपने को न पहचान ले।। ९।।

क्ष्वेलः पीतो दुग्धवद् वा ततः किं
वह्नि र्जग्धो लाजवद्वा ततः किम्।
प्राप्तश्चारः पक्षिवत् खे ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्।। १०।।

अन्वय—यदि, क्ष्वेलः, दुग्धवत्, पीतः, (वा) चेत्, ततः, किम्, अभूत्, यदि, वह्निः, लाजवत्, जग्धः, वा, चेत्, ततः, किम्, यदि खे (आकाशे) पक्षिवत्, चारः, (सञ्चरणम्) प्राप्तः वा (चेत्) ततः किम्, येन, स्वात्मा, नैव, साक्षात्कृतः।

अर्थ—यदि मनुष्य विष को भी दूध की तरह पी ले तो पुरुषार्थ की दृष्टि से क्या? अग्नि को लाजा (खीलों) की तरह चबा जाय तो भी कुछ नहीं, पक्षी की तरह आकाश में उड़ भी जाय तो भी, कौन-सा बड़ा कार्य कर लिया? यदि स्वयं अपने आप को नहीं पहचाना तो। तात्पर्य यह है कि ये सब कठिन से कठिन काम छोटे मोटे पुरुषार्थ भले ही मान लिए जायें, परन्तु मनुष्य जब तक परम पुरुषार्थ, जो स्वयं को जानना है, उसे नहीं पाता है, तब तक वह सब कुछ करता हुआ भी कुछ नहीं करता है।। १०।।

बद्धाः सम्यक् पावकाद्यास्ततः किं
साक्षाद् विद्धा लौहवर्यास्ततः किम्।
लब्धो निक्षेपोऽञ्जनाद्यैस्ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्।। ११।।

अन्वय—यदि, पावकाद्याः, सम्यक्, बद्धाः, (चेत्) ततः, किम्, अभूत्, यदि, लौहवर्याः, साक्षात्, विद्धाः, चेत्, ततः, किम्, यदि, अञ्जनाद्यैः, निक्षेपः, लब्धः, (चेत्) ततः, किम्, अभूत्, येन, स्वात्मा नैव, साक्षात्कृतः।

अर्थ—भले ही अग्नि आदि को बाँध के रख ले, कठिन से कठिन लौह में छेद कर ले, सिद्ध अञ्जन को लगाकर छिपी हुई, गूढ, निधि को भी प्राप्त कर ले, तो भी कोई बात बनने की नहीं, जब तक कि आत्मसाक्षात्कार न किया जाय।। ११।।

भूपेन्द्रत्वं प्राप्तमुर्व्यां ततः किं, देवेन्द्रत्वं संभृतं वा ततः किम्।
मुण्डीन्द्रत्वं चोपलब्धं ततः किं, येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्।।१२।।

अन्वय—येन, स्वात्मा, नैव, साक्षात्कृतः, तेन, यदि, उर्व्याम्, भूपेन्द्रत्वम्, अपि, प्राप्तम्, चेत्, ततः, किम्, अभूत्, वा (अथवा) देवेन्द्रत्वम्, संभृतम्, चेत्, ततः, किम्, मुण्डीन्द्रत्वम्, च, उपलब्धम्, चेत्, ततः, किम्, (न किमपीत्यर्थः) एभि र्भूपेन्द्रत्वादिभिस्तु न चरमपुरुषार्थावाप्ति र्भवतीत्यर्थः।

अर्थ—देवदुर्लभ इस जीवन में स्वयं अपने को न पहचानकर, जो भूपेन्द्र, देवेन्द्र, मुण्डीन्द्रादि (यतीन्द्रादि) पदों के चक्कर में पड़ा रहता है, वह तो

असली चीज से वञ्चित ही है।। १२।।

मन्त्रैः सर्वः स्तम्भितो वा ततः किं
बाणै र्लक्ष्यो भेदितो वा ततः किम्।
कालज्ञानं चापि लब्धं ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्।। १३।।

अन्वय—यदि, सर्वः (जनः), मन्त्रैः, स्तम्भितः, (वा) चेत्, ततः, किम्, अभूत्, यदि, बाणैः, लक्ष्यः, भेदितः, चेत्, ततः, किम्, यदि, कालज्ञानम्, अपि, च, लब्धम्, चेत्, ततः, किम्, (न किमपीत्यर्थः) येन, स्वात्मा नैव, साक्षात्कृतः।

अर्थ—मन्त्र द्वारा जनों को स्तम्भित कर देना, बाणों से अभीष्ट लक्ष्य का भेदन कर लेना, और भूत भविष्य वर्तमानादि कालों का ज्ञान कर लेना, कोई बड़ा पुरुषार्थ नहीं है, अपितु परम पुरुषार्थ तो मनुष्य का स्वयं अपने को पहचाननां या आत्मज्ञान करना है।। १३।।

कामातङ्कः खण्डितो वा ततः किं
कोपावेशः कुण्ठितो वा ततः किम्।
लोभाश्लेषो वर्जितो वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्।। १४।।

अन्वय—यदि (अशक्यः) कामातङ्कः, अपि, खण्डितः, वा (चेत्) ततः, किम्, अभूत्, (सर्वसाधारणः), कोपावेशः, अपि, यदि, कुण्ठितः, चेत्, ततः, किम्, (सर्वजनसुलभः) लोभाश्लेषः, अपि, यदि, वर्जितः, चेत्, ततः, किम्, येन, आत्मा, नैव, साक्षात्कृतः।

अर्थ—काम, क्रोध, लोभ, प्राणिमात्र के अन्तःकरण के सहज भाव हैं, और मनुष्य के सबसे बड़े शत्रु भी ये ही हैं। इन पर अधिकार करना कोई सरल काम नहीं है, परन्तु कुछ जितेन्द्रिय व्यक्ति इन पर भी विजय पा जाते हैं, जिन्हें फिर काम से कोई आतङ्क (भय) नहीं होता है, क्रोध से किसी प्रकार की कुण्ठा नहीं आती, और लोभ से अनर्थ के लव का लेश भी नहीं रहता है। पर ऐसे जितेन्द्रिय महात्माओं ने भी, जिसके लिए इतना त्याग किया है, उस तत्त्व का यदि साक्षात्कार नहीं किया, तो फिर जीवन में क्या किया? इतनी जो विजयें पाई इनसे क्या हुआ?।। १४।।

मोहध्वान्तः पेषितो वा ततः किं
जातो भूमौ निर्मदो वा ततः किम्।

मात्सर्यार्ति र्मीलिता वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्।। १५।।

अन्वय—येन, स्वात्मा, नैव, साक्षात्कृतः, यदि, तेन (जीवने) मोह-ध्वान्तः, (अपि) पेषितः, वा, (चेत्) ततः, किम्, अभूत्, भूमौ, यदि, सः, निर्मदः, (मदरहितः) जातः, वा (चेत्) ततः, किम्, (इह) मात्सर्यार्तिः, (अपि) मीलिता, वा (चेत्) ततः, किम्, (न किमपीत्यर्थः)।

अर्थ—आत्मसाक्षात्कार को छोड़कर, किसी ने यदि अपने जीवन में 'मोह' (यत्किंचित् अविवेक) को पीस भी लिया तो क्या किया? इस मर्त्य लोक में उसने यदि मद को उड़ा भी दिया तो क्या? मात्सर्य रूपी पीडा को मसल भी दिया, तो भी कोई बड़ी बात नहीं की क्योंकि असली तत्त्व जो आत्मसाक्षात्कार है, उसको तो उसने अपने हाथों से गँवा दिया।। १५।।

धातुर्लोकः साधितो वा ततः किं
विष्णो र्लोको वीक्षितो वा ततः किम्।
शम्भोर्लोकः शासितो वा ततः किं
येन स्वात्मा नैव साक्षात्कृतोऽभूत्।। १६।।

अन्वय—यदि, धातुर्लोकः, साधितः वा (चेत्) ततः, किम्, अभूत्, विष्णोः, लोकः, वीक्षितः, वा, (चेत्) ततः, किम्, शम्भोः, लोकः, शासितः, वा (चेत्) ततः, किम्, (एतत्सर्वं विधायापि) येन, स्वात्मा, नैव, साक्षात्कृतः।

अर्थ—उसने भले ही ब्रह्मलोक को सिद्ध कर लिया हो, या विष्णुलोक को देख लिया हो अथवा शम्भुलोक पर शासन क्यों न किया हो, यदि उसने स्वयं अपने को नहीं जाना, या स्वात्मसाक्षात्कार की ओर कोई प्रयत्न नहीं किया, तो पूर्वोक्त सारा पराक्रम व्यर्थ ही है, निष्फल है, क्योंकि जिसके लिए व्यक्ति अपना सारा तन मन धन लुटा रहा है, उसी प्रिय आत्मा को यदि नहीं पहचान सका, तो फिर इतना परिश्रम, इतनी झल्लतें जो झेल रहा है, वह सब व्यर्थ ही प्रतीत होता है।। १६।।

यस्येदं हृदये सम्यगनात्मश्रीविगर्हणम्।
सदोदेति स एवात्मसाक्षात्कारस्य भाजनम्।। १७।।

अन्वय—यस्य, (पुण्यात्मनः) हृदये, इदम्, अनात्मश्रीविगर्हणम्, सम्यक्, सदा, उदेति, सः, एव, (पुण्यात्मा) आत्मसाक्षात्कारस्य, भाजनम्, भवति।

अर्थ—जिस पवित्रात्मा के हृदय में, पूर्वोक्त यह 'अनात्मश्रीविगर्हण' (प्रपञ्च सम्पन्निन्दा) नामक स्तोत्र, अच्छी तरह हमेशा याद आता है, वही पुण्यात्मा आत्मसाक्षात्कार का पात्र है।। १७।।

अन्ये तु मायिकजगद्भ्रान्तिव्यामोहमोहिताः।

न तेषां जायते क्वापि स्वात्मसाक्षात्कृतिर्भुवि।। १८।।

अन्वय—अन्ये, (अनात्मश्रीप्रशंसका इत्यर्थः) तु, मायिकजगद्भ्रान्तिव्यामोहमोहिताः, सन्ति, अतः, तेषाम्, भुवि, क्वापि, स्वात्मसाक्षात्कृतिः, न, जायते (प्रपञ्चपरायणानान्तु न कथञ्चिदपि मुक्तिरित्यर्थः)।

अर्थ—अन्य जो प्रपञ्चाभिमानी जन हैं, वे तो माया-निर्मित जगत् के मृगतृष्णा तुल्य जो विषय-भोग रूपी विष है, उसके वेग से मूर्च्छित हैं, अतः इस संसार में उनको कभी भी कहीं भी आत्मसाक्षात्कार का अवसर ही कहाँ है, अर्थात् आत्मज्ञान की ओर तो उनकी प्रवृत्ति ही नहीं होती है।। १८।।

एकश्लोकी

किं ज्योतिस्तव भानुमानहनि मे रात्रौ प्रदीपादिकं
स्यादेवं रविदीपदर्शनविधौ किं ज्योतिराख्याहि मे।
चक्षुस्तस्य निमीलनादिसमये किं धी र्धियो दर्शने
किं तत्राहमतो भवान्परमकं ज्योतिस्तदस्मि प्रभो।। १।।

अन्वय—प्रश्नः—तव, (तवमते) ज्योतिः, किम्, किं स्वरूपात्मकं ज्योतिस्तवाभिमतमित्यर्थः। उत्तरम्—मे (मम मते तु) अहनि, भानुमान्, ज्योतिः, रात्रौ, प्रदीपादिकम्, ज्योतिः (अस्ति)। स्यात्, एवम्, (इति अर्धाङ्गीकारे); पुनः प्रश्नः मे (मह्यमित्यर्थः) एतत्, आख्याहि, यत्, रविदीपदर्शनविधौ, किं (किमात्मकमित्यर्थः) ज्योतिः, (स्वीक्रियते)? उत्तरम्—तत्र, चक्षुः, (ज्योतिः) स्वीक्रियते। पुनः प्रश्नः—तस्य (चक्षुषः) निमीलनादिसमये किम्, ज्योतिः? उत्तरम्—धीः। प्रश्नः—धियः, दर्शने, किम् ज्योतिः? उत्तरम्—तत्र, अहम् ज्योतिः, अस्मि। गुरुराह—अतः भवान्, परमकं ज्योतिः (अस्ति)। शिष्योङ्गीकरोति—प्रभो! तद्, अस्मि।

अर्थ—आप किसे प्रकाश मानते हैं? उत्तर—मैं दिन में सूर्य को प्रकाश मानता हूँ, और रात को दीपक को प्रकाश मानता हूँ। प्रश्न—अच्छा, यह तो

बतलाइए कि सूर्य और दीप किस प्रकाश से दिखाई देते हैं? उत्तर—हम सूर्य और दीपक को चक्षु से देखते हैं, अर्थात् चक्षु के प्रकाश से सूर्य व दीपक दिखाई देते हैं। प्रश्न—अच्छा, यह तो बतलाइए कि जिस समय आप अपनी आँखों को मूँदे लेते हैं, उस समय आपको जो ज्ञान होता है, आँखें मूँदे हुए भी आप कभी अन्दर ही अन्दर कोई चीज जरूर देखते हैं, इस हालत में तो सूर्य, दीप, चक्षु आदि कोई भी प्रकाशक चीज नहीं है, तब प्रकाश करने वाली कौन सी चीज है? उत्तर—वहाँ बुद्धि ही प्रकाश करती है। प्रश्न—लेकिन बुद्धि को भी आप जानते हैं, उसे किस प्रकाश से जानते हैं? उत्तर—बुद्धि को प्रकाशित करने में तो मैं (आत्मा) ही प्रकाश हूँ। गुरु—इससे सिद्ध होता है कि आप (आत्मतत्त्व) ही परम (अंतिम स्वप्रकाश) ज्योति हैं। शिष्य—हे प्रभो! समझ गया कि मैं वही ज्योति हूँ।। १।।

जीवन्मुक्तानन्दलहरी

पुरे पौरान् पश्यन् नरयुवतिनामाकृतिमयान्
सुवेषान् स्वर्णालंकरणकलितांश्चित्रसदृशान्।
स्वयं साक्षाद् द्रष्टेत्यपि च कलयंस्तैः सह रमन्
मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः।। १।।

अन्वय—(कश्चिद् वीतरागः परमहंसः) गुरुदीक्षाक्षततमाः, मुनिः, पुरे, नरयुवतिनामाकृतिमयान्, सुवेषान्, स्वर्णालङ्करणकलितान्, चित्रसदृशान्, पौरान्, पश्यन्, स्वयम्, (आत्मानमित्यर्थः प्रपञ्चात्मनां तेषाम्) साक्षात्, द्रष्टा, इति, अपि, कलयन्, तैः, सह, रमन्, (अपि) व्यामोहम्, न, भजति।

अर्थ—गुरु की दीक्षा से दूर हो गया है अज्ञान जिसका, ऐसा कोई वीतराग परमहंस मननशील मुनि, किसी नगर में, नर व नारियों के रूप को धारण किये हुए, स्वर्णाभरणों से अलंकृत सुन्दर वेष वाले, मानो चित्र में ये अङ्कित हों, ऐसे तस्वीर की तरह, पुरवासियों को देखता है, परन्तु अपने को उनका द्रष्टा मानता है, इस प्रकार जल में कमल की तरह, उनके साथ रहता हुआ भी, सांसारिक वासना रूप व्यामोह को नहीं प्राप्त होता है।। १।।

वने वृक्षान् पश्यन् दलफलभरान्नम्रसुशिखान्
घनच्छायाच्छन्नान् बहुलकलकूजद्द्विजगणान्।

भजन्घस्रे रात्राववनितलतल्पैकशयनो
मुनि र्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ।। २।।

अन्वय–(किञ्चायम्) गुरुदीक्षाक्षततमाः, मुनिः, घस्रे, (दिवा) वने, दलफलभरान् नम्रसुशिखान्, घनच्छायाच्छन्नान्, बहुलकलकूजद्द्विजगणान्, वृक्षान्, पश्यन् (अपि) (अर्थात् प्रकृते एतादृशं रमणीयतमं चित्रं नयनाभिमुखं कुर्वन्न मुह्यतीत्यर्थः) पुनः रात्रौ, अवनितलतल्पैकशयनः (सन्) व्यामोहम्, न, भजति।

अर्थ–गुरुकृपा से जिसने अपना अज्ञान दूर कर लिया है, ऐसा यह मननशील मुनि, यद्यपि रात को तो जमीन पर लेटकर गाढ निद्रा में बिता देता है, परन्तु दिन में तपोवन में, पत्र पुष्प व फलों से परिपूर्ण, विनम्र शाखा वाले, सुन्दर घनी छाया वाले, अनेक प्रकार के पक्षियों के कल-कूजन से सुशोभित, वृक्षों को देखता हुआ भी, वन व वृक्षों की इस प्रकार की उद्दीपक व उद्दाम रमणीयता की वासना से विमुग्ध नहीं होता है।। २।।

कदाचित् प्रासादे क्वचिदपि च सौधेषु धनिनां
कदा काले शैले क्वचिदपि च कूलेषु सरिताम्।
कुटीरे दान्तानां मुनिजनवराणामपि वसन्
मुनि र्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ।। ३।।

अन्वय–गुरुदीक्षाक्षततमाः, अयम्, मुनिः, कदाचित्, प्रासादे, (देवभूभुजांवासस्थाने) क्वचित्, धनिनाम्, सौधेषु, अपि, च, कदा काले, शैले, क्वचित्, अपि, च, सरिताम्, कूलेषु, च, क्वचित्, दान्तानाम्, मुनिजनवराणाम्, कुटीरे, वसन् (अपि) व्यामोहम्, न भजति।

अर्थ–गुरुकृपा से प्राप्त विवेक वाला यह मुनि, कभी राज-प्रासाद या देव-मन्दिरों में, विचरण करता है, तो कभी धनियों के महलों में दिखाई देता है, कभी पर्वत में तो, कभी गङ्गादि पवित्र नदियों के किनारे विहरण करता है, कभी-कभी जितेन्द्रिय श्रेष्ठ मुनियों की कुटी में निवास करता हुआ, कहीं भी किसी प्रकार की, आसक्ति के व्यामोह में नहीं आता है।। ३।।

क्वचिद् बालैः सार्धं करगतसतालैः सहसितैः
क्वचित्तारुण्यालङ्कृतनरबधूभिः सह रमन्।
क्वचिद् वृद्धैश्चिन्ताकुलितहृदयैश्चापि विलपन्
मुनि र्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ।। ४।।

अन्वय–गुरुदीक्षाक्षततमाः, अयम्, मुनिः, क्वचित् करगतसतालैः,

सहसितैः, बालैः, सार्धम्, विहरति, चेत्, क्वचित्, पुनः, तारुण्यालङ्कृतनरवधूभिः, सह, रमन्, (आस्ते) क्वचित्, चिन्ताकुलितहृदयैः, वृद्धैः, सह, विलपन्, अपि व्यामोहम्, न भजति।

अर्थ—गुरुकृपा-पात्र, अत एव ज्ञानी यह मुनि, कहीं ताली बजाते, हँसते हुए बालकों के साथ यदि विहरण करता है, तो फिर कभी युवक व युवतियों के वार्तालापों में मस्त रहता है, फिर कभी चिन्तातुर वृद्धों के साथ भी विलाप कर लेता है, परन्तु तत्तत् परिस्थितियों के प्रभाव से होने वाली जो अनर्थकारिणी वासनायें हैं, उनका विषय यह नहीं बनता है।। ४।।

कदाचिद् विद्वद्भि र्विविदिषुभिरत्यन्तनिरतैः
कदाचित् काव्यालङ्कृतिरसरसालैः कविवरैः।
कदाचित् सत्तर्कैरनुमितिपरैस्तार्किकवरै-
र्मुनि र्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः।। ५।।

अन्वय—(किञ्चायम्) गुरुदीक्षाक्षततमाः, मुनिः, कदाचित्, अत्यन्तनिरतैः, (निरन्तरशास्त्राभ्यसनशीलैः) विविदिषुभिः, विद्वद्भिः, सह, (कालम् गमयति) कदाचित्, पुनः, काव्यालङ्कृतिरसरसालैः, कविवरैः, साकम्, समयम्, यापयति, कदाचित्, च, सत्तर्कैः (समीचीनैर्हेतुभिः अथवा श्रुतिप्रतिपादितप्रमाणानुसारम्) अनुमितिपरैः, (श्रुत्यादिप्रमाणैर्लौकिकतर्कैश्च, परः, आत्मा, अनुमीयते, यैस्तैः) तार्किकवरैः वेदान्तिभिः, अथवा सत्तर्कैः, सद्धेतुभिः, अनुमितिपरैः अनुमानैकरसिकैः, तार्किकश्रेष्ठैरित्यर्थः, एतादृशैरुभयविधैः, तार्किकवरैः, सह कालं नयन्नपि, क्वचिदपि, व्यामोहम्, रसालङ्कारादिषु, अनुमित्यादिप्रमाणेषु वा व्यामोहम्, दुरभिसन्धिम्, दुराग्रहम्, तत्तद्विषयाज्ञानम्, वा, अथवा अनुमन्तृत्वाद्यभिमानं, न भजति।

अर्थ—गुरुकृपा से प्राप्त निर्मल विज्ञान वाला यह मुनि, कभी शास्त्राभ्यास-निरत विविदिषा-सम्पन्न विद्वानों के साथ विचार में समय बिताता है, तो कभी फिर काव्यालङ्कार-रीति रस से सरस सहृदय कवियों के साथ कविता के रस का भी आस्वादन करता है। कभी-कभी तो अनुमानैकचक्षु या अनुमानरसिक नैय्यायिकों के साथ सत् हेतुओं से साध्य की सिद्धि में निरत रहता है। अथवा सत् = समीचीन हेतुओं = प्रमाणों द्वारा अर्थात् उपनिषद्-प्रतिपाद्य ब्रह्म के विषय में श्रुतिनिर्दिष्ट वेदान्त-सम्मत प्रमाणों से, पर आत्मा की सिद्धि में निरत वेदान्तियों के साथ ब्रह्मचर्चा में अपना समय बिताता

हुआ भी, किसी प्रकार के असदाग्रह या दुराग्रह अथवा तत्तत् विषयनिष्ठ अज्ञान के व्यामोह में नहीं आता और न ही उसे अभिमान होता है कि वह विचार, रसास्वादन आदि का कर्ता है।। ५।।

कदा ध्यानाभ्यासैः क्वचिदपि सपर्यां विकसितैः
सुगन्धैः सत्पुष्पैः क्वचिदपि दलैरेव विमलैः।
प्रकुर्वन् देवस्य प्रमुदितमनाः संनतिपरो
मुनि र्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः।। ६।।

अन्वय—गुरुदीक्षाक्षततमाः, मुनिः, कदा, (कदाचिदित्यर्थः) ध्यानाभ्यासैः, (कालं नयति), क्वचित्, विकसितैः, सुगन्धैः, सत्पुष्पैः, अपि, क्वचित्, अपि (च) विमलैः, दलैः एव, प्रमुदितमनाः, संनतिपरः, (सन्) देवस्य, सपर्याम्, प्रकुर्वन्, व्यामोहम्, न, भजति।

अर्थ—गुरुकृपा से विमल ज्ञान को प्राप्त किया हुआ, यह मुनि कभी ध्यानाभ्यास से अपना समय बिताता है, तो फिर कभी विकसित सुगन्धित सुन्दर फूलों से अथवा केवल निर्मल बिल्वादि पल्लवों से ही विनम्र होकर, प्रसन्नतापूर्वक, देवता की पूजा करता हुआ, व्यामोह (किसी प्रकार के जञ्जाल) में नहीं पड़ता है।। ६।।

शिवायाः शम्भो र्वा क्वचिदपि च विष्णोरपि कदा
गणाध्यक्षस्यापि प्रकटितवरस्यापि च कदा।
पठन् वै नामालिं नयनरचितानन्दसरितो
मुनि र्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः।। ७।।

अन्वय—गुरुदीक्षाक्षततमाः, मुनिः, नयनरचितानन्दसरितः, सन्, क्वचित्, शिवायाः, शम्भोः, वा क्वचित्, विष्णोः, अपि, च, कदा, प्रकटितवरस्य, अपि, गणाध्यक्षस्य, अपि, च, नामालिं, पठन्, वै, न, व्यामोहम्, भजति।

अर्थ—गुरु के उपदेश से जिसका अज्ञान दूर हो चुका है, ऐसा मननशील यह मुनि, अपने नयनों से आनन्दाश्रु प्रवाहित करता हुआ, कभी जगज्जननी भगवती पार्वती के, तो कभी भगवान् शंकर के, और कभी भगवान् विष्णु के, तो कभी वरदाताओं में प्रसिद्ध गणेश जी के, नामों का पाठ करता हुआ, व्यामोह को प्राप्त नहीं होता है।। ७।।

कदा गङ्गाम्भोभिः क्वचिदपि च कूपोत्थसलिलैः
क्वचित्कासारोत्थैः क्वचिदपि सदुष्णैश्च शिशिरैः।

भजन् स्नानं भूत्या क्वचिदपि च कर्पूरनिभया
मुनि र्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ।। ८ ।।

अन्वय—गुरुदीक्षाक्षततमाः, अयम्, मुनिः, कदा (कदाचिदित्यर्थः) गङ्गाम्भोभिः, क्वचित्, कूपोत्थसलिलैः, अपि, क्वचित्, कासारोत्थैः (जलैरित्यर्थः) कदाचित्, सदुष्णैः, शिशिरैः, च, (वा) स्नानम्, भजन्, (अथवा) क्वचिद् अपि (कदाचित्) केवलया, कर्पूरनिभया, भूत्या (= भस्मना) (स्नानं भजन्) व्यामोहम्, न, भजति।

अर्थ—गुरुकृपा से निर्मलमति यह यति, कभी गङ्गाजल से स्नान करता है, तो फिर कभी कुए के जल से, कभी तालाब के जल से, कभी सुन्दर गरम जल से तो कभी शीतल जल से स्नान करता है, कभी-कभी केवल कपूर के समान स्वच्छ विभूति से ही स्नान करता हुआ, विशेष मोह में नहीं पड़ता है ।। ८ ।।

कदचिज्जागर्त्यां विषयकरणैः संव्यवहरन्
कदाचित् स्वप्नस्थानपि च विषयानेव च भजन्।
कदाचित् सौषुप्तं सुखमनुभवन्नेव सततं
मुनि र्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ।। ९ ।।

अन्वय—गुरुदीक्षाक्षततमाः, मुनिः, जागर्त्याम्, कदाचित्, विषयकरणैः, (विषयसंयुक्तैः करणैरित्यर्थः, अथवा विषयप्रदेशं प्राप्तैःकरणैरित्यर्थः) संव्यवहरन्, कदाचित् स्वप्नस्थान्, (स्वप्नावस्थायामित्यर्थः) विषयान्, एव, भजन्, कदाचित् सततम् सौषुप्तम्, (सुषुप्तावस्थाजातम्,) सुखम्, अनुभवन्, एव, व्यामोहम्, न भजति।

अर्थ—गुरुदीक्षा से निपुणमति यह यति, कभी जाग्रत् अवस्था में, विषय-संयुक्त इन्द्रियों से व्यवहार करता है, तो कभी स्वप्नावस्था में स्वप्न में देखे गये विषयों से व्यवहार करता है, और कभी सुषुप्तावस्था में निरन्तर गाढ निद्रा-जन्य सुख का अनुभव करता हुआ भी, व्यामोह में नहीं पड़ता है।। ९ ।।

कदाप्याशावासाः क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरः
क्वचित् पञ्चास्योत्थां त्वचमपि दधानः कटितटे।
मनस्वी निःसङ्गः सुजनहृदयानन्दजनको
मुनि र्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः ।। १० ।।

अन्वय—गुरुदीक्षाक्षततमाः, मुनिः, कदापि, आशावासाः, सन्, अपि, क्वचित्, च, दिव्याम्बरधरः, अपि, भवति, क्वचित्, कटितटे,

पञ्चास्योत्थाम्, त्वचम्, अपि, दधानः, सुजनहृदयानन्दजनकः, निःसङ्गः, अयम् मनस्वी, क्वचित्, अपि, व्यामोहम्, न भजति।

अर्थ—गुरु के उपदेश से प्राप्तविवेक यह मुनि, कभी दिगम्बर है, तो फिर कभी दिव्याम्बर भी है, कभी कमर में व्याघ्रचर्म बाँधता हुआ, सहृदयों सज्जनों को आनन्द देता हुआ, निस्पृह यह मनस्वी कभी भी किसी प्रकार के, मोह-जाल में नहीं फँसता है।। १०।।

कदाचित् सत्त्वस्थः क्वचिदपि रजोवृत्तिसुगत-
स्तमोवृत्तिः क्वापि त्रितयरहितः क्वापि च पुनः।
कदाचित् संसारी श्रुतिपथविहारी क्वचिदहो
मुनि र्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः।। ११।।

अन्वय—गुरुदीक्षाक्षततमाः, अयम्, मुनिः कदाचित्, सत्त्वस्थः, क्वचित्, रजोवृत्तिः (अपि) क्वापि, तमोवृत्तिः, (सन्) क्वापि, पुनः, त्रितयरहितः भवति, कदाचित्, संसारी, अहो, क्वचित्, श्रुतिपथविहारी, च, भवन्, अपि, व्यामोहम्, न, भजति।

अर्थ—गुरु की दीक्षा से अपने अज्ञान को दूर किया हुआ, यह मुनि, कभी सात्त्विक है, तो कभी राजस है, और कभी फिर तामस भी हो जाता है। आश्चर्य है कि कभी संसारी होता है, तो फिर कभी वैदिक मार्ग-निरत रहता हुआ भी किसी प्रकार के व्यामोह में नहीं पड़ता है। (अज्ञानावस्था में कर्तृभोक्तृत्वादि संसार बीभत्स दीखने से अज्ञ को लगता है कि तत्त्ववेत्ता इस संसार से प्रातीतिक भी सम्बन्ध नहीं रखेगा, दुःखादि दोषों से आपाततः भी सम्पर्क हेय है; किन्तु ब्रह्मवेत्ता के लिये संसार बाधित रहकर प्रतीत होता है और उसमें वह सच्चिदानन्द का अनुवेध देख पाता है इसलिये प्रातीतिक सम्बन्ध का वह कोई विरोध नहीं करता, इसी से यह स्थिति एक महान् आश्चर्य है।)।। ११।।

कदाचिन्मौनस्थः क्वचिदपि च वाग्वादनिरतः
कदाचित् सानन्दं हसितरभसस्त्यक्तवचनः।
कदाचिल्लोकानां व्यवहृतिसमालोकनपरो
मुनि र्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः।। १२।।

अन्वय—गुरुदीक्षाक्षततमाः, अयम्, मुनिः, कदाचित्, मौनस्थः, क्वचित्, च, वाग्वादनिरतः, अपि, भवति, कदाचित्, सानन्दम्, हसितरभसः, त्यक्तवचनः, भवति, कदाचित्, पुनः, लोकानाम्, व्यवहृतिसमा-

लोकनपरः, सन्, अपि, व्यामोहम्, न भजति।

अर्थ—गुरुकृपा से निर्मल ज्ञान को प्राप्त किया हुआ यह मुनि, कभी मौन रहता है, तो फिर कभी शास्त्र-सम्बन्धी वाद-विवाद में भी व्यस्त रहता है, कभी-कभी तो सानन्द निःशब्द हँसी के वेग में मस्त रहता है, कभी फिर संसारी लोगों के व्यवहार को देखता हुआ भी, तत्तत्सम्बन्धी किसी जंजाल में नहीं फँसता है।। १२।।

कदाचिच्छक्तीनां विकचमुखपद्मेषु कमलं
क्षिपंस्तासां क्वापि स्वयमपि च गृह्णन् स्वमुखतः।
तदद्वैतं रूपं निजपरविहीनं प्रकटयन्
मुनि र्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः।। १३।।

अन्वय—गुरुदीक्षाक्षततमाः, अयम्, मुनिः, कदाचित्, शक्तीनाम्, विकचमुखपद्मेषु, कमलम्, क्षिपन्, क्वापि, च, तासाम् (मुखपद्मानि) स्वमुखतः, स्वयम्, अपि, गृह्णन्, निजपरविहीनम्, तत्, अद्वैतम्, रूपम्, प्रकटयन्, व्यामोहम्, न, भजति।

अर्थ—गुरुकृपा से प्राप्तविवेक यह मुनि, कभी शक्ति देवताओं या उनकी प्रतिमाओं के मुख कमलों पर, पूजा निमित्त कमल पुष्पों को समर्पित करता है, कभी-कभी उनके मुख कमलों की कान्ति को, अपने मुख से ग्रहण करता हुआ, स्व-पर-हीन परस्पर अद्वैत रूप को प्रकट करता हुआ भी, किसी प्रकार के व्यामोह को प्राप्त नहीं होता है।। १३।।

क्वचिच्छैवैः सार्धं क्वचिदपि च शाक्तैः सह वसन्
कदा विष्णो र्भक्तैः क्वचिदपि च सौरैः सह वसन्।
कदा गाणाध्यक्षैर्गतसकलभेदोऽद्वयतया
मुनि र्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः।। १४।।

अन्वय—गुरुदीक्षाक्षततमाः, मुनिः, कदाचित्, शैवैः, सार्धम्, वसन् क्वचित्, अपि, च, शाक्तैः, सह, वसन्, कदा, (कदाचित्) विष्णोः, भक्तैः, सह, वसन्, कदाचित्, अपि, च, सौरैः, सह, वसन्, कदा, (कदाचित्) गाणाध्यक्षैः, सार्धम्, वसन् अद्वयतया, गतसकलभेदः, अयम्, क्वचिदपि, व्यामोहम्, न भजति।

अर्थ—गुरुदीक्षा से अपने अज्ञान को दूर किया हुआ यह मुनि, कभी शिवभक्तों के साथ तो कभी शक्ति के उपासकों के साथ, कभी विष्णु के भक्तों के साथ तो फिर कभी सूर्य-भक्तों के साथ और कभी गणपति-पूजकों

के साथ रहता हुआ, अद्वैतभावना से समस्त भेदभाव को दूर करता हुआ, कहीं भी व्यामोह में नहीं पड़ता है।। १४।।

निराकारं क्वापि क्वचिदपि च साकारममलं
निजं शैवं रूपं विविधगुणभेदेन बहुधा।
कदाऽऽश्चर्यं पश्यन् किमिदमिति हृष्यन्नपि कदा
मुनि र्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः।। १५।।

अन्वय—गुरुदीक्षाक्षततमाः अयम्, मुनिः, क्वापि, निराकारम्, रूपम् क्वचिदपि, च, अमलम्, साकारम्, रूपम्, विविधगुणभेदेन, निजम्, शैवम्, रूपम्, पश्यन्, कदा (कदाचित्) आश्चर्यम् (यथा स्यात्तथा) किम्, इदम्, इति, हृष्यन्, अपि, व्यामोहम्, न, भजति।

अर्थ—गुरुकृपा से अज्ञान को दूर किया हुआ यह मुनि, कभी अपने निराकार रूप को तो कभी स्वच्छ साकार रूप को देखता है। अनेक गुणों के भेद से अनेक प्रकार से व्यक्त होने वाले अपने कल्याणमय रूपों को वह निहारता है। कभी-कभी तो बड़े आश्चर्यपूर्वक 'यह निराकार और साकार क्या बला है!' इस प्रकार अपने मन में आनन्दानुभव करता हुआ भी, किसी प्रकार के व्यामोह में नहीं पड़ता है।। १५।।

कदाऽद्वैतं पश्यन्नखिलमपि सत्यं शिवमयं
महावाक्यार्थानामवगतिसमभ्यासवशतः।
गतद्वैताभासः शिव शिव शिवेत्येव विलपन्
मुनि र्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः।। १६।।

अन्वय—गुरुदीक्षाक्षततमाः, अयम्, मुनिः, कदा (कदाचित्) अखिलम्, अपि, (इदम्, जगत्) सत्यम्, शिवमयम्, अद्वैतम्, पश्यन्, कदाचित्, च, महावाक्यार्थानाम्, अवगतिसमभ्यासवशतः गतद्वैताभासः, शिव, शिव, शिव, इति, एव, विलपन्, व्यामोहम्, न भजति।

अर्थ—गुरु जी की कृपा से अज्ञान को दूर कर, विमल ज्ञान को प्राप्त किया हुआ यह मननशील मुनि, कभी इस समस्त संसार को सत्य, शिवमय तथा अद्वैतमय देखता है, तो फिर कभी-कभी तत्त्वमसीत्यादि महावाक्यार्थों के मननादि के अभ्यास से द्वैतभावना-रहित होकर, 'शिव शिव, शिव' इस प्रकार के नामों को जपता हुआ, कभी भी अज्ञान के जञ्जाल में नहीं पड़ता है।। १६।।

इमां मुक्तावस्थां परमशिवसंस्थां गुरुकृपा-
सुधापाङ्गव्याप्यां सहजसुखावाप्यामनुदिनम्।

मुहुर्मज्जन्मज्जन्भजति सुकृतैश्चेन्नरवरः
सदा त्यागी योगी कविरिति वदन्तीह कवयः।। १७।।

अन्वय—चेत् (यदि) सुकृतैः, कश्चित्, नरवरः, गुरुकृपासुधापाङ्गव्याप्याम्, सहजसुखवाप्याम्, अनुदिनम्, मुहुः, मज्जन्, मज्जन्, परमशिवसंस्थाम्, इमाम्, मुक्तावस्थाम्, भजति, चेत्, तदा, इह, कवयः, (अमुम् योगिनम्) सदा, त्यागी, योगी, कविः, इति वदन्ति।

अर्थ—यदि अपने पूर्वजन्म के पुण्यों से, कोई पुरुषश्रेष्ठ, गुरुकृपा-कटाक्ष से समन्वित सहजसुख की बावड़ी में प्रतिदिन निरन्तर गोता लगाता हुआ, परमशिवरूप इस मुक्तावस्था को प्राप्त होता है, तो कवि लोग, इसे हमेशा त्यागी, योगी व क्रान्तदर्शी मानते हैं।। १७।।

तत्त्वोपदेशः

तत्त्वंपदार्थशुद्ध्यर्थं गुरुः शिष्यं वचोऽब्रवीत्।
वाक्ये तत्त्वमसीत्यत्र त्वंपदार्थं विवेचय।। १।।

अन्वय—तत्-त्वम्-पदार्थशुद्ध्यर्थम्, गुरुः, शिष्यम्, वचः, अब्रवीत्, अत्र, 'तत्त्वमसि' इति, वाक्ये, त्वम्पदार्थम्, विवेचय।। १।।

अर्थ—'तत्त्वमसि' इस महावाक्यार्थ के घटक पदार्थों के संशोधन, अर्थात् तत्-पदार्थ व त्वम्-पदार्थ की विशेष व्याख्या के लिए, गुरु जी ने शिष्य से कहा कि, हे शिष्य! 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य में जो त्वम् पदार्थ है, उसका थोड़ा विवेचन करो अर्थात् यहाँ त्वम् पद का देहेन्द्रियादि-विशिष्ट जीव अर्थ है, या कोई और अर्थ है, इसका विश्लेषण करो।। १।।

न त्वं देहोऽसि दृश्यत्वाद् रूपजात्यादिमत्त्वतः
भौतिकत्वादशुद्धत्वादनित्यत्वात्तथैव च।। २।।

अन्वय—(यतो हि) दृश्यत्वात्, (हेतोः) रूपजात्यादिमत्त्वतः, तथा, एव, च, भौतिकत्वात्, अशुद्धत्वात्, अनित्यत्वात्, (च) त्वम्, देहः, न, असि।

अर्थ—देह के दृश्य (विषय), रूपवान् तथा जातिमान् होने से, इसी प्रकार भौतिक, अशुद्ध व अनित्य होने से, तुम (त्वम् पदार्थ) अर्थात् त्वंपद-सम्बोध्य जो देहेन्द्रियादि से परिच्छिन्न चैतन्य है, वह चैतन्य, देह तो नहीं हो सकता है।। २।।

अदृश्यो रूपहीनस्त्वं जातिहीनोऽप्यभौतिकः।
शुद्धनित्योऽसि दृग्रूपो घटो यद्वन्न दृग्भवेत।। ३।।

अन्वय—त्वम्, अदृश्यः, रूपहीनः, जातिहीनः, अभौतिकः, (अपि) असि, शुद्धनित्यः, दृग्रूपः, अपि, असि, (दृश्यादिः) घटः, यद्वत्, दृक्, न, भवेत्, (तद्वत् त्वम् नासीत्यर्थः)।

अर्थ—त्वम्पद-वाच्य चैतन्य भी, अदृश्य=अविषय, रूपहीन, जातिहीन, अभौतिक व नित्य शुद्ध दृक् रूप है अर्थात् द्रष्टा है, भौतिक घड़ा जिस प्रकार द्रष्टा न होकर, दृश्य=विषय है, उस प्रकार यह त्वम् पद-वाच्य चैतन्य, विषय व भौतिक नहीं है।।३।।

न भवानिद्रियाण्येषां करणत्वेन यत् श्रुतिः।
प्रेरकस्त्वं पृथक् तेभ्यो न कर्ता करणं भवेत्।। ४।।

अन्वय—भवान्, इन्द्रियाणि, न, यत् एषाम् करणत्वेन, श्रुतिः, अस्ति, त्वम्, तु, तेभ्यः, पृथक्, तेषाम्, प्रेरकः, (प्रेरणकर्ता) असि, (क्वचिदपि) कर्ता, करणम्, न भवेत्।

अर्थ—न आप इन्द्रियाँ ही हैं, जिनकी वेदादि में प्रसिद्धि है कि वे करण अर्थात् साधन हैं; आप तो उनसे भिन्न उनके प्रेरक हैं, अर्थात् इन्द्रिय समुदाय के प्रेरणकर्ता हैं। कभी भी, कहीं भी, कर्ता करण नहीं होता है।। ४।।

नानैतान्येकरूपस्त्वं भिन्नस्तेभ्यः कुतः शृण।
न चैकेन्द्रियरूपस्त्वं सर्वत्राहंप्रतीतितः।। ५।।

अन्वय—एतानि, नाना, त्वम् एकरूपः, (असि अतः) तेभ्यः, त्वम्, भिन्नः, असि। कुतः, (कस्मादेतदिति)? शृणु, सर्वत्र, अहम्, (इति) प्रतीतितः, (हेतोः) त्वम्, एकेन्द्रियरूपः च, न,।

अर्थ—आप (चैतन्य) हमेशा एकरूप हो, अतः अनेक और अनेक प्रकार के परिणामों को प्राप्त होने वाली जो इन्द्रियाँ हैं, तत्स्वरूप आप नहीं हैं, आप उनसे भिन्न हैं। आप क्यों उनसे भिन्न हैं इसमें कारण है: सर्वत्र अर्थात् सब इन्द्रियों में अहम्, प्रतीति होती है; मैंने देखा, मैंने सुना इत्यादि सभी के कार्य अपने किये ही लगते हैं इसलिये यह सम्भव नहीं कि त्वम्पदार्थ जो मैं वह कोई एक इन्द्रिय ही हो।। ५।।

न तेषां समुदायोऽसि तेषामन्यतमस्य च।
विनाशेऽप्यात्मधीस्तावदस्ति स्यान्नैवमन्यथा।। ६।।

अन्वय—त्वम्, तेषाम्, समुदायः, न, असि, तेषाम्, (मध्ये) अन्यतमस्य,

कस्यचिदिन्द्रियविशेषस्य विनाशे, अपि, आत्मधीः, तावत्, अस्ति, एव, अन्यथा, (यदि त्वं तत्समुदायः स्याः) तदा, न, एवम्, स्यात्, (अनया अन्यथानुपपत्त्या त्वं तेभ्यो भिन्न इति)।

अर्थ—आप इन्द्रिय-समुदाय रूप भी नहीं हैं। इन्द्रियों में से किसी एक का विनाश होने पर भी, आत्मबुद्धि कायम रहती है, किसी की कोई इन्द्रिय आँख या कान नष्ट भी हो गई, तो उसके साथ-साथ आत्मा (मैं) तो नष्ट नहीं होता है; यदि इन्द्रियों का समुदाय आत्मा होता, तब इनके साथ ही आत्मा का भी नाश हो जाना चाहिए, पर इन्द्रियों के साथ आत्मा नष्ट नहीं होता है, अतः आत्मा इनसे पृथक् है।। ६।।

प्रत्येकमपि तान्यात्मा नैव तत्र नयं शृण।
नानास्वामिकदेहोऽयं नश्येद् भिन्नमताश्रयः।। ७।।

अन्वय—तानि, प्रत्येकम्, अपि, आत्मा, न, एव, तत्र, नयम्, शृण, (यद्येवं स्यात्) तदा भिन्नमताश्रयः, नानास्वामिकः, अयम्, देहः, नश्येत्।

अर्थ—ऐसा भी नहीं कह सकते हैं कि प्रत्येक इन्द्रिय आत्मा है। इसमें युक्ति यह है, कि यदि प्रत्येक इन्द्रिय को आत्मा माना जायेगा, तो विभिन्नाभिप्राय वाली अनेक इन्द्रियरूप आत्मायें, इस शरीर की स्वामी (मालिक) हो जायेंगी, अतः शरीर भी विभिन्न मतों का आश्रय होने से स्वस्थ नहीं रह सकता है, फलतः नष्ट हो जायेगा। तात्पर्य यह है—अनेक इन्द्रियों के स्वामित्व में, विभिन्न इच्छाओं के साम्राज्य में, यदि किसी को पूर्व को चलने की इच्छा है, तो दूसरे को पश्चिम की ओर चलने की इच्छा होगी, ऐसी स्थिति में देह की व्यवस्था बिगड़ जायेगी। अतः प्रत्येक इन्द्रिय को आत्मा न मानकर, इनसे भिन्न किसी एक तत्त्व को ही आत्मा मानना होगा।। ७।।

नानात्माभिमतं नैव विरुद्धविषयत्वतः।
स्वाम्यैक्ये तु व्यवस्था स्यादेकपार्थिवदेशवत्।। ८।।

अन्वय—विरुद्धविषयत्वतः, नानात्मा, न, एव, अभिमतम् (स्यात्) स्वाम्यैक्ये, तु, एकपार्थिवदेशवत्, व्यवस्था, स्यात्।

अर्थ—विषयभेद के कारण, अनेक आत्मायें अभीष्ट नहीं हैं, अर्थात् यदि रूप को विषय करना आत्मा का स्वभाव है तो कान आत्मा नहीं हो सकता इत्यादि। प्रतिशरीर एक आत्मा मानने पर तो, एक राजा से शासित देश की तरह, व्यवस्था बन सकती है।। ८।।

न मनस्त्वं न वा प्राणो जडत्वादेव चैतयोः।
गतमन्यत्र मे चित्तमित्यन्यत्वानुभूतितः।। ९।।

अन्वय—एतयोः, (प्राणमनसोः) जडत्वात्, एव, त्वम्, मनः, न, प्राणः, वा (च) न, मे, चित्तम्, अन्यत्र, गतम्, इति अन्यत्वानुभूतितः, (अपि) मनसो नात्मत्वमित्यर्थः।

अर्थ—मन और प्राण इन दोनों के जड होने के कारण, त्वम्-पद-बोध्य जो चैतन्य है, वह न तो मन है, और न ही प्राण है। कभी-कभी ऐसा भी अनुभव होता है कि 'मेरा चित्त कहीं अन्यत्र था, इसलिए मुझे अमुक वस्तु का ध्यान नहीं रहा,' इस प्रकार की अनुभूति के द्वारा भी, मन का आत्मा से अन्यत्व सिद्ध होता है।। ९।।

क्षुत्तृड्भ्यां पीडितः प्राणो ममाऽयं चेति भेदतः।
तयो र्द्रष्टा पृथक् ताभ्यां घटद्रष्टा घटाद्यथा।। १०।।

अन्वय—मम, अयम्, प्राणः, क्षुत्तृड्भ्याम्, पीडितः, इति, भेदतः, च, (अनुभूतितः) (त्वम्, प्राणः न) यतो हि तयोः (प्राणमनसोरित्यर्थः) द्रष्टा, ताभ्याम्, पृथक्, अस्ति, यथा, घटद्रष्टा, घटात्, पृथक्, भवति (तथेत्यर्थः)।

अर्थ—'मेरे प्राण इस समय भूख व प्यास से व्याकुल हैं', इत्यादि अनुभव से भी प्राण (त्वम्) आत्मा नहीं हो सकता है। मन और प्राण जब दृश्य (विषय) हैं, तो उनका द्रष्टा उनसे पृथक् होगा; जिस प्रकार दृश्य घट का द्रष्टा (देखने वाला) सर्वथा घट से भिन्न होता है, उसी प्रकार मन तथा प्राण का द्रष्टा, जो आत्मा है, वह भी इनसे पृथक् होगा।। १०।।

सुप्तौ लीनास्ति या बोधे सर्वं व्याप्नोति देहकम्।
चिच्छायया च सम्बद्धा न सा बुद्धि र्भवान् द्विज।। ११।।

अन्वय—हे द्विज! या, सुप्तौ, लीना, अस्ति, बोधे, सर्वम्, देहकम्, व्याप्नोति, या, चिच्छायया, च सम्बद्धा, भवति, सा, बुद्धिः (बुद्धिपदवाच्येत्यर्थः) भवान् (आत्मा) न।

अर्थ—हे द्विज! जो सुषुप्तावस्था में (गाढ निद्रा में) लीन हो जाती है, और जाग्रदवस्था में सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहती है वह चिदाभास से संयुक्त रहने वाली बुद्धि है, वह चैतन्य से संयुक्त होने से ही चैतन्य की तरह मालूम होती है, वस्तुतः वह चैतन्य आत्मा नहीं है।। ११।।

नानारूपवती बोधे सुप्तौ लीनाऽतिचञ्चला।
यतो दृगेकरूपस्त्वं पृथक् तस्याः प्रकाशकः।। १२।।

अन्वय—अतिचञ्चला (सा बुद्धिः), बोधे, नानारूपवती, (भवति), सुप्तौ, च, लीना, (भवति) यतः, तस्याः, प्रकाशकः, अतएव, दृक्, त्वम्, (आत्मा) एकरूप एव, असि, अतः, तस्याः, पृथक्, त्वमित्यर्थः।

अर्थ—अत्यन्त चञ्चल स्वभाव वाली यह बुद्धि, बोध=जाग्रदवस्था में तत्तत् विषयों के भेद से अनेक रूपों वाली होती है। व्यवहार-काल में बुद्धिवृत्ति जिस घट पटादि पदार्थ को ग्रहण करेगी, तत्तत् आकार से आकारित हो जायेगी। सुषुप्तावस्था में वह लीन हो जाती है। परन्तु आप तो उस बुद्धि के प्रकाशक हैं, अतः उसके द्रष्टा हैं। और आप एकरूप हैं, अतः चञ्चलता, अनेकरूपता, दृश्यतादि धर्मों वाली बुद्धि से आप सुतरां पृथक् हैं।। १२।।

सुप्तौ देहाद्यभावेऽपि साक्षी तेषां भवान् यतः।
स्वानुभूतिस्वरूपत्वाद् नान्यस्तस्यास्ति भासकः।। १३।।

अन्वय—सुप्तौ, देहाद्यभावे, अपि, यतः, भवान्, साक्षी, (अतः) तेषाम्, (देहादीनाम् अपि) भवान् साक्षी। स्वानुभूतिस्वरूपत्वात्, 'अन्यः तस्य भासकः न अस्ति' (इतिशास्त्राच्च) भवान् (एव) साक्षी।

अर्थ—सुषुप्ति में देहादि न रह जाने पर भी क्योंकि आप उस अवस्था के साक्षी बने रहते हैं इसलिये यही मान्य है कि आप ही उन देहादि के भी साक्षी हैं, (प्रतियोगीका साक्षी ही उसके अभाव का साक्षी हो सकता है)। क्योंकि आपका स्वरूप ही है अपना अनुभव होना, एवं क्योंकि शास्त्र ने कहा है कि आत्मा वह है जो सबको प्रकाशित करे पर उसका कोई प्रकाशक न हो, इसलिये लक्षण आप में घट जाने से आप ही साक्षी हैं। अर्थात् त्वम्पदार्थ साक्षी ही है।। १३।।

प्रमाणं बोधयन्तं तं बोधं मानेन ये जनाः।
बुभुत्सन्ते त एधोभि र्दग्धुं वाञ्छन्ति पावकम्।। १४।।

अन्वय—प्रमाणम्, बोधयन्तम्, तम्, बोधम्, ये, जनाः, पुनः, मानेन, बुभुत्सन्ते, ते, एधोभिः, पावकम्, दग्धुम्, वाञ्छन्ति, (यथा स्वयं दाहात्मकस्य पावकस्य, पुनः एधोभिर्दहनमशक्यमेवं स्वयं ज्ञानस्वरूपस्य तस्य प्रमाणैर्ज्ञापनमशक्यमित्यर्थः)।

अर्थ—लौकिक व शास्त्रीय सभी प्रकार के प्रमाणों के प्रकाशक, ज्ञानरूप

उस आत्मा को, जो लोग पुनः प्रमाणों से जानने की इच्छा करते हैं, वे लोग काष्ठों के द्वारा अग्नि को जलाने की कुचेष्टा करते हैं। जिस प्रकार काष्ठों के द्वारा अग्नि को जलाना असम्भव है, उसी प्रकार लौकिकादि प्रमाणों द्वारा भी आत्मा का ज्ञान असम्भव है, क्योंकि वे स्वयं ही आत्मा से प्रकाशित हैं।। १४।।

विश्वमात्माऽनुभवति तेनासौ नानुभूयते।
विश्वं प्रकाशयत्यात्मा तेनासौ न प्रकाश्यते।। १५।।

अन्वय–आत्मा, विश्वम्, अनुभवति, तेन, (विश्वेनेत्यर्थः) असौ (आत्मा) न, अनुभूयते, (एवमेव) आत्मा, विश्वम्, प्रकाशयति, अतः, तेन, (विश्वेन) असौ (आत्मा) न, प्रकाश्यते।

अर्थ–यह आत्मा सम्पूर्ण विश्व का अनुभव करता है, अतः जड विश्व के द्वारा आत्मा का अनुभव नहीं हो सकता है। इसी प्रकार यह विश्व को प्रकाशित भी करता है, अतः विश्व के द्वारा इसका प्रकाशन कैसे हो सकता है! अर्थात् चेतन पदार्थ से ही जड वस्तु का प्रकाशन हो सकता है, न कि जड के द्वारा चेतन का।। १५।।

ईदृशं तादृशं नैतन्न परोक्षं सदेव यत्।
तद् ब्रह्म त्वं न देहादिदृश्यरूपोऽसि सर्वदृक्।। १६।।

अन्वय–यत्, (सर्वदा) सत्, एव, एतत्, ईदृशम्, तादृशम्, न, परोक्षम्, (च) न, सर्वदृक्, तद् ब्रह्म, त्वम्, असि, देहादिदृश्यरूपः, न, असि।

अर्थ–जो वस्तु हमेशा सत् रूप ही है, वह एतत्प्रकारक या तत्प्रकारकादि नहीं होती है, न वह परोक्ष ही होती है। तुम उक्त स्वरूप वाले सर्वप्रकाशक ब्रह्म ही हो, देहेन्द्रियादि-विशिष्ट दृश्यरूप नहीं हो। (पंचदशी ३.२६ आदि में विस्तार देख सकते हैं।)।। १६।।

इदंत्वेनैव यद् भाति सर्वं तच्च निषिध्यते।
अवाच्यतत्त्वमनिदं न वेद्यं स्वप्रकाशतः।। १७।।

अन्वय–यद्, (वस्तु) इदंत्वेन, एव, भाति, तत्, च, सर्वम् (नेति नेतीति) निषिध्यते। अनिदम्, अवाच्यतत्त्वम्, स्वप्रकाशतः, वेद्यम्, न, भवति।

अर्थ–जो वस्तु (संसारादि) इदं-रूप से ('यह' इस प्रकार से) ही बोध्य है न कि 'मैं' इस प्रकार से, उसका उपनिषदों में 'नेति नेति' द्वारा निषेध किया गया है, अर्थात् इदम्पदबोध्य प्रत्यक्ष दृश्यमान यह संसार आत्मा

नहीं है। आत्मा अवाङ्मनसगोचर है तथा इदम्बुद्धि का विषय नहीं है। वह स्वतः प्रकाशशील होने से (घटपटादि की तरह) वेद्य नहीं है।। १७।।

सत्यं ज्ञानमनन्तं च ब्रह्मलक्षणमुच्यते।
सत्यत्वाज्ज्ञानरूपत्वादनन्तत्वात्त्वमेव हि।। १८।।

अन्वय—सत्यम्, ज्ञानम्, अनन्तम्, इति, च, ब्रह्मलक्षणम्, उच्यते (अथ च) सत्यत्वात्, ज्ञानरूपत्वात्, अनन्तत्वात्, च, त्वम्, तत्, एव, हि।

अर्थ—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' यह ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है, अर्थात्, ब्रह्म हमेशा सत्‌रूप ज्ञानरूप तथा अनन्त=व्यापकरूप से कभी भी विचलित नहीं रहता है। आप में जब वही सत्यत्व ज्ञानत्व व अनन्तत्व है, तो आप ही सत्य ज्ञान व अनन्तस्वरूप ब्रह्म हैं।। १८।।

सति देहाद्युपाधौ स्याज्जीवस्तस्य नियामकः।
ईश्वरः शक्त्युपाधित्वाद् द्वयोर्बाधे स्वयंप्रभः।। १९।।

अन्वय—देहाद्युपाधौ, सति, जीवः, स्यात्। शक्त्युपाधित्वात्, तस्य (जीवस्य) नियामकः, ईश्वरः (भवति। मलिनसत्त्वोपाधिविशिष्टं चैतन्यं जीवः, शुद्धसत्त्वोपाधिविशिष्टं चैतन्यमीश्वर इति प्रक्रिया।) (ज्ञानेन) द्वयोः, बाधे, सति, स्वयंप्रभः, (एवावशिष्यते)।

अर्थ—देह आदि उपाधि रहते जीव होता है, उसका शासक शक्ति-उपाधि के कारण ईश्वर होता है। (देहेन्द्रियादि से विशिष्ट चैतन्य को जीव कहते हैं, और माया शक्ति से विशिष्ट चैतन्य को ईश्वर कहते हैं। मलिनसत्त्वप्रधाना जो अविद्या है, उसमें प्रतिबिम्बित चैतन्य को जीव कहते हैं, और शुद्धसत्त्वप्रधाना जो माया है, उसमें प्रतिबिम्बित चैतन्य को ईश्वर कहते हैं। इन दोनों में अन्तर यह है कि मलिनसत्त्व होने से जीव हमेशा अविद्या से पीडित या उसके अधीन रहता है, और शुद्धसत्त्व होने से ईश्वर नियामक होता है, अतः माया ईश्वर के अधीन होती है। (ज्ञान के द्वारा जब दोनों प्रकार की (देहादि व शक्ति) उपाधियों का बाध हो जाता है, तब केवल स्वयंप्रकाश चिन्मात्र अवशिष्ट रहता है।।१९।।

अपेक्ष्यतेऽखिलैर्मानै र्न यन्मानमपेक्षते।
वेदवाक्यं प्रमाणं तद् ब्रह्मात्मावगतौ मतम्।। २०।।

अन्वय—यत् (ब्रह्म) अखिलैः, मानैः, अपेक्ष्यते, तत्, मानम्, न, अपेक्षते। ब्रह्मावगतौ (केवलम्) वेदवाक्यम्, प्रमाणम्, मतम्।

अर्थ—समस्त लौकिक व शास्त्रीय प्रमाण अपनी सिद्धि के लिये जिस चैतन्यरूप ब्रह्म की अपेक्षा रखते हैं, उसे प्रमाणों की अपेक्षा नहीं है। ब्रह्म के स्वरूप के ज्ञान के लिए, केवल वेदान्त वाक्य ही परम प्रमाण हैं। अर्थात् ब्रह्म की सिद्धि के लिये नहीं पर उसके स्वरूप को समझने के लिये प्रमाण चाहिये और वह वेद ही है।। २०।।

अतो हि तत्त्वमस्यादिवेदवाक्यं प्रमाणतः।
ब्रह्मणोऽस्ति यया युक्त्या साऽस्माभिः संप्रकीर्त्यते।। २१।।

अन्वय—अतः, तत्त्वमस्यादिवेदवाक्यं, यया, युक्त्या, हि ब्रह्मणः, प्रमाणतः, अस्ति, सा, (युक्तिः) अस्माभिः, संप्रकीर्त्यते।

अर्थ—क्योंकि ब्रह्मावगति में वेदवाक्य प्रमाण है इसलिये अब हम वह युक्ति बतलाते हैं जिससे वेद के 'तत्त्वमसि' आदि वाक्य ब्रह्म के विषय में प्रमाण-पक्षीय बन जाते हैं। (धर्म तो सर्वथा अज्ञात होने से उसके बारे में अज्ञातज्ञापकता रूप प्रमाणता सीधे ही समझ आती है, ब्रह्म प्रत्यग्रूप से स्फुरमाण होने से सर्वथा अज्ञात भी नहीं और प्रमाणादिका साक्षात् विषय भी नहीं, अतः उसके बारे में वेद प्रमाण कैसे है यह युक्तिपूर्वक समझना आवश्यक है।)।। २१।।

शोधिते त्वंपदार्थे हि तत्त्वमस्यादिचिन्तनम्।
सम्भवेन्नान्यथा तस्माच्छोधनं कृतमादितः।। २२।।

अन्वय—हि (यतः) त्वंपदार्थे, शोधिते, सति, (तत्पदार्थेन सहेत्यर्थः) तत्त्वमस्यादिचिन्तनम्, सम्भवेत्, अन्यथा, तु, (तच्चिन्तनमसम्भव-मित्यर्थः) तस्मात्, आदितः, (तत्त्वमस्यादिपदार्थानाम्) शोधनम्, कृतम्।

अर्थ—क्योंकि जब तक (तत्-पदार्थ तथा) त्वम्-पदार्थ का शोधन न किया जाय, तब तक तत्त्वमस्यादि महावाक्यों का चिन्तन होना सम्भव नहीं है, इसीलिए हमने इस प्रकरण के प्रारम्भ से ही तत्, त्वम्, आदि पदार्थों का संशोधन किया है।।२२।।

देहेन्द्रियादिधर्मान् यः स्वात्मन्यारोपयन् मृषा।
कर्तृत्वाद्यभिमानी च वाच्यार्थस्त्वंपदस्य सः।। २३।।

अन्वय—यः, देहेन्द्रियादिधर्मान् मृषा, आत्मनि, आरोपयन्, कर्तृत्वाद्य-भिमानी, च, भवति, सः, (देहेन्द्रियादिधर्मावच्छिन्नश्चैतन्यविशेषः) त्वंपदस्य, वाच्यार्थः, भवति।

अर्थ—जो (मनुष्य) देह, इन्द्रिय व अन्तःकरण के धर्मों का आत्मा में

मिथ्या आरोप करता हुआ, अपने में कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सुख-दुःखादि का अभिमान करता है, वही देहेन्द्रियादि के धर्म से विशिष्ट चैतन्य त्वंपद का वाच्यार्थ है। यद्यपि आत्मा शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला है, फिर भी व्यवहार में त्वंपद से देहेन्द्रियादि-विशिष्ट चैतन्य का ही आत्मा शब्द से ग्रहण किया जाता है, अर्थात् त्वंपद का प्रवृत्तिनिमित्त (व्यवहार प्रयोजक) देहेन्द्रियादिविशिष्ट चैतन्य ही है। परमार्थ या अद्वैत के बोध के लिए त्वंपदार्थ का संशोधन आवश्यक है अर्थात् महावाक्यों में त्वं व तत् पदों से क्या अर्थ अभिप्रेत है यह समझना जरूरी है।। २३।।

देहेन्द्रियादिसाक्षी यस्तेभ्यो भाति विलक्षणः।
स्वयंबोधस्वरूपत्वाल्लक्ष्यार्थस्त्वंपदस्य हि।। २४।।

अन्वय—यः, देहेन्द्रियादिसाक्षी (भवति) सः, स्वयंबोधस्वरूपत्वात्, तेभ्यः, (देहेन्द्रियादिभ्यः) विलक्षणः भाति, (अतः, देहेन्द्रियादिविलक्षणः, स्वयंबोधस्वरूप एव) त्वंपदस्य, लक्ष्यार्थः, भवति।

अर्थ—जो (चैतन्य) देहेन्द्रियादि का साक्षी है, और स्वयं बोधस्वरूप है, वह विचार करने पर देहेन्द्रियादि से भिन्न, ज्ञानस्वरूप चैतन्य ही है। यही विशुद्ध चैतन्य त्वंपद का लक्ष्यार्थ है।। २४।।

वेदान्तवाक्यसंवेद्यविश्वातीताक्षराद्वयम्।
विशुद्धं वस्त्वसंवेद्यं लक्ष्यार्थस्तत्पदस्य सः।। २५।।

अन्वय—(योऽर्थः) वेदान्तवाक्यसंवेद्यविश्वातीताक्षराद्वयम्, असंवेद्यम्, विशुद्धम्, वस्तु, अस्ति, सः (पदार्थ इत्यर्थः) तत्पदस्य, लक्ष्यार्थः, अस्ति।

अर्थ—'तत्त्वमस्यादि' महावाक्यों में, जो पदार्थ केवल वेदान्त-वाक्यों से ही मननीय है, और लोकोत्तर अक्षर व अद्वैत है, किसी वृत्तिविशेष का विषय, या घट पटादि की तरह ज्ञान का विषय न हो, ऐसा विशुद्ध चैतन्यरूप वस्तु ही तत् पद का लक्ष्यार्थ है। वाच्यार्थ दशा में तत् पद का वाच्य माया-विशिष्ट चैतन्य होता है, अतः यहाँ परोक्षत्वादि-विशेषणों का संशोधन लक्षणावृत्ति के द्वारा किया जाता है।। २५।।

सामानाधिकरण्यं हि पदयोस्तत्त्वमोर्द्वयोः।
सम्बन्धस्तेन वेदान्तै र्ब्रह्मैक्यं प्रतिपाद्यते।। २६।।

अन्वय—हि, तत्त्वमोः, द्वयोः, पदयोः, (परस्परम्) सामानाधिकरण्यम्, सम्बन्धः (अस्ति) तेन (कारणेन) वेदान्तैः, (जीवेन सह) ब्रह्मैक्यम्, प्रतिपाद्यते, (जीवो ब्रह्मैव नापरः, अयं सिद्धान्तः साध्यत इत्यर्थः)।

अर्थ—क्योंकि 'तत्' व 'त्वम्' इन दो पदों का आपस में सामानाधिकरण्य सम्बन्ध है, इसलिये वेदान्त जीव की ब्रह्म से एकता का प्रतिपादन करते हैं। (सामानाधिकरण्य अगले श्लोक से समझयेंगे)।। २६।।

भिन्नप्रवृत्तिहेतुत्वे पदयोरेकवस्तुनि।
वृत्तित्वं यत्तथैवैकविभक्त्यन्तकयोस्तयोः।
सामानाधिकरण्यं तत् संप्रदायिभिरीरितम्।। २७।।

अन्वय—पदयोः भिन्नप्रवृत्तिहेतुत्वे, एकवस्तुनि, वृत्तित्वम्, यत् तत्, सामानाधिकरण्यम्, । तथा एव, यत्, एकविभक्त्यन्तकयोः, तयोः (पदयोः) एकवस्तुनि, वृत्तित्वम्, तत्, सामानाधिकरण्यम्, सम्प्रदायिभिः, ईरितम्।

अर्थ—विभिन्न वाच्यार्थों वाले शब्द (वाक्यरूप से मिलकर) एक वस्तु के बोधक बनें तो साम्प्रदायिक विद्वान् उन शब्दों का आपसी सम्बन्ध सामानाधिकरण्य कहते हैं। इसी तरह (वाक्य में आये) एक विभक्ति वाले शब्द एक वस्तु के बोधक हों तो उनका आपसी सम्बन्ध सामानाधिकरण्य कहलाता है। यहाँ 'पदयोः' से दो ही पद अभिप्रेत नहीं, किन्तु महावाक्यों की दृष्टि से द्विवचन कहा है। एक वस्तु के बोधक होने पर भी पुनरुक्ति नहीं होती क्योंकि वाच्य अलग होते हैं जैसे 'लाल घड़ा' में 'जो लाल है वही घड़ा है' अतः 'लाल' और 'घड़ा' शब्द एक ही वस्तु के बोधक हैं पर पुनरुक्ति नहीं है। यहाँ दो परिभाषाएँ दी हैं, किसी में अस्वारस्य मानकर दूसरी नहीं कही है, दोनों विवक्षित हैं। दृष्टान्त से सामानाधिकरण्य उत्तर श्लोक में बता रहे हैं।। २७।।

तथा पदार्थयोरेव विशेषणविशेष्यता।
अयं सः सोऽयमितिवत् सम्बन्धो भवति द्वयोः।। २८।।

अन्वय—तथा, द्वयोः, पदार्थयोः, (तत्त्वमोरित्यर्थः) एव, अयम्, सः, सः, अयम्, इतिवत्, विशेषणविशेष्यता (नामकः) सम्बन्धः, भवति।

अर्थ—इसी प्रकार ('तत्' व 'त्वम्' इन) दोनों पदार्थों का परस्पर, 'यह वही देवदत्त है, वह देवदत्त यही है,' इस वाक्य की तरह, विशेषण-विशेष्य-भाव सम्बन्ध भी होता है। (नैष्कर्म्यसिद्धि ३.३ में बताया है कि महावाक्य-स्थल में पदों का सामानाधिकरण्य होता है, वाच्य पदार्थों का सम्बन्ध विशेषण-विशेष्य के रूप में होता है एवं वाच्यार्थों का तात्पर्यार्थ से लक्ष्य-लक्षण रूप सम्बन्ध होता है अर्थात् तात्पर्य लक्ष्य और वाच्यार्थ लक्षक होता है। संक्षेपशारीरक १.१९९ इत्यादि में विषय का स्पष्टीकरण है। प्रकृत में 'तत्त्वमसि'

से प्रारंभिक बोध 'अहं ब्रह्म' होगा तो उसमें अहंका विशेषण ब्रह्म प्रतीत होगा किन्तु वह असम्भव लगने पर लक्षणा द्वारा अखण्डार्थ समझा जायेगा।)।। २८।।

प्रत्यक्त्वं सद्वितीयत्वं परोक्षत्वं च पूर्णता।
परस्परविरुद्धं स्यात् ततो भवति लक्षणा।। २९।।
लक्ष्यलक्षणसम्बन्धः पदार्थप्रत्यगात्मनोः।। ३०।।

अन्वय–(विशेषणविशेष्यतया सम्बन्धे कथ्यमानम्) परोक्षत्वम् प्रत्यक्त्वम् परस्परविरुद्धं स्यात्, च, पूर्णता सद्वितीयत्वं परस्परविरुद्धं स्यात्, ततः (विरोधपरिहाराय) लक्षणा भवति, (तया) पदार्थ-प्रत्यगात्मनोः लक्ष्यलक्षणसम्बन्धः (स्वीक्रियते)।

अर्थ–जब तत्-त्वम् पदार्थों को विशेष्य-विशेषण के रूप में जोड़ने लगते हैं तब इनका आपसी विरोध प्रकट होकर रुकावट डालता है : तत्पदार्थ में परोक्षता और पूर्णता है जब कि त्वम्पदार्थ में प्रत्यग्रूपता और सद्वितीयता (अर्थात् वस्तुपरिच्छेद या अल्पता) है। परोक्ष को प्रत्यक् नहीं कह सकते व पूर्ण को अल्प नहीं कह सकते। अतः वाच्यार्थों का उक्त सम्बन्ध संभव न होने पर वाक्य को संगतार्थक बनाने के लिये शब्दों की लक्षणा-नामक वृत्ति का प्रयोग होता है। पदों के वाच्यार्थ लक्षण अर्थात् लक्षक होते हैं। तथा प्रतिपाद्य प्रत्यगात्मा लक्ष्य होता है। (पद वाच्यार्थ द्वारा लक्ष्यार्थ का बोध लक्षणा से कराता है अतः यहाँ पदार्थ व प्रतिपाद्यार्थ के सम्बन्ध को बताया। वेदान्तसार खण्ड २३ में भी यह विषय समझाया है।)।। ३०।।

मानान्तरोपरोधाच्च मुख्यार्थस्यापरिग्रहे।
मुख्यार्थस्याविनाभूते प्रवृत्तिर्लक्षणोच्यते।। ३१।।

अन्वय–(यस्मिन् वाक्ये) मानान्तरोपरोधात् (प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैर्बाधादित्यर्थः। यथा गङ्गायां घोष इत्यादौ; तादृशे वाक्ये) मुख्यार्थस्य अपरिग्रहे, (मुख्यार्थस्यांशविशेषेण सर्वथा वा त्यागे) मुख्यार्थस्य अविनाभूते, (अर्थे या) प्रवृत्तिः, (भवति, यया वृत्त्या बोधो भवतीत्यर्थः सा) लक्षणा, उच्यते, (बुधैरित्यर्थः। इत्थं शक्यसम्बन्धो लक्षणा इति लक्षणालक्षणं प्रतिपादितं भवति।)

अर्थ–प्रमाणान्तर का विरोध होने के कारण वाच्यार्थ छोड़कर शब्द जब ऐसा अर्थ बताये जो वाच्यार्थ से अवश्य सम्बद्ध है तब (शब्द का वह प्रयास) लक्षणा कहलाता है। (विचार्यमाण वाक्य भी प्रमाण ही है अतः कहा कि

अन्य किसी प्रमाण का विरोध होने पर। उदाहरणार्थ 'गंगा पर घर है' सुनकर क्योंकि गंगापद के वाच्य प्रवाह पर घर होना 'सभी घर पक्की जमीन पर होते हैं' इस व्याप्ति के विरुद्ध है इसलिये असम्भव है—यह समझकर, गंगाशब्द से गंगा का सम्बन्धी किनारा कहा जा रहा है यह बोध हो जाता है। किनारा अर्थ गंगा शब्द ने लक्षणा वृत्ति से बताया।)।। ३१।।

त्रिविधा लक्षणा ज्ञेया जहत्यजहती तथा।
अन्योभयात्मिका ज्ञेया तत्राद्या नैव संभवेत्।। ३२।।

अन्वय—लक्षणा, (तावत्) त्रिविधा, ज्ञेया, जहतीलक्षणा, अजहती-लक्षणा, अन्या, उभयात्मिका (जहदजहल्लक्षणा, भागत्यागलक्षणा वा) ज्ञेया तत्र (तत्त्वमसीत्यादौ) आद्या (जहतीलक्षणा) न, एव, संभवेत्।

अर्थ—लक्षणा तीन प्रकार की होती हैं। जहती लक्षणा (वाक्यार्थ-बोध में जहाँ स्वार्थ का सर्वथा त्याग करना पड़ता है); अजहती लक्षणा, (जहाँ वाक्यार्थ-बोध के लिए स्वार्थ का परित्याग न करते हुए परार्थ का आक्षेप किया जाता है।) इन दोनों से अतिरिक्त अन्य एक उभयात्मिका, जहदजहल्लक्षणा अर्थात् भागत्याग नामक लक्षणा भी है, जिसमें वाक्यार्थ बोध के लिए कुछ (अवाञ्छित) अर्थ को छोड़कर कुछ (अभीष्ट) अर्थ का ग्रहण किया जाता है। 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्यों में प्रथम जहती लक्षणा तो चरितार्थ नहीं हो सकती है।। ३२।।

वाच्यार्थमखिलं त्यक्त्वा वृत्तिः स्याद्या तदन्विते।
गङ्गायां घोष इतिवज्जहती लक्षणा हि सा।। ३३।।

अन्वय—हि (यत्) या (लक्षणा) अखिलम्, वाच्यार्थम्, त्यक्त्वा, तदन्विते (वाच्यार्थान्विते तटादौ) वृत्तिः (वृत्तिमतीत्यर्थः) स्यात्, सा, जहती, लक्षणा, भवेत्, गङ्गायां घोष, इतिवत्, (अर्थात् अत्र गङ्गाशब्दः स्वार्थरूपं प्रवाहार्थं परित्यज्य प्रवाहान्विते तटे चरितार्थो भवति, तथा तत्त्वमसीत्यादौ नेत्यर्थः।)

अर्थ—क्योंकि जो वृत्ति=लक्षणा, अपने वाच्यार्थ का सर्वथा परित्याग कर, वाच्यार्थ से समन्वित (तटादि) अर्थ में, चरितार्थ होती है, उसे जहती लक्षणा या लक्षणलक्षणा कहते हैं, जैसे—'गङ्गायां घोषः' इत्यादि स्थल में; यहाँ गङ्ग शब्द का मुख्यार्थ भगीरथ-रथ से खातावच्छिन्न जलप्रवाह है, घोष का अर्थ अहीरों का गाँव है। जल प्रवाह में गाँव का होना असम्भव है, अतः यहाँ मुख्यार्थ से काम नहीं चलता है, क्योंकि मुख्यार्थ से वाक्यार्थ-बोध नहीं

होता है, या वाक्यार्थ ज्ञान में बाधा आती है। अतः ऐसे स्थलों में वाक्यार्थ-ज्ञान के लिए लक्षणावृत्ति का आश्रय लिया जाता है। तब यहाँ जहल्लक्षणा के द्वारा वाच्यार्थ या मुख्यार्थ जो जलप्रवाह है, उसका सर्वथा त्याग हो जाता है। अतः लक्षणा के द्वारा गङ्गाशब्द, अपने मुख्यार्थ का परित्याग कर, तट अर्थ का प्रतिपादन करेगा, तब घोष के आधार की उपपत्ति होती है, अर्थात् फिर तट में गाँव के बसने में कोई बाधा नहीं है। अतः 'गङ्गायां घोषः' इत्यादि स्थलों में, गङ्गा शब्द अपने मुख्यार्थ का सर्वथा परित्याग करता हुआ, मुख्यार्थान्वित प्रवाह से सम्बद्ध तटार्थ का बोध कराता है, इसलिए यहाँ जहती लक्षणा है। 'तत्त्वमसि' आदि में इस लक्षणा को मानें तो वाच्यार्थ के अन्तर्गत आये चैतन्य का भी त्याग करना पड़ेगा जिससे 'मैं ब्रह्म हूँ' यह बोध असंभव हो जायेगा अतः महावाक्यों में इसे मान नहीं सकते।। ३३।।

वाच्यार्थस्यैकदेशस्य प्रकृते त्याग इष्यते।
जहती संभवेन्नैव संप्रदायविरोधतः।। ३४।।

अन्वय—प्रकृते (तत्त्वमसीत्यादौ तु) वाच्यार्थस्य, (परोक्षत्वाद्यपरोक्षत्वादिविशिष्टचैतन्ययोरित्यर्थः) एकदेशस्य (परोक्षत्वपरिच्छिन्नत्वादिविरुद्धांशस्येत्यर्थः) त्यागः, इष्यते, अतः, सम्प्रदायविरोधतः, (सर्वांशत्यागरूपा) जहती लक्षणा, न, एव, संभवेत्।

अर्थ—प्रकृत 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्यों में तो, वाच्यार्थ अर्थात् 'तत्त्वमसि' इस वाक्य का जो परोक्षत्व व अपरोक्षत्व से विशिष्ट चैतन्यरूप वाच्यार्थ है, इसके एकदेश अर्थात् विरुद्धांश (परोक्षत्व परिच्छिन्नत्वादि) का त्याग किया जाता है, इसलिए वेदान्तपरम्परा के अनुकूल न होने से उक्त वाक्य में, जहती लक्षणा (लक्षणलक्षणा) नहीं हो सकती है।। ३४।।

वाच्यार्थमपरित्यज्य वृत्तिरन्यार्थके तु या।
कथितेयमजहती शोणोऽयं धावतीतिवत्।। ३५।।

अन्वय—या, वृत्तिः, तु, वाच्यार्थम्, अपरित्यज्य, अन्यार्थके (वर्तते) (अपरार्थमाक्षिपतीत्यर्थः), इयम्, (वृत्तिः) अजहती, कथिता, 'अयम्, शोणः, धावति', इतिवत्।

अर्थ—जो वृत्ति (अपने) स्वार्थ का त्याग न करते हुए, परार्थ का भी आक्षेप करती है, उसे अजहतीलक्षणा या उपादान लक्षणा कहते हैं। जैसे 'अयं शोणो धावति' (यह लाल दौड़ रहा है) इत्यादि स्थल में, यहाँ 'शोण' शब्द अपने शोण (रक्त) गुण का परित्याग न करता हुआ, अपने आधारभूत

द्रव्य अश्व, बैल, आदि का भी आक्षेप कर लेता है, फलतः 'शोणोधावति' का अर्थ लाल रंग वाला घोड़ा या बैल दौड़ता है, यह होगा।। ३५।।

न संभवति साप्यत्र वाच्यार्थेऽतिविरोधतः।

विरोधांशपरित्यागो दृश्यते प्रकृते यतः।। ३६।।

अन्वय—अत्र, वाच्यार्थे, अतिविरोधतः, सा (=अजहती), अपि, न, सम्भवति, यतः, प्रकृते, विरोधांशपरित्यागः, दृश्यते।

अर्थ—महावाक्यगत तत्-त्वम् पदों के वाच्य अर्थों में परस्पर इतना अधिक विरोध है कि वाच्यार्थ बिना छोड़े उनका अभेदरूप वाक्यार्थ समझा ही नहीं जा सकता, इसलिये यहाँ अजहती लक्षणा संभव नहीं। क्योंकि इन वाक्यों के संगत बोध के लिये वाच्यार्थगत विरुद्ध अंशों का त्याग किया जाता है इसलिये यहाँ अजहती लक्षणा नहीं हो सकती। (लाल गुण का दौड़ने से विरोध तो है, अत्यन्त विरोध नहीं, क्योंकि घोड़े आदि द्रव्य से जुड़ा लाल रंग भी दौड़ सकता है। इसलिये वहाँ अजहती लक्षणा सम्भव है।)।। ३६।।

वाच्यार्थस्यैकदेशं च परित्यज्यैकदेशकम्।

या बोधयति सा ज्ञेया तृतीया भागलक्षणा।। ३७।।

अन्वय—या (लक्षणा) वाच्यार्थस्य, एकदेशम्, (विरुद्धांशमित्यर्थः) परित्यज्य, एकदेशम्, (चैतन्यरूपमर्थम्) च बोधयति, सा, तृतीया, भागलक्षणा, (भागत्यागलक्षणा वा) ज्ञेया।

अर्थ—जो लक्षणा वाच्यार्थ के एकदेश का, अर्थात् विरुद्धांश का, परित्याग कर, अवशिष्ट जो एकदेश अर्थात् अविरुद्धांश जैसे प्रकृत में अखण्ड चैतन्य-रूप अर्थ है, उसका बोध कराती है, वह तीसरी, जहती व अजहती से अतिरिक्त भागलक्षणा, या भागत्यागलक्षणा होती है।। ३७।।

सोऽयं विप्र इदं वाक्यं बोधयत्यादितस्तथा।

तत्कालत्वविशिष्टं च तथैतत्कालसंयुतम्।। ३८।।

अन्वय—'सोऽयं विप्रः' इदं वाक्यम्, (यथा) आदितः, (प्रथमबोधोपस्थितौ, वाच्यार्थवेलायामित्यर्थः) तत्कालत्वविशिष्टम्, तथा, एतत्कालसंयुतम्, च, (विप्रं) बोधयति।

अर्थ—'सोऽयं विप्रः' (यह वही ब्राह्मण है जिसे मैंने कहीं देखा था) यह वाक्य, जैसे वाच्यार्थ दशा में (अर्थात् मुख्यार्थ के विचार से) विप्र की पूर्वकालीनता तथा वर्तमानकालीनता इन उभयविध विशेषताओं का बोध कराता है, संक्षेप में जिसे तत्ता और इदन्ता भी कहते हैं। अर्थात् यहाँ 'सोऽयं

विप्रः' यह वाक्य प्राथमिक बोध के समय केवल विप्रमात्र का बोध न कराते हुए, तत्काल-तद्देश-विशिष्ट तथा एतत्काल-एतद्देश-विशिष्ट विप्र का बोध कराता है।। ३८।।

अतस्तयो र्विरुद्धं तत्तत्कालत्वादिधर्मकम्।
त्यक्त्वा वाक्यं यथा विप्रपिण्डं बोधयतीरितम्।। ३९।।

अन्वय—अतः, तयोः, तत्तत्कालत्वादिधर्मकम्, विरुद्धम्, (एकदेशम्) (भागत्यागद्वारा) त्यक्त्वा, वाक्यम्, केवलम्, विप्रपिण्डम्, बोधयति, इति, बुधैः, ईरितम्।

अर्थ—क्योंकि भूत और वर्तमान से युगपत् विशिष्ट होना असम्भव है, इसलिए तत्काल तथा एतत्काल से विशिष्ट विप्र का जो तत्कालत्व व एतत्कालत्व रूप विरुद्ध अंश है, भागत्याग लक्षणा के द्वारा उसका परित्याग कर, वाक्य केवल विप्र के पिण्ड मात्र का बोध कराता है, ऐसा विद्वानों का कथन है।। ३९।।

तथैव प्रकृते तत्त्वमसीत्यत्र श्रुतौ शृणु।
प्रत्यक्त्वादीन् परित्यज्य जीवधर्मांस्त्वमः पदात्।। ४०।।
सर्वज्ञत्वपरोक्षादीन् परित्यज्य तदः पदात्।
शुद्धं कूटस्थमद्वैतं बोधयत्यादरात्परम्।। ४१।।

अन्वय—तथा, एव, प्रकृते, 'तत्त्वमसि', इत्यत्र, श्रुतौ (श्रुतिवाक्ये, वेदान्तमहावाक्ये वा) शृणु (अत्र) त्वमः, पदात्, प्रत्यक्त्वादीन्, जीव-धर्मान्, परित्यज्य, तदः, पदात् (च) सर्वज्ञत्वपरोक्षादीन् परित्यज्य (इदं वाक्यम् भागत्यागलक्षणाद्वारा) आदरात्, परम्, शुद्धम्, कूटस्थम्, अद्वैतम्, बोधयति।

अर्थ—सोऽयं विप्रः की तरह प्रकृत में 'तत्त्वमसि' इस वेदान्त वाक्य की व्याख्या भी सुनो—यहाँ 'त्वम्' यह पद प्रत्यक्त्व अल्पज्ञत्वादि जो जीवधर्म हैं, उन्हें छोड़ देता है, और 'तद्' पद भी परोक्षत्व सर्वज्ञत्वादि धर्मों को छोड़ देता है, फलतः 'तत्त्वमसि' यह महावाक्य भागत्यागलक्षणा द्वारा आदरपूर्वक परम शुद्ध कूटस्थ अद्वैत चैतन्यमात्र का बोध कराता है।। ४०।। ४१।।

तत्त्वमोः पदयोरैक्यमेव तत्त्वमसीत्यलम्।
इत्थमैक्यावबोधेन सम्यग्ज्ञानं दृढं नयैः।। ४२।।

अन्वय—'तत्त्वमसि' इति (वाक्ये) तत्त्वमोः, पदयोः, ऐक्यम्, एव, अलम्। इत्थम्, नयैः, ऐक्यावबोधेन, सम्यग्ज्ञानम्, दृढम्, भवति।

अर्थ—इस प्रकार 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य में, तत् व त्वम् पदार्थों की अत्यन्त एकता कही है, अर्थात् जीव व ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करना ही इस महावाक्य का फल है। इस तरह वेदान्तसिद्धान्तानुसार एकता का विचारपूर्वक बोध हो जाने पर, ब्रह्मविषयक सम्यक् ज्ञान दृढ हो जाता है।।४२।।

अहं ब्रह्मेति विज्ञानं यस्य शोकं तरत्यसौ।
आत्मा प्रकाशमानोऽपि महावाक्यैस्तथैकता।। ४३।।
तत्त्वमो र्बोध्यतेऽथापि पौर्वापर्यानुसारतः।
तथापि शक्यते नैव श्रीगुरोः करुणां विना।। ४४।।

अन्वय—यस्य, अहम्, ब्रह्म, इति, विज्ञानम्, भवति, असौ, शोकम्, तरति। (यद्यपि) आत्मा, प्रकाशमानः, महावाक्यैः, अपि, तत्त्वमोः, एकता, पौर्वापर्यानुसारतः, तथा, बोध्यते, तथापि, श्रीगुरोः, करुणाम्, विना, लोके, पण्डितमानिभिः, मूढैः, अपरोक्षयितुम्, न, एव, शक्यते।

अर्थ—जिस (व्यक्ति) को 'अहं ब्रह्मास्मि' इस प्रकार का सम्यक् ज्ञान हो जाता है, वह इस संसाररूपी शोक को पार कर लेता है। यद्यपि आत्मा सर्वत्र प्रकाशमान है, परन्तु जीव व ब्रह्म की एकता का बोध कराने वाले, ये महावाक्य ही हैं। यद्यपि पूर्वापर प्रसङ्गानुसार अर्थात् उपक्रमादि लिंगों से तात्पर्य-निश्चय करने पर वाच्यार्थ व लक्ष्यार्थ के अनुसन्धान के बल से तत् और त्वम् पदों की एकार्थता महावाक्यों से मालूम होती है, तथापि श्रीगुरु जी की कृपा के बिना, वह सम्यक् अनुभव में नहीं आती है।। ४३।। ४४।।

अपरोक्षयितुं लोके मूढैः पण्डितमानिभिः।
अन्तःकरणसंशुद्धौ स्वयं ज्ञानं प्रकाशते।। ४५।।
वेदवाक्यैरतः किं स्याद् गुरुणेति न साम्प्रतम्।
आचार्यवान् पुरुषो हि वेदेत्येव श्रुति र्जगौ।। ४६।।

अन्वय—(केवलम्) अन्तःकरणसंशुद्धौ (सत्याम्) वेदवाक्यैः, ज्ञानं, स्वयम्, प्रकाशते, अतः गुरुणा, किम्, स्यात्, (न किमपीत्यर्थः) इति न, साम्प्रतम् हि श्रुतिः आचार्यवान्, पुरुषः, वेद, इति, एव, जगौ।

अर्थ—लोक में अपने को पण्डित मान बैठे पर वस्तुतः मूर्ख लोगों को महावाक्यों से अपरोक्ष ज्ञान नहीं हो पाता। यह नहीं कह सकते कि, अन्तःकरण की शुद्धि हो जाने पर तो वेदवाक्यों से ज्ञान स्वयं प्रकाशित हो जाता है, इसमें गुरु की आवश्यकता नहीं है क्योंकि श्रुति का कहना है कि

आचार्यवान् पुरुष ही उस परतत्त्व को जान सकता है।। ४५।। ४६।।

अनादाविह संसारे बोधको गुरुरेव हि।
अतो ब्रह्मात्मवस्त्वैक्यं ज्ञात्वा दृश्यमसत्तया।। ४७।।
अद्वैते ब्रह्मणि स्थेयं प्रत्यग्ब्रह्मात्मना सदा।
तत्प्रत्यक्षात् परिज्ञातमद्वैतब्रह्मचिद्घनम्।। ४८।।

अन्वय—हि, इह, अनादौ, संसारे, गुरुः, एव, बोधकः, अतः, दृश्यम्, असत्तया, ज्ञात्वा, ब्रह्मात्मवस्त्वैक्यम्, (च) ज्ञात्वा, प्रत्यग्ब्रह्मात्मना, सदा, अद्वैते, ब्रह्मणि, स्थेयम्, तत्प्रत्यक्षात्, (हेतोः) अद्वैतब्रह्मचिद्घनम्, परिज्ञातम्, भवति।

अर्थ—क्योंकि अनादि अविद्या के प्रपञ्च स्वरूप इस संसार में, केवल गुरु ही बोधक (बोध कराने वाला) है अतः इस संसार को तुच्छ समझकर, और जीव तथा ब्रह्म की एकता का ज्ञान करके, ब्रह्मज्ञानी को चाहिए कि वह हमेशा अद्वैत ब्रह्म में उसे 'मैं' जानते हुए प्रतिष्ठित रहे, उससे कभी भी विचलित न होवे, इसी अद्वैतभाव के साक्षात्कार से, फिर केवल सत्, चित्, आनन्द का सम्यक् अनुभव हो जाता है।। ४८।।

प्रतिपाद्यं तदेवात्र वेदान्तै र्न द्वयं जडम्।
सुखरूपं चिदद्वैतं दुःखरूपमसज्जडम्।। ४९।।

अन्वय—अत्र (अस्मिन् प्रकरणे) वेदान्तैः, तत्, (अद्वैतम्) एव प्रतिपाद्यम्, (वर्तते) न, तु, द्वयम्, (द्वैतम्) जडम् (प्रतिपाद्यमित्यर्थः) यतो हि चिदद्वैतम् (सर्वदा) सुखरूपम्, अस्ति, असत्, जडम् (वस्तु) दुःखरूपम्, एव, भवति।

अर्थ—इस प्रकरण में तथा वेदान्तों में उसी अद्वैत का प्रतिपादन किया है, न कि द्वैत जड का, क्योंकि प्रतिपाद्य चिदद्वैत हमेशा आनन्दरूप है, और असत् (तुच्छ) जड द्वैत हमेशा दुःखरूप है।। ४९।।

वेदान्तैस्तद् द्वयं सम्यङ्निर्णीतं वस्तुतो नयात्।
अद्वैतमेव सत्यं त्वं विद्धि द्वैतमसत्सदा।। ५०।।

अन्वय—वस्तुतः, नयात्, वेदान्तैः, तत्, द्वयम्, (चिदचिद्रूपम्) सम्यक्, निर्णीतम् (तस्मात्) त्वम्, अद्वैतम्, एव, सत्यम्, विद्धि, द्वैतम्, (च) सदा, असत्, विद्धि।

अर्थ—वस्तुतत्त्व का परीक्षण कर, वेदान्तों द्वारा चित् व अचित् के विषय में इस प्रकार का निर्णय विचारपूर्वक बताया है। अतः अद्वैत ही सत्य है, और

द्वैत मिथ्या है, ऐसा सदा जानो।। ५०।।

शुद्धे कथमशुद्धं स्याद् दृश्यं मायामयं ततः।
शुक्तौ रूप्यं मृषा यद्वत्तथा विश्वं परात्मनि।। ५१।।

अन्वय—शुद्धे (ब्रह्मणि) अशुद्धम्, दृश्यम्, कथम्, स्यात्? अतः यद्वत्, शुक्तौ, रूप्यम्, मृषा, (भवति) तथा, परात्मनि, विश्वम् मायामयम् (भवति)।

अर्थ—शुद्ध ब्रह्म में, अशुद्ध यह दृश्य जगत् कैसे हो सकता है, अर्थात् नहीं हो सकता। अतः अन्यथानुपपत्ति से जैसे शुक्ति में (अज्ञान के कारण) दिखलाई देने वाला रजत मिथ्या है, उसी प्रकार परमात्मा में (अध्यस्त) यह जगत् भी मायिक है।। ५१।।

विद्यते न स्वतः सत्त्वं नान्यतः सत्त्वमस्ति वा।
बाध्यत्वान्नैव सद्द्वैतं नासत्प्रत्यक्षभानतः।। ५२।।

अन्वय—(अस्य दृश्यस्य) स्वतः, सत्त्वम्, न, विद्यते, अन्यतः, वा, कुतश्चित् (अस्य) सत्त्वम्, न, अस्ति। (ज्ञानदशायाम्), बाध्यत्वात्, द्वैतम्, सत्, न, एव, भवति, प्रत्यक्षभानतः असत्, अपि न, भवतीत्यर्थः।

अर्थ—दिखलाई देने वाले इस दृश्य (जगत्) की न तो स्वतः सत्ता है, और न परतः कहीं से इसमें सत्त्व आता है (क्योंकि सत्त्व वस्तु का स्वरूप होने से संक्रान्त होने वाला धर्म नहीं है।) ज्ञानदशा में बाधित होने के कारण, यह द्वैत (जगत्) न तो सत् है, और व्यवहार में प्रत्यक्ष दिखलाई देने से, अत्यन्त असत् भी नहीं है।। ५२।।

सदसन्न विरुद्धत्वादतोऽनिर्वाच्यमेव तत्।
यः पूर्वमेक एवासीत् सृष्ट्वा पश्चादिदं जगत्।। ५३।।
प्रविष्टो जीवरूपेण स एवात्मा भवान्परः।
सच्चिदानन्द एव त्वं विस्मृत्यात्मतया परम्।। ५४।।

अन्वय—(एकस्य सदसत्त्वस्य) विरुद्धत्वात्, तत्, (दृश्यम्) सदसत्, न, अतः अनिर्वाच्यम्, एव, तत्। यः, (परमात्मा) पूर्वम्, एकः, एव आसीत्, (सः) इदम्, जगत्, सृष्ट्वा, पश्चात्, जीवरूपेण, (तत्र) प्रविष्टः, सः, आत्मा, एव, भवान्, परः, सच्चिदानन्दः, एव, त्वम्, (असि, परन्तु) आत्मतया, परम्, विस्मृत्य, (सम्प्रति) जीवभावम्, अनुप्राप्तः, असि।

अर्थ—एक चीज सत् और असत् होना विरुद्ध होने से, यह जगत् सदसत् नहीं अतः पारिशेष्यात् अनिर्वचनीय ही है। जो परमात्मा पहिले अकेला इस

विश्व की सृष्टि कर, पश्चात् जीवरूप से इसी में प्रवेश किया, वही सच्चिदानन्द परमात्मा तुम (जीव) हो, परन्तु अपने सच्चिदानन्द स्वरूप को भूलकर अर्थात् न जानते हुए सम्प्रति जीवभाव को प्राप्त हो।। ५३।। ५४।।

जीवभावमनुप्राप्तः स एवात्माऽसि बोधतः।
अद्वयानन्दचिन्मात्रः शुद्धः साम्राज्यभागतः।। ५५।।

अन्वय—(त्वम्) बोधतः, (वा) सः, एव, अद्वयानन्दचिन्मात्रः, शुद्धः, आत्मा, असि, अतः साम्राज्यभाग्, असि।

अर्थ—इस समय अपने को जीव मानने वाले तुम ही ज्ञान दृष्टि से, वही अद्वैत आनन्दमय चिन्मात्र चैतन्यरूप शुद्ध आत्मा हो अतः तुम ही सम्राट् हो।। ५५।।

कर्तृत्वादीनि यान्यासंस्त्वयि ब्रह्माद्वये परे।
तानीदानीं विचार्यन्ते किंस्वरूपाणि वस्तुतः।। ५६।।

अन्वय—ब्रह्माद्वये, परे, त्वयि, यानि, कर्तृत्वादीनि, आसन्, तानि, इदानीम्, विचार्यन्ते, (यत्) वस्तुतः, किम्स्वरूपाणि।

अर्थ—अद्वैत ब्रह्मरूप जो पर तत्त्व तुम हो, ऐसे तुम्हारे में अज्ञान रहते कर्तृत्व भोक्तृत्वादि थे, इनका वास्तविक स्वरूप क्या है, इस पर विचार किया जाता है।। ५६।।

अत्रैव शृण वृत्तान्तमपूर्वं श्रुतिभाषितम्।
कश्चिद् गान्धारदेशीयो महारत्नविभूषितः।। ५७।।

अन्वय—अत्र, एव, श्रुतिभाषितम्, अपूर्वम्, वृत्तान्तम्, शृण, कश्चित्, महारत्नविभूषितः, गान्धारदेशीयः, (आसीत्)।

अर्थ—इसी प्रसङ्ग में, एक नवीन वृत्तान्त (कथानक) वेद में भी कहा गया है कि, गान्धार देश में कोई राजा (या व्यक्ति) एक बार अनेक प्रकार के रत्नों से सुसज्जित होकर, असावधानी से, अपने भवन के बाहर आंगन में सो गया।। ५७।।

स्वगृहे स्वाङ्गणे सुप्तः प्रमत्तः सन् कदाचन।
रात्रौ चौरैः समागत्य भूषणानां प्रलोभितैः।। ५८।।
बद्ध्वा देशान्तरं चौरै नीतः सन् गहने वने।
भूषणान्यपहृत्यापि बद्धाक्षकरपादकः।। ५९।।
निक्षिप्तो विपिनेऽतीव कुशकण्टकवृश्चिकैः।
व्यालव्याघ्रादिभिश्चैव संकुले तरुसंकटे।।६०।।

अन्वय–(सः राजा) प्रमत्तः, सन्, कदाचन, स्वगृहे, स्वाङ्गणे, सुप्तः, रात्रौ, भूषणानाम्, प्रलोभितैः, चौरेः, समागत्य (राजानम्), बद्ध्वा, अस्य, भूषणानि, अपहृत्य, अपि, बद्धाक्षकरपादकः, अयम्, तैः, देशान्तरम्, गहने वने नीतः, पुनश्च, तत्रैव, व्यालव्याघ्रादिभिः, संकुले, कुशकण्टकवृश्चिकैः, तरुसंकटे, अतीव, भयानके , विपिने, निक्षिप्तः (च)।

अर्थ–जब वह अनेक बहुमूल्य रत्नों से सुसज्जित होकर अपने भवन के प्राङ्गण में सो गया, तो रात में उन आभूषणों के लोभ से, कुछ चोर वहाँ पहुँच गये। उन्होंने सर्वप्रथम राजा को बाँध कर, उसके आँखों में पट्टी बाँध दी, इसके बाद ये चोर राजा को किसी दूसरे स्थान में ले गये, तत्पश्चात् चोरों ने राजा के सारे आभूषण छीन लिए, और सर्प व्याघ्रादि भयानक जन्तुओं से व्याप्त, तथा कुश कंटकादि से संकीर्ण घने वृक्षों वाले, किसी भयानक जंगल में राजा को छोड़ दिया।। ५८।। ५९।। ६०।।

व्यालादिदुष्टसत्त्वेभ्यो महारण्ये भयातुरः।
शिलाकण्टकदर्भाद्यै र्देहस्य प्रतिकूलकैः।। ६१।।
क्रियमाणे विलुठने विशीर्णाङ्गोऽसमर्थकः।
क्षुत्तृडातपवाय्वग्न्यादिभिस्तप्तोऽतितापकैः।। ६२।।

अन्वय–महारण्ये, व्यालादिदुष्टसत्त्वेभ्यः, भयातुरः, (सः बभूवेत्यर्थः) पुनश्च, देहस्य, प्रतिकूलकैः, शिलाकण्टकदर्भाद्यैः, विलुठने, क्रियमाणे, (सति) विशीर्णाङ्गः, अतएव, असमर्थकः, (सः) बभूव, अतितापकैः, क्षुत्तृडातपवाय्वग्न्यादिभिः, च, तप्तः, अभवत्।

अर्थ–उस भयानक जंगल में वह व्याघ्र अजगर आदि दुष्ट हिंसक जन्तुओं से भयभीत हो गया, और उसके शरीर के प्रतिकूल, जो पत्थर कण्टक व झाड़ियाँ थीं, उनमें चलने फिरने से, उसका शरीर विर्शीण हो गया था, अत एव वह बिल्कुल सामर्थ्यहीन हो गया। इतना ही नहीं 'कङ्गाली में आटा गीला' वाली कहावत की तरह वह पुनः अति दुःखदायक, भूख प्यास व समय समय में होने वाली सर्दी व गर्मी से भी, अत्यन्त सन्तप्त हो गया।।६१।। ६२।।

बन्धमुक्तौ तथा देशप्राप्तावेव सुदुःखधीः।
ददृशे कश्चिदाक्रोशन्नैकं तत्रैव तस्थिवान्।। ६३।।

अन्वय–(एवम्) बन्धमुक्तौ, तथा, देशप्राप्तौ, एव सुदुःखधीः (अयम्

राजा) आक्रोशन्, कंचित्, एकम्, (मनुष्यम्) ददृशे, तत्रैव, तस्थिवान्।

अर्थ—इस प्रकार व्याकुल होता हुआ, वह राजा अत्यन्त दुःखी हुआ यही चाहता था कि बंधन से छूटे और अपने देश पहुँच जाये। इसी बीच उसे एक आदमी दिखाई दिया तो वह चिल्लाते हुए वहीं बैठा रहा।। ६३।।

तथा रागादिभि र्वर्गैः शत्रुभि र्दुःखदायिभिः।
चौरै र्देहाभिमानाद्यैः स्वानन्दधनहारिभिः।। ६४।।
ब्रह्मानन्दे प्रमत्तः स्वाज्ञाननिद्रावशीकृतः।
बद्धस्त्वं बन्धनै र्भोगज्वरतृष्णादिभि र्दृढम्।। ६५।।

अन्वय—(यथा स गान्धारनरेशश्चौरैरपहृतः) तथा, त्वम्, अपि, ब्रह्मानन्दे, प्रमत्तः, सन्, स्वाज्ञाननिद्रावशीकृतः, दुःखदायिभिः, रागादिभिः शत्रुभिः, वर्गैः, स्वानन्दधनहारिभिः, देहाभिमानाद्यैः, चौरैः, (अपहृतः सन्) भोगज्वरतृष्णादिभिः, बन्धनैः, दृढम्, बद्धः (असि)।

अर्थ—(जिस प्रकार उस गान्धार नरेश का चोरों ने अपहरण किया) उसी प्रकार तुम (जीव या चिदाभास) भी, कठोर दुःख देने वाले रागद्वेष लोभादि शत्रु वर्ग से पीडित हो रहे हो, और अपना आनन्दरूपी धन का हरण करने वाले, जो देहाभिमान आदि चोर हैं, इन अहंकारादि चोरों से लूटे जा रहे हो, क्योंकि तुम ब्रह्मानन्द को प्राप्त करने में असावधान थे, और अज्ञानरूपी निन्द्रा के वशीभूत थे; अर्थात् अज्ञाननिद्रा में सोये हुए थे, अतः पूर्वोक्त चोरों ने तुम्हें विषय-वासनाओं के उपभोगनिमित्त जो लालसा है, इसी विषयोपभोगलालसारूपी रस्सी से, तुम्हें खूब कसकर बाँध दिया।।६४।। ६५।।

अद्वयानन्दरूपात् त्वां प्रच्याव्यातीवधूर्तकैः।
दूरनीतोऽसि देहेषु संसारारण्यभूमिषु।। ६६।।

अन्वय—(एभिः) अतीवधूर्तकैः, अद्वयानन्दरूपात्, त्वाम्, प्रच्याव्य, देहेषु, संसारारण्यभूमिषु, दूरनीतः (असि)।

अर्थ—अत्यन्त धूर्त इन चोरों ने, तुम्हें अद्वैतानन्द से अलगकर, केवल देहगेहादि में ही जिनकी ममता है, ऐसे विषयवासना से व्याकुल वन स्थल में, तुम्हें छोड़ दिया है।। ६६।।

सर्वदुःखनिदानेषु शरीरादित्रयेषु च।
नानायोनिषु कर्मान्धवासनानिर्मितासु च।। ६७।।
प्रवेशितोऽसि सृष्टोऽसि बद्धस्वानन्ददृष्टितः।
अनादिकालमारभ्य दुःखं चानुभवन् सदा।। ६८।।

अन्वय—बद्धस्वानन्ददृष्टितः, त्वम्, सर्वदुःखनिदानेषु, शरीरादित्रयेषु, कर्मान्धवासनानिर्मितासु, नानायोनिषु, प्रवेशितः, त्वम्, तत्रैव, सृष्टः, असि, अनादिकालमारभ्य, सदा, दुःखम्, अनुभवन्, असि।

अर्थ—क्योंकि तुम्हारे निज आनन्द स्वरूप का निरर्गल स्फुरण तुम्हें नहीं है इसलिये कर्मों की गहन वासनाओं से निर्मित नाना योनियों में समस्त दुःखों के कारणभूत शरीर-मन बुद्धि में तुम्हारा प्रवेश करा दिया गया है, यही तुम्हारा जन्म होता है। इस प्रकार तुम अनादि काल से दुःख भोगते हुए भटक रहे हो।। ६७।। ६८।।

जन्ममृत्युजरादोषनरकादिपरम्पराम्।
निरन्तरं विषण्णोऽनुभवन्नत्यन्तशोकवान्।। ६९।।
अविद्याभूतबन्धस्य निवृत्तौ दुःखदस्य च।
स्वरूपानन्दसंप्राप्तौ सत्योपायं न लब्धवान्।। ७०।।

अन्वय—(त्वम् जीवः एतावत्कालपर्यन्तम्) विषण्णः, अत्यन्तशोकवान्, च, निरन्तरम्, जन्ममृत्युजरादोषनरकादिपरम्पराम्, अनुभवन्, दुःखदस्य, अस्य, अविद्याभूतबन्धस्य, च, निवृत्तौ, तथा च, स्वरूपानन्दसंप्राप्तौ, कमपि, सत्योपायम्, न, लब्धवान्।

अर्थ—तुम (जीव) भी, इतने समय तक, दुःखी व अत्यन्त शोक से सन्तप्त होते हुए, निरन्तर तत्तत् योनियों में, जन्म, मृत्यु, जरादि दोषों से उत्पन्न दुःखों का अनुभव कर रहे हो, और दुःखदायी इस अविद्यारूपी भूत के चंगुल से छूटने का, तथा अपने स्वरूपानन्द की प्राप्ति का, कोई सही उपाय अभी तक नहीं प्राप्त कर सके हो।। ६९।। ७०।।

यथा गान्धारदेशीयश्चिरं दैवाद् दयालुभिः।
कैश्चित्पान्थैः परिप्राप्तै र्मुक्तदृष्ट्यादिबन्धनः।। ७१।।
सः स्वस्थैरुपदिष्टश्च पण्डितो निश्चितात्मकः।
ग्रामाद् ग्रामान्तरं गच्छन् मेधावी मार्गतत्परः।। ७२।।
गत्वा गान्धारदेशं स स्वगृहं प्राप्य पूर्ववत्।
बान्धवैः संपरिष्वक्तः सुखी भूत्वा स्थितोऽभवत्।। ७३।।

अन्वय—यथा, सः, गान्धारदेशीयः (नृपः) चिरम्, दैवात्, कैश्चित्, परिप्राप्तैः, स्वस्थैः, दयालुभिः, पान्थैः, उपदिष्टः, च, अतः, निश्चितात्मकः, मुक्तदृष्ट्याादिबन्धनः, सन्, पण्डितः, भूत्वा, मार्गतत्परः, सः, मेधावी, ग्रामात्, ग्रामान्तरम्, गच्छन्, गान्धारदेशम्, गत्वा, तत्र,

स्वगृहम्, प्राप्य, पूर्ववत्, बान्धवैः, संपरिष्वक्तः सुखी भूत्वा, (तत्रैव) स्थितः, अभवत्।

अर्थ—जैसे वह गान्धारनरेश, बहुत समय के बाद, किन्हीं दयालु राहगीरों को प्राप्तकर, पुनः, उनसे मार्ग विषयक उपदेश पाकर, बन्धनों से मुक्त होकर, वह बुद्धिमान्, मेधावी, सही मार्ग से चलता हआ, एक गाँव से दूसरे गाँव की ओर बढ़ता हुआ, एक दिन गान्धार देश में स्थित, अपने घर को प्राप्त कर लिया, और अपने भाई बान्धवों से मिलकर वहाँ सुखपूर्वक रहने लगा ।। ७१।। ७२।। ७३।।

त्वमप्येवमनेकेषु दुःखदायिषु जन्मसु।
भ्रान्तो दैवाच्छुभे मार्गे जातश्रद्धः सुकर्मकृत्।। ७४।।
वर्णाश्रमाचारपरोऽवाप्तपुण्यमहोदयः।
ईश्वरानुग्रहाल्लब्धब्रह्मविद्गुरुसत्तमः।। ७५।।
विधिवत्कृतसंन्यासो विवेकादियुतः सुधीः।
प्राप्तब्रह्मोपदेशोऽद्य वैराग्याभ्यासतः परम्।। ७६।।
पण्डितस्तत्र मेधावी युक्त्या वस्तु विचारयन्।
निदिध्यासनसम्पन्नः प्राप्तो हि त्वं परं पदम्।। ७७।।

अन्वय—(यथा स गान्धारदेशीयोनृपश्चिरं भ्रान्त्वा पश्चात् स्वप्रकृतिङ्गतः) एवम्, त्वम्, अपि, दुःखदायिषु, अनेकेषु, जन्मसु, भ्रान्तः (अभवः) सम्प्रति, दैवात्, शुभे, मार्गे, जातश्रद्धः, सुकर्मकृत् (असि), साम्प्रतम्, च, त्वम्, वर्णाश्रमाचारपरः, अवाप्तपुण्यमहोदयः, सन् ईश्वरानुग्रहात्, च, लब्धब्रह्मविद्गुरुसत्तमः, सन्, विधिवत्कृतसंन्यासः, विवेकादियुतः, सुधीः, वैराग्याभ्यासतः, प्राप्तब्रह्मोपदेशः, अद्य, पण्डितः, मेधावी, च, भूत्वा, युक्त्या, परम्, वस्तु, विचारयन्, निदिध्यासनसम्पन्नः, परम्, पदम्, प्राप्तः (असि)।

अर्थ—(जिस प्रकार वह गान्धार नरेश बहुत भटककर, पुनः अपने परिवार को प्राप्त कर आनन्दमग्न हुआ) इसी प्रकार तुम (जीव) भी, दुःखदायी अनेक योनियों में भटकते रहे, सौभाग्य से इस समय तुम सन्मार्ग में आये हो, बड़ी श्रद्धा से यहाँ अब धार्मिक कृत्य कर रहे हो, और यह भी एक तुम्हारे पुण्य का प्रभाव है कि इस समय वर्णाश्रम धर्म में तत्पर तुम्हें ब्रह्मवेत्ता योग्य गुरु मिल गये, उनसे विधिवत् संन्यास ग्रहण कर, नित्यानित्य-वस्तु-विचार में निपुण तुम, वैराग्याभ्यास द्वारा, ब्रह्मविषयक उपदेश को श्रवण कर चुके हो,

युक्तिपूर्वक इसके मनन व तद्विषयक निदिध्यासन से सम्पन्न होकर, परमपद को प्राप्त कर रहे हो।। ७४।। ७५।। ७६।। ७७।।

अतो ब्रह्मात्मविज्ञानमुपदिष्टं यथाविधि।
मयाऽऽचार्येण ते धीर सम्यक् तत्र प्रयत्नवान्।। ७८।।
भूत्वा विमुक्तबन्धस्त्वं छिन्नद्वैतात्मसंशयः।
निर्द्वन्द्वो निःस्पृहो भूत्वा विचरस्व यथासुखम्।। ७९।।

अन्वय—अतः, आचार्येण, मया, ते (तुभ्यम्), यथाविधि, ब्रह्मात्म-विज्ञानम्, उपदिष्टम्, हे धीर! त्वम्, तत्र, सम्यक्, प्रयत्नवान्, भूत्वा, छिन्नद्वैतात्मसंशयः, विमुक्तबन्धः, सन्, निर्द्वन्द्वः, निःस्पृहः, भूत्वा, यथासुखम्, विचरस्व।

अर्थ—इसीलिए मैंने (आचार्य ने) तुम्हें शास्त्रविधि के अनुसार, ब्रह्मात्मज्ञान का उपदेश दिया है। हे धीर! तुम उस आत्मज्ञान के विषय में (आत्मज्ञान को प्राप्त करने में) खूब कोशिश करो, द्वैत सहित आत्मा है इस संशय को मिटा कर इस बन्धन से मुक्त होकर, निर्द्वन्द्व व निःस्पृहभाव से ब्रह्मानन्द में यथेच्छ विचरण करो।। ७८।। ७९।।

वस्तुतो निष्प्रपञ्चोऽसि नित्यमुक्तः स्वभावतः।
न ते बन्धविमोक्षौ स्तः कल्पितौ तौ यतस्त्वयि।। ८०।।

अन्वय—वस्तुतः, (त्वम् आत्मा व्यवहारमार्गपतितो जीवः) निष्प्रपञ्चः, नित्यमुक्तः, असि, स्वभावतः, ते बन्धमोक्षौ, न, स्तः, यतः, तौ, त्वयि, कल्पितौ, स्तः।

अर्थ—वस्तुतः तुम आत्मा, व्यवहारकाल में जिसे जीव कहते हैं, निष्प्रपञ्च, नित्य शुद्ध बुद्ध और मुक्त स्वभाव वाले हो। ये बन्धन व मोक्ष तो स्वभावतः तुम्हारे में नहीं हैं, ये बन्धन-मोक्ष तो तुम्हारे में कल्पित हैं, अध्यस्त हैं, अज्ञानवश बलात् लाद दिये गये हैं।। ८०।।

न निरोधो न चोत्पत्ति र्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षु र्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता।। ८१।।

अन्वय—(तत्त्वदृशा तु आत्मनः सम्बन्धे इयं तात्त्विकी स्थितिः यत्, तत्र, कश्चन) निरोधः, नास्ति, (आत्मा केनाप्युपायेन कुत्रचिन्निरुद्धो न भवतीत्यर्थः) न च (कदाचिदपि) आत्मनः, उत्पत्तिः, भवति, न, च, बद्धः, भवति, न, च, साधकः, न, मुमुक्षुः, (यदा बद्ध एव नास्ति, तदा मोचनेच्छा कस्य) न, वै, मुक्तः, इति, एषा, (पूर्वोक्ता

शुद्धबुद्धज्ञानरूपा) परमार्थता, आत्मनः, अस्तीत्यर्थः।

अर्थ—आत्मा के विषय में परम सत्य तो यह है, कि उसमें (आत्मा में) किसी प्रकार का निरोध नहीं है, जिसके कारण वह किसी स्थानविशेष या कालविशेष में अवरुद्ध रहे, न उसकी उत्पत्ति ही होती है, जिसके लिए कि उत्पादनानुकूल साधनों की अपेक्षा हो, न वह किसी बन्धन-विशेष से बँधा हुआ है, जिसके लिए कि मोचन की इच्छा की जाय, मुक्त इसलिए नहीं है कि कभी बँधा हुआ नहीं था, बस यही आत्मा की परमार्थता है।। ८१।।

श्रुतिसिद्धान्तसारोऽयं तथैव त्वं स्वया धिया।
संविचार्य निदिध्यास्य निजानन्दात्मकं परम्।। ८२।।
साक्षात्कृत्वाऽपरिच्छिन्नाद्वैतब्रह्माक्षरं स्वयम्।
जीवन्नेव विनिर्मुक्तो विश्रान्तः शान्तिमाश्रय।।८३।।

अन्वय—(आत्मनो विषये पूर्वोक्तः) अयम्, श्रुतिसिद्धान्तसारः, (एनम्, सिद्धान्तम्) त्वम्, तथैव, (श्रुतिवचनानुसारम्) स्वया, धिया, संविचार्य, (अर्थात् श्रवणोत्तरं मननं विधायेत्यर्थः) पुनः, निदिध्यास्य (निदिध्यासनं कृत्वा) परम्, निजानन्दात्मकम्, अपरिच्छिन्नाद्वैतब्रह्माक्षरम्, स्वयम्, साक्षात्कृत्वा, जीवन्, एव विनिर्मुक्तः, अतएव, विश्रान्तः, सन्, शान्तिम्, आश्रय।

अर्थ—आत्मा के विषय में पूर्वोक्त यह श्रुतिसिद्धान्त, अर्थात् वेदबोधित परम तत्त्व है। इसका गुरुमुख से श्रवणकर, इसके बाद स्वयं अपनी बुद्धि से फिर युक्तिपूर्वक मनन कर, तत्पश्चात् निरन्तर निदिध्यासन के द्वारा, अपरिच्छिन्न, अद्वैत, निजानन्दरूप अक्षर ब्रह्म का स्वयं साक्षात्कार कर, तुम जीते जी, बन्ध से मुक्त होकर, सांसारिक प्रपञ्च से विरत हो जाओगे, इस प्रकार जीवन्मुक्त होकर परमशान्ति को प्राप्त करो।।८२।। ८३।।

विचारणीया वेदान्ता वन्दनीयो गुरुः सदा।
गुरूणां वचनं पथ्यं दर्शनं सेवनं नृणाम्।। ८४।।

अन्वय—वेदान्ताः, सदा, विचारणीयाः, गुरुः, सदा, वन्दनीयः, नृणाम्, कृते, गुरूणाम्, वचनम्, पथ्यम्, भवति, गुरूणाम्, सेवनम्, दर्शनम्, च पथ्यम्, भवतीत्यर्थः।

अर्थ—वेदान्त शास्त्र का हमेशा विचार करना चाहिए, गुरु की हमेशा वन्दना करर्नी चाहिए। गुरु का वचन मनुष्यों के लिए हमेशा हितकारक होता

है, अतः हमेशा गुरु का दर्शन व सेवन हितकारक है।। ८४।।

गुरुर्ब्रह्म स्वयं साक्षात्सेव्यो वन्द्यो मुमुक्षुभिः।
नोद्वेजनीय एवायं कृतज्ञेन विवेकिना।। ८५।।

अन्वय–गुरुः, स्वयम्, साक्षात्, ब्रह्म, अस्ति, अतः, मुमुक्षुभिः, (सर्वदा) सेव्यः, वन्द्यः, (च) कृतज्ञेन, विवेकिना, अयम्, कदापि, न, उद्वेजनीयः।

अर्थ–गुरु स्वयं ही ब्रह्मरूप है, अतः मुमुक्षुओं के लिए वह हमेशा सेवनीय और वन्दनीय है। कृतज्ञ बुद्धिमान् को चाहिए कि वह कभी भी गुरु को उद्विग्न न करे।। ८५।।

यावदायुस्त्वया वन्द्यो वेदान्तो गुरुरीश्वरः।
मनसा कर्मणा वाचा श्रुतेरेवैष निश्चयः।। ८६।।

अन्वय–त्वया, यावत्, आयुः, वेदान्तः, गुरुः, ईश्वरः (च) मनसा, कर्मणा, वाचा, (च) वन्द्यः एष, एव, श्रुतेः, निश्चयः, अस्ति।

अर्थ–तुम्हें जीवनभर वेदान्त गुरु और ईश्वर की मन वाणी और कर्म से वन्दना व सेवा करनी चाहिए, यही वेद का आदेश है।। ८६।।

भावाद्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाऽद्वैतं न कर्हिचित्।
अद्वैतं त्रिषु लोकेषु नाद्वैतं गुरुणा सह।। ८७।।

अन्वय–सदा भावाद्वैतम्, कुर्यात्, क्रियाद्वैतम्, कर्हिचित्, अपि, न कुर्यात्, (इत्थम्) त्रिषु लोकेषु, अद्वैतम्, कुर्यात्, गुरुणा, सह, (कदापि) अद्वैतम्, न, कुर्यात्।

अर्थ–भाव अर्थात् ज्ञान के स्तर पर हमेशा अद्वैत समझना चाहिए, क्रिया (व्यवहार) में कभी भी अद्वैत न करे। तीनों लोकों में एक प्रकाशमान ब्रह्म है, इस प्रकार की अद्वैतभावना के रहते हुए भी, गुरु के साथ अद्वैतभावना न करे, गुरु के साथ तो गुरुशिष्य भाव ही उचित है।। ८७।।

दशश्लोकी

न भूमि र्न तोयं न तेजो न वायु-
र्न खं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः।
अनैकान्तिकत्वात् सुषुप्त्येकसिद्धः
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्।। १।।

अन्वय–*('अहम्' इति पदवाच्यः) भूमिः, न, तोयम्, न, तेजः, न, वायुः, न, खम्, न, इन्द्रियम्, वा, न, तेषाम्, समूहः (च) न, यतो हि, एतेषाम्, अनैकान्तिकत्वात्। सुषुप्त्येकसिद्धः, (अहम्) तत्, (तस्मात्) एकः, अवशिष्टः, केवलः, शिवः, अहम् (अस्मि)।*

अर्थ–'मैं' इस ज्ञान का अवलम्बन, न भूमि है, न जल है, न वायु है, न आकाश है, न प्रत्येक इन्द्रिय है और न इन्द्रियों का समूह ही है, क्योंकि ये सब तो विनाशशील हैं। सुषुप्तावस्था में भी साक्षीरूप से सिद्ध, अद्वितीय, अविनाशी, निर्धर्मक जो शिव है, वही 'मैं' हूँ।। १।।

न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा न मे धारणाध्यानयोगादयोऽपि।
अनात्माश्रयाहंममाध्यासहानात् तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्।।२।।

अन्वय–*मे (मम), वर्णाः, न, आश्रमाचारधर्माः, न, धारणा-ध्यानयोगादयः, अपि, न, (यतो हि) अनात्माश्रयाहंममाध्यासहानात्, तत्, एकः, अवशिष्टः, केवलः, शिवः, अहम् (अस्मि)।*

अर्थ–मेरे न वर्ण हैं न वर्णों व आश्रमों के आचार व धर्म ही मेरे हैं। न मेरा धारणा, ध्यान, योगादि से कोई सम्बन्ध है। जब अविद्या से उत्पन्न अहंकार और ममकार के अध्यास का नाश हो जाता है, तब तत्प्रयुक्त वर्णाश्रमादि धर्मों का व्यवहार भी नहीं रहता है। सभी प्रकार के प्रमाण व व्यवहारों का बाध हो जाने से परिशेषात्, अद्वितीय, केवल शिव ही 'मैं' हूँ।।२।।

न माता पिता व न देवा न लोका
न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवन्ति।
सुषुप्तौ निरस्तातिशून्यात्मकत्वात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्।। ३।।

अन्वय–*(मम) माता, न, पिता, वा, न, देवाः, न, वेदाः, न, यज्ञाः, न, तीर्थम्, न, ब्रुवन्ति, सुषुप्तौ, निरस्तातिशून्यात्मकत्वात्, तत्, (तस्मात्) अवशिष्टः, एकः, केवलः, शिवः, अहम् (अस्मि)।*

अर्थ–विद्वान् बताते हैं कि मेरे न तो माता है, न पिता और न देव, लोक, वेद यज्ञ, व तीर्थ ही हैं (क्योंकि ये सब देह सम्बन्धी हैं जबकि मैं देह और उससे सम्बद्ध नहीं हूँ)। सुषुप्तावस्था में, जब समस्त इन्द्रियार्थ व्यापार नहीं रहता है, उस समय भी साक्षी जो अद्वितीय केवल शिव, वही 'मैं' रहता हूँ। (सुषुप्ति-साधक होने से ही आत्मा को अतिशून्य या अत्यन्त असत् नहीं कह

सकते। किं च, वह तत्त्व भूख-प्यास आदि छहों ऊर्मियों से रहित तथा अद्वितीय होने से स्वातिरिक्त से रहित है।)।। ३।।

न सांख्यं न शैवं न तत्पाञ्चरात्रं
न जैनं न मीमांसकादे र्मतं वा।
विशिष्टानुभूत्या विशुद्धात्मकत्वात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्।। ४।।

अन्वय—न, सांख्यम्, (मतं साधु); शैवम्, न, तत् (आगममूलकम्) पाञ्चरात्रम्, न; जैनम्, न; मीमांसकादेः, मतम्, वा, न, (संगतम्)। विशिष्टानुभूत्या, विशुद्धात्मकवात् तत्, एकः, अवशिष्टः, केवलः, शिवः, अहम्, अस्मि।

अर्थ—'मैं' अर्थात् अहम् इस पदजन्य प्रतीति का विषय, सांख्य, शैव, वैष्णव, जैन व मीमांसकादि दर्शनों के सिद्धान्त द्वारा प्रतिपादित तत्त्व नहीं है, अपितु (अखण्डाकारवृत्ति द्वारा) विशेष अनुभव से गम्य, विशुद्ध, अद्वितीय, केवल शिवरूप ही वह तत्त्व है।। ४।।

न चोर्ध्वं न चाधो न चान्त र्न बाह्यम्
न मध्यं न तिर्यङ् न पूर्वापरा दिक्।
वियद्व्यापकत्वादखण्डैकरूप-
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्।। ५।।

अन्वय—(मयि) न, उर्ध्वम् न, अधः, न, च, अन्तः, न, बाह्यम्, न, मध्यम् न, तिर्यक् न, पूर्वापरा दिक्, वियद्व्यापकत्वात्, अखण्डैकरूपः, तत्, एकः, अवशिष्टः, शिवः, केवलः, अहम्, अस्मि।

अर्थ—मुझ में ऊपर, नीचे, अन्दर, बाहर, बीच में, तिरछा, पूर्व दिशा या पश्चिम दिशा भी नहीं हैं, अपितु आकाश के समान व्यापक होने से, अखण्ड, एकरस, एक, अवशिष्ट, अद्वितीय केवल शिव ही हूँ।। ५।।

न शुक्लं न कृष्णं न रक्तं न पीतम्
न कुब्जं न पीनं न ह्रस्वं न दीर्घम्।
अरूपं तथा ज्योतिराकारकत्वात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्।। ६।।

अन्वय—(अहम् इति पदवाच्यं वस्तु) शुक्लम्, न, कृष्णम्, च, न, रक्तम्, पीतम्, च, न, कुब्जम्, पीनम्, ह्रस्वम्, दीर्घम्, अपि, च, न, अस्ति, तत्, हि, अरूपम्, सत्, ज्योतिराकारकत्वात्, अवशिष्टः, एकः,

केवलः, शिवः (अस्तीत्यर्थः)।

अर्थ—अहम् (मैं) इस पद की वाच्य वस्तु, न तो सफेद है, न काली, लाल व पीली ही है, वह कुबड़ी स्थूल छोटी व बड़ी भी नहीं है, वह निराकार ज्योतिस्वरूप व अप्रमेय होने से, एक अद्वितीय केवल शिवरूप ही है।। ६।।

न शास्ता न शास्त्रं न शिष्यो न शिक्षा न च त्वं न चाहं न चायं प्रपञ्चः।
स्वरूपावबोधो विकल्पासहिष्णुस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्।।७।।

अन्वय—(अहम् इति पदवाच्यः) शास्ता, न, भवति, शास्त्रम्, शिष्यः, शिक्षा, चापि, न, त्वम्, अहम्, अयम्, प्रपञ्चः, चापि, न, अस्ति, (यतः) स्वरूपावबोधः, विकल्पासहिष्णुः, भवति, अतः, तत्, एकः, अवशिष्टः, केवलः, शिवः, अस्ति।

अर्थ—अहम् (मैं) इस पद का अर्थ, न तो शासनकर्ता है, और शास्त्र, शिष्य, शिक्षा इत्यादि भी इसका अर्थ नहीं है, और देहेन्द्रियादि विशिष्ट जो तू मैं यह, इत्यादि प्रपञ्च है, वह भी इसका अर्थ नहीं है क्योंकि स्वरूपावबोध किसी भी विकल्प को सहन नहीं करता है (अर्थात् ब्रह्मविज्ञान का फल स्पष्ट होने से उसके बारे में संशय उठाना असंगत है) अतः अवशिष्ट एक अद्वितीय शिव ही 'अहम्' इस पद का अर्थ है।। ७।।

न जाग्रन्न मे स्वप्नको वा सुषुप्ति-
र्न विश्वो न वा तैजसः प्राज्ञको वा।
अविद्यात्मकत्वात् त्रयाणां तुरीय-
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्।८।

अन्वय—मे (मम) जाग्रत्, स्वप्नकः, सुषुप्तिः, वा, न, (अहम्) विश्वः, तैजसः, प्राज्ञकः, वा, न, (एतेषां पूर्वोक्तानां विश्वादीनाम्) त्रयाणाम्, अविद्यात्मकत्वात्, (हेतोः) अतः, तत्, (तेभ्यः) अवशिष्टः, एकः, केवलः, शिवः, अहम्, (अस्मि)।

अर्थ—मेरी जागरण, स्वप्न व सुषुप्ति अवस्थायें नहीं हैं, मैं विश्व तैजस व प्राज्ञ भी नहीं हूँ, क्योंकि ये तीनों अविद्या के कार्य हैं, अतः इनसे अवशिष्ट जो तुरीय वह, एक, अद्वितीय केवल शिव ही मैं हूँ।। ८।।

अपि व्यापकत्वाद्धितत्वप्रयोगात् स्वतः सिद्धभावादनन्याश्रयत्वात्।
जगत्तुच्छमेतत् समस्तं तदन्यत् तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम्।।६।।

अन्वय—व्यापकत्वात्, हितत्वप्रयोगात्, स्वतःसिद्धभावात्, अनन्याश्रयत्वात्, अपि, तत्, एकः, अवशिष्टः, केवलः, शिवः, अहम्,

तदन्यत्, समस्तम्, एतत्, जगत्, तुच्छम्, (अस्ति)।

अर्थ—व्यापक होने से, पुरुषार्थरूप होने से, स्वतः सिद्ध भाववस्तु होने से, तथा स्वतन्त्र, किसी के अधीन न होने से भी, वह अवशिष्ट अद्वितीय केवल शिव ही अहम्पद बोध्य परमार्थसत् है, उससे भिन्न यह समस्त जगत् तुच्छ (मायामय) है।। ९।।

न चैकं तदन्यद् द्वितीयं कुतः स्यान्न वा केवलत्वं न चाकेवलत्वम्।
न शून्यं न चाशून्यमद्वैतकत्वात् कथं सर्ववेदान्तसिद्धं ब्रवीमि।। १०।।

अन्वय—अद्वैतकत्वात्, तत्, (तत्त्वम्) एकम्, च, न, अन्यत्, द्वितीयम्, कुतः, स्यात्? तत्र, केवलत्वम्, न, न, च, अकेवलत्वम्, तत्, च, न, शून्यम्, न, च, अशून्यम्। सर्ववेदान्तसिद्धम्, कथम्, ब्रवीमि।

अर्थ—क्योंकि आत्मतत्त्व अद्वैत है इसलिये एक भी नहीं है, उससे अन्य द्वितीय कहाँ से होगा? इस आत्मा में न तो केवलत्व है, ना ही अकेवलत्व है। यह शून्याशून्य से भी भिन्न है। यह वस्तु सारे वेदान्तों से तो सिद्ध है पर वेदान्तों का सहारा लिये बिना इसे कहा नहीं जा सकता (समझा भी नहीं जा सकता)।। १०।।

धन्याष्टकम्

तज्ज्ञानं प्रशमकरं यदिन्द्रियाणां, तज्ज्ञेयं यदुपनिषत्सु निश्चितार्थम्।
ते धन्या भुवि परमार्थनिश्चितेहाः शेषास्तु भ्रमनिलये परिभ्रमन्ति।।१।।

अन्वय—यत् (ज्ञानम्) इन्द्रियाणाम्, प्रशमकरम्, अस्ति, तत्, (वस्तुतः) ज्ञानम्; यत्, उपनिषत्सु, निश्चितार्थम्, अस्ति, तत्, ज्ञेयम्, भुवि, ये, परमार्थनिश्चितेहाः सन्ति, ते, धन्याः, शेषाः, तु, भ्रमनिलये, परिभ्रमन्ति।

अर्थ—वस्तुतः ज्ञान वही है, जो इन्द्रियों को शान्त करे, ज्ञेय तत्त्व भी वही है, जो वेदान्तों का निश्चित तात्पर्य है, इस संसार में वे ही पुरुष धन्य हैं, जिनकी प्रवृत्ति परमार्थसत् की ओर है, शेष तो वासना के कटघरेरूप इस संसार में, व्यर्थ ही घूमते हैं।। १।।

आदौ विजित्य विषयान्मदमोहराग-
द्वेषादिशत्रुगणमाहृतयोगराज्याः।
ज्ञात्वा मतं समनुभूय परात्मविद्या-
कान्तासुखं वनगृहे विचरन्ति धन्याः।। २।।

अन्वय—धन्याः, आदौ, विषयान् (विषया एषां सन्तीति इन्द्रियाणि, अथवा विषयान् बन्धकान् मदादीनित्यर्थः) मदमोहरागद्वेषादिशत्रुगणम्, (च) विजित्य, आहृतयोगराज्याः, (समाहिताः), मतम्, (वेदान्तार्थम्) ज्ञात्वा, परात्मविद्याकान्तासुखम्, समनुभूय, वनगृहे, विचरन्ति,।

अर्थ—धन्य वे हैं जो पहले इन्द्रियों को जीतकर तथा बन्धनकारी मद (गर्व), मोह (अविवेक), राग, द्वेष आदि शत्रुओं के समूह पर विजय पाकर, योगाभ्यास से लभ्य समाहिततारूप राज्य पर स्थित होकर फिर वेदान्तों को सम्मत तत्त्व को जानकर परमात्मज्ञानरूप कान्ता का सुख भलीभाँति भोगते हुए वनरूप घर में विचरण करते हैं।। २।।

त्यक्त्वा गृहे रतिमधोगतिहेतुभूता-
मात्मेच्छयोपनिषदर्थरसं पिबन्तः।
वीतस्पृहाः विषयभोगपदे विरक्ता
धन्याश्चरन्ति विजनेषु विमुक्तसङ्गाः।। ३।।

अन्वय—गृहे, अधोगतिहेतुभूताम्, रतिम्, आत्मेच्छया, त्यक्त्वा, उपनिषदर्थरसम्, पिबन्तः, वीतस्पृहाः, विषयभोगपदे, विरक्ताः, विमुक्तसङ्गाः, धन्या, विजनेषु (वनेषु) चरन्ति।

अर्थ—अधोगति हेतुभूत, अर्थात् प्रपञ्च को बढ़ाने वाले घर-गृहस्थी के राग को, आत्मलाभ की इच्छा से, छोड़कर अध्यात्मविद्या के रस का पान करते हुए, वीतराग, विषयभोग से विरक्त, निर्मलमति वाले, सौभाग्यशाली सन्त, वनों में विचरण करते हैं।। ३।।

त्यक्त्वा ममाहमिति बन्धकरे पदे द्वे
मानावमानसदृशाः समदर्शिनश्च।
कर्त्तारमन्यमवगम्य तदर्पितानि
कुर्वन्ति कर्मपरिपाकफलानि धन्याः।। ४।।

अन्वय—मम, अहम्, इति, बन्धकरे, द्वे, पदे, त्यक्त्वा, मानावमानसदृशाः, (अतएव) समदर्शिनः, धन्याः, कर्त्तारम्, अन्यम्, ('अन्यमीशम्' इति मुण्डकात्, ३.३.२ उपाधेरन्यमशेषजगत्कर्त्तारम्) अवगम्य, कर्मपरिपाकफलानि, (अपि) तदर्पितानि, कुर्वन्ति।

अर्थ—मेरा और मैं इन दो बन्धन-कारक पदों को छोड़कर अर्थात् ममता व अहन्ता का त्यागकर, मान व अपमान में एक समान, अतएव समदर्शी रहने वाले पुण्यात्मा वाले लोग उपाधि से व्यतिरिक्त जगत्कर्त्ता ईश्वर को

जानकर, कर्म के परिपाकरूप जो कर्मफल हैं, उन्हें भी ईश्वरार्पण कर देते हैं, अर्थात् ईश्वरार्पण बुद्धि से सारे कार्य करते हैं।। ४।।

त्यक्त्वैषणात्रयमवेक्षितमोक्षमार्गा भैक्षामृतेन परिकल्पितदेहयात्राः।
ज्योतिः परात्परतरं परमात्मसंज्ञं धन्या द्विजा रहसि हृद्यवलोकयन्ति।।५।।

अन्वय–एषणात्रयम्, (पुत्रैषणां, वित्तैषणां, लोकैषणामित्यर्थः) त्यक्त्वा, अवेक्षितमोक्षमार्गाः, भैक्षामृतेन, परिकल्पितदेहयात्राः, केचन, धन्याः, द्विजाः, रहसि, परात्परतरम्, परमात्मसंज्ञम्, ज्योतिः, हृदि, अवलोकयन्ति।

अर्थ–तीनों प्रकार की एषणाओं को, अर्थात् पुत्र वित्त व धन सम्बन्धी कामनाओं को छोड़कर, मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर होकर, केवल भिक्षान्नरूपी अमृत से ही शरीर का निर्वाह करने वाले, कोई भाग्यशाली द्विज, एकान्त स्थान में, सबसे परे परमात्मसंज्ञक, परं ज्योति का, अपने हृदय में दर्शन करते हैं।। ५।।

नासन्न सन्न सदसन्न महन्न चाणु न स्त्री पुमान्न च नपुंसकमेकबीजम्।
यै ब्रह्म तत्समुपासितमेकचित्तैर्धन्या विरेजुरितरे भवपाशबद्धाः।। ६।।

अन्वय–(संसारस्य,) एकबीजम्, तत्, ब्रह्म, असत्, न, सत्, न, सदसत्, च, न, तत्, महत्, अणु, च, न, स्त्री पुमान् नपुंसकम्, च (वा) तत्, न, एकचित्तैः, यैः, तत्, समुपासितम्, ते, धन्याः, सन्तः, विरेजुः, इतरे, तु, भवपाशबद्धाः, सन्ति।

अर्थ–इस संसार का एकमात्र बीजरूप अर्थात् निमित्तोपादान उभयविध कारणीभूत, वह ब्रह्म न असत् है, न सत् है, न सदसत् ही है (सत्=इन्द्रियगोचर, असत्=अभाव। ईश्वर दोनों नहीं है। गीता १३.१२ में यह स्पष्ट है।) न महान् (महत्परिमाण वाला) है, न अणु है, (अर्थात् लोकसिद्ध आकार व माप वाला नहीं है)। वह न तो स्त्री है, न पुरुष, और न नपुंसक ही है। जिन लोगों ने एकाग्रचित्त से, ऐसे लोकातीत स्वरूप वाले ब्रह्म की उपासना की है, वस्तुतः वे ही पुण्यात्मा धन्य हैं, तदतिरिक्त तो इस संसाररूपी पाश में बंधे हुए हैं।। ६।।

अज्ञानपङ्कपरिमग्नमपेतसारं, दुःखालयं मरणजन्मजरावसक्तम्।
संसारबन्धनमनित्यमवेक्ष्य धन्या ज्ञानासिना तदवशीर्य विनिश्चयन्ति।।७।

अन्वय–अज्ञानपङ्कपरिमग्नम्, अपेतसारम्, मरणजन्मजरावसक्तम्, (अत एव) दुःखालयम्, (एतादृशम्) संसारबन्धनम्, अनित्यम्, अवेक्ष्य, (केचन) धन्याः, ज्ञानासिना, तत् (बन्धनम्) अवशीर्य (किमपि,

परमार्थसद्‌रूपम्, तत्त्वान्तरम्,) विनिश्चयन्ति।

अर्थ—अज्ञानरूपी कीचड़ में धँसा हुआ, जिसमें कोई सार (तत्त्व) भी नहीं है, और जो निरन्तर मृत्यु जन्म व जरा से ग्रस्त है, अत एव दुःख का घर बना हुआ है, ऐसे संसार बन्धन को अनित्य (क्षणभङ्गुर) समझकर, ज्ञानरूपी खड्‌ग से इस प्रकार के बन्धन को काटकर, कुछ पुण्यात्मा लोग, परमार्थ-सत् रूप किसी तत्त्वान्तर का निश्चय करते हैं, अर्थात् भवबन्धन को, नाशवान् समझ कर नित्य निरतिशय सुखास्पद परब्रह्म का चिन्तन करते हैं।। ७।।

शान्तैरनन्यमतिभि मंधुरस्वभावै-
रेकत्वनिश्चितमनोभिरपेतमोहैः।
साकं वनेषु विदितात्मपदस्वरूपै-
स्तद् वस्तु सम्यगनिशं विमृशन्ति धन्याः।। ८।।

अन्वय—अनन्यमतिभिः, एकत्वनिश्चितमनोभिः, अपेतमोहैः, मधुर-स्वभावैः, विदितात्मपदस्वरूपैः, शान्तैः, साकम्, धन्याः, वनेषु, तद् वस्तु, अनिशम्, सम्यक्, विमृशन्ति।

अर्थ—जिनकी बुद्धि परतत्त्व के अतिरिक्त किसी में नहीं है, अतः अद्वैत में जिनकी प्रबल आस्था है, स्वच्छ अन्तःकरण व मधुर स्वभाव वाले, आत्मज्ञानी व शान्तवृत्ति वाले, मुनियों के साथ, कोई पुण्यात्मा लोग, वन में उस आत्मतत्त्व का चिन्तन करते हैं (ऐसों के सत्संग में विचरने वाले ही धन्य हैं यह भाव है।)।। ८।।

निर्वाण-मञ्जरी

अहं नामरो नैव मर्त्यो न दैत्यो, न गन्धर्वरक्षःपिशाचप्रभेदः।
पुमान्नैव न स्त्री तथा नैव षण्डः, प्रकृष्टप्रकाशस्वरूपः शिवोऽहम्।।१।।

अन्वय—अहम्, अमरः, न, मर्त्यः, न, एव, दैत्यः, न, गन्धर्वरक्षः-पिशाचप्रभेदः, च, न, पुमान्, न, स्त्री, न, तथा, षण्डः, न, एव, (अपि तु) प्रकृष्टप्रकाशस्वरूपः, शिवः, अहम्, (अस्मीत्यर्थः)।

अर्थ—'मैं' देव, मर्त्य व दैत्य नहीं हूँ, और न गन्धर्व राक्षस, व पिशाच का ही कोई प्रभेद हूँ, 'मैं' न तो पुरुष, न स्त्री और न नपुंसक ही हूँ, अपितु

प्रकृष्टप्रकाशरूप अर्थात् निर्विषय ज्ञानरूप केवल शिव ही मैं हूँ।। १।।

अहं नैव बालो युवा नैव वृद्धो न वर्णी न च ब्रह्मचारी गृहस्थः।
वनस्थोऽपि नाहं न संन्यस्तधर्मा, जगज्जन्मनाशैकहेतुः शिवोऽहम्।।२।।

अन्वय—अहम्, बालः, न, युवा, एव (च) न, वृद्धः, एव (च) न, वर्णी, (ब्राह्मणक्षत्रियादिः) न, ब्रह्मचारी, च, न, गृहस्थः, न, वनस्थः, अपि न, अहम्, संन्यस्तधर्मा, अपि, न, (अपि तु) अहम्, जगज्जन्मनाशैकहेतुः, शिवः, अस्मि।

अर्थ—'मैं' बालक, युवा व वृद्ध भी नहीं हूँ। न ब्राह्मण क्षत्रियादि वर्ण वाला ही हूँ, और न ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यासाश्रम वाला ही हूँ, अपितु इस संसार की उत्पत्ति स्थिति व संहार में एकमात्र कारणीभूत शिव ही मैं हूँ।। २।।

अहं नैव मेयस्तिरोभूतमायस्तथैवेक्षितुं मां पृथङ्नास्त्युपायः।
समाश्लिष्टकायत्रयोऽप्यद्वितीयः सदाऽतीन्द्रियः सर्वरूपः शिवोऽहम्।।३।।

अन्वय—तिरोभूतमायः, अहम्, मेयः, न, एव, अस्मीत्यर्थः, तथा, माम्, ईक्षितुम्, पृथक्, कश्चित्, उपायः, नास्ति एव, समाश्लिष्टकायत्रयः, अपि, अहम्, अद्वितीयः, सदा, अतीन्द्रियः, सर्वरूपः, शिवः, अस्मि।

अर्थ—माया मेरे ही में विलीन है, अतः मैं अमेय हूँ अर्थात् दिग्देशकालादि से परिच्छिन्न नहीं हूँ। मुझे देखने का (अर्थात् आत्मसाक्षात्कार का) अलग से कोई उपाय भी नहीं है क्योंकि मैं स्वप्रकाश हूँ, 'मैं' स्थूल सूक्ष्म व कारणरूप तीनों प्रकार के शरीरों में व्याप्त होता हुआ भी, अद्वितीय, सर्वदा, अतीन्द्रिय, सर्वस्वरूप तथा शिव हूँ।। ३।।

अहं नैव मन्ता न गन्ता न वक्ता न कर्त्ता न भोक्ता न मुक्ताश्रमस्थः।
यथाऽहं मनोवृत्तिभेदस्वरूपस्तथा सर्ववृत्तिप्रदीपः शिवोऽहम्।। ४।।

अन्वय—अहम्, मन्ता, न, गन्ता, न, वक्ता, न, कर्त्ता न, भोक्ता न, न एव मुक्ताश्रमस्थः, अहम्, कर्त्ता, न, भोक्ता च, न, अस्मि, यथा, अहम्, मनोवृत्तिभेदस्वरूपः, भवामि, तथा, सर्ववृत्तिप्रदीपः, शिवः, अहम्, अस्मि।

अर्थ—'मैं' मनन कर्त्ता, गमनकर्त्ता तथा प्रवचन कर्त्ता नहीं हूँ, मुक्तोचित संन्यास आश्रमी भी नहीं हूँ, कर्त्ता भोक्ता भी नहीं हूँ। यद्यपि तत्तत् विषयाकार मनोवृत्तियों में प्रतिफलित होने के कारण लोग प्रकृतिस्थ दुःखसुखादि, तथा कर्तृत्व-भोक्तृत्वादि धर्मों का उपचार मेरे में कर लेते हैं, तथापि सभी वृत्तियों का प्रकाशक, अर्थात् सभी का साक्षिरूप 'मैं' तो केवल शिव ही हूँ।। ४।।

न मे लोकयात्राप्रवाहप्रवृत्ति र्न मे बन्धबुद्ध्या दुरीहानिवृत्तिः।
प्रवृत्ति र्निवृत्त्यास्य चित्तस्य वृत्तिर्यतस्त्वन्वहं तत्स्वरूपः शिवोऽहम्।।५।।

अन्वय—अस्य, चित्तस्य, निवृत्त्या, मे लोकयात्राप्रवाहप्रवृत्तिः, न, बन्ध-बुद्ध्या, दुरीहानिवृत्तिः, मे, न। (अस्य, चित्तस्य) प्रवृत्तिः, वृत्तिः, (च) यतः, तत्स्वरूपः, शिवः, अहम्, अन्वहम्, अस्मि।

अर्थ—क्योंकि यह चित्त समाप्त हो चुका है इसलिये जीवन चलाने के लिये मेरी कोई प्रवृत्ति नहीं और बन्ध मिट चुकने से बंधन समझकर किसी नीच कामना से निवृत्ति भी नहीं। इस चित्त की वृत्ति आदि सारी चेष्टाएँ जिस अधिष्ठान से सत्ता-स्फूर्ति पाकर होती प्रतीत होती हैं वह अधिष्ठान रूप शिव ही मैं हमेशा हूँ।। ५।।

निदानं यदज्ञानकार्यस्य कार्यं विना यस्य सत्त्वं स्वतो नैव भाति।
यदाद्यन्तमध्यान्तरालान्तरालप्रकाशात्मकं स्यात्तदेवाहमस्मि।। ६।।

अन्वय—यत् (तत्त्वम्) अज्ञानकार्यस्य, निदानम्, अस्ति, यस्य, सत्त्वम्, विना, कार्यम्, स्वतः, न, एव, भाति, यत् (तत्त्वम्) आद्यन्तम-ध्यान्तरालान्तराल-प्रकाशात्मकम्, स्यात्, तत्, एव, अहम्, अस्मि।

अर्थ—जो (आत्मतत्त्व) अज्ञान के कार्यरूप इस संसार का आदि कारण है, जिसकी सत्ता के बिना अज्ञानकार्य यह संसार स्वतः भासमान नहीं है, जो प्रकाशपुञ्ज इस संसार के आदि मध्य व अन्त को भी प्रकाशित करता है (अथवा आदि मध्य, अन्त एवं सभी सन्धियों में प्रकाशरूप है), वही शान्त शिवरूप स्वयंज्योति मैं हूँ।। ६।।

यतोऽहं न बुद्धि र्न मे कार्यसिद्धिर्यतो नाऽहमङ्गं न मे लिङ्गभङ्गः।
हृदाकाशवर्त्ती गताङ्गत्रयार्तिः सदा सच्चिदानन्दमूर्तिः शिवोऽहम्।। ७।।

अन्वय—यतः, अहम्, बुद्धिः, न, मे कार्यसिद्धिः, (अपि) न, यतः, अहम्, अङ्गम्, न, (अत एव) मे, लिङ्गभङ्गः (अपि) न, गताङ्गत्रयार्तिः, अहम्, हृदाकाशवर्ती, सदा सच्चिदानन्दमूर्तिः, केवलः, शिवः, अहम्, अस्मि।

अर्थ—चूँकि मैं बुद्धि नहीं हूँ इसलिए मेरी कोई कार्यसिद्धि भी नहीं है, जब मैं अङ्ग अर्थात् शरीर ही नहीं हूँ, तो फिर मेरे लिङ्ग अर्थात् सूक्ष्म शरीर का भङ्ग होने की कोई आशङ्का ही नहीं है। मेरा त्रिविध शरीर की पीडाओं से कोई सम्बन्ध ही नहीं, अतः हृदयाकाश में रहने वाला सनातन सच्चिदानन्दमूर्ति, मैं तो केवल शिव हूँ।। ७।।

यदासीद् विलासाद् विकारो जगद्यद्विकाराश्रयो नाद्वितीयत्वतः स्यात्।
मनोबुद्धिचित्ताहमाकारवृत्तिप्रवृत्ति र्यतः स्यात्तदेवाहमस्मि।। ८।।

अन्वय–यत् (तत्त्वम्) विलासात्, विकारः जगत्, आसीत्, अद्वितीयत्वतः, यत्, विकाराश्रयः, न, स्यात्, यतः, मनोबुद्धिचित्ताहमाकारवृत्तिप्रवृत्तिः, स्यात्, तत्, एव, अहम्, अस्मि।

अर्थ–जो तत्त्व विलास से ही (खेल में ही) कार्यरूप जगत् था, स्वयं अद्वितीय होने से जो विकार (परिवर्तन) का आश्रय नहीं है, जिससे मन, बुद्धि, चित्त, व अहंकार की वृत्तियों की प्रवृत्ति होती है, वही केवल शिव मैं हूँ।। ८।।

यदन्तर्बहि र्व्यापकं नित्यशुद्धं यदेकं सदा सच्चिदानन्दकन्दम्।
यतः स्थूलसूक्ष्मप्रपञ्चस्य भानं यतस्तत्प्रसूतिस्तदेवाहमस्मि।। ६।।

अन्वय–यत्, (तत्त्वम्) अन्तः, बहिः, (च) व्यापकम्, नित्यशुद्धम्, अस्ति, यत्, सदा, एकम्, सत्, सच्चिदानन्दकन्दम्, अस्ति, यतः, स्थूलसूक्ष्मप्रपञ्चस्य, भानम्, भवति, यतः, तत्प्रसूतिः, अस्ति तत्, एव. अहम्, अस्मि।

अर्थ–जो तत्त्व अन्दर और बाहर व्यापक रूप से फैला हुआ है, और जो नित्य व शुद्ध बुद्ध स्वरूप है, सर्वदा एक होता हुआ भी, जो सत् चित् व आनन्द है, जिससे इन स्थूल (पञ्चमहाभूतादि) तथा सूक्ष्म पञ्चतन्मात्रादि तत्त्वों का ज्ञान होता है, जिससे स्थूल-सूक्ष्मात्मक इस प्रपञ्च की उत्पत्ति होती है, वही 'मैं' हूँ।। ६।।

यदर्केन्दुविद्युत्प्रभाजालमालाविलासास्पदं यत्स्वभेदादिशून्यम्।
समस्तं जगद् यस्य पादात्मकं स्याद्यतः शक्तिभानं तदेवाहमस्मि।।१०।।

अन्वय–यत् अर्केन्दुविद्युत्प्रभाजालमालाविलासास्पदम्, भवति, यत्, स्वभेदादिशून्यम्, अस्ति, समस्तम्, जगत्, यस्य, पादात्मकम्, भवति, (पादोऽस्य विश्वा भूतानि इति श्रुतेः), यतः, शक्तिभानम्, भवति तत्, एव, अहम्, अस्मि।

अर्थ–जो परम तत्त्व सूर्य, चन्द्र तथा विद्युत् आदि प्रभाओं के जाल की माला के विलास का आश्रय है, अर्थात् जिसकी कान्ति से ये सूर्यादि पदार्थ भी कान्तिमान् हैं, अथवा जो तत्त्व सूर्यादियों के प्रभाजाल की तरह स्वयं ज्योतिःस्वरूप है, वृक्ष में जिस प्रकार पत्र पुष्प व फलों से स्वगत भेद है तद्वत् जिसमें अपना (स्वगत) कोई भेद नहीं है; यह सारा जगत् जिसका मायारूप एकपाद माना जाता है; जिससे ज्ञान इच्छादि शक्तियों का भान होता

है, वही शिव मैं हूँ।। १०।।

यतः कालमृत्युर्बिभेति प्रकामं यतश्चित्तबुद्धीन्द्रियाणां विलासः।
हरिर्ब्रह्मरुद्रेन्द्रचन्द्रादिनामप्रकाशो यतः स्यात्तदेवाहमस्मि।। ११।।

अन्वय—यतः, कालमृत्युः, प्रकामम्, बिभेति, यतः, चित्तबुद्धीन्द्रियाणाम्, विलासः, भवति, यतः, हरिब्रह्मरुद्रेन्द्रचन्द्रादिनामप्रकाशः, स्यात्, तत्, एव, अहम्, अस्मि।

अर्थ—जिस तत्त्व से कालरूपी मृत्यु भी अत्यन्त भयभीत होता है, जिससे, चित्त, बुद्धि व इन्द्रियों का अर्थ-प्रकाशनरूप व्यापार होता है, जिसकी दी सामर्थ्य से हरि (विष्णु), ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र व चन्द्र सूर्यादि का नाम विख्यात है, अर्थात् जिसके प्रकाश (चैतन्य) को प्राप्त कर वे अपने-अपने कार्य में समर्थ होते हैं, वही केवल शिवरूप 'मैं' हूँ।। ११।।

यदाकाशवत् सर्वगं शान्तरूपं परं ज्योतिराकारशून्यं वरेण्यम्।
यदाद्यन्तशून्यं परं शंकराख्यं यदन्तर्विभाव्यं तदेवाहमस्मि।। १२।।

अन्वय—यत् (तत्त्वम्) आकाशवत्, सर्वगम्, शान्तरूपम्, अस्ति (यच्च) आकारशून्यम्, वरेण्यम्, परम्, ज्योतिः (अस्ति) यत्, आद्यन्तशून्यम्, परम्, अस्ति, शंकाराख्यम्, यद् अन्तर्विभाव्यम्, अस्ति, तत्, एव, अहम्, अस्मि।

अर्थ—जो तत्त्व आकाश की तरह व्यापक, और शान्त स्वरूप वाला है, जो आकारशून्य, परमप्रकाशरूप एवं प्राप्तव्य है, जो आदि व अन्त से शून्य परतत्त्व है, जिसे अपने भीतर ही प्रत्यग्रूप से समझना उचित है, वह शंकर नामक वस्तु ही मैं हूँ।। १२।।

निर्वाणषट्कम्

मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं न कर्णं न जिह्वा न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योम भूमि र्न तेजो न वायुश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।।१।।

अन्वय—अहम्, मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि, न, कर्णम्, जिह्वा, घ्राणनेत्रे, च, अहम्, नेत्यर्थः, तथा, व्योम, भूमिः, तेजः, वायुः, च, अहम्, न, अहम्, तु, चिदानन्दरूपः, शिवः, अस्मि।

अर्थ—'मैं' मन, बुद्धि, अहंकार व चित्त नहीं हूँ, और कर्ण, जिह्वा, नासिका व

नेत्र भी मैं नहीं हूँ, तथा आकाश, पृथिवी, तेज व वायु और जल भी मैं नहीं हूँ, 'मैं' तो चिदानन्दरूप केवल शिव हूँ।। १।।

न च प्राणसंज्ञो न वै पञ्चवायु
र्न वा सप्तधातु र्न वा पञ्चकोशः।
न वाक् पाणिपादौ न चोपस्थपायू
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।। २।।

अन्वय–अहम्, न, च, प्राणसंज्ञः, न, वै, पञ्चवायुः, न, वा, सप्त-धातुः, न, वा, पञ्चकोशः, तथा, वाक्, अपि, अहम्, न, पाणिपादौ, च, न, उपस्थपायू, च, न, (अपि तु) चिदानन्दरूपः, (केवलः) शिवः, अहम्, अस्मि।

अर्थ–'मैं' प्राणसंज्ञक (प्राण अपान उदान व्यान और समान रूप) अध्यात्मवायु एवं विस्तृत समष्टि वायु नहीं हूँ, न तो 'मैं' (त्वक्, असृक् (खून) मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा व शुक्र रूप) सप्तधातु हूँ, और ना ही (अन्नमयादि) पञ्चकोश ही हूँ, मैं वाणी, हस्त, पाद, उपस्थ, पायु इन कर्मेन्द्रियों में भी कोई नहीं हूँ अपितु केवल चिदानन्दरूप शिव हूँ।। २।।

न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ
मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्ष-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।। ३।।

अन्वय–मे (मम सम्बन्धिनौ) द्वेषरागौ, न, स्तः, लोभमोहौ, अपि, मे, न, स्तः, मे (मम) मदः, न, एव, मे (मम) मात्सर्यभावः, न, एव, मे, धर्मः, अर्थः, कामः, च, अपि, न, (अपि तु) चिदानन्दरूपः, अहम्, शिवः, अस्मि।

अर्थ–राग-द्वेष व लोभ और मोह से भी मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, और ये मद व मात्सर्यभाव भी मेरे नहीं हैं, धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष से भी मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं तो चिदानन्दरूप केवल शिव हूँ।। ३।।

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं
न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।। ४।।

अन्वय–अहम्, पुण्यम्, न, पापम्, न, सौख्यम्, न, दुःखम्, न,

मन्त्रः, न, तीर्थम्, न, वेदाः, न, यज्ञाः, अपि, न, तथा, अहम्, भोजनम्, न भोज्यम्, न, भोक्ता, अपि, न, (अपि तु) चिदानन्दरूपः, केवलः, शिवः, अहम्, अस्मि।

अर्थ—मैं पुण्य, पाप, सुख व दुःख नहीं हूँ, मन्त्र, तीर्थ, वेद व यज्ञ भी मैं नहीं हूँ। मैं भोजन, भोज्य व भोक्ता भी नहीं हूँ, अपितु चिदानन्दरूप केवल शिव हूँ।। ४।।

न मृत्यु र्न शङ्का न मे जातिभेदः पिता नैव मे नैव माता च जन्म।
न बन्धु र्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।।५।।

अन्वय—मे (मम) मृत्युः, न, शङ्का, च, न, तथा जातिभेदः, अपि, न, मे (मम) पिता, न, एव, माता, च, न, एव, तथा, जन्म, च, न, बन्धुः, न, मित्रम्, न, गुरुः न, एव, शिष्यः, अपि, न, अहम्, तु, चिदानन्दरूपः, केवलः, शिवः, अस्मि।

अर्थ—'मेरी' मृत्यु भी नहीं होती है, न मुझे कोई या किसी प्रकार की शङ्का ही है, ब्राह्मणादि जातिभेदों में कोई जाति भी मेरी नहीं है, न मेरा कोई पिता है, न माता है, इसीलिए मेरा जन्म भी नहीं है, मेरे कोई बन्धु, मित्र, गुरु और शिष्य भी नहीं हैं, 'मैं' तो चिदानन्दस्वरूप केवल शिव हूँ।। ५।।

अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो विभुर्व्याप्य सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणि।
सदा मे समत्वं न मुक्ति र्न बन्धश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।।६।।

अन्वय—अहम्, निर्विकल्पः, निराकाररूपः, विभुः, सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणि व्याप्य अस्मि। मे समत्वं सदा। मे न मुक्तिः न बन्धः, चिदानन्दरूपः, शिवः अहम्।

अर्थ—'मैं' निर्विकल्प हूँ, अर्थात् मेरे में किसी प्रकार की प्रकारता विशेषता आदि नहीं है। अत एव निराकार हूँ। विभु अर्थात् सर्वत्र हूँ। सभी इन्द्रियों में भी, मैं हमेशा एकरस हूँ। मैं मुक्ति व बन्धन वाला नहीं हूँ। 'मैं' तो चिदानन्द स्वरूप केवल शिव हूँ।। ६।।

प्रश्नोत्तररत्नमालिका

कः खलु नालंक्रियते दृष्टादृष्टार्थसाधनपटीयान्।
अमुया कण्ठस्थितया प्रश्नोत्तररत्नमालिकया।। १।।

अन्वय—दृष्टादृष्टार्थसाधनपटीयान्, कः, कण्ठस्थितया, अमुया, प्रश्नोत्तररत्नमालिकया, न, अलंक्रियते, खलु।

अर्थ—इस लोक व परलोक के भोग्य साधनों से सम्पन्न कौन मनुष्य, कठस्थ इस प्रश्नोत्तर रूप रत्नों की मालिका से अलंकृत नहीं होता है? जिस प्रकार रत्नमालिका को कण्ठ (गले) में धारण कर लोग सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार इस 'प्रश्नोत्तर मालिका' को भी कण्ठस्थ कर लोग सुशोभित होते ही हैं।। १।।

भगवन् किमुपादेयं गुरुवचनं हेयमपि च किमकार्यम्।
को गुरुरधिगततत्त्वः शिष्यहितायोद्यतः सततम्।। २।।

अन्वय—(कश्चिज्जिज्ञासुः पृच्छति कञ्चित् महापुरुषमिति) हे भगवन्! (अस्मिन् संसारे) किम्, उपादेयम्, भवति? उत्तरम्—गुरुवचनम्, उपादेयम्, भवति। प्रश्नः—किम्, हेयम्, भवति। उत्तरम्—अकार्यम्, हेयम्, भवतीत्यर्थः। प्रश्नः—कः गुरुः? उत्तरम् - अधिगततत्त्वः, सततम्, शिष्यहिताय, उद्यतः, गुरुर्भवतीत्यर्थः।

अर्थ—कोई जिज्ञासु शिष्य किसी महापुरुष से पूछता है कि हे भगवन्! मुझे यह तो बतलाइये कि इस संसार में उपादेय (ग्राह्य) वस्तु क्या है? उत्तर—गुरुवचन ही इस संसार में सबसे उपादेय वस्तु है। प्रश्न—अच्छा, फिर इस संसार में त्याज्य वस्तु क्या है? उत्तर—अकार्य (दुष्कर्म, बुरे कार्य) ही इस संसार में त्याज्य हैं। प्रश्न—गुरु कौन है? उत्तर—जिसे परमार्थ सत् का ज्ञान हो, और जो शिष्य की भलाई के लिए हमेशा तैयार रहे, वही गुरु है।। २।।

त्वरितं किं कर्तव्यं विदुषां संसारसन्ततिच्छेदः।
किं मोक्षतरो र्बीजं सम्यक् ज्ञानं क्रियासिद्धम्।। ३।।

अन्वय—प्रश्नः—विदुषाम्, त्वरितम्, किम्, कर्तव्यम्, अस्ति? उत्तरम्—संसारसन्ततिच्छेदः। प्रश्नः—मोक्षतरोः, बीजम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—क्रियासिद्धम्, सम्यक् ज्ञानम्, मोक्षतरोर्बीजमस्ति।

अर्थ—प्रश्न—विद्वानों को शीघ्र ही क्या करना चाहिए? उत्तर—संसार सम्बन्धी वासनाओं का उच्छेद शीघ्र ही कर लेना चाहिए। प्रश्न—मोक्षरूपी वृक्ष का बीज क्या है? उत्तर—बहिरंग-अंतरंग साधनों से प्राप्त समीचीन ज्ञान ही मोक्षरूपी वृक्ष का बीज है।। ३।।

कः पथ्यतरो धर्मः कः शुचिरिह यस्य मानसं शुद्धम्।
कः पण्डितो विवेकी किं विषमवधीरणा गुरुषु।। ४।।

अन्वय—प्रश्नः—कः पथ्यतरः? उत्तरम्—धर्मः पथ्यतरः (अस्ति)। प्रश्नः—इह, कः, शुचिः? उत्तरम्—यस्य मानसम् शुद्धम्, अस्ति, सः, शुचिरित्यर्थः। प्रश्नः - कः, पण्डितः, अस्ति? उत्तरम्—यः, विवेकी, भवति, सः पण्डितोऽस्तीत्यर्थः। प्रश्नः—किम्, विषम्, अस्ति? उत्तरम्—गुरुषु, अवधीरणा, एव, विषम्, अस्ति।

अर्थ—इस संसार में सबसे हितकर व पथ्य (लाभदायक) वस्तु क्या है? उत्तर—इस संसार में सबसे हितकर व लाभदायक वस्तु धर्म ही है। प्रश्न—इस जगत् में पवित्र कौन है? उत्तर—जिसका मन पवित्र है, वही पवित्र है। प्रश्न—पण्डित कौन है? उत्तर—जो सत् और असत् का विवेचन करता है। प्रश्न—विष क्या है? उत्तर—गुरुओं की या अपने से बड़े लोगों की अवधीरणा (अवहेलना) ही विष है।। ४।।

किं संसारे सारं बहुशोऽपि विचिन्त्यमानमिदमेव।
किं मनुजेष्विष्टतमं स्वपरहितायोद्यतं जन्म।। ५।।

अन्वय—प्रश्नः—इह, संसारे, सारम् (वस्तु) किम्, अस्ति? उत्तरम्—बहुशः, अपि, विचिन्त्यमानम्, इदम्, (पूर्वोक्त-द्वितीयादिचतुर्थान्त-श्लोकबोधितम्) एव, सारम्, वस्तु, अस्ति। प्रश्नः—मनुजेषु इष्टतमम्, किम्, अस्ति? उत्तरम् - स्वपरहिताय, उद्यतम्, जन्म, एव, इष्टतमम्, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—इस संसार में, सबसे श्रेष्ठ व स्थिर वस्तु क्या है? उत्तर—बार-बार विचारे गये, पूर्वोक्त (पूर्व श्लोक में कहे गये) वचन ही सबसे श्रेष्ठ व स्थिर हैं। (अथवा, इस संसार का निरन्तर विवेकपूर्वक गम्भीर चिन्तन ही सर्वश्रेष्ठ वस्तु है क्योंकि संसार की परीक्षा से इसके मिथ्यांश का पता चलकर उसे छोड़कर इसके अधिष्ठान सत्यांश को समझा जा सकता है)। प्रश्न—मनुष्यों का सबसे अभीष्ट पदार्थ क्या है? उत्तर—अपने व दूसरों के हित के लिए जीवन होने को सबसे इच्छित पदार्थ कहते हैं।। ५।।

मदिरेव मोहजनकः कः स्नेहः के च दस्यवो विषयाः।
का भववल्ली तृष्णा को वैरी यस्त्वनुद्योगः।। ६।।

अन्वय—प्रश्नः—मदिरा, इव, मोहजनकः, कः, अस्ति? उत्तरम्—स्नेहः, अस्ति। प्रश्नः—दस्यवः, च, के, सन्ति? उत्तरम्—विषयाः, दस्यवः, सन्ति। प्रश्नः—भववल्ली, का, अस्ति? उत्तरम्—तृष्णा, भववल्ली, अस्ति। प्रश्नः—वैरी कः, अस्ति? उत्तरम्—अनुद्योगः, (एव) वैरी अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—मदिरा (शराब) की तरह मदजनक वस्तु कौन है? उत्तर—स्नेह ही मदिरा की तरह मदजनक है। प्रश्न—संसार में डाकू कौन हैं? उत्तर—इस संसार में ये विषय की डाकू हैं। प्रश्न—संसार की बेल कौन-सी है? उत्तर—यह तृष्णा ही संसार की बेल है। प्रश्न—संसार में सबसे बड़ा शत्रु कौन है? उत्तर—अकर्मण्यता ही संसार में सबसे बड़ा शत्रु है।। ६।।

कस्माद् भयमिह मरणादन्धादिह को विशिष्यते रागी।
कः शूरो यो ललनालोचनबाणै र्न व्यथितः।। ७।।

अन्वय—प्रश्नः—इह कस्मात्, भयम्, भवति? उत्तरम्—मरणात्, भयम्, भवति। प्रश्नः—इह, अन्धात्, कः, विशिष्यते? उत्तरम्—रागी अन्धादपि विशिष्यते। प्रश्नः—कः, शूरः, अस्ति? उत्तरम्—यः, ललनालोचनबाणैः, न, व्यथितः, सः, शूरः, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—इस संसार में भय किससे है? उत्तर—मृत्यु से। प्रश्न—अन्धे से भी बढ़कर कौन है? उत्तर— विषयों का रागी, (अन्धा तो किसी संकेत से ठीक राह में आ जाता है, परन्तु रागान्ध तो किसी प्रकार भी सही रास्ते में नहीं आता है)। प्रश्न— शूरवीर कौन है? उत्तर— जो ललनाओं के कटाक्षों से घायल नहीं हुआ, वही शूर है।। ७।।

पातुं कर्णाञ्जलिभिः किममृतमिह युज्यते सदुपदेशः।
किं गुरुताया मूलं यदेतदप्रार्थनं नाम।। ८।।

अन्वय—प्रश्नः—इह, कर्णाञ्जलिभिः, पातुम्, अमृतम्, किम्, युज्यते? उत्तरम्—सदुपदेशः, कर्णाञ्जलिभिः, पातुम्, युज्यते। प्रश्नः—गुरुतायाः, मूलम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—यत्, एतत्, अप्रार्थनम्, नाम।

अर्थ—संसार में कर्णरूपी अञ्जलि से पीने योग्य अमृत क्या है? उत्तर—कर्णाञ्जलि से पीने योग्य अमृत सदुपदेश है। प्रश्न—बड़प्पन का मूल (कारण) क्या है? उत्तर—किसी वस्तु की किसी से प्रार्थना न करना ही बड़प्पन का मूल है।। ८।।

किं गहनं स्त्रीचरितं कश्चतुरो यो न खण्डितस्तेन।
किं दुःखमसन्तोषः किं लाघवमधमतो याच्ञा।। ९।।

अन्वय—प्रश्नः—गहनम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—स्त्रीचरितम्, गहनम्, अस्ति। प्रश्नः—चतुरः कः, अस्ति? उत्तरंम्—यः, तेन (स्त्रीचरितेनेत्यर्थः) न, खण्डितः, सः, चतुरः, अस्ति। प्रश्नः—दुःखम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्— असन्तोषः, एव, दुःखम्, अस्ति। प्रश्नः—लाघवम्, किम्,

अस्ति? उत्तरम्—अधमतः, याच्ञा, एव, लाघवम्, अस्ति।

अर्थ—सबसे गहन (गूढ़) चीज क्या है? उत्तर—स्त्री का चरित ही सबसे गहन है। प्रश्न— चतुर कौन है? उत्तर—जो उससे खण्डित नहीं होता है। प्रश्न—दुःख क्या है? उत्तर—असन्तोष ही दुःख है। प्रश्न—लघुता (हलकापन, ओछापन) क्या है? उत्तर—अधमों से याचना करना ही लघुता है।। ६।।

किं जीवितमनवद्यं किं जाड्यं पाठतोऽप्यनभ्यासः।
को जागर्ति विवेकी का निद्रा मूढता जन्तोः।। १०।।

अन्वय—प्रश्नः—जीवितम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—अनवद्यम्, जीवितम्, अस्ति। प्रश्नः—जाड्यम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—पाठतः, अनभ्यासः, जाड्यम्, अस्ति। प्रश्नः—कः, जागर्ति? उत्तरम्—विवेकी एव, जागर्ति। प्रश्नः—निद्रा, का, अस्ति? उत्तरम्—जन्तोः, मूढता, एव, निद्रा, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—जीवन क्या है? (अर्थात् उत्कृष्ट जीवन कौन-सा है?) उत्तर—निष्पाप, निष्कलंक जीवन ही जीवन है। प्रश्न—जडता क्या है? उत्तर—पाठ का या स्वाध्याय का अनभ्यास ही जडता है अर्थात् पढ लेने पर भी उसकी अवृत्ति न करना और उसे कार्य में न लाना जडता है। प्रश्न—हमेशा जगता कौन है? उत्तर—विवेकशील ही हमेशा जगता है। प्रश्न—निद्रा क्या चीज है? उत्तर—प्राणियों की मूढता (मोहग्रस्तता) ही निद्रा है।। १०।।

नलिनीदलगतजलवत्तरलं किं यौवनं धनं चायुः।
कथय पुनः के शशिनः किरणसमाः सज्जना एव।। ११।।

अन्वय—प्रश्नः—नलिनीदलगतजलवत्तरलम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—यौवनम्, धनम्, आयुः, च। प्रश्नः—पुनः, कथय, शशिनः, किरणसमाः, के सन्ति? उत्तरम्—सज्जनाः, एव, शशिनः, किरणसमाः, सन्ति।

अर्थ—प्रश्न—कमलिनी के पत्ते में स्थित जल की तरह तरल (अस्थिर) क्या है? उत्तर—यौवन, धन व जीवन कमलिनी के पत्ते में स्थित जल के समान तरल अर्थात् अस्थिर हैं। प्रश्न—फिर बोलो, चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल कौन हैं? उत्तर—सज्जन ही चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल हैं।। ११।।

को नरकः परवशता किं सौख्यं सर्वसङ्गविरतिर्या।
किं सत्यं भूतहितं प्रियं च किं प्राणिनामसवः।। १२।।

अन्वय—प्रश्नः—नरकः, कः, अस्ति? उत्तरम्—परवशता (एव) नरकः

अस्ति। प्रश्नः—सौख्यम्, किम् अस्ति? उत्तरम्—या, सर्वसङ्गविरतिः, सैव सौख्यमस्ति। प्रश्नः—सत्यम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—भूतहितम्, एव, सत्यमस्ति। प्रश्नः—प्राणिनाम्, प्रियम्, च, किम्, अस्ति? उत्तरम्—असवः, एव, प्राणिनाम्, प्रियाः, सन्ति।

अर्थ—प्रश्न—नरक क्या है? उत्तर— परवशता, पराधीनता ही नरक है। प्रश्न—सुख क्या है? उत्तर—सभी विषयों से वैराग्य ही सुख है। प्रश्न—सत्य क्या है? उत्तर—प्राणिमात्र का हित ही सत्य है। प्रश्न—प्राणियों की सबसे प्यारी चीज क्या है? उत्तर—प्राणियों को सबसे प्यारे प्राण हैं।। १२।।

कोऽनर्थफलो मानः का सुखदा साधुजनमैत्री।
सर्वव्यसनविनाशे को दक्षः सर्वथा त्यागी।। १३।।

अन्वय—प्रश्नः—अनर्थफलः, कः, अस्ति? उत्तरम्—मानः (अनर्थ-फलोऽस्ति) प्रश्नः—सुखदा, का, अस्ति? उत्तरम्—साधुजनमैत्री, सुखदा, अस्ति। प्रश्नः—सर्वव्यसनविनाशे, कः, दक्षः, अस्ति? उत्तरम्— सर्वथा, त्यागी, सर्वव्यसनविनाशे, दक्षः, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—अनिष्ट-कारक कौन है? उत्तर—मान (अभिमान) ही अनिष्टकारक है। प्रश्न—सुख देने वाली चीज कौन है? उत्तर—साधु-सङ्गति ही सुख देने वाली है। प्रश्न—सभी दुःखों को दूर करने में निपुण कौन है? उत्तर सर्वथा त्यागी ही सब दुःख को दूर करने में निपुण है।। १३।।

किं मरणं मूर्खत्वं किं चानर्घं यदवसरे दत्तम्।
आमरणात् किं शल्यं प्रच्छन्नं यत् कृतं पापम्।। १४।।

अन्वय—प्रश्नः—मरणम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—मूर्खत्वम्, एव, मरणम्, अस्ति। प्रश्नः—अनर्घम्, च, किम्, अस्ति? उत्तरम्—यत्, अवसरे, दत्तम्, तत्, वस्तु, अनर्घमस्ति। प्रश्नः—आमरणात्, किम्, शल्यम्, भवति? उत्तरम्—यत्, प्रच्छन्नम्, पापम्, कृतम्, तत्, आमरणात्, शल्यम्, भवति।

अर्थ—प्रश्न—मृत्यु क्या है? उत्तर—मूर्खता ही मृत्यु है। प्रश्न—बहुमूल्य वस्तु क्या है? उत्तर—जो उचित अवसर पर दिया जाय, वही वस्तु बहुमूल्य है (अर्थात् आवश्यकता आदि मौके के उपयोग की छोटी भी वस्तु देने पर उसे बहुमूल्य समझा जाता है।) प्रश्न—मृत्यु पर्यन्त चुभने वाला (दुःख देने वाला) क्या है? उत्तर—छिप-छिप के किया हुआ पाप ही मृत्यु पर्यन्त दुःख देने वाला है।। १४।।

कुत्र विधेयो यत्नो विद्याभ्यासे सदौषधे दाने।
अवधीरणा क्व कार्या खलपरयोषित्परधनेषु।। १५।।

अन्वय–प्रश्नः–यत्नः, कुत्र, विधेयः? उत्तरम्–यत्नः, विद्याभ्यासे, सदौषधे, दाने, च, विधेयः। प्रश्नः–अवधीरणा, क्व, कार्या? उत्तरम्–खलपरयोषित्परधनेषु, अवधीरणा, कार्या।

अर्थ–प्रश्न–प्रयत्न कहाँ करना चाहिए? उत्तर–विद्याभ्यास, अच्छी औषधि, के लिए और दान के लिए हमेशा प्रयत्न करना चाहिए। प्रश्न–उपेक्षा कहाँ करनी चाहिए? उत्तर–दुष्ट में, पराई स्त्री के विषय में, तथा परधन में, उपेक्षा करनी चाहिए।। १५।।

काऽहर्निशमनुचिन्त्या संसारासारता न तु प्रमदा।
का प्रेयसी विधेया करुणा दीनेषु सज्जने मैत्री।। १६।।

अन्वय–प्रश्नः–अहर्निशम्, का, अनुचिन्त्या? उत्तरम्–संसारासारता, अहर्निशम्, अनुचिन्त्या, न, तु, प्रमदा, अनुचिन्त्या। प्रश्नः–प्रेयसी का, विधेया? उत्तरम्–दीनेषु करुणा, प्रेयसी विधेया, सज्जने, मैत्री, प्रेयसी, विधेया।

अर्थ–प्रश्न–रातदिन किसका अनुचिन्तन करना चाहिए? उत्तर–रातदिन संसार की असारता का चिन्तन करना चाहिए न कि प्रमदाओं का। प्रश्न–प्रियतमा किसे बनाना चाहिए? उत्तर–दीनों के प्रति करुणा को और सज्जनों के साथ मैत्री को प्रियतमा बनाना चाहिए।। १६।।

कण्ठगतैरप्यसुभिः कस्य ह्यात्मा न शक्यते जेतुम्।
मूर्खस्य शङ्कितस्य च विषादिनो वा कृतघ्नस्य।। १७।।

अन्वय–प्रश्नः–कण्ठगतैः, अपि, असुभिः, कस्य, आत्मा, जेतुम्, न, शक्यते? उत्तरम्–मूर्खस्य, शङ्कितस्य च विषादिनः, च, कृतघ्नस्य, वा आत्मा (कण्ठगतैरपि, असुभिः) न शक्यते जेतुम्।

अर्थ–प्रश्न–प्राणपखेरुओं के प्रस्थान-समय तक भी, अर्थात् मरते समय तक भी, किसकी आत्मा (मन) नहीं जीती जा सकती है? उत्तर–मूर्ख, शङ्कित, शोकाकुल व कृतघ्न की आत्मा जीती नहीं जा सकती। अर्थात् ऐसों का मन न स्वयं के नियंत्रण में रहता है, न किसी सज्जन के ही नियंत्रण को मानता है।। १७।।

कः साधुः सद्वृत्तः कमधममाचक्षते त्वसद्वृत्तम्।
केन जितं जगदेतत् सत्यतितिक्षावता पुंसा।। १८।।

अन्वय—प्रश्नः—साधुः, कः, अस्ति? उत्तरम्—सद्वृत्तः, साधुः, अस्ति। प्रश्नः—कम्, अधमम्, आचक्षते? उत्तरम्—असद्वृत्तम्, तु अधमम्, आचक्षते। प्रश्नः—एतत्, जगत्, केन्, जितम्? उत्तरम्—सत्यतितिक्षावता, पुंसा, एतत्, जगत्, जितम्, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—साधु कौन है? उत्तर—जो सच्चरित्र है वही साधु है। प्रश्न—नीच किसे कहते हैं? उत्तर—दुष्टचरित्र अर्थात् दुराचारी को अधम, नीच कहते हैं। प्रश्न—इस संसार को किसने जीता है? उत्तर—सत्य व सहनशील पुरुष ने इस संसार को जीता है।। १८।।

कस्मै नमांसि देवाः कुर्वन्ति दयाप्रधानाय।
कस्मादुद्वेगः स्यात् संसारारण्यतः सुधियः।। १९।।

अन्वय—प्रश्नः—देवाः, कस्मै, नमांसि, कुर्वन्ति? उत्तरम्—दयाप्रधानाय, देवाः, (अपि) नमांसि कुर्वन्ति। प्रश्नः—सुधियः, कस्मात्, उद्वेगः, स्यात्? उत्तरम्—संसारारण्यतः, सुधियः, उद्वेगः, स्यात्।

अर्थ—प्रश्न—देवता लोग भी किसे नमस्कार करते हैं? उत्तर—दयालु पुरुष को देवता लोग भी नमस्कार करते हैं। प्रश्न—बुद्धिमान् को किस वस्तु से उद्विग्नता होती है? उत्तर—बुद्धिमान् को, इस संसार रूपी जंगल से उद्विग्नता होती है।। १९।।

कस्य वशे प्राणिगणः सत्यप्रियभाषिणो विनीतस्य।
क्व स्थातव्यं न्याय्ये पथि दृष्टादृष्टलाभाढ्ये।। २०।।

अन्वय—प्रश्नः—प्राणिगणः, कस्य, वशे, भवति? उत्तरम्—सत्यप्रियभाषिणः, विनीतस्य, च, वशे, प्राणिगणः, भवति। प्रश्नः—क्व, स्थातव्यम्? उत्तरम्—दृष्टादृष्टलाभाढ्ये, न्याय्ये, पथि, स्थातव्यम्।

अर्थ—प्रश्न—समस्त प्राणिगण किसके वश में रहते हैं? उत्तर—जो सत्य व प्रिय बोलता हो, साथ ही साथ विनीत भी हो, उसी के वश में समस्त प्राणिगण रहते हैं? प्रश्न—किस मार्ग पर रहना चाहिए? उत्तर—जिससे इस लोक में व परलोक में लाभ होय, ऐसे न्यायोचित व धर्म के मार्ग में रहना चाहिए।।२०।।

कोऽन्धो योऽकार्यरतः को बधिरो यो हितानि न शृणोति।
को मूको यः काले प्रियाणि वक्तुं न जानाति।। २१।।

अन्वय—प्रश्नः—कः, अन्धः, अस्ति? उत्तरम्—यः, अकार्यरतः, अस्ति, सः, अन्धः, अस्ति। प्रश्नः—कः बधिरः, अस्ति? उत्तरम्—यः, हितानि, न, शृणोति, सः, बधिरः, अस्ति। प्रश्नः—कः, मूकः, अस्ति? उत्तरम्—

यः, काले, प्रियाणि, वक्तुम्, न, जानाति, सः, मूकः, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—अन्धा कौन है? उत्तर—जो अकार्यरत है, अर्थात् व्यर्थ के कार्यों में, या खराब कार्यों में व्यस्त रहता है। प्रश्न—बहिरा कौन है? उत्तर—जो हितकारक वचन नहीं सुनता है, वह बहिरा है। प्रश्न—गूँगा कौन है? उत्तर—जो समय पर प्रिय बोलना नहीं जानता है।। २१।।

किं दानमनाकाङ्क्षं किं मित्रं यो निवारयति पापात्।
कोऽलंकारः शीलं किं वाचां मण्डनं सत्यम्।। २२।।

अन्वय—प्रश्नः—दानम्, किम्, किं प्रकारकमित्यर्थः? उत्तरम्—अनाकाङ्क्षम् (प्रत्युपकाराद्यासक्तिरहितमित्यर्थः)। प्रश्नः—मित्रम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—यः, पापात्, निवारयति, सः, मित्रम्, अस्ति। प्रश्नः—अलङ्कारः, कः, अस्ति? उत्तरम् – शीलम्, एव, अलङ्कारः, अस्ति। प्रश्नः—वाचाम्, मण्डनम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—सत्यम्, एव, वाचाम्, मण्डनम्, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—दान किस प्रकार का होना चाहिए? उत्तर—प्रत्युपकारादि की इच्छाओं से रहित होना चाहिए। प्रश्न—मित्र कौन है? उत्तर—जो पाप को दूर करे, या पाप (करने) से रोके। प्रश्न—आभूषण क्या है? उत्तर—शील ही सुन्दर आभूषण है। प्रश्न—वाणी की शोभा क्या है? उत्तर—सत्य ही वाणी की शोभा है।। २२।।

विद्युद्विलसितचपलं किं दुर्जनसंगतिर्युवतयश्च।
कुलशीलनिष्प्रकम्पाः के कलिकालेऽपि सज्जना एव।। २३।।

अन्वय—प्रश्नः—विद्युद्विलसितचपलम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—दुर्जनसंगतिः, युवतयः, च। प्रश्नः—कुलशीलनिष्प्रकम्पाः, के, सन्ति? उत्तरम्—कलिकाले, अपि, सज्जनाः, एव, सन्ति।

अर्थ—प्रश्न—बिजली की चमक की तरह चञ्चल कौन है? उत्तर—दुर्जन-संगति और युवतियाँ बिजली की चमक के समान चञ्चल हैं। प्रश्न—कुल और शील से निश्चल कौन हैं? उत्तर—कलिकाल में भी सज्जन ही कुल व शील में निश्चल हैं।। २३।।

चिन्तामणिरिव दुर्लभमिह किं कथयामि तच्चतुर्भद्रम्।
किं यद् वदन्ति भूयो विधूततमसो विशेषेण।। २४।।
दानं प्रियवाक्सहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम्।
वित्तं त्यागसमेतं दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम्।। २५।।

अन्वय—प्रश्नः—इह, विधूततमसः, विशेषेण, भूयः, यत्, वदन्ति, तत्, चिन्तामणिः, इव, दुर्लभम् (वस्तु) किम्, अस्ति? उत्तरम्—तत् चतुर्भद्रम्, कथयामि—प्रियवाक्सहितम्, दानम्; अगर्वम्, ज्ञानम्; क्षमान्वितम्, शौर्यम्, त्यागसमेतम्, वित्तम्,—एतत्, चतुर्भद्रम्, इह, चिन्तामणिः, इव, दुर्लभम्, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—इस संसार में निर्मलमति सन्त विशेषकर किस वस्तु की चर्चा करते हैं जो चिन्तामणि की तरह दुर्लभ हो? उत्तर—चिन्तामणि की तरह दुर्लभ उस चतुर्भद्र के विषय में कहता हूँ— (१) एक तो प्रियवचन सहित दान है, (२) दूसरा, बिना गर्व का ज्ञान है (३) तीसरा, क्षमा सहित शौर्य है (४) चौथा, त्याग सहित धन है। ये चतुर्भद्र—कल्याणकारी चार विशेषताएँ इस संसार में चिन्तामणि की तरह दुर्लभ हैं।। २४।। २५।।

किं शोच्यं कार्पण्यं सति विभवे किं प्रशस्तमौदार्यम्।
कः पूज्यो विद्वद्भिः स्वभावतः सर्वदा विनीतो यः।। २६।।

अन्वय—प्रश्नः—किम्, शोच्यम्, अस्ति? उत्तरम्—(सति विभवे) कार्पण्यम्, शोच्यम्, अस्ति। प्रश्नः—किम्, प्रशस्तम् अस्ति? उत्तरम्—सति विभवे औदार्यम्, प्रशस्तम्, अस्ति। प्रश्नः—विद्वद्भिः, कः, पूज्यः? उत्तरम्—यः, स्वभावतः, सर्वदा, विनीतः, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—शोचनीय क्या है? उत्तर—वैभव रहने पर भी कृपणता शोचनीय है। प्रश्न—प्रशंसनीय क्या है? उत्तर—वैभव रहने पर उदारता प्रशंसनीय है। प्रश्न—विद्वानों का भी पूजनीय कौन है? उत्तर—जो सर्वदा स्वभावतः विनयी है।। २६।।

कः कुलकमलदिनेशः सति गुणविभवेऽपि यो नम्रः।
कस्य वशे जगदेतत् प्रियहितवचनस्य धर्मनिरतस्य।। २७।।

अन्वय—प्रश्नः—कुलकमलदिनेशः, कः, अस्ति? उत्तरम्—गुणविभवे, सति, अपि, यः, नम्रः, अस्ति। प्रश्नः—एतत्, जगत्, कस्य, वशे, अस्ति? उत्तरम्—प्रियहितवचनस्य, धर्मनिरतस्य, च, वशे, एतत्, जगदस्ति।

अर्थ—प्रश्न—कुलरूपी कमल के लिए सूर्य के समान कौन है? उत्तर—गुणगणों के रहने पर भी जो नम्र होय, वही कुलकमल-दिवाकर है। प्रश्न—यह संसार किसके वश में है? उत्तर—जो प्रिय व हितकारक वचन बोलता है, और धर्मपरायण है, उसी के वश में यह सारा संसार है।। २७।।

विद्वन्मनोहरा का सत्कविता बोधवनिता च।
कं न स्पृशति विपत्तिः प्रवृद्धवचनानुवर्तिनं दान्तम्।। २८।।

अन्वय—प्रश्नः—विद्वन्मनोहरा का? उत्तरम्—सत्कविता बोधवनिता, च। प्रश्नः—विपत्तिः, कम्, न, स्पृशति? उत्तरम्—प्रवृद्धवचनानुवर्तिनम्, दान्तम्, च, विपत्तिः, न, स्पृशति।

अर्थ—प्रश्न—विद्वानों के मनोनुकूल वस्तु क्या है? उत्तर—सुन्दर कविता तथा ज्ञानरूपी वनिता ही विद्वानों के मनोनुकूल वस्तुयें हैं। प्रश्न—विपत्ति किसे स्पर्श नहीं करती है? उत्तर—जो बड़े बूढ़ों के कथनानुसार चलता है, और इन्द्रियों को वश में रखता है, उसे विपत्ति स्पर्श नहीं करती है।। २८।।

कस्मै स्पृहयति कमला त्वनलसचित्ताय नीतिवृत्ताय।
त्यजति च कं सहसा द्विजगुरुसुरनिन्दाकरं च सालस्यम्।। २९।।

अन्वय—प्रश्नः—कमला, कस्मै, स्पृहयति? उत्तरम्—अनलसचित्ताय, नीतिवृत्ताय, तु (च) कमला, स्पृहयति। प्रश्नः—सहसा, च, सा=कमला, कम्, त्यजति? उत्तरम्—द्विजगुरुसुरनिन्दाकरम्, सालस्यम्, च, कमला, सहसा, त्यजतीत्यर्थः। (तृतीयपादान्ते 'सा' इति योजने छन्दः पूर्यते।)

अर्थ—प्रश्न—लक्ष्मी किसे चाहती है? उत्तर—जो आलस्य-रहित है और नीतिपूर्वक चलता है, उसी को लक्ष्मी पसन्द करती है। प्रश्न—लक्ष्मी एकाएक (जल्दी) किसे छोड़ देती है? उत्तर—जो ब्राह्मण, गुरु व देवताओं की निन्दा करता है और आलसी है उसे लक्ष्मी जल्दी ही छोड़ देती है।। २९।।

कुत्र विधेयो वासः सज्जननिकटेऽथवा काश्याम्।
कः परिहार्यो देशः पिशुनयुतो लुब्धभूपश्च।। ३०।।

अन्वय—प्रश्नः—कुत्र वासः, विधेयः? उत्तरम्—सज्जननिकटे, अथवा, काश्याम्, वासः, विधेयः,। प्रश्नः—कः, देशः, परिहार्यः? उत्तरम्—पिशुनयुतः, लुब्धभूपश्च, देशः, परिहार्यः।

अर्थ—प्रश्न—कहाँ निवास करना चाहिए? उत्तर—सज्जनों के निकट, अथवा काशी में निवास करना चाहिए। प्रश्न—किस देश को छोड़ देना चाहिए? उत्तर—जहाँ चुगलखोर हों और जहाँ लोभी राजा हो, उस देश को छोड़ देना चाहिए।। ३०।।

केनाशोच्यः पुरुषः प्रणतकलत्रेण धीरविभवेन।
इह भुवने कः शोच्यः सत्यपि विभवे यो न दाता।। ३१।।

अन्वय—प्रश्नः—पुरुषः, केन, अशोच्यः, भवति? उत्तरम्—

प्रणतकलत्रेण, धीरविभवेन, च, पुरुषः, अशोच्यः, भवति। प्रश्नः—इह, भुवने, कः, शोच्यः, अस्ति? उत्तरम्—विभवे, सति, अपि, यः, दाता, न, भवति।

अर्थ—प्रश्न—पुरुष किससे अशोचनीय होता है? उत्तर—विनम्रशील तथा शीलवती भार्या से और धैर्यरूपी धन से पुरुष अशोचनीय होता है। प्रश्न—इस संसार में शोचनीय कौन है? उत्तर—धन के रहने पर भी जो दान नहीं करता, वह शोचनीय है।। ३१।।

किं लघुताया मूलं प्राकृतपुरुषेषु या याच्ञा।
रामादपि कः शूरः स्मरशरनिहतो न यश्चलति।। ३२।।

अन्वय—प्रश्नः—लघुतायाः, मूलम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—प्राकृतपुरुषेषु, या, याच्ञा, भवति, सा, एव, लघुताया, मूलमस्ति। प्रश्नः—रामात्, अपि (अधिकः) शूरः, कः, अस्ति? उत्तरम्—यः, स्मरशरनिहतः, सन् न, चलति, सः, रामादपि शूरः अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—लघुता का मूल क्या है? उत्तर—शास्त्रसंस्कार- रहित लोगों से याचना करना ही लघुता का मूल है। प्रश्न—राम से बढ़कर शूर कौन है? उत्तर—जो कामबाणों से पीडित होते हुए भी विचलित नहीं होता है, वही राम से भी अधिक शूर है।। ३२।।

किमहर्निशमनुचिन्त्यं भगवच्चरणं न संसारः।
चक्षुष्मन्तोऽप्यन्धाः के स्यु र्ये नास्तिका मनुजाः।। ३३।।

अन्वय—प्रश्नः—अहर्निशम्, किम्, अनुचिन्त्यम्? उत्तरम्—भगवच्चरणम्, अहर्निशम्, चिन्त्यम्, संसारः, न, चिन्त्य इत्यर्थः। प्रश्नः—चक्षुष्मन्तः, अपि, अन्धाः, के, स्युः? उत्तरम्—ये, नास्तिकाः, मनुजाः, सन्ति, ते, चक्षुष्मन्तः, अपि, अन्धाः, सन्ति।

अर्थ—प्रश्न—रातदिन किसका चिन्तन करना चाहिए? उत्तर—रातदिन भगवान् के चरणों का चिन्तन करना चाहिए, संसार का चिन्तन नहीं करना चाहिए। प्रश्न—आँखों के रहते हुए भी अन्धे कौन हैं। उत्तर—जो नास्तिक हैं, वे आँखों के रहते हुए भी अन्धे ही हैं।। ३३।।

कः पङ्गुरिह प्रथितो व्रजति च यो वार्धके तीर्थम्।
किं तीर्थमपि च मुख्यं चित्तमलं यन्निवर्तयति।। ३४।।

अन्वय—प्रश्नः—इह, प्रथितः, पङ्गुः, कः, अस्ति? उत्तरम्—यः, च वार्धके, तीर्थम्, व्रजति, सः, प्रथितः, पङ्गुः, अस्ति। प्रश्नः—मुख्यम्,

तीर्थम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—यत्, चित्तमलम्, निवर्तयति, तत्, मुख्यम्, तीर्थम्, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—इस संसार में असली लंगड़ा कौन है? उत्तर—जो वृद्धावस्था में तीर्थ-यात्रा करता है, वही असली लंगड़ा है। प्रश्न—मुख्य तीर्थ क्या है? उत्तर—जो चित्त के मल को दूर कर दे, वही मुख्य तीर्थ है।। ३४।।

किं स्मर्तव्यं पुरुषै र्हरिनाम सदा न यावनी भाषा।
को हि न वाच्यः सुधिया परदोषश्चानृतं तद्वत्।। ३५।।

अन्वय—प्रश्नः—पुरुषैः, किम्, स्मर्तव्यम्? उत्तरम्—पुरुषैः, सदा, हरिनाम, स्मर्तव्यम्, यावनीभाषा, न, स्मर्तव्या। प्रश्नः—सुधिया, कः, न (हि) वाच्यः? उत्तरम्—सुधिया, परदोषः, अनृतम्, च, न वाच्यः।

अर्थ—प्रश्न—मनुष्यों को किसका स्मरण करना चाहिए? उत्तर—मनुष्यों को हमेशा भगवन्नाम का स्मरण करना चाहिए, म्लेच्छ भाषा (उर्दू इंगलिश आदि) का स्मरण नहीं करना चाहिए। प्रश्न—बुद्धिमान् को क्या नहीं करना चाहिए? उत्तर—बुद्धिमान् को चाहिए कि वह परदोष व झूठ न बोले।।३५।।

किं सम्पाद्यं मनुजै र्विद्या वित्तं बलं यशः पुण्यम्।
कः सर्वगुणविनाशी लोभः शत्रुश्च कः कामः।। ३६।।

अन्वय—प्रश्नः—मनुजैः, किम्, सम्पाद्यम्? उत्तरम्—मनुजैः, विद्या (सम्पाद्या) वित्तम्, बलम्, यशः, पुण्यम्, च, सम्पाद्यम्। प्रश्नः—सर्वगुणविनाशी कः अस्ति? उत्तरम्—लोभः सर्वगुणविनाशी, अस्ति। प्रश्नः—शत्रुः, च, कः, अस्ति? उत्तरम्—कामः, शत्रुः, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—मनुष्यों को किस वस्तु का सम्पादन करना चाहिए? उत्तर—मनुष्यों को विद्या, धन, बल, यश व पुण्य (धर्म) का सम्पादन करना चाहिए। प्रश्न—सभी गुणों को नाश करने वाला कौन है? उत्तर—लोभ सभी गुणों को नाश करने वाला है। प्रश्न—शत्रु कौन है? उत्तर—काम (कामना, विषयों की इच्छा) ही शत्रु है।। ३६।।

का च सभा परिहार्या हीना या वृद्धसचिवेन।
इह कुत्रावहितः स्यान्मनुजः किल राजसेवायाम्।। ३७।।

अन्वय—प्रश्नः—का, च, सभा, परिहार्या? उत्तरम्—या वृद्धसचिवेन, हीना, भवेत्, सा, सभा, परिहार्या। प्रश्नः—इह, मनुजः, कुत्र, अवहितः, स्यात्? उत्तरम्—मनुजः, राजसेवायाम्, अवहितः स्यात्, किल।

अर्थ—प्रश्न—किस सभा का परिहार करना चाहिए? उत्तर—जिसमें वृद्ध

मन्त्री न हो उस सभा का परिहार (त्याग) करना चाहिए। प्रश्न—इस संसार में मनुष्य को कहाँ सावधान रहना चाहिए? उत्तर—मनुष्य को राजसेवा में हमेशा सावधान रहना चाहिए।। ३७।।

प्राणादपि को रम्यः कुलधर्मः साधुसङ्गश्च।
का संरक्ष्या कीर्तिः पतिव्रता नैजबुद्धिश्च।। ३८।।

अन्वय—प्रश्नः—प्राणात्, अपि, रम्यः, कः, अस्ति? उत्तरम्—कुल-धर्मः, साधुसङ्गः, च, प्राणात्, अपि, रम्यः, अस्ति। प्रश्नः—का, संरक्ष्या? उत्तरम्—कीर्तिः, पतिव्रता (नारी) नैजबुद्धिः, च, संरक्ष्या भवति।

अर्थ—प्रश्न—प्राणों से भी अधिक रमणीय कौन है? उत्तर—कुलधर्म और साधु-सङ्गति प्राणों से भी प्रिय है। प्रश्न—किसकी रक्षा करनी चाहिए? उत्तर—कीर्ति की, पतिव्रता नारी की और अपनी बुद्धि की रक्षा करनी चाहिए।। ३८।।

का कल्पलता लोके सच्छिष्यायार्पिता विद्या।
कोऽक्षयवटवृक्षः स्याद् विधिवत् सत्पात्रदत्तदानं यत्।। ३९।।

अन्वय—प्रश्नः—लोके, कल्पलता, का? उत्तरम्—सच्छिष्याय, अर्पिता, विद्या, एव, कल्पलता, भवति। प्रश्नः—अक्षयवटवृक्षः, कः, स्यात्? उत्तरम्—विधिवत्, सत्पात्रदत्तदानम्, यत् (स एव) अक्षयवटवृक्षः, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—इसी लोक में, कल्पलता इच्छा-पूरी करने वाली स्वर्गस्थ लता कौन है? उत्तर—अच्छे शिष्य को समर्पित विद्या ही कल्पलता है। प्रश्न—अक्षय वटवृक्ष कौन है? उत्तर—जो विधिवत् सत्पात्र में दिया हुआ दान है, वही अक्षय वटवृक्ष है।। ३९।।

किं शस्त्रं सर्वेषां युक्तिर्माता च का धेनुः।
किं नु बलं यद्धैर्यं को मृत्युर्यदवधानरहितत्वम्।। ४०।।

अन्वय—प्रश्नः—सर्वेषाम्, शस्त्रम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—युक्तिः, एव, सर्वेषाम्, शस्त्रम्, अस्ति। प्रश्नः—माता, च, का? उत्तरम्—धेनुः माता, अस्ति। प्रश्नः—किम्, बलम्, नु? उत्तरम्—यत्, धैर्यम्, (तद्) बलम्, अस्ति। प्रश्नः—मृत्युः, कः, अस्ति? उत्तरम्—यत् अव-धानरहितत्वम्, (तद्) मृत्युः, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—सभी का शस्त्र कौन है? उत्तर—युक्ति (विवेकपूर्ण चिन्तन) ही सबका शस्त्र है। प्रश्न—माता कौन है? उत्तर—धेनु (गाय) ही माता है।

प्रश्न—बल क्या है? उत्तर—धैर्य ही बल है। प्रश्न—मृत्यु क्या है? उत्तर—असावधानी ही मृत्यु है।। ४०।।

कुत्र विषं दुष्टजने किमिहाशौचं भवेदृणं नृणाम्।
किमभयमिह वैराग्यं भयमपि किं वित्तमेव सर्वेषाम्।। ४१।।

अन्वय—प्रश्नः—विषम्, कुत्र, तिष्ठति? उत्तरम्—विषम्, दुष्टजने, तिष्ठति। प्रश्नः—इह, अशौचम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—इह नृणाम्, ऋणम्, एव, अशौचम्, भवेत्। प्रश्नः—इह अभयम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—वैराग्यम्, एव, अभयम् अस्ति। प्रश्नः—भयम्, अपि, किम्, अस्ति? उत्तरम्—वित्तम्, एव, सर्वेषाम्, भयम्, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—विष कहाँ रहता है? उत्तर—विष दुर्जन में रहता है। प्रश्न—इस संसार में अशुद्धता क्या है? उत्तर—इस संसार में मनुष्यों के लिए ऋण ही अशुद्धता है। प्रश्न—अभय क्या है? उत्तर—वैराग्य ही अभय है। प्रश्न—फिर भय क्या (चीज़) है? उत्तर—धन ही सबके लिए भय है।। ४१।।

का दुर्लभा नराणां हरिभक्तिः पातकं च किं हिंसा।
को हि भगवत्प्रियः स्याद्योऽन्यं नोद्वेजयेदनुद्विग्नः।। ४२।।

अन्वय—प्रश्नः—नराणाम्, (कृते) दुर्लभा, का? उत्तरम्—नराणाम् (कृते) हरिभक्तिः, दुर्लभा, अस्ति। प्रश्नः—पातकम्, च, किम्, अस्ति? उत्तरम्—हिंसा एव, पातकम्, अस्ति। प्रश्नः—(हि) भगवत्प्रियः, कः, अस्ति? उत्तरम्—यः, (स्वयम्) अनुद्विग्नः, सन्, अन्यम्, न, उद्वेजयेत्, सः, एव, भगवत्प्रियः, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—मनुष्यों के लिए दुर्लभ क्या है? उत्तर—मनुष्यों के लिए हरिभक्ति ही दुर्लभ है। प्रश्न—पाप क्या है? उत्तर—हिंसा ही पाप है। प्रश्न—भगवत्-प्रिय कौन है? उत्तर—जो स्वयं शान्त हो तथा औरों के लिए भी दुःखदायी न हो, वही भगवत्प्रिय है।। ४२।।

कस्मात् सिद्धिस्तपसो बुद्धिः क्व नु भूसुरे कुतो बुद्धिः।
वृद्धोपसेवया के वृद्धा ये धर्मतत्त्वज्ञाः।। ४३।।

अन्वय—प्रश्नः—सिद्धिः, कस्मात्, भवति? उत्तरम्—तपसः, सिद्धिः, भवति। प्रश्नः—बुद्धिः, क्व, नु? उत्तरम्—बुद्धिः, भूसुरे, भवति। प्रश्नः—भूसुरे, कुतः, बुद्धिः, समायाति? उत्तरम्—भूसुरे, बुद्धिः, वृद्धोपसेवया, समायाति। प्रश्नः—वृद्धाः, के, सन्ति? उत्तरम्—ये, धर्मतत्त्वज्ञाः, भवन्ति, ते, वृद्धाः, सन्ति।

अर्थ—प्रश्न—सिद्धि कहाँ से मिलती है? उत्तर—तपस्या से सिद्धि मिलती है। प्रश्न—बुद्धि कहाँ रहती है? उत्तर—ब्राह्मणों में बुद्धि रहती है। प्रश्न—ब्राह्मण के पास कहाँ से आती है बुद्धि? उत्तर—वृद्धों की सेवा से ब्राह्मणों के पास बुद्धि आती है। प्रश्न—वृद्ध कौन हैं? उत्तर—जो धर्म के तत्त्व को जानते हैं, वे ही वृद्ध हैं।। ४३।।

संभावितस्य मरणादधिकं दुर्यशो भवति।

लोके सुखी भवेत् को धनवान् धनमपि च किं यतश्चेष्टम्।। ४४।।

अन्वय—प्रश्नः—संभावितस्य, मरणात्, (अपि,) अधिकम्, (कष्टकरम्) किम् भवति? प्रश्नः—संभावितस्य मरणादपि, अधिकं कष्टकरं दुर्यशः, भवति। उत्तरम्—लोके, कः, सुखी, भवेत्? उत्तरम्—लोके, धनवान्, सुखी, भवेत्। प्रश्नः—धनम्, अपि, किम्, अस्ति? उत्तरम्—यतः, च, इष्टम्, तत्, धनम्, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—सम्मानित पुरुष के लिए मृत्यु से भी अधिक कष्टकारक क्या है? उत्तर—सम्मानित पुरुष का दुर्यश ही मृत्यु से भी अधिक कष्टकारक है। प्रश्न—संसार में सुखी कौन है? उत्तर—संसार में धनवान् ही सुखी है। प्रश्न—धन क्या है? उत्तर—जिससे अपनी अभीष्ट-सिद्धि हो जाय, वही धन है।। ४४।।

सर्वसुखानां बीजं किं पुण्यं दुःखमपि कुतः पापात्।

कस्यैश्वर्यं यः किल शंकरमाराधयेद् भक्त्या।। ४५।।

अन्वय—प्रश्नः—सर्वसुखानाम्, बीजम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—पुण्यम्, एव, सर्वसुखानाम्, बीजम्, अस्ति। प्रश्नः—दुःखम्, अपि कुतः, भवति? उत्तरम्—पापात्, दुःखम्, भवति। प्रश्नः—कस्य, ऐश्वर्यम्, भवति? उत्तरम्—यः, किल, भक्त्या, शंकरम्, आराधयेत्, तस्य, ऐश्वर्यम्, भवति।

अर्थ—प्रश्न—सभी प्रकार के सुखों का मूल क्या है? उत्तर—पुण्य (धर्म) ही सभी प्रकार के सुखों का मूल है। प्रश्न—दुःख कहाँ से आता है? उत्तर—दुःख पाप से आता है। प्रश्न—ऐश्वर्य किसको मिलता है? उत्तर—जो भक्तिपूर्वक भगवान् शंकर की आराधना करता है, उसी को ऐश्वर्य मिलता है।। ४५।।

को वर्धते विनीतः को वा हीयेत यो दृप्तः।

को न प्रत्येतव्यो ब्रूते यश्चानृतं शश्वत्।। ४६।।

अन्वय—प्रश्नः—कः, वर्धते? उत्तरम्—विनीतः, वर्धते। प्रश्नः—कः, (वा) हीयेत? उत्तरम्—यः, दृप्तः, भवति, सः, हीयेत। प्रश्नः—कः,

न, प्रत्येतव्यः? उत्तरम्—यः, शश्वत्, अनृतम्, ब्रूते।

अर्थ—प्रश्न—कौन बढ़ता है? उत्तर—जो विनयी है। प्रश्न—कौन हीन है? उत्तर—जो घमण्डी है, वही हीन है। प्रश्न—किसका विश्वास नहीं करना चाहिए? उत्तर—जो हमेशा झूठ बोलता है।। ४६।।

कुत्रानृतेऽप्यपापं यच्चोक्तं धर्मरक्षार्थम्।
को धर्मोऽभिमतो यः शिष्टानां निजकुलीनानाम्।। ४७।।

अन्वय—प्रश्नः—कुत्र, अनृते, अपापम्, भवति? उत्तरम्—यत्, धर्मरक्षार्थम्, उक्तम्, तत्र, अनृते, पापम्, न, भवति। प्रश्नः—कः, धर्मः, अस्ति? उत्तरम्—यः, निजकुलीनानाम्, शिष्टानाम्, अभिमतम्, भवति।

अर्थ—प्रश्न—कहाँ झूठ बोलने पर भी पाप नहीं होता है? उत्तर—धर्मरक्षा के लिए झूठ बोलने पर भी पाप नहीं होता है। प्रश्न—धर्म किसे कहते हैं? उत्तर—जो कुलीन शिष्टों का अभिमत हो, उसे ही धर्म कहते हैं।। ४७।।

साधुबलं किं दैवं कः साधुः सर्वदा तुष्टः।
दैवं किं यत्सुकृतं कः सुकृती श्लाघ्यते च यः सद्भिः।। ४८।।

अन्वय—प्रश्नः—साधुबलम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—दैवम्, एव, साधुबलम्, अस्ति। प्रश्नः—कः, साधुः, अस्ति? उत्तरम्—यः, सर्वदा तुष्टः, अस्ति, सः, साधुः, अस्ति। प्रश्नः—दैवम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—यत्, सुकृतम्, तत्, दैवम्, उच्यते। प्रश्नः—कः, सुकृती भवति? उत्तरम्—यः, सद्भिः, श्लाघ्यते, च (एव), सः, सुकृती भवति।

अर्थ—प्रश्न—सज्जनों का कौन-सा बल है? उत्तर—दैव (भाग्य) ही एकमात्र सज्जनों का बल है। प्रश्न—सज्जन (साधु) कौन है? उत्तर—जो हमेशा संतुष्ट रहता है, वही साधु है। प्रश्न—दैव (भाग्य) क्या चीज है? उत्तर—सुकृत (पुण्य) या पूर्वजन्म में, अथवा इस जन्म में किया हुआ पुण्य ही दैव (भाग्य) है। प्रश्न—तो फिर सुकृती (पुण्यात्मा) कौन है? उत्तर—जो सज्जनों से प्रशंसित होय, वही सुकृती (पुण्यात्मा) है।। ४८।।

गृहमेधिनश्च मित्रं किं भार्या को गृही च यो यजते।
को यज्ञो यः श्रुत्या विहितः श्रेयस्करो नृणाम्।। ४९।।

अन्वय—प्रश्नः—गृहमेधिनः (च) मित्रम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—गृहमेधिनः, मित्रम्, भार्या, अस्ति। प्रश्नः—कः, गृही, भवति? उत्तरम्—यः, यजते, सः, गृही, भवति। प्रश्नः—कः, यज्ञः, अस्ति? उत्तरम्—

यः, श्रुत्या, विहितः, अस्ति, तथा, नृणाम्, श्रेयस्करः, च, अस्ति, सः, यज्ञः, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—गृहस्थ का मित्र कौन है? उत्तर—भार्या, धर्मपत्नी ही गृहस्थ का मित्र है। प्रश्न—गृहस्थ किसे कहते हैं? उत्तर—जो यज्ञ करता है, उसे गृहस्थ कहते हैं। प्रश्न—यज्ञ किसे कहते हैं? उत्तर—जिसका श्रुति व स्मृति द्वारा विधान किया गया है, साथ ही साथ जिससे मनुष्यों का कल्याण होता है, वही यज्ञ है।। ४६।।

कस्य क्रिया हि सफला यः पुनराचारवाञ्शिष्टः।
कः शिष्टो यो वेदप्रमाणवान् को हतः क्रियाभ्रष्टः।। ५०।।

अन्वय—प्रश्नः—कस्य, क्रिया, सफला? उत्तरम्—यः, आचारवान्, पुनः, शिष्टः (च) भवति, तस्य, क्रिया, सफला, भवति। प्रश्नः—कः, शिष्टः, अस्ति? उत्तरम्—यः, वेदप्रमाणवान्, भवति, सः, शिष्टः, भवति। प्रश्नः—कः, हतः? उत्तरम्—यः, क्रियाभ्रष्टः, अस्ति, सः, हतः, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—किसकी क्रिया (नित्य नैमित्तिक कृत्य) सफल है? उत्तर—जो आचारवान् और शिष्ट है, उसी की ये सब क्रियायें सफल हैं। प्रश्न—शिष्ट कौन है? उत्तर—जो वेद को प्रमाण मानता है, अर्थात् वेद के उपदेशानुसार कार्य करता है, वही शिष्ट है। प्रश्न—कौन नष्ट हुआ? उत्तर—जो (नित्य नैमित्तिकादि) क्रियाओं से भ्रष्ट हुआ, वही नष्ट हुआ।। ५०।।

को धन्यः संन्यासी को मान्यः पण्डितः साधुः।
कः सेव्यो यो दाता को दाता योऽर्थितृप्तिमातनुते।। ५१।।

अन्वय—प्रश्नः—कः, धन्यः, अस्ति? उत्तरम्—संन्यासी, धन्यः, अस्ति। प्रश्नः—कः, मान्यः, अस्ति? उत्तरम्—साधुः, पण्डितः, मान्यः, अस्ति। प्रश्नः—कः, सेव्यः, अस्ति? उत्तरम्—यः, दाता, अस्ति। प्रश्नः—कः, दाता, अस्ति? उत्तरम्—यः, अर्थितृप्तिम्, आतनुते।

अर्थ—प्रश्न—भाग्यशाली कौन है? उत्तर—जो संन्यासी है वही भाग्यशाली है। प्रश्न—मान्य कौन है? उत्तर—जो पण्डित होता हुआ सज्जन है, वही मान्य है। प्रश्न—कौन सेवनीय है? उत्तर—जो दाता (देने वाला) है, वही सेवनीय है। प्रश्न—दाता कौन है? उत्तर—जो प्रार्थी को सन्तुष्ट करे वही दाता है।। ५१।।

किं भाग्यं देहवतामारोग्यं कः फली कृषिकृत्।
कस्य न पापं जपतः कः पूर्णो यः प्रजावान्स्यात्।। ५२।।

अन्वय—प्रश्नः—देहवताम्, भाग्यम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—आरोग्यम्,

एव, देहवताम् भाग्यम्, अस्ति। प्रश्नः—कः, फली, अस्ति? उत्तरम्—कृषिकृत्, फली, अस्ति। प्रश्नः—कस्य, पापम्, न, भवति? उत्तरम्—जपतः, पापम्, न भवति। प्रश्नः—पूर्णः, कः, अस्ति? उत्तरम्—यः, प्रजावन्, स्यात्, सः, पूर्णः, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—शरीरधारियों का भाग्य क्या है? उत्तर—शरीरधारियों का आरोग्य (स्वस्थता) ही भाग्य है। प्रश्न—फलवान् (सफल) कौन है? उत्तर—कृषक (किसान) ही फलवान् (सफल) है। प्रश्न—किसको पाप नहीं लगता है? उत्तर—जो हमेशा भगवान् के नाम का जप करता रहता है, उसे पाप नहीं लगता है। प्रश्न—पूर्ण कौन है? उत्तर—जो प्रजा (सन्तति) वाला है (लौकिक दृष्टि से) वही पूर्ण है।। ५२।।

किं दुष्करं नराणां यन्मनसो निग्रहः सततम्।
को ब्रह्मचर्यवान् स्याद्यश्चास्खलितोर्ध्वरितस्कः।। ५३।।

अन्वय—प्रश्नः—नराणाम्, दुष्करम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—यत्, सततम्, मनसः, निग्रहः, (तत्) नराणाम्, दुष्करम्, अस्ति। प्रश्नः—ब्रह्मचर्यवान्, कः, स्यात्? उत्तरम्—यः, च, अस्खलितोर्ध्वरितस्कः, अस्ति, सः, ब्रह्मचर्यवान्, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—मनुष्यों के लिए सबसे कठिन (कार्य) क्या है? उत्तर—मनुष्यों के लिए निरन्तर मन को वश में रखना ही सबसे कठिन कार्य है। प्रश्न—ब्रह्मचारी कौन है? उत्तर—जिसका वीर्य स्खलित न हो वरन् ऊर्ध्वगमी होकर ओज बने, वह ब्रह्मचारी है।। ५३।।

का च परदेवतोक्ता चिच्छक्तिः को जगद्भर्त्ता।
सूर्यः सर्वेषां को जीवनहेतुः स पर्जन्यः।। ५४।।

अन्वय—प्रश्नः—परदेवता, का उक्ता? उत्तरम्—चिच्छक्तिः, परदेवता, उक्ता। प्रश्नः—कः, जगद्भर्ता, अस्ति? उत्तरम्—सूर्यः जगद्भर्त्ता, अस्ति। प्रश्नः—सर्वेषाम्, जीवनहेतुः, कः, अस्ति? उत्तरम्—पर्जन्यः, सर्वेषाम्, जीवनहेतुः, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—परादेवता किसे कहते हैं? उत्तर—चित् शक्ति को ही परादेवता कहते हैं। प्रश्न—संसार का भरण पोषण करने वाला कौन है? उत्तर—सूर्य ही संसार का भरण-पोषण-कर्त्ता है। प्रश्न— ।बको जीवनदान देने वाला कौन है? उत्तर—मेघ (बादल) ही सबको (वर्षण के द्वारा) जीवनदान देने वाला है।। ५४।।

कः शूरो यो भीतत्राता त्राता च कः स गुरुः।
को हि जगद्गुरुरुक्तः शंम्भुर्ज्ञानं कुतः शिवादेव।। ५५।।

अन्वय—प्रश्नः—शूरः, कः, अस्ति? उत्तरम्— यः, भीतत्राता अस्ति, सः, शूरः, अस्ति। प्रश्नः—त्राता, च, कः, अस्ति? उत्तरम्—गुरुः, एव, सः, त्राता अस्ति। प्रश्नः—जगद्गुरुः, कः, उक्तः? उत्तरम्—शम्भुः, जगद्गुरुः, उक्तः। प्रश्नः—ज्ञानम्, कुतः? उत्तरम्—शिवात्, एव, ज्ञानम्, भवति।

अर्थ—प्रश्न—शूर कौन है? उत्तर—जो भयभीतों की रक्षा करता है। प्रश्न—रक्षक कौन है? उत्तर—गुरु ही रक्षक है? प्रश्न—जगद्गुरु किसे कहा है? उत्तर—भगवान् शंकर को ही जगद्गुरु कहा है। प्रश्न—ज्ञान कहाँ से मिलता है? उत्तर—भगवान् शंकर से ही ज्ञान मिलता है।। ५५।।

मुक्तिं लभेत कस्मान् मुकुन्दभक्ते र्मुकुन्दः कः।
यस्तारयेदविद्यां का चाविद्या यदात्मनोऽस्फूर्तिः।। ५६।।

अन्वय—प्रश्नः—(मनुष्यः) कस्मात्, मुक्तिम्, लभेत? उत्तरम्—मुकुन्दभक्तेः मनुष्यः, मुक्तिम्, लभेत। प्रश्नः—मुकुन्दः, कः, अस्ति? उत्तरम्—यः, अविद्याम्, तारयेत्। प्रश्नः—अविद्या, च का? उत्तरम्—यद् आत्मनः अस्फूर्तिः, भवेत्, (तद्) एव, अविद्या।

अर्थ—प्रश्न—मनुष्य मुक्ति किससे प्राप्त करता है? उत्तर—मुकुन्द (भगवान्) की भक्ति से। प्रश्न—वह मुकुन्द कौन है? उत्तर—जो अविद्या के पार पहुँचा दे, वही मुकुन्द है। प्रश्न—अविद्या क्या है? उत्तर—आत्मा की अस्फूर्ति अविद्या है।। ५६।।

कस्य न शोको यः स्यादक्रोधः किं सुखं तुष्टिः।
को राजा रञ्जनकृत् कश्च श्वा नीचसेवको यः स्यात्।। ५७।।

अन्वय—प्रश्नः—कस्य, शोकः, न भवति? उत्तरम्—यः, अक्रोधः भवति, तस्य शोकः न भवति। प्रश्नः—सुखम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—तुष्टिः, एव, सुखम्, अस्ति। प्रश्नः—राजा कः? उत्तरम्— रञ्जनकृत् एव, राजा अस्ति (यथोक्तं कालिदासेन 'राजा प्रकृतिरञ्जनात्)। प्रश्नः—श्वा, च कः? उत्तरम्—यः, नीचसेवकः, स्यात्, सः, एव, श्वा, स्यात्।

अर्थ—प्रश्न—किसको शोक नहीं होता है? उत्तर—जिसको क्रोध नहीं आता है, उसी को शोक भी नहीं होता है। प्रश्न—सुख क्या है? उत्तर—सन्तोष ही सुख है। प्रश्न – राजा कौन है? उत्तर – जो लोगों के चित्त रंग दे, प्रसन्न कर दे वही राजा है, जैसा कि कालिदास ने भी कहा है—प्रजा का जो रञ्जन

करे वही राजा है। प्रश्न—कुत्ता कौन है? उत्तर—जो नीच का सेवक है, वही कुत्ता है।। ५७।।

को मायी परमेशः क इन्द्रजालायते प्रपञ्चोऽयम्।
कः स्वप्ननिभो जाग्रद्व्यवहारः सत्यमपि च किं ब्रह्म।। ५८।।

अन्वय—प्रश्नः—कः, मायी अस्ति? उत्तरम्—परमेशः, मायी, अस्ति। प्रश्नः—कः, इन्द्रजालायते? उत्तरम्—अयम्, प्रपञ्चः, इन्द्रजालायते। प्रश्नः—कः, स्वप्ननिभः, अस्ति? उत्तरम्—जाग्रद्व्यवहारः, स्वप्ननिभः, अस्ति। प्रश्नः—सत्यम्, अपि, च, किम्, अस्ति? उत्तरम् - ब्रह्म, एव, सत्यम्, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—कौन माया वाला है? अर्थात् यह माया किसकी है? उत्तर—परमेश्वर ही माया वाला है, अर्थात् यह माया परमेश्वर की है। प्रश्न—कौन-सी चीज इन्द्रजाल की तरह मालूम पड़ती है? उत्तर—यह प्रपञ्च, संसार ही इन्द्रजाल की तरह मालूम पड़ता है। प्रश्न—स्वप्न की तरह कौन-सी वस्तु है? उत्तर—यह जाग्रद् व्यवहार ही स्वप्न की तरह मालूम पड़ता है। प्रश्न—सत्य क्या है? उत्तर—ब्रह्म ही सत्य है।। ५८।।

किं मिथ्या यद्विद्यानाश्यं तुच्छं तु शशविषाणादि।
का चानिर्वचनीया माया किं कल्पितं द्वैतम्।। ५९।।

अन्वय—प्रश्नः—मिथ्या किम्? उत्तरम्—यत्, विद्यानाश्यम्, तत्, मिथ्या अस्ति। प्रश्नः—तुच्छम्, तु, किम्? उत्तरम्—शशविषाणादि, तुच्छम्, वस्तु अस्ति। प्रश्नः—अनिर्वचनीया का? उत्तरम्—माया, अनिर्वचनीया अस्ति। प्रश्नः—कल्पितम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्— द्वैतम्, (ब्रह्मणि) कल्पितम्, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—कौन-सी वस्तु मिथ्या है? उत्तर—जो वस्तु विद्या (ज्ञान) के द्वारा नष्ट हो जाती है, वही वस्तु मिथ्या है। प्रश्न—कौन-सी चीज तुच्छ (असत्) है? उत्तर—शशविषाण, वन्ध्यापुत्र, आकाशपुष्प आदि चीजें तुच्छ हैं। प्रश्न— कौन-सी वस्तु अनिर्वचनीय है? उत्तर—माया अनिर्वचनीय है। प्रश्न—(अधिष्ठान चैतन्य में) कल्पित (अध्यस्त) क्या है? उत्तर—यह द्वैत जगत् ही अधिष्ठान चैतन्य में कल्पित है।। ५९।।

किं पारमार्थिकं स्यादद्वैतं चाज्ञता कुतोऽनादि।
वपुषश्च पोषकं किं प्रारब्धं चान्नदायि किं चायुः।। ६०।।

अन्वय—प्रश्नः—पारमार्थिकम्, किम्, स्यात्? उत्तरम्—अद्वैतम्,

पारमार्थिकम्, स्यात्। प्रश्नः—अज्ञता कुतः? उत्तरम्— अनादिकालादियमज्ञता। प्रश्नः—वपुषः, पोषकम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—प्रारब्धम्, अस्ति। अन्नदायि, च, किम्, अस्ति? आयुः, अन्नदायि, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—पारमार्थिक अर्थात् परमार्थ सत् कौन-सी वस्तु है? उत्तर—अद्वैत ही परमार्थ सत् है। प्रश्न—यह अज्ञान कब से है? उत्तर—यह अज्ञान अनादिकाल से है। प्रश्न—शरीर का पोषक कौन है? उत्तर—प्रारब्ध, ईश्वरेच्छा ही शरीर का पोषक है। प्रश्न—अन्नदाता कौन है? उत्तर—आयु अन्नदाता है।। ६०।।

को ब्राह्मणैरुपास्यो गायत्र्यर्काग्निगोचरः शंभुः।
गायत्र्यामादित्ये चाग्नौ शंभौ च किं नु तत्तत्त्वम्।। ६१।।

अन्वय—प्रश्नः—ब्राह्मणैः, कः, उपास्यः? उत्तरम्—ब्राह्मणैः, गायत्र्यर्काग्निगोचरः, शम्भुः, उपास्यः। प्रश्नः—गायत्र्याम्, आदित्ये, अग्नौ, शम्भौ, च, किम्, नु? उत्तरम्—गायत्र्याम्, आदित्ये, अग्नौ, शम्भौ, च तत्, परम्, तत्त्वम्, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—ब्राह्मणों का उपासनीय कौन है? उत्तर—ब्राह्मणों का उपासनीय, गायत्री, सूर्य व अग्नि में रहने वाले भगवान् शंकर हैं। (अथवा गायत्री, सूर्य, अग्नि के रूपों में भगवान् शंकर ब्राह्मणों के उपासनीय हैं)। प्रश्न—गायत्री में, सूर्य में, अग्नि में और भगवान् शंकर में क्या विशेषता है? उत्तर—गायत्री, अग्नि व शंकर में वही परतत्त्व है।। ६१।।

प्रत्यक्षदेवता का माता, पूज्यो गुरुश्च कस्तातः।
कः सर्वदेवतात्मा विद्याकर्मान्वितो विप्रः।। ६२।।

अन्वय—प्रश्नः—प्रत्यक्षदेवता, का? उत्तरम्—माता। प्रश्नः—पूज्यः, गुरुः, च कः। उत्तरम्—तातः। प्रश्नः—सर्वदेवतात्मा कः? उत्तरम्—विद्याकर्मान्वितः, विप्रः, सर्वदेवतात्मा अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—प्रत्यक्ष देवता कौन है? उत्तर—माता ही प्रत्यक्ष देवता है। प्रश्न—पूज्य गुरु कौन है? उत्तर—पिता ही पूज्य गुरु है। प्रश्न—सर्वदेवस्वरूप कौन है? उत्तर—विद्या व ब्रह्मकर्म से युक्त विप्र ही सर्वदेवस्वरूप है।। ६२।।

कश्च कुलक्षयहेतुः सन्तापः सज्जनेषु योऽकारि।
केषाममोघवचनं ये च पुनः सत्यमौनशमशीलाः।। ६३।।

अन्वय—प्रश्नः—कुलक्षयहेतुः, कः? उत्तरम्—सज्जनेषु, यः, सन्तापः, अकारि, सः, कुलक्षयहेतुः अस्ति। प्रश्नः—अमोघवचनम् केषाम्, भवति?

उत्तरम्—ये (च) पुनः सत्यमौनशमशीलाः, सन्ति, तेषाम्, अमोघवचनम्, भवति।

अर्थ—प्रश्न—कुलक्षय का कारण क्या है? उत्तर—सज्जनों को जो सन्ताप दिया जाता है वही कुलक्षय का कारण है। प्रश्न—किनके वचन सफल होते हैं? उत्तर—जो सत्य-परायण, मौनी तथा क्षमाशील होते हैं, उनके ही वचन सफल होते हैं।। ६३।।

किं जन्म विषयसङ्गः किमुत्तरं जन्म पुत्रः स्यात्।
कोऽपरिहार्यो मृत्युः कुत्र पदं विन्यसेच्च दृक्पूते।। ६४।।

अन्वय—प्रश्नः—जन्म, किम्, अस्ति? उत्तरम्—विषयसङ्गः, एव, जन्म, अस्ति। प्रश्नः—उत्तरम्, जन्म, किम्, अस्ति? उत्तरम्—पुत्रः, उत्तरम् जन्म, स्यात्। प्रश्नः—कः, अपरिहार्यः अस्ति? उत्तरम्—मृत्युः, अपरिहार्यः अस्ति। प्रश्नः—कुत्र पदम्, न्यसेत्? उत्तरम्—दृक्पूते (पथि) पदम् न्यसेत्।

अर्थ—प्रश्न—जन्म किसे कहते हैं? उत्तर—विषय के सङ्ग (आसक्ति) को ही जन्म कहते हैं। प्रश्न—जन्म के बाद फिर जन्म क्या है? उत्तर—पुत्र ही बाद का जन्म है। प्रश्न—परिहार किसका नहीं हो सकता? उत्तर—मृत्यु का परिहार नहीं हो सकता। प्रश्न—किस रास्ते से चलना चाहिए? उत्तर—जो रास्ता आँखों से अच्छी तरह देख लिया हो, उसी रास्ते से चलना चाहिए।।६४।।

पात्रं किमन्नदाने क्षुधितं कोऽर्च्यो हि भगवदवतारः।
कश्च भगवान् महेशः शंकरनारायणात्मैकः।। ६५।।

अन्वय—प्रश्नः—अन्नदाने, (अन्नदानविषये, इत्यर्थः) पात्रम्, किम्? उत्तरम्—अन्नदानविषये, क्षुधितम्, एव, पात्रम्, अस्ति। प्रश्नः—कः, अर्च्यः? उत्तरम्—भगवदवतारः, (हि) अर्च्यः, अस्ति। प्रश्नः—भगवान्, कः? उत्तरम्—शंकरनारायणात्मैकः, महेशः, भगवान्, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—अन्नदान का पात्र कौन है? अर्थात् किसे अन्नदान देना चाहिए? उत्तर—क्षुधार्त को, अर्थात् भूखे को अन्नदान देना चाहिए। प्रश्न—अर्चनीय पूजनीय कौन है? उत्तर—भगवान् का अवतार ही पूजनीय है। प्रश्न—भगवान् कौन है? उत्तर—शंकर व नारायण का वास्तविक स्वरूप महान् ईश्वर ही भगवान् हैं।। ६५।।

फलमपि भगवद्भक्तेः किं तल्लोकस्वरूपसाक्षात्त्वम्।
मोक्षश्च को ह्यविद्यास्तमयः कः सर्ववेदभूरथ चोम्।। ६६।।

अन्वय—प्रश्नः—भगवद्भक्तेः, अपि, किम्, फलम्, अस्ति? उत्तरम्—तल्लोकस्वरूपसाक्षात्त्वम्, भगवद्भक्तेः, फलम्, अस्ति। प्रश्नः—मोक्षः (च) कः? उत्तरम्—अविद्यास्तमयः हि (एव) मोक्षः, अस्ति। प्रश्नः—अथ, सर्ववेदभूः, कः? उत्तरम्—ॐ (ओम्) च, सर्ववेदभूः, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—भगवान् की भक्ति का फल क्या है? उत्तर—भगवान् के लोक (वैकुण्ठ या शिवलोक) की प्राप्ति और भगवान् के स्वरूप का साक्षात्कार ही भगवान् की भक्ति का फल है। प्रश्न—मोक्ष किसे कहते हैं? उत्तर—अविद्या, अज्ञानान्धकार का नाश ही मोक्ष है। प्रश्न—सभी वेदों की उत्पत्ति (अभिव्यक्ति) कहाँ से हुई है? उत्तर—ओंकार से ही सभी वेदों की अभिव्यक्ति हुई है।। ६६।।

इत्येषा कण्ठस्था प्रश्नोत्तररत्नमालिका येषाम्।
ते मुक्ताभरणा इव विमलाश्चाभान्ति सत्समाजेषु।। ६७।।

अन्वय—इति, एषा, प्रश्नोत्तररत्नमालिका, येषाम्, कण्ठस्था, (भवति) ते, सत्समाजेषु, विमलाः, मुक्ताभरणाः इव (स्वच्छमौक्तिकहारालंकृता इव, अथवा स्वच्छान्तःकरणत्वात्, मुक्तात्मान इव) आभान्ति।

अर्थ—पूर्वोक्त यह 'प्रश्नोत्तररत्नमालिका' जिन सज्जनों को कण्ठस्थ है, अर्थात् याद है, वे सज्जन साधु समाज में, स्वच्छ मोती के गहनों से सज्जित की तरह, और विशुद्धान्तःकरण वाले मालूम पड़ते हैं।। ६७।।

प्रश्नोत्तरी

अपारसंसारसमुद्रमध्ये सम्मज्जतो मे शरणं किमस्ति।
गुरो कृपालो कृपया वदैतद् विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका।। १।।

अन्वय—प्रश्नः—हे गुरो! हे कृपालो! कृपया एतत्, वद, यत्, अपारसंसारसमुद्रमध्ये, सम्मज्जतः, मे (मम) शरणम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका, एव, शरणम्, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—हे गुरुजी! हे कृपालु जी! कृपया यह तो बतलाईए कि, अपार इस संसार रूपी सागर में डूबते हुए, मेरे लिए शरण, अवलम्बन क्या है? उत्तर—इस अपार संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिए तो परमेश्वर के चरण-कमल रूपी दीर्घ नैय्या ही एकमात्र शरण (अवलम्बन) है।। १।।

बद्धो हि को यो विषयानुरागी का वा विमुक्ति र्विषये विरक्तिः।
को वास्ति घोरो नरकः स्वदेहः तृष्णाक्षयः स्वर्गपदं किमस्ति।। २।।

अन्वय—प्रश्नः—बद्धः, हि, कः? उत्तरम्—यः, विषयानुरागी, अस्ति। प्रश्नः—विमुक्तिः (वा) का? उत्तरम्—विषये विरक्तिः एव, विमुक्तिः अस्ति। प्रश्नः—कः (वा) घोरः, नरकः, अस्ति? उत्तरम्—स्वदेहः, एव, घोरः, नरकः, अस्ति। प्रश्नः—स्वर्गपदम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—तृष्णाक्षयः, एव, स्वर्गपदम्, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—बन्धन में पड़ा हुआ कौन है? उत्तर—जो विषयों से प्रेम करता है, वही बन्धन में पड़ा हुआ है। प्रश्न—मुक्ति क्या है? उत्तर—विषयों से विरक्ति ही मुक्ति है। प्रश्न—घोर नरक क्या है? उत्तर—अपना शरीर ही घोर नरक है। प्रश्न—स्वर्ग क्या है? उत्तर—तृष्णाओं का क्षय ही स्वर्ग है।।२।।

संसारहृत्कः श्रुतिजात्मबोधः को मोक्षहेतुः कथितः स एव।
द्वारं किमेकं नरकस्य नारी का स्वर्गदा प्राणभृतामहिंसा।। ३।।

अन्वय—प्रश्नः—कः, संसारहृत्, अस्ति? उत्तरम्—श्रुतिजात्मबोधः, संसारहृत्, अस्ति। प्रश्नः—मोक्षहेतुः, कः, कथितः? उत्तरम्—सः, श्रुतिजात्मबोधः, एव, मोक्षहेतुः, कथितः। प्रश्नः—नरकस्य, (अनेकेषाम् द्वाराणाम् मध्ये) एकम्, द्वारम्, किम्? उत्तरम्—नारी, एकम्, द्वारम्, अस्ति। प्रश्नः—प्राणभृतां स्वर्गदा का? उत्तरम्—अहिंसा स्वर्गदा अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—इस संसार को दूर करने वाला कौन है? उत्तर—वेदबोधित आत्मज्ञान ही संसार को दूर करने वाला है। प्रश्न—मोक्ष का कारण क्या है? उत्तर—वही, वेदबोधित आत्मज्ञान ही मोक्ष का कारण है। प्रश्न—नरक के जो अनेक द्वार हैं, उनमें से एक द्वार कौन है? अथवा नरक का प्रमुख द्वार कौन है? उत्तर—नारी है। प्रश्न—स्वर्ग देने वाली कौन है? उत्तर—अहिंसा ही स्वर्ग देने वाली है।। ३।।

शेते सुखं कस्तु समाधिनिष्ठो जागर्ति को वा सदसद्विवेकी।
के शत्रवः सन्ति निजेन्द्रियाणि तान्येव मित्राणि जितानि यानि।।४।।

अन्वय—प्रश्नः—कः (तु) सुखम्, शेते? उत्तरम्—समाधिनिष्ठः, सुखम्, शेते। प्रश्नः—कः (वा) जागर्ति? उत्तरम्—सदसद्विवेकी, जागर्ति। प्रश्नः—के शत्रवः सन्ति? उत्तरम्—निजेन्द्रियाणि, शत्रवः, सन्ति। यदि तानि, एव, जितानि, चेत्, मित्राणि सन्ति।

अर्थ—प्रश्न—सुखपूर्वक कौन सोता है? उत्तर—जो समाधि में संलग्न है, अर्थात् जिसका चित्त परमात्मा में समाहित है, वही सुखपूर्वक सोता है, चित्त की एकाग्रता ही सुन्दर नींद है। प्रश्न—जागता कौन है? उत्तर—जो सदसत् का विवेक रखता है। अर्थात् यह नित्य है और यह अनित्य है, इस प्रकार का जिसे ज्ञान है। प्रश्न—शत्रु कौन है? उत्तर—अनुचित विषयों में संलग्न अपनी इन्द्रियाँ ही शत्रु हैं, यदि ये ही जीत ली जाती हैं अर्थात् अपने वश में रहती हैं, तो ये ही मित्र भी हैं।। ४।।

को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णः श्रीमांश्च को यस्य समस्ततोषः।
जीवन्मृतः कस्तु निरुद्यमो यः किं वामृतं स्यात् सुखदा निराशा।। ५।।

अन्वय—प्रश्नः—कः, वा दरिद्रः अस्ति? उत्तरम्—विशालतृष्णः, हि दरिद्रः, अस्ति। प्रश्नः—श्रीमान्, च, कः अस्ति? उत्तरम्—यस्य, समस्ततोषः, अस्ति, सः, श्रीमान् अस्ति। प्रश्नः—जीवन्मृतः तु कः अस्ति? उत्तरम्—यः, निरुद्यमः, सः, जीवन्नेव, मृतोऽस्ति। प्रश्नः—अमृतम्, किम्, स्यात्? उत्तरम्—सुखदा निराशा, एव, अमृतम्, स्यात्।

अर्थ—प्रश्न—दरिद्र कौन है? उत्तर—जिसकी बहुत बड़ी तृष्णा हो, वही दरिद्र है। प्रश्न—श्रीमान् (लक्ष्मीवाला) कौन है? उत्तर—जो सभी तरह से सन्तुष्ट है, वही श्रीमान् है। प्रश्न—जीते-जी मरा हुआ कौन है? उत्तर—जो निरुद्यमी (आलसी) है, वही जीते-जी मरा हुआ है। प्रश्न—अमृत क्या है? उत्तर—सुख देने वाली जो निराशा (आशा-रहितता) है, वही अमृत है।। ५।।

पाशो हि को यो ममताभिमानः सम्मोहयत्येव सुरेव का स्त्री।
को वा महान्धो मदनातुरो यो मृत्युश्च को वापयशः स्वकीयम्।। ६।।

अन्वय—प्रश्नः—हि पाशः कः, अस्ति? उत्तरम्—यः ममताभिमानः अस्ति, सः पाशः अस्ति। प्रश्नः—सुरा, इव, का सम्मोहयति? उत्तरम्—स्त्री, एव सुरा इव सम्मोहयति। प्रश्नः—महान्धः, कः वा अस्ति? उत्तरम्—यः, मदनातुरः, अस्ति, सः, महान्धः, अस्ति। प्रश्नः—मृत्युः च कः अस्ति? उत्तरम्—स्वकीयम्, अपयशः, एव, मृत्युः, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—पाश (बन्धन) क्या है? उत्तर—ममता का अभिमान ही पाश है। प्रश्न—सुरा (शराब) की तरह मोहित करने वाली चीज क्या है? उत्तर—स्त्री ही सुरा की तरह मोहित करने वाली है। प्रश्न—सबसे बड़ा अन्धा कौन है? उत्तर—कामातुर व्यक्ति ही सबसे बड़ा अन्धा है। प्रश्न—मृत्यु क्या है? उत्तर—अपना अपयश ही मृत्यु है।। ६।।

को वा गुरुर्यो हि हितोपदेष्टा शिष्यस्तु को यो गुरुभक्त एव।
को दीर्घरोगो भव एव साधो किमौषधं तस्य विचार एव।। ७।।

अन्वय—प्रश्नः—कः वा गुरुः अस्ति? उत्तरम्—यः हि हितोपदेष्टा, अस्ति, सः, गुरुः अस्ति। प्रश्नः—शिष्यः तु कः? उत्तरम्—यः, गुरुभक्तः अस्ति, सः, एव शिष्यः अस्ति। प्रश्नः—दीर्घरोगः, कः? उत्तरम्—हे साधो! भवः, एव, दीर्घरोगः अस्ति। प्रश्नः—तस्य (भवरोगस्य) औषधम्, किम्? उत्तरम्—तस्य (भवरोगस्य) विचारः, एव, औषधम्, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—गुरु कौन है? उत्तर—जो हित का उपदेश करे, वही गुरु है। प्रश्न—शिष्य कौन है? उत्तर—जो गुरुभक्त होय वही शिष्य है। प्रश्न—दीर्घरोग क्या है? उत्तर—हे साधो! यह संसार ही दीर्घरोग है। प्रश्न—इस संसाररूपी दीर्घरोग की औषधि क्या है? उत्तर—विचार ही इस संसार रूपी दीर्घरोग की औषधि है।। ७।।

किं भूषणाद् भूषणमस्ति शीलं तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धम्।
किमत्र हेयं कनकं च कान्ता श्राव्यं सदा किं गुरुवेदवाक्यम्।। ८।।

अन्वय—प्रश्नः—भूषणात्, अपि, श्रेष्ठम्, भूषणम्, किम् अस्ति? उत्तरम्—शीलम्, भूषणात्, अपि श्रेष्ठम्, भूषणम्, अस्ति। प्रश्नः—परम्, तीर्थम् किम् अस्ति? उत्तरम्—विशुद्धम्, स्वमनः एव, परम् तीर्थम् अस्ति। प्रश्नः—अत्र (मनोविशोधनप्रयासे) हेयम्, किम् अस्ति? उत्तरम्—कनकम्, कान्ता च, हेयम्, अस्ति। प्रश्नः—सदा किम् श्राव्यम्? उत्तरम्—गुरुवेदवाक्यम्, एव, सदा श्राव्यम्।

अर्थ—प्रश्न—सभी भूषणों में श्रेष्ठ भूषण क्या है? उत्तर—शील ही सभी भूषणों में श्रेष्ठ आभूषण है। प्रश्न—तीर्थ क्या है? उत्तर—अपने मन की शुद्धि ही श्रेष्ठ तीर्थ है। प्रश्न—इस संसार में मन शुद्ध करने के प्रयास के दौरान हेय (त्यागने वाली चीज) क्या है? उत्तर—कनक, धन व कामिनी ही विशेषतः हेय है। प्रश्न—हमेशा सुनने योग्य चीज क्या है? उत्तर—गुरु जी के मुखारविन्द से वेद का प्रवचन ही हमेशा सुनने योग्य है।। ८।।

के हेतवो ब्रह्मगतेस्तु सन्ति सत्सङ्गति र्दानविचारतोषाः।
के सन्ति सन्तोऽखिलवीतरागा अपास्तमोहाः शिवतत्त्वनिष्ठाः।। ९।।

अन्वय—प्रश्नः—ब्रह्मगतेः तु हेतवः के सन्ति? उत्तरम्—सत्सङ्गतिर्दान-विचारतोषाः, ब्रह्मगतेः हेतवः सन्ति। प्रश्नः—सन्तः के सन्ति? उत्तरम्—अखिलवीतरागाः, अपास्तमोहाः, शिवतत्त्वनिष्ठाः, (च) सन्तः भवन्ति।

अर्थ—प्रश्न—ब्रह्मज्ञान में अर्थात् ब्रह्मज्ञान के सम्पादन में कौन-कौन से कारण हैं? उत्तर—सत्सङ्गति, दान, विचार और सन्तोष ही ब्रह्मज्ञान में कारण हैं। प्रश्न—सन्त (साधु) कौन हैं? उत्तर—जिनके रागद्वेषादि चित्तमल नष्ट हो चुके हैं, अज्ञानजन्य शोक व मोह जिनके नहीं हैं तथा शिवतत्त्व-परायण हैं, वे ही सन्त (साधु) कहलाते हैं।। ६।।

को वा ज्वरः प्राणभृतां हि चिन्ता मूर्खोऽस्ति को यस्तु विवेकहीनः।
कार्या प्रिया का शिवविष्णुभक्तिः किं जीवनं दोषविवर्जितं यत्।।१०।।

अन्वय—प्रश्नः—प्राणभृताम्, ज्वरः वा कः अस्ति? उत्तरम्—चिन्ता, एव, प्राणभृताम्, ज्वरः अस्ति। प्रश्नः—मूर्खः, कः अस्ति? उत्तरम्—यः तु विवेकहीनः अस्ति सः, मूर्खः अस्ति। प्रश्नः—का प्रिया कार्या? उत्तरम्—शिवविष्णुभक्तिः, एव, प्रिया, कार्या। प्रश्नः—जीवनम्, किम् अस्ति? उत्तरम्—(यत्) दोषविवर्जितम्, जीवनम्, तद्, एव, जीवनम्, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—प्राणियों का ज्वर क्या है? उत्तर—चिन्ता ही प्राणियों के लिए सबसे बड़ा ज्वर है। प्रश्न—मूर्ख कौन है? उत्तर—जो विवेकहीन है अर्थात् जिसमें सत् व असत् का विवेक नहीं है, वही मूर्ख है। प्रश्न—प्रिया कौन है? अर्थात् किस चीज को पसन्द करना चाहिए? उत्तर—शिव अथवा विष्णु की भक्ति को ही पसन्द करना चाहिए। प्रश्न—जीवन कैसा होना चाहिए? उत्तर—जीवन दोष-रहित होना चाहिए।।। १०।।

विद्या हि का ब्रह्मगतिप्रदा या बोधो हि को यस्तु विमुक्तिहेतुः।
को लाभ आत्मावगमो हि यो वै जितं जगत्केन मनो हि येन।। ११।।

अन्वय—प्रश्नः—विद्या हि का? उत्तरम्—या, ब्रह्मगतिप्रदा, सा, विद्या, अस्ति। प्रश्नः—बोधः हि कः? उत्तरम्—यः तु विमुक्तिहेतुः, अस्ति, सः, बोधः अस्ति। प्रश्नः—लाभः, कः? उत्तरम्—यः, हि आत्मावगमः सः, एव लाभः अस्ति। प्रश्नः—जगत् केन् जितम्? उत्तरम्—येन हि मनः, जितम्, तेन वै (एव) जगत् जितम्।

अर्थ—प्रश्न—विद्या कौन है? उत्तर—जो मोक्ष प्रदान करे वही विद्या है। प्रश्न—ज्ञान किसे कहते हैं? उत्तर—जो विमुक्ति का कारण हो, उसी को ज्ञान कहते हैं। प्रश्न—लाभ क्या है? उत्तर—आत्मज्ञान की प्राप्ति ही लाभ है। प्रश्न—संसार को किसने जीता है? उत्तर—जिसने अपना मन जीत लिया है, उसी ने संसार को भी जीता है।। ११।।

शूरान्महाशूरतमोऽस्ति को वा मनोजबाणैर्व्यथितो न यस्तु।
प्राज्ञोऽथ धीरश्च समस्तु को वा प्राप्तो न मोहं ललनाकटाक्षैः।।१२।।

अन्वय–प्रश्नः–शूरात्, महाशूरतमः, कः, वा अस्ति? उत्तरम्–यः तु मनोजबाणैः, न, व्यथितः, अस्ति, सः, एव, शूरात् महाशूरतमः अस्ति। प्रश्नः–अथ (इति प्रश्ने) प्राज्ञः धीरः, समः, च, तु वा कः अस्ति? उत्तरम्–यः, ललनाकटाक्षैः, मोहम्, न, प्राप्तः, सः, एव, प्राज्ञः, धीरः, समश्चास्ति।

अर्थ–प्रश्न–शूरों से भी अधिक शूर कौन है? उत्तर–जो काम के बाणों से व्यथित नहीं होता है, वही सर्वश्रेष्ठ शूर है। प्रश्न–अब बताओ कि बुद्धिमान् धैर्यवान् व समबुद्धि कौन है? उत्तर–जो ललनाओं के कटाक्षों से मोह को नहीं प्राप्त होते हैं, वे ही लोग बुद्धिमान् धैर्यवान् और समबुद्धि हैं।।१२।।

विषाद् विषं किं विषयाः समस्ता दुःखी सदा को विषयानुरागी।
धन्योऽस्ति को यस्तु परोपकारी कः पूजनीयः शिवतत्त्वनिष्ठः।। १३।।

अन्वय–प्रश्नः–विषात्, अपि, भयंकरम्, विषम्, किम् अस्ति? उत्तरम्–समस्ताः, विषयाः, एव, (भयंकरविषसमाः) सन्ति। प्रश्नः–सदा दुःखी कः? उत्तरम्–यः, विषयानुरागी अस्ति, सः, दुःखी अस्ति। प्रश्नः–कः, धन्यः, अस्ति? उत्तरम्–यः तु परोपकारी अस्ति, सः, धन्यः अस्ति। प्रश्नः–कः, पूजनीयः, अस्ति? उत्तरम्–यः, शिवतत्त्वनिष्ठः, अस्ति, सः, पूजनीयः, अस्ति।

अर्थ–प्रश्न–विष से भी अधिक भयंकर विष क्या है? उत्तर–ये समस्त विषय ही विष से भी अधिक भयंकर हैं। प्रश्न–हमेशा दुःखी कौन है? उत्तर–जो विषयानुरागी है, वही हमेशा दुःखी है। प्रश्न–धन्य, भाग्यशाली कौन है? उत्तर–जो परोपकारी है, वही भाग्यशाली है। प्रश्न–पूजनीय कौन है? उत्तर–जो शिवतत्त्व में निष्ठा रखता है, वही पूजनीय है।। १३।।

सर्वास्ववस्थास्वपि किन्न कार्यं किं वा विधेयं विदुषा प्रयत्नात्।
स्नेहं च पापं पठनं च धर्मं संसारमूलं हि किमस्ति चिन्ता।। १४।।

अन्वय–प्रश्नः–सर्वासु, अवस्थासु, अपि, किम्, न कार्यम्? उत्तरम्–स्नेहम्, पापम्, च, सर्वासु, अवस्थासु, अपि, न, कार्यम्। प्रश्नः–विदुषा, प्रयत्नात् किम्, वा विधेयम्? उत्तरम्–विदुषा, प्रयत्नात्, पठनम्, धर्मम्, च, विधेयम्। प्रश्नः–संसारमूलम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्–चिन्ता, (विषयचिन्तेत्यर्थः) संसारमूलम् अस्ति।

अर्थ–प्रश्न–सभी अवस्थाओं में अर्थात् सुख व दुःखादि दशा में भी मनुष्य को क्या नहीं करना चाहिए? उत्तर–किसी भी अवस्था में मनुष्य को विषयों में आसक्ति व पाप नहीं करना चाहिए। प्रश्न–विद्वान् को प्रयत्नपूर्वक क्या करना चाहिए? उत्तर–विद्वान् को प्रयत्नपूर्वक पठन, स्वाध्याय व धर्म करना चाहिए। प्रश्न–संसार का मूल क्या है? उत्तर–सांसारिक विषयों की चिन्ता ही संसार का मूल है।। १४।।

विज्ञान्महाविज्ञतमोऽस्ति को वा नार्या पिशाच्या न च वञ्चितो यः।
का शृङ्खला प्राणभृतां हि नारी दिव्यं व्रतं किं च समस्तदैन्यम्।।१५।।

अन्वय–प्रश्नः–विज्ञात् महाविज्ञतमः, कः वा अस्ति? उत्तरम्–यः, पिशाच्या, नार्या, न च वञ्चितः अस्ति। प्रश्नः–प्राणभृताम् हि शृङ्खला का? उत्तरम्–नारी, एव, प्राणभृताम्, शृङ्खला, अस्ति। प्रश्नः–दिव्यम्, व्रतम्, किम् च अस्ति? उत्तरम्–समस्तदैन्यम्, दिव्यम्, व्रतम् अस्ति।

अर्थ–प्रश्न–बुद्धिमानों में भी श्रेष्ठ कौन है? उत्तर–जो पिशाचरूपा नारी से न ठगा गया हो। प्रश्न–प्राणियों की बन्धन की बेड़ी क्या है? उत्तर– नारी ही प्राणियों की बन्धन की बेड़ी है। प्रश्न–दिव्य व्रत कौन है? उत्तर– सभी प्रकार की जो दीनता है अर्थात् सर्वसामग्री-हीनता अर्थात् अपना सर्वोपाधिरहित स्वरूप स्मरण रखना ही दिव्य व्रत है।। १५।।

ज्ञातुं न शक्यं च किमस्ति सर्वै र्योषिन्मनो यच्चरितं तदीयम्।
का दुस्त्यजा सर्वजनैर्दुराशा विद्याविहीनः पशुरस्ति को वा।। १६।।

अन्वय–प्रश्नः–सर्वैः, न, ज्ञातुम्, शक्यम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्–योषिन्मनः, सर्वैः, ज्ञातुम्, न शक्यम्, तदीयम्, यत्, चरितम्, अस्ति तदपि, सर्वैः, न, ज्ञातुम्, शक्यम्। प्रश्नः–सर्वजनैः, दुस्त्यजा, का? उत्तरम्–दुराशा, एव, सर्वजनैः, दुस्त्यजा, वर्तते। प्रश्नः–पशुः, वा कः? उत्तरम्–विद्याविहीनः, पशुः अस्ति।

अर्थ–प्रश्न–सब न जान सकें ऐसी चीज क्या है? उत्तर–स्त्री का मन और उसका जो चरित है, वह सभी जान नहीं सकते हैं। प्रश्न–सभी न छोड़ सकें ऐसी चीज क्या है? उत्तर–दुराशा अर्थात् सांसारिक विषयों के उपभोग विषयिणी दुराशा ही सबसे नहीं छोड़ी जाती है। प्रश्न–पशु कौन है? उत्तर–जो विद्या से हीन है।। १६।।

वासो न सङ्गः सह कैर्विधेयो मूर्खैश्च नीचैश्च खलैश्च पापैः।
मुमुक्षुणा किं त्वरितं विधेयं सत्सङ्गतिर्निर्ममतेशभक्तिः।। १७।।

अन्वय—प्रश्नः—कैः, सह, वासः, सङ्गः (च) न, विधेयः? उत्तरम्—मूर्खैः, नीचैः, खलैः, पापैः, च, सह, वासः, सङ्गः, च, न विधेयः। प्रश्नः—मुमुक्षुणा, त्वरितम्, किम् विधेयम्? उत्तरम्—मुमुक्षुणा, त्वरितम्, सत्सङ्गतिः, निर्ममता, ईशभक्तिः, च, विधेया।

अर्थ—प्रश्न—किसके साथ निवास व सङ्गति नहीं करनी चाहिए? उत्तर—मूर्ख, नीच, दुष्ट व पापी इनके साथ न तो निवास करना चाहिए, ना ही सङ्गति, दोस्ती करनी चाहिए। प्रश्न—मुमुक्षु को जल्दी ही क्या करना चाहिए? उत्तर—मुमुक्षु को जल्दी ही सत्सङ्गति, निर्ममता व ईश्वर-भक्ति कर लेनी चाहिए।। १७।।

लघुत्वमूलं च किमर्थितैव गुरुत्वमूलं यदयाचनं च।
जातो हि को यस्य पुनर्न जन्म को वा मृतो यस्य पुनर्न मृत्युः।।१८।।

अन्वय—प्रश्नः—लघुत्वमूलम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—अर्थिता, एव, लघुत्वमूलम्, अस्ति। प्रश्नः—गुरुत्वमूलम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—यत्, अयाचनम्, (तद्) च (=एव), गुरुत्वमूलम् अस्ति। प्रश्नः—कः जातः? उत्तरम्—यस्य, पुनर्न, जन्म, सः, एव, जातः (प्रशस्तजन्मेत्यर्थः)। प्रश्नः—कः (वा) मृतः? उत्तरम्—यस्य पुनः, मृत्युः, न, सः, एव, मृतः (संसारान्मुक्तइत्यर्थः)।

अर्थ—प्रश्न—लघुता का मूल क्या है? उत्तर—याचना ही लघुता का मूल है। प्रश्न—गुरुता, श्रेष्ठता का मूल क्या है? उत्तर—किसी से याचना न करना ही गुरुता का मूल है। प्रश्न—कौन उत्पन्न हुआ? उत्तर—जिसकी फिर दुबारा उत्पत्ति न हो, उसी का उत्पन्न होना श्रेष्ठ है। प्रश्न—मृत कौन है? उत्तर—जिसकी फिर दुबारा इस संसार में मृत्यु न हो, अर्थात् जो 'मुक्त' संसार के बन्धन से छूट गया हो, वही मृत है।। १८।।

मूकोऽस्ति को वा बधिरोऽस्ति को वा वक्तुं न युक्तं समये समर्थः।
तथ्यं सुपथ्यं न शृणोति वाक्यं विश्वासपात्रं न किमस्ति नारी।।१९।।

अन्वय—प्रश्नः—मूकः, कः, अस्ति? उत्तरम्—यः, समये युक्तम्, वक्तुम्, न, समर्थः अस्ति सः मूकः, अस्ति। प्रश्नः—बधिरः, वा कः अस्ति? उत्तरम्—यः, तथ्यम्, सुपथ्यम्, च वाक्यम्, न, शृणोति सः, बधिरः, अस्ति। प्रश्नः—विश्वासपात्रम्, किम्, न, अस्ति? उत्तरम्—नारी, विश्वासपात्रम्, नास्ति।

अर्थ—प्रश्न—मूक (गूँगा) कौन है? उत्तर—जो समय पर यथोचित वाक्य

नहीं बोल सकता है। प्रश्न—बहिरा कौन है? उत्तर—जो सत्य व पथ्य (हितकर) वाक्य नहीं सुनता है। प्रश्न—विश्वासपात्र कौन नहीं है? उत्तर—नारी विश्वासपात्र नहीं है।। १६।।

तत्त्वं किमेकं शिवमद्वितीयं किमुत्तमं सच्चरितं यदस्ति।
त्याज्यं सुखं किं स्त्रियमेव सम्यग् देयं परं किं त्वभयं सदैव।। २०।।

अन्वय—प्रश्नः—एकम्, तत्त्वम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—अद्वितीयम्, शिवम्, एव, एकम्, तत्त्वम्, अस्ति। प्रश्नः—उत्तमम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—यत्, सच्चरितम्, अस्ति, तत्, एव, उत्तमम्, (वस्तु) अस्ति। प्रश्नः—त्याज्यम्, सुखम्, किम् अस्ति? उत्तरम्—स्त्रियम्, सुखम्, एव, त्याज्यम्, अस्ति। प्रश्नः—सम्यक्, परम्, देयम् किम्, अस्ति? उत्तरम्—अभयम्, एव, सदा, सम्यक्, परम्, देयम्, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—एक (मुख्य, परमार्थ) तत्त्व क्या है? उत्तर—अद्वितीय शिव ही एकमात्र परमार्थ तत्त्व है। प्रश्न—उत्तम वस्तु क्या है? उत्तर—अपना जो सच्चरित है, वही उत्तम वस्तु है। प्रश्न—त्याज्य सुख क्या है? उत्तर—स्त्री विषयक सुख ही त्याज्य है। प्रश्न—दान के योग्य सुन्दर व श्रेष्ठ वस्तु क्या है? उत्तर—सर्वदा अभयदान ही देय वस्तु है।। २०।।

शत्रोर्महाशत्रुतमोऽस्ति को वा कामः सकोपानृतलोभतृष्णः।
न पूर्यते को विषयैः स एव किं दुःखमूलं ममताभिधानम्।। २१।।

अन्वय—प्रश्नः—शत्रोः, महाशत्रुतमः, कः, अस्ति? उत्तरम्—सकोपानृतलोभतृष्णः, कामः, शत्रोरपि महाशत्रुतमोऽस्ति। प्रश्नः—विषयैः, कः, न पूर्यते? उत्तरम्—सः, एव, कामः विषयैरपि न पूर्यते। प्रश्नः—दुःखमूलम् किम् अस्ति? उत्तरम्—ममताभिधानम्, दुःखमूलम्, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—शत्रु से घोर शत्रु कौन है? उत्तर—क्रोध, असत्य, लोभ व तृष्णा सहित (इन्हें साथ में लिया हुआ) काम ही घोर शत्रु है। प्रश्न—विषयों से किसकी पूर्ति नहीं होती है? उत्तर—विषयों से काम की पूर्ति नहीं होती है। प्रश्न—दुःख का मूल क्या है? उत्तर—किसी भी वस्तु में ममत्व रखना ही दुःख का मूल है।। २१।।

किं मण्डनं साक्षरता मुखस्य सत्यं च किं भूतहितं सदैव।
किं कर्म कृत्वा न हि शोचनीयं कामारिकंसारिसमर्चनाख्यम्।। २२।

अन्वय—प्रश्नः—मुखस्य, मण्डनम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—साक्षरता,

एव, मुखस्य, मण्डनम्, अस्ति। प्रश्नः—सत्यम्, च, किम्, अस्ति? उत्तरम्—सदा, एव, भूतहितम्, सत्यम्, अस्ति। प्रश्नः—किम्, कर्म, कृत्वा, शोचनीयम्, नहि भवति? उत्तरम्—कामारिकंसारिसमर्चनाख्यम्, कर्म, कृत्वा, शोचनीयम्, न हि भवति।

अर्थ—प्रश्न—मुख की शोभा क्या है? उत्तर—साक्षरता, अर्थात् स्वच्छ व सुन्दर वाणी ही मुख की शोभा है। प्रश्न—सत्य क्या है? उत्तर—सर्वदा प्राणिमात्र का जिससे हित हो वही सत्य है। प्रश्न—किस काम को करके शोक नहीं होता है। उत्तर—भगवान् शंकर व भगवान् विष्णु की पूजा कर्म करके आगे शोक नहीं होता है।। २२।।

कस्यास्ति नाशे मनसो हि मोक्षः क्व सर्वथा नास्ति भयं विमुक्तौ।
शल्यं परं किं निजमूर्खतैव के के ह्युपास्या गुरुदेववृद्धाः।। २३।।

अन्वय—प्रश्नः—कस्य, नाशे, हि मोक्षः अस्ति? उत्तरम्—मनसः, नाशे, मोक्षः अस्ति। प्रश्नः—भयम्, सर्वथा, क्व नास्ति? उत्तरम्—विमुक्तौ, सर्वथा भयम्, नास्ति। प्रश्नः—परम्, शल्यम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—निजमूर्खतैव, परम्, शल्यम्, अस्ति। प्रश्नः—के के उपास्याः? उत्तरम्—गुरुदेववृद्धाः हि उपास्याः सन्ति।

अर्थ—प्रश्न—किसके नाश होने पर मोक्ष होता है? उत्तर—मन के नाश होने पर मोक्ष होता है। प्रश्न—सर्वथा निर्भय स्थान कहाँ है? उत्तर—विमुक्ति (मोक्ष स्थान) ही सर्वथा निर्भय स्थान है। प्रश्न—सबसे बड़ा दुःख क्या है? उत्तर—अपनी मूर्खता ही सबसे बड़ा दुःख है। प्रश्न—किनकी उपासना करनी चाहिए? उत्तर—गुरु, देव व वृद्धों की उपासना करनी चाहिए।। २३।।

उपस्थिते प्राणहरे कृतान्ते किमाशु कार्यं सुधिया प्रयत्नात्।
वाक्कायचित्तैः सुखदं यमघ्नं मुरारिपादाम्बुजचिन्तनं च।। २४।।

अन्वय—प्रश्नः—प्राणहरे, कृतान्ते, उपस्थिते, सति, सुधिया, प्रयत्नात्, आशु, किम्, कार्यम् (विधेयमित्यर्थः)? उत्तरम्—तत्र सुधिया, प्रयत्नात्, वाक्कायचित्तैः, सुखदम्, यमघ्नम्, मुरारिपादाम्बुजचिन्तनम्, (च) कार्यम्।

अर्थ—प्रश्न—प्राणों को हरण करने वाले यमराज के उपस्थित होने पर, बुद्धिमान् को प्रयत्नपूर्वक जल्दी क्या करना चाहिए? उत्तर—उस समय बुद्धिमान् को जल्दी ही प्रयत्नपूर्वक, वाणी, शरीर व चित्त से सुख देने वाले तथा यमराज को दूर भगाने वाले भगवान् विष्णु के चरणकमलों का चिन्तन करना चाहिए।। २४।।

के दस्यवः सन्ति कुवासनाख्याः कः शोभते यः सदसि प्रविद्यः।
मातेव का या सुखदा सुविद्या किमेधते दानवशात् सुविद्या।। २५।।

अन्वय—प्रश्नः—दस्यवः, के सन्ति? उत्तरम्—कुवासनाख्याः, दस्यवः, सन्ति। प्रश्नः—सदसि कः शोभते? उत्तरम्—यः, प्रविद्यः। प्रश्नः—माता, इव सुखदा का अस्ति? उत्तरम्—सुविद्या, माता, इव, सुखदा अस्ति। प्रश्नः—दानवशात्, किम् एधते? उत्तरम्—सुविद्या, दानवशात्, एधते।

अर्थ—प्रश्न—डाकू कौन है? उत्तर—कुवासनायें ही डाकू हैं। प्रश्न—कौन सुशोभित होता है? उत्तर—जो सभा में अच्छा वक्ता हो वही सुशोभित होता है। प्रश्न—माता की तरह सुख देने वाली कौन है? उत्तर—सुविद्या माता की तरह सुख देने वाली है। प्रश्न—दान करने से कौन-सी चीज बढ़ती है? उत्तर—दान करने से सुविद्या बढ़ती है।। २५।।

कुतो हि भीतिः सततं विधेया लोकापवादाद् भवकाननाच्च।
को वातिबन्धुः पितरश्च के वा विपत्सहायाः परिपालका ये।। २६।।

अन्वय—प्रश्नः—हि, सततम्, भीतिः, कुतः, विधेया? उत्तरम्—लोकापवादात्, भवकाननात्, च, सततम्, भीतिः, विधेया। प्रश्नः—अतिबन्धुः वा कः अस्ति? उत्तरम्—यः, विपत्सहायः, अस्ति, सः, अतिबन्धुः, अस्ति। प्रश्नः—पितरः, वा के सन्ति? उत्तरम्—ये परिपालकाः, सन्ति, ते पितरः, सन्ति।

अर्थ—प्रश्न—हमेशा भय किससे करना चाहिए? उत्तर—लोकापवाद तथा संसाररूपी वन से, हमेशा भयभीत होना चाहिए। प्रश्न—प्रियबन्धु कौन है? उत्तर—जो विपत्ति में सहायक होय, वही प्रियबन्धु है। प्रश्न—पितर (पिता) कौन है? उत्तर—जो पालन पोषण कर दें वे ही पितर हैं।। २६।।

बुद्ध्वा न बोध्यं परिशिष्यते किं शिवप्रसादं सुखबोधरूपम्।
ज्ञाते तु कस्मिन् विदितं जगत्स्यात्सर्वात्मके ब्रह्मणि पूर्णरूपे।। २७।।

अन्वय—प्रश्नः—किम्, बुद्ध्वा, बोध्यम्, न, परिशिष्यते? उत्तरम्—सुखबोधरूपम्, शिवप्रसादम्, बुद्ध्वा (किमपि) बोध्यम्, न, परिशिष्यते। प्रश्नः—कस्मिन् ज्ञाते, तु, जगत्, विदितम्, स्यात्? उत्तरम्—सर्वात्मके, पूर्णरूपे, ब्रह्मणि, ज्ञाते, तु, सर्वम्, जगत् विदितम्, स्यात्।

अर्थ—प्रश्न—किस वस्तु को जानकर आगे कुछ जानना अवशिष्ट (शेष) नहीं रह जाता है? उत्तर—भगवान् शंकर के सुख व ज्ञानरूप प्रसाद (अनुग्रह)

को जानकर फिर कोई ज्ञातव्य वस्तु शेष नहीं रह जाती है। प्रश्न—किस वस्तु के ज्ञान होने पर यह सारा संसार जाना जाता है। उत्तर—सर्वात्मक, पूर्णरूप परब्रह्म के ज्ञान से यह सारा संसार ज्ञात हो जाता है।। २७।।

किं दुर्लभं सद्गुरुरस्ति लोके सत्सङ्गति ब्रह्मविचारणा च।
त्यागो हि सर्वस्य शिवात्मबोधः को दुर्जयः सर्वजनैर्मनोजः।। २८।।

अन्वय—प्रश्नः—लोके, दुर्लभम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—लोके, सद्गुरुः, दुर्लभः, अस्ति, सत्सङ्गतिः, ब्रह्मविचारणा, च, दुर्लभा, सर्वस्य त्यागः, शिवात्मबोधः, च, दुर्लभः, अस्ति। प्रश्नः—सर्वजनैः, दुर्जयः, कः अस्ति? उत्तरम्—मनोजः, सर्वजनैः, दुर्जयः, अस्ति।

अर्थ—प्रश्न—संसार में दुर्लभ वस्तु क्या है? उत्तर—संसार में (दुर्लभ वस्तु) सद्गुरु, सत्सङ्गति, ब्रह्मविचार, सर्वस्व-त्याग, शिवस्वरूपज्ञान, ये सब दुर्लभ हैं। प्रश्न—सभी जनों से दुर्जय कौन है? काम ही सभी जनों से दुर्जय है।।२८।।

पशोः पशुः को न करोति धर्मं प्राधीतशास्त्रोऽपि न चात्मबोधः।
किन्तद्विषं भाति सुधोपमं स्त्री के शत्रवो मित्रवदात्मजाद्याः।। २९।।

अन्वय—प्रश्नः—पशोः, पशुः, कः, अस्ति? उत्तरम्—यः, प्राधीतशास्त्रः, अपि, धर्मम्, न, करोति तथा, प्राधीतशास्त्रस्यापि यस्य न चात्मबोधः अस्ति, सः, पशोरपि पशुरस्तीत्यर्थः। प्रश्नः—तत्, विषम्, किम्, अस्ति यत्, सुधोपमम्, भाति? उत्तरम्—तादृशम्, विषम्, स्त्री एव अस्ति। प्रश्नः—मित्रवत् शत्रवः, के, सन्ति? उत्तरम्—मित्रवत्, शत्रवः, आत्मजाद्याः, सन्ति।

अर्थ—प्रश्न—पशु से भी बदतर पशु कौन है? उत्तर—जो शास्त्र पढ़कर भी धर्म का आचरण नहीं करता है, और शास्त्राभ्यास करते हुए भी आत्मज्ञान की ओर ध्यान नहीं देता, वही पशु से भी बदतर पशु है। प्रश्न—ऐसा विष कौन-सा है, जो पहिले अमृत की तरह मालूम पड़े? उत्तर—स्त्री ही ऐसा विष है, जो आपाततः (प्रारम्भ में) अमृत की तरह मालूम पड़ता है। प्रश्न—शत्रु कौन है? उत्तर—मित्रों की तरह अपने पुत्र कलत्रादि ही शत्रु हैं।।२९।।

विद्युच्चलं किं धनयौवनायु र्दानं परं किञ्च सुपात्रदत्तम्।
कण्ठङ्गतैरप्यसुभि र्न कार्यं किं किं विधेयं मलिनं शिवार्चा।। ३०।।

अन्वय—प्रश्नः—विद्युच्चलम्, किम्, अस्ति? उत्तरम्—धनयौवनायुः, विद्युच्चलम्, अस्ति। प्रश्नः—परम्, दानम्, च किम्, अस्ति? उत्तरम्—

यत् सुपात्रदत्तम्, अस्ति, तदेव परम्, दानम्, अस्ति। प्रश्नः—असुभिः, कण्ठङ्गतैः, अपि, किम्, न कार्यम्? उत्तरम्—मलिनम्, कर्म न, विधेयम्। प्रश्नः—किम्, विधेयम्? उत्तरम्—शिवार्चा, विधेया।

अर्थ—प्रश्न—बिजली के समान चञ्चल क्या है? उत्तर—धन, यौवन व आयु—ये सब बिजली के समान चञ्चल हैं। प्रश्न—श्रेष्ठ दान क्या है? उत्तर—जो सुपात्र में दिया हो वही श्रेष्ठ दान है। प्रश्न—प्राणों के कण्ठ पर्यन्त आ जाने पर भी, अर्थात् मृत्यु के नजदीक आने पर भी, क्या नहीं करना चाहिए? उत्तर—पाप कर्म नहीं करना चाहिए। प्रश्न—प्राण छूटने की आपत्ति आने के बावजूद क्या करना चाहिए? उत्तर—भगवान् शंकर की पूजा करनी चाहिए।। ३०।।

अहर्निशं किं परिचिन्तनीयं संसारमिथ्यात्वशिवात्मतत्त्वम्।
किं कर्म यत् प्रीतिकरं मुरारेः क्वास्था न कार्या सततं भवाब्धौ।।३१।।

अन्वय—प्रश्नः—किम्, अहर्निशम्, परिचिन्तनीयम्? उत्तरम्—अहर्निशम्, संसारमिथ्यात्वशिवात्मतत्त्वम्, एव, परिचिन्तनीयम्। प्रश्नः—किम्, कर्म? (कीदृशं कर्म कार्यमित्यर्थः)। उत्तरम्—यत्, मुरारेः, प्रीतिकरम्, भवेत्, तदेव, कर्म, तदेव कार्यम्। प्रश्नः—क्व आस्था, सततम्, न, कार्या? उत्तरम्—भवाब्धौ, सततम्, आस्था, न कार्या।

अर्थ—प्रश्न—रात-दिन किसका चिन्तन करना चाहिए? उत्तर—दिन-रात संसार के मिथ्यात्व का तथा शिवात्मतत्त्व का परिचिन्तन करना चाहिए। प्रश्न—श्रेष्ठ कर्म क्या है? उत्तर—भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाला कर्म ही श्रेष्ठ कर्म है। प्रश्न—कहाँ आस्था नहीं करनी चाहिए? उत्तर—संसार-सागर में कभी भी आस्था नहीं करनी चाहिए।। ३१।।

कण्ठङ्गता वा श्रवणङ्गता वा प्रश्नोत्तराख्या मणिरत्नमाला।
तनोतु मोदं विदुषां सुरम्यं रमेशगौरीशकथेव सद्यः।। ३२।।

अन्वय—इयम्, प्रश्नोत्तराख्या, मणिरत्नमाला, कण्ठङ्गता, वा, श्रवणङ्गता, वा रमेशगौरीशकथा, इव, सद्यः, विदुषाम्, सुरम्यम्, मोदम्, तनोतु।

अर्थ—यह प्रश्नोत्तरी नामक मणिमाला, चाहे कण्ठ की शोभा बढ़ाये अथवा श्रवण की शोभा बढ़ाये, अर्थात् चाहे इसे कण्ठ कर लो या सुन लो, इतने से ही भगवान् विष्णु तथा भगवान् शंकर की कथा की तरह तत्काल ही विद्वानों को अतीव आनन्द प्रदान करती है।। ३२।।

प्रौढानुभूतिः

प्रौढप्रौढनिजानुभूतिगलितद्वैतेन्द्रजालो गुरु-
र्गूढं गूढमघौघदुष्टकुधियां स्पष्टं सुधीशालिनाम्।
स्वान्ते सम्यगिहानुभूतमपि सच्छिष्यावबोधाय तत्
सत्यं संस्मृतवान् समस्तजगतां नैजं निजालोकनात्।। १।।

अन्वय—प्रौढप्रौढनिजानुभूतिगलितद्वैतेन्द्रजालः, समस्तजगताम्, गुरुः, (यत्) अघौघदुष्टकुधियाम्, गूढम्, गूढम्, भवति, सुधीशालिनाम्, स्पष्टम्, भवति, तत्, इह, निजालोकनात्, नैजम्, सत्यम्, स्वान्ते, अनुभूतम्, अपि, सच्छिष्यावबोधाय, तत्, सत्यम्, (पुनः) संस्मृतवान्।

अर्थ—प्रबल पापों के बोझ से जिनकी बुद्धि दब चुकी है, अत एव ऐसे मन्दमतियों के लिए जो तत्त्व अत्यन्त गुप्त ही रहता है, और सात्त्विक विचारों से स्वच्छ बुद्धिवालों के लिए जो तत्त्व अधिक स्पष्ट हो जाता है, उसी प्रत्यग्रूप सत्य तत्त्व का निजात्मदर्शन के द्वारा अपने भीतर भलीभाँति अनुभव कर सुयोग्य शिष्यों को समझाने के लिये ऐसे जगद्गुरु ने स्मरण किया जिसने अत्यन्त पुष्ट आत्मानुभव से द्वैतरूप इन्द्रजाल को समाप्त कर लिया है।। १।।

द्वैतं मय्यखिलं समुत्थितमिदं मिथ्या मनःकल्पितं
तोयं तोयविवर्जिते मरुतले भ्रान्त्यैव सिद्धं न हि।
यद्येवं खलु दृश्यमेतदखिलं नाहं न वा तन्मम
प्रौढानन्दचिदेकसन्मयवपुः शुद्धोऽस्म्यखण्डोऽस्म्यहम्।। २।।

अन्वय—तोयविवर्जिते तोयम् (इव) इदम् अखिलं मनःकल्पितं द्वैतं भ्रान्त्या एव समुत्थितं, न हि सिद्धम्। यदि खलु एवं (तदा) एतद् अखिलं दृश्यम् अहं न, तत् मम वा न। अहं प्रौढानन्दचिदेकसन्मयवपुः शुद्धः अस्मि अखण्डः अस्मि।

अर्थ—मेरे में (चैतन्यरूप अधिष्ठान में) मन के द्वारा कल्पित, दिखलाई देने वाला यह सारा जगत् मिथ्या है, केवल प्रतीतिमात्र है। जैसे जल से रहित मरुस्थल में दूर से चमकती हुई बालुकाओं में जल का भ्रम होता है, समीप में आने से वह जल सत्य जल न होकर बालुकामय ही दिखाई देता है, जल की तो वहाँ दूर से केवल प्रतीति ही हो रही थी, वही हाल इस संसार का है,

आपाततः इसकी भी मरुमरीचि में जल की तरह प्रतीति है, न कि इसकी अपनी कोई वास्तविकता। जब इस संसार की इस प्रकार की क्षणभङ्गुरता तथा मायामयता है, तब यह संसार मैं (आत्मा) नहीं है, न मेरा इससे कोई सम्बन्ध ही है, मैं (आत्मा) तो पूर्णानन्द चिन्मय सत्स्वरूप, शुद्ध, एक अखण्ड हूँ।। २।।

देहो नाहमचेतनोऽयमनिशं कुड्यादिवन्निश्चितो
नाहं प्राणमयोऽपि वा दृतिधृतो वायु र्यथा निश्चितः।
सोऽहं नाऽपि मनोमयः कपिचलः कार्पण्यदुष्टो न वा
बुद्धि र्बुद्धकुवृत्तिकेव कुहना नाज्ञनमन्धंतमः।। ३।।

अन्वय–अहम्, देहः, न, यतो हि, अयम्, देहः, अनिशम्, कुड्यादिवत्, अचेतनः, निश्चितः, अस्ति, यथा दृतिधृतः वायुः अहं न (इति) निश्चितः (तथा) प्राणमयः अपि अहं वा न। अहम्, कार्पण्यदुष्टः, कपिचलः, सः, मनोमयः, (कोशः) अपि, न। अन्यच्च, बुद्धकुवृत्तिका, कुहना, इव, बुद्धिः, वा (=अपि) न, तथा, च, अन्धन्तमः (अज्ञानम्) अपि, अहम्, न।

अर्थ–मैं (आत्मा) देह नहीं हूँ, क्योंकि देह, हमेशा दीवार की तरह अचेतन ही रहता है, यह निश्चित है। भस्त्रा (चमड़े की थैली) में भरा हुआ वायु जैसे निश्चित अचेतन है, उसी प्रकार अचेतन प्राण (प्राणमयकोश) भी मैं नहीं हूँ। कृपणता से दुष्ट, बन्दर की तरह चञ्चल मन (मनोमय कोश) भी मैं नहीं हूँ। बुद्ध की कुत्सित कल्पना से युक्त, मायारूप जो बुद्धि है, या विज्ञानमय कोश है, वह भी मैं नहीं हूँ (बौद्ध दर्शन में बुद्धिविज्ञान को ही आत्मा माना है)। घोर अन्धकार रूप अज्ञान भी मैं नहीं हूँ।। ३।।

नाहं खादिरपि स्फुटं मरुतलभ्राजत्पयःसाम्यत-
स्तेभ्यो नित्यविलक्षणोऽखिलदृशिः सौरप्रकाशो यथा।
दृश्यैः सङ्गविवर्जितो गगनवत्संपूर्णरूपोऽस्म्यहं
वस्तुस्थित्यनुरोधतस्त्वहमिदं वीच्यादिसिन्धु र्यथा।। ४।।

अन्वय–स्फुटम्, मरुतलभ्राजत्पयःसाम्यतः, अहम्, खादिः, अपि, न, अपि, तु, तेभ्यः, नित्यविलक्षणः, अखिलदृशिः। यथा, सौरप्रकाशः, दृश्यैः, (पृथिवीजलादिभिः) सङ्गविवर्जितः, तथा अहम्, अखिलदृशिः, गगनवत्, सम्पूर्णरूपः, अस्मि। वस्तुस्थित्यनुरोधतः, तु, वीच्यादियुक्तः, सिन्धुः, यथा, अस्ति, तथा अहमस्मि।

अर्थ—मरुस्थल में भ्रान्तिवश स्पष्ट जल की तरह प्रतीत होने वाले ये जो आकाशादि पञ्च महाभूत हैं, यह सब मैं नहीं हूँ, मैं तो इनसे विलक्षण सबका द्रष्टा सर्वसाक्षी हूँ। सूर्य प्रकाश की तरह मैं दृश्यों से असंग हूँ। मैं आकाश की तरह व्यापक हूँ। वस्तु स्थिति के अनुरोध से तो मैं और जगत्, समुद्र की तरङ्ग व समुद्र की तरह हैं। जिस प्रकार तरङ्गें भी जलमय हैं और समुद्र से अलग उनकी सत्ता नहीं है, उसी प्रकार मेरे से इस जीव-जगत् की भी कोई पृथक् सत्ता नहीं है।। ४।।

निर्द्वैतोऽस्म्यहमस्मि निर्मलचिदाकाशोऽस्मि पूर्णोऽस्म्यहं
निर्देहोऽस्मि निरिन्द्रियोऽस्मि नितरां निष्प्राणवर्गोऽस्म्यहम्।
निर्मुक्ताशुभमानसोऽस्मि विगलद्विज्ञानकोशोऽस्म्यहं
निर्मायोऽस्मि निरन्तरोऽस्मि विपुलप्रौढप्रकाशोऽस्म्यहम्।। ५।।

अन्वय—अहम्, निर्द्वैतः, अस्मि, निर्मलचिदाकाशः, अस्मि, पूर्णः, अस्मि, निर्देहः, अस्मि, नितराम्, निरिन्द्रियः, अस्मि, निष्प्राणवर्गः, अहम्, अस्मि, अहम्, निर्मुक्ताशुभमानसः, अस्मि, अहम्, विगलद्विज्ञानकोशः, अस्मि, निर्मायः, अस्मि, निरन्तरः, अस्मि, तथा च, विपुलप्रौढप्रकाशः, च, अस्मि।

अर्थ—मैं निर्द्वैत हूँ, निर्मल चैतन्यरूप आकाश हूँ, पूर्ण, निर्देह तथा निरन्तर हूँ, इन्द्रिय-रहित, निष्प्राणवर्ग हूँ अर्थात् प्राण अपान व्यानादि में मैं कुछ भी नहीं हूँ। अशुभ मन भी मैं नहीं हूँ तथा विज्ञानकोश से भी पृथक् हूँ, माया-रहित शाश्वत व व्यापक प्रौढ प्रकाशरूप मैं हूँ।। ५।।

मत्तोऽन्यन्न हि किञ्चिदस्ति यदि चिद्भास्यं ततस्तन्मृषा
गुञ्जावह्निवदेव सर्वकलनाधिष्ठानभूतोऽस्म्यहम्।
सर्वस्यापि दृगस्म्यहं समरसः शान्तोऽस्म्यपापोऽस्म्यहं
पूर्णोऽस्मि द्वयवर्जितोऽस्मि विपुलाकाशोऽस्मि नित्योऽस्म्यहम्।।६।।

अन्वय—मत्तः, अन्यत्, किञ्चित्, अपि, न, अस्ति, यदि, चिद्भास्यम्, किञ्चिदस्ति, चेत्, ततः, तत्, अपि, गुञ्जावह्निवत्, मृषा, एव, अस्ति, अतः, अहम्, सर्वकलनाधिष्ठानभूतः, अस्मि, समरसः, अहम्, सर्वस्य, अपि, दृक्, अस्मि, अतः, द्वयवर्जितः, विपुलाकाशः, नित्यः, पूर्णः, च, अहम्, अस्मि।

अर्थ—मेरे से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। यदि कहीं कुछ चैतन्य द्वारा प्रकाशित चिदाभासरूप दृश्य दिखलाई देता है, तो भी वह गुञ्जावह्नि की तरह

मिथ्या ही है, इसलिए मैं ही इस सम्पूर्ण निर्माण का अधिष्ठान हूँ। सर्वत्र समानरूप से वर्तमान मैं ही सबका द्रष्टा हूँ। मैं शान्त, निष्पाप, अद्वैत, विशाल आकाश की तरह व्यापक, नित्य तथा पूर्ण हूँ।। ६।।

मय्यस्मिन् परमार्थके श्रुतिशिरोवेद्ये स्वतोभासने
का वा विप्रतिपत्तिरेतदखिलं भात्येव यत्सन्निधेः।
सौरालोकवशात् प्रतीतमखिलं पश्यन्न तस्मिञ्जनः
संदिग्धोऽस्त्यत एव केवलशिवः कोऽपि प्रकाशोऽस्म्यहम् ।७।।

अन्वय—(यथा) सौरालोकवशात् यत्, अखिलम्, प्रतीतम्, तत्, पश्यन्, जनः, तस्मिन् (सौरालोकविषये) संदिग्धः, न, अस्ति, एवम्, परमार्थके, श्रुतिशिरोवेद्ये, अस्मिन्, मयि, स्वतः भासने, सति, यत्संनिधेः, एतत्, अखिलम्, भाति, का, वा विप्रतिपत्तिः, अस्ति! अतः, अहम्, केवलशिवः, कः, अपि, (विलक्षणः) प्रकाशः, (प्रकाशात्मकः) अस्मि।

अर्थ—जैसे सूर्य के प्रकृष्ट प्रकाश में सब कुछ दीखते हुए सूर्यप्रकाश के बारे में लोगों को किसी प्रकार का सन्देह नहीं होता है, उसी प्रकार से परमसत्, वेदान्तवेद्य, जिस मेरे प्रकाशित होने पर, मेरे सन्निकट में ही द्वैत (प्रपञ्च) प्रतीत होता है उस मुझमें कौन सी विप्रतिपत्ति (शंका) है? इसलिए मैं केवल शिवमय, कोई वाणी व मन से परे कोई प्रकाशस्वरूप हूँ।। ७।।

नित्यस्फूर्तिमयोऽस्मि निर्मलसदाकाशोऽस्मि शान्तोऽस्म्यहं
नित्यानन्दमयोऽस्मि निर्गतमहामोहान्धकारोऽस्म्यहम्।
विज्ञातं परमार्थतत्त्वमखिलं नैजं निरस्ताशुभं
मुक्तप्राप्यमपास्तभेदकलनाकैवल्यसंज्ञोऽस्म्यहम्।। ८।।

अन्वय—अहम्, नित्यस्फूर्तिमयः, अस्मि, निर्मलसदाकाशः, अस्मि, शान्तः, (अहम्) अस्मि, नित्यानन्दमयः, अस्मि, अहम्, निर्गतमहामोहान्धकारः, अस्मि, निरस्ताशुभम्, मुक्तप्राप्यम्, नैजम्, यत्, अखिलम्, परमार्थतत्त्वम्, अस्ति, तत्, सर्वम्, (मम) विज्ञातम्, अस्ति, अतः, अहम्, अपास्तभेदकलनाकैवल्यसंज्ञः, अस्मि।

अर्थ—मैं नित्यस्फुरणरूप हूँ, निरन्तर निर्मल आकाश की तरह स्वच्छ हूँ, अतः शान्त हूँ। महामोह रूपी जो अज्ञानान्धकार है, उससे भी मैं परे हूँ, अत एव नित्य आनन्दमय हूँ। मैंने अपना मङ्गलमय मुक्तों को प्राप्तव्य समस्त परमार्थ तत्त्व जान लिया है, अतः निष्प्रपञ्च स्वच्छ अद्वैतावस्था रूप कैवल्य नाम वाला ही मैं हूँ।। ८।।

स्वाप्नद्वैतवदेव जाग्रतमपि द्वैतं मनोमात्रकं
मिथ्येत्येव विहाय सच्चिदमलस्वात्मैकरूपोऽस्म्यहम्।
यद्वा वेद्यमशेषमेतदनिशं मद्रूपमेवेत्यपि
ज्ञात्वा त्यक्तमरुन्महोदधिरिव प्रौढो गभीरोऽस्म्यहम्।। ९।।

अन्वय—स्वाप्नद्वैतवत्, एव, जाग्रतम्, अपि, द्वैतम्, मनोमात्रकम्, एव, अस्ति, अतएव, मिथ्या, अस्ति, इति, एव, विचार्य, विहाय, च, तद्भिन्नः, अहन्तु, सच्चिदमलस्वात्मैकरूपः, अस्मि, यद् वा, एतत्, अशेषम्, वेद्यम्, मद्रूपमेव, इत्यपि अनिशम् ज्ञात्वा, त्यक्तमरुन्महोदधिः, इव, अहम्, प्रौढः, गभीरः, च, अस्मि।

अर्थ—स्वप्न में दिखाई देने वाले गन्धर्व नगरादि जिस प्रकार मनोमय, केवल प्रतीतिमात्र हैं, उसी प्रकार यह प्रतिदिन व्यवहार में दिखलाई देने वाला जाग्रत् जगत् भी, मनोमय ही है, अर्थात् मन की कल्पना के अधीन है। कल्पित वस्तु तो स्थिर व सत्य नहीं होती है, इसलिए जाग्रत् द्वैत में भी आसक्ति न रखकर, अपने को केवल सत् चित् अमल आत्मरूप ही समझे। अथवा यह जो दिखलाई देने वाला समस्त दृश्य है, यह भी सच्चिदानन्दरूप ही है, ऐसा हमेशा जानकर, अपने को समीर के अभाव में निस्तरङ्ग समुद्र की तरह शान्त, अविचल व स्थिर समझे।। ९।।

गन्तव्यं किमिहास्ति सर्वपरिपूर्णस्याप्यखण्डाकृतेः।
कर्तव्यं किमिहास्ति निष्क्रियतनो र्मोक्षैकरूपस्य मे।
निर्द्वैतस्य न हेयमन्यदपि वा नो वाप्युपेयान्तरं
शान्तोऽद्यापि विमुक्ततोयविमलो मेघो यथा निर्मलः।। १०।।

अन्वय—सर्वपरिपूर्णस्य, अखण्डाकृतेः, मम, गन्तव्यम्, अपि, किम्, अस्ति, (न, किमपीत्यर्थः) निष्क्रियतनोः, मोक्षैकरूपस्य, मे, (मम) इह, कर्तव्यमपि, किम्, अस्ति, (न, किमपीत्यर्थः) तथा, निर्द्वैतस्य, (मे) अन्यत्, किमपि (वस्तु) हेयम्, न, न, वा, उपेयान्तरम्, अद्य, अहम्, विमुक्ततोयविमलः, मेघः, यथा निर्मलः, अस्ति, तद्वत्, स्वच्छः, शान्तः, च, अस्मि।

अर्थ—सर्वतः परिपूर्ण व अखण्डाकार स्वरूप वाले मेरा कहीं किसी प्रकार का आना जाना भी नहीं है, और निष्क्रियरूप व मुक्त मेरा कोई कर्तव्य भी शेष नहीं है, तथा अद्वैत ही जिसका स्वरूप है, उसके लिए कभी भी कोई वस्तु हेय या उपादेय भी कैसे हो सकती है, अतः मैं तो वर्षा के बाद

(शरदृऋतु में) स्वच्छ मेघ की तरह निर्मल व शान्त हूँ।। १०।।

किं नः प्राप्तमितः पुरा किमधुना लब्धं विचारादिना
यस्मात्तत्सुखरूपमेव सततं जाज्वल्यमानोऽस्म्यहम्।
किं वाऽपेक्ष्यमिहापि मय्यतितरां मिथ्याविचारादिकं
द्वैताद्वैतविवर्जिते समरसे मौनं परं सम्मतम्।। ११।।

अन्वय—इतः, पुरा, नः, (अस्माभिरित्यर्थे कृद्योग-लक्षणा षष्ठी) किम्, प्राप्तम्? अधुना, च विचारादिना, किम्, लब्धम्? (न किमपीत्यर्थः) यस्मात् अहम्, सततम्, जाज्वल्यमानः, तत्, सुखरूपम्, एव, अस्मि, तस्मात् इह, अपि, मयि, अतितराम्, मिथ्या विचारादिकम्, किम्, वा, अपेक्ष्यम्, अस्ति! (यतो हि,) द्वैताद्वैतविवर्जिते, समरसे, मौनम्, एव, परम्, सम्मतम्, अस्ति।

अर्थ—इससे पहिले हमें क्या मिला, फिर इस समय विचार करने पर भी क्या मिल गया! क्योंकि 'मैं' तो निरन्तर प्रकाशशील, तथा निरतिशय सुखरूप हूँ, इसलिए मेरे विषय में विचार करना भी उचित नहीं है, क्योंकि विचार मिथ्या है जबकि मैं सत्य हूँ। द्वैताद्वैत से शून्य समान रस वाले तारतम्यहीन आनन्दघन मेरे विषय में तो किसी प्रकार की ननु नच, न कहकर मौन रहना ही श्रेयस्कर है।। ११।।

श्रोतव्यं च किमस्ति पूर्णसुदृशो नित्यापरोक्षस्य मे
मन्तव्यं च न मेऽस्ति किञ्चिदपि वा निःसंशयज्योतिषः।
ध्यातृध्येयविभेदहानिवपुषो न ध्येयमस्त्येव मे
सर्वात्मैकमहारसस्य सततं नो वा समाधिर्मम।। १२।।

अन्वय—पूर्णसुदृशः, नित्यापरोक्षस्य, मे, (मम) किम्, श्रोतव्यम्, अस्ति (न किमपीत्यर्थः)। निःसंशयज्योतिषः, मे (मम) किञ्चित्, अपि, वा, मन्तव्यम्, च, न, अस्ति। ध्यातृध्येयविभेदहानिवपुषः, मे (मम) ध्येयम्, एव न, अस्ति। इत्थम्, सर्वात्मैकमहारसस्य, ('रसो वै सः' इति श्रुतेः) मम, सततम्, समाधिः, वा, न।

अर्थ—पूर्ण दृशिरूप अर्थात् सबके द्रष्टा और नित्य अपरोक्ष मेरा श्रवण से भी कोई प्रयोजन नहीं है और स्पष्ट प्रकाश-स्वरूप मेरा मननादि से भी कोई मतलब नहीं। ध्याता, ध्यान, आदि प्रभेदों से शून्य स्वरूप वाले मेरे लिए कोई ध्येय वस्तु भी नहीं है, अर्थात् मैं ध्याता, ध्यान व ध्येय इस प्रकार की त्रिपुटी से शून्य हूँ। तब मैं तो जब सर्वात्मा महारसरूप (आनन्दरूप) हूँ, तो

फिर मेरे लिए समाधि (चित्तवृत्ति-निरोध रूप योग प्रक्रिया) का भी कोई उपयोग नहीं है।। १२।।

आत्मानात्मविवेचनाऽपि मम नो विद्वत्कृता रोचते
ऽनात्मा न्नास्ति यदस्ति गोचरवपुः को वा विवेक्तुं क्षमी।
मिथ्यावादविचारचिन्तनमहो कुर्वन्त्यदृष्टात्मका
भ्रान्ता एव न पारगा दृढधियस्तूर्ष्णीं शिलावत् स्थिताः।।१३।।

अन्वय—मम, विद्वत्कृता, आत्मानात्मविवेचना, अपि, नो, रोचते, अनात्मा, (देहेन्द्रियशरीरादि) नास्ति, यत्, गोचरवपुः (तद्) अस्ति, (अनयोर्विषये) कः, वा, अविवेक्तुम्, क्षमी! अहो, (इति आश्चर्ये) अमी, अदृष्टात्मकाः, भ्रान्ता, एव, सन्तः, मिथ्यावादविचारचिन्तनम्, कुर्वन्ति, ये, च, (वेदान्तसिद्धान्त-) पारगाः, दृढधियः, सन्ति, ते, (मिथ्याविवादवर्जिताः, सन्तः) शिलावत्, तूष्णीम्, स्थिताः, सन्ति।

अर्थ—मुझे तो विद्वानों के द्वारा की गई आत्मा व अनात्मा की विवेचना भी पसन्द नहीं है। अनात्मा है ही नहीं जबकि आत्मा हमेशा प्रकाशमान है, इनमें अविवेक ही सम्भव नहीं तो इन्हें पृथक् कौन कर सकता है? जिन्हें कभी भी आत्मतत्त्व का साक्षात्कार अथवा पूर्णज्ञान नहीं हुआ है, अत एव जो इस विषय में भ्रान्त हैं, वे ही व्यर्थ की बकवास लगाते हैं, परन्तु जो वेदान्त सिद्धान्त के पारङ्गत हैं, दृढ निष्ठा वाले हैं, वे तो शिलाशकल की तरह मौन ही रहते हैं, अर्थात् आत्मा के विषय में विवाद नहीं करते हैं।। १३।।

वस्तुस्थित्यनुरोधतस्त्वहमहो कश्चित् पदार्थो न चा-
प्येवं कोऽपि विभामि सन्ततदृशिर्वाङ्मानसागोचरः।
निष्पापोऽस्म्यभयोऽस्म्यहं विगतदुःशंकाकलङ्कोऽस्म्यहं
संशान्तानुपमानशीतलमहं प्रौढप्रकाशोऽस्म्यहम्।। १४।।

अन्वय—अहो! वस्तुस्थित्यनुरोधतः, अहम् न, च, कश्चित्, पदार्थः, (पदजन्यप्रतीतिविषयः) अस्मि। एवम्, अपि सन्ततदृशिः, वाङ्मानसागोचरः, कः, अपि, (इदमित्थन्तया वक्तुमशक्यः) विभामि। अतः, निष्पापः, अभयः, च, अहमस्मि, विगतदुःशंकाकलङ्कः, (च) अहम्, अस्मि। (निर्विशेषत्वादेव) अहम्, संशान्तानुपमानशीतलम्, (यथास्यात्तथा) प्रौढप्रकाशः, अस्मि।

अर्थ—अहो, यदि तत्त्वदृष्टि से विचार किया जाय तब तो मैं कोई भी पदार्थ नहीं हूँ अर्थात् किसी शब्द की शक्ति का विषय नहीं हूँ। यह सब होते

हुए भी, वाणी व मन से भी परे हूँ, सबका द्रष्टा हूँ, तथा सत्तारूप से मेरी प्रतीति होती है। अतः निष्पाप, निर्भय, किसी प्रकार की शङ्का कलङ्क के लेश से शून्य, अत एव निरञ्जन शान्त निर्विशेष शीतल व श्रेष्ठ प्रकाशरूप ही 'मैं' हूँ।। १४।।

योऽहं पूर्वमितः प्रशान्तकलनः शुद्धोऽस्मि बुद्धोऽस्म्यहं
यस्मान्मत्त इदं समुत्थितमभूदेतन्मया धार्यते।
मय्येव प्रलयं प्रयाति निरधिष्ठानाय तस्मै सदा
सत्यानन्दचिदात्मकाय विपुलप्रज्ञाय मह्यं नमः।। १५।।

अन्वय—यः, अहम्, इतः, पूर्वम्, (सृष्टेः पूर्वमित्यर्थः) प्रशान्तकलनः, (निष्क्रियः) शुद्धः, बुद्धः, च, अस्मि, (आसम्) (सिसृक्षावशात्) यस्मात्, मत्तः, एव, इदम्, (जगत्) समुत्थितम्, (अभूत्) सम्प्रति, च, मया, एव, धार्यते, (सर्वाधिष्ठानत्वात्) अन्ते च मयि एव, इदम्, प्रलयम्, प्रयाति (प्रयास्यतीत्यर्थः) तस्मै, निरधिष्ठानाय, सत्यानन्दचिदात्मकाय, विपुलप्रज्ञाय, मह्यम्, सदा, नमः, अस्तु।

अर्थ—इस सृष्टि के पूर्व मैं निष्क्रिय, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव वाला था, पश्चात् मुझसे ही यह संसार समुत्पन्न हुआ, सम्प्रति मेरे में ही यह स्थित है, और अन्त में मेरे में ही लीन हो जायेगा, अतः जो निराधार होते हुए सबका आधार है, ऐसे सच्चिदानन्दरूप सर्वज्ञ मेरे लिए नमस्कार है।। १५।।

सत्ताचित्सुखरूपमस्ति सततं नाहं च न त्वं मृषा
नेदं वापि जगत् प्रदृष्टमखिलं नास्तीति जानीहि भोः।
यत् प्रोक्तं करुणावशात्त्वयि मया तत्सत्यमेतत् स्फुटं
श्रद्धत्स्वानघ शुद्धबुद्धिरसि चेन्मात्रास्तु ते संशयः।। १६।।

अन्वय—भोः अनघ! सत्ताचित्सुखरूपम्, सततम्, अस्ति न, अहम्, मृषा, (अस्मि), न, च, त्वम् (मृषा) असि। इदम्, अखिलम्, प्रदृष्टम्, जगत् अपि, वा, न, न अस्ति इति, जानीहि। (त्वम्) शुद्धबुद्धिः चेद् असि, त्वयि, करुणावशात्, मया, एतत्, स्फुटम्, यत् सत्यम्, प्रोक्तम्, तत्, श्रद्धत्स्व, अत्र, ते, संशयः, मा, अस्तु।

अर्थ—मैं सत्ता, चित्, व सुखरूप हूँ, अर्थात् अस्ति, भाति व प्रिय हूँ, इसी प्रकार तुम (जीव) भी सत् चित् सुखरूप हो, न तो मैं मिथ्या हूँ, ना ही तुम मिथ्या हो। हे जीव! इतना और समझ लो कि यह जो दिखलाई देने वाला प्रपञ्च है, इसे भी ऐसा मत समझो कि यह सर्वथा नहीं हैं (अर्थात् शून्यवादी

मत बनो)। दयावश मैं तुम्हें यह स्पष्ट व सत्य बात बतला रहा हूँ। तुम स्वच्छमति वाले हो, अतः मेरे इन पूर्वोक्त वचनों में विश्वास करो, इनमें लेशमात्र भी सन्देह मत करो।। १६।।

स्वारस्यैकसुबोधचारुमनसे प्रौढानुभूतिस्त्वियं
दातव्या न तु मोहदग्धकुधिये दुष्टान्तरङ्गाय च।
येयं रम्यविदर्पितोत्तमशिरःप्राप्ता चकास्ति स्वयं
सा चेन्मर्कटहस्तदेशपतिता किं राजते केतकी।। १७।।

अन्वय—इयम्, प्रौढानुभूतिः, तु, स्वारस्यैकसुबोधचारुमनसे, एव, दातव्या, मोहदग्धकुधिये, दुष्टान्तरङ्गाय च तु न दातव्या। या इयम्, केतकी, रम्यविदर्पितोत्तमशिरःप्राप्ता, सती, स्वयम्, चकास्ति, सा, मर्कटहस्तदेशपतिता, भवेत्, चेत्, किम्, तथा, राजते (नैव राजत इत्यर्थः)।

अर्थ—पूर्वोक्त यह 'प्रौढानुभूति' ऐसे सुशिष्य को प्रदान करनी चाहिए, जिसका अन्तरङ्ग आध्यात्मिक ज्ञान से स्वच्छ हो, जिसकी बुद्धि मोह से कलुषित हो चुकी हो ऐसे दुर्मति के लिए यह कदापि नहीं देनी चाहिए। जिस केतकी की शोभा पवित्र व रमणीय शिर में होती है, उसकी शोभा बन्दर के हाथ में देने से हो सकती है क्या?।। १७।।

ब्रह्मज्ञानावलीमाला

सकृच्छ्रवणमात्रेण ब्रह्मज्ञानं यतो भवेत्।
ब्रह्मज्ञानावलीमाला सर्वेषां मोक्षसिद्धये।। १।।

अन्वय—यतः, सकृत्, श्रवणमात्रेण, ब्रह्मज्ञानम्, भवेत्, सर्वेषाम्, मोक्षसिद्धये, (सा) ब्रह्मज्ञानावलीमाला, प्रस्तूयते।

अर्थ—जिसके एक बार सुन लेने से भी ब्रह्मज्ञान हो जाता है, सभी की मोक्षसिद्धि के लिए उस 'ब्रह्मज्ञानावलीमाला' नामक प्रकरण को प्रस्तुत किया जाता है।। १।।

असङ्गोऽहमसङ्गोऽहमसङ्गोऽहं पुनः पुनः।
सच्चिदानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः।। २।।

अन्वय—अहम्, असङ्गः, अहम्, असङ्गः, अहम्, पुनः, पुनः, असङ्गः,

अस्मि, अतः, अहम्, सच्चिदानन्दरूपः, अव्ययः, (च) अहम्, अस्मि।

अर्थ—मैं असङ्ग हूँ, मैं असङ्ग हूँ, मैं हमेशा असङ्ग हूँ, अर्थात् किसी प्रकार की सांसारिक आसक्ति से रहित हूँ, अतः मैं केवल सच्चिदानन्द हूँ, और अव्यय (अविनाशी) हूँ।। २।।

नित्यशुद्धविमुक्तोऽहं निराकारोऽहमव्ययः।
भूमानन्दस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः।। ३।।

अन्वय—अहम्, नित्यशुद्धविमुक्तः, अस्मि, अहम्, निराकारः, अव्ययः, (च) अस्मि, यतो हि, अहम्, भूमानन्दस्वरूपः, अस्मि, अत एव, अव्ययः, च, अस्मि।

अर्थ—मैं नित्य, शुद्ध, बुद्ध व मुक्त स्वरूप हूँ। मैं निराकार व अव्यय हूँ। क्योंकि मैं भूमानन्दस्वरूप (व्यापक व निष्कारण निरतिशय प्रिय) हूँ, इसीलिए अविनाशी हूँ।। ३।।

नित्योऽहं निरवद्योऽहं निराकारोऽहमच्युतः।
परमानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः।। ४।।

अन्वय—अहम्, नित्यः, अस्मि, अहम्, निरवद्यः, अस्मि, अहम्, निराकारः, अस्मि, तथा, अहम्, अच्युतः, अस्मि, अहम्, परमानन्दरूपः, अस्मि, अतः, अहम्, अव्ययः, अस्मि।

अर्थ—मैं नित्य निरवद्य (स्वच्छ) निराकार तथा अपक्षय-रहित हूँ, मैं परमानन्दरूप हूँ, अतः अविनाशी हूँ।। ४।।

शुद्धचैतन्यरूपोऽहमात्मारामोऽहमेव च।
अखण्डानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः।। ५।।

अन्वय—अहम्, शुद्धचैतन्यरूपः, अस्मि, अहम्, एव, च, आत्मारामः, अस्मि, अहम्, अखण्डानन्दरूपः, अस्मि, अहम्, एव, (च) अव्ययः, अस्मि।

अर्थ—मैं शुद्ध चैतन्यरूप हूँ, मैं ही आत्माराम (स्वयं अपने में रमण करने वाला) भी हूँ, अतः मैं अखण्डानन्द और अविनाशी हूँ।। ५।।

प्रत्यक्चैतन्यरूपोऽहं शान्तोऽहं प्रकृतेः परः।
शाश्वतानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः।। ६।।

अन्वय—अहम्, प्रत्यक्चैतन्यरूपः, अस्मि, अहम्, शान्तः, अस्मि, तथा, प्रकृतेः, परः, अस्मि, अहम्, शाश्वतानन्दरूपः, तथा अहम्, अव्ययः, अस्मि।

अर्थ—मैं प्रत्यक् चैतन्यरूप हूँ, मैं शान्त तथा प्रकृति से भी परे हूँ, अतः मैं शाश्वतानन्दरूप और अविनाशी हूँ।। ६।।

तत्त्वातीतः परात्माऽहं मध्यातीतः परः शिवः।
मायातीतः परं ज्योतिरहमेवाहमव्ययः।। ७।।

अन्वय—अहम्, तत्त्वातीतः, परात्मा, अस्मि, मध्यातीतः, परः, शिवः, (च) अस्मि, मायातीतः, सन्, परम्, ज्योतिः, अस्मि, अतः, अहम्, अव्ययः, अस्मि।

अर्थ—मैं सभी तत्त्वों (पदार्थों) से परे होने से परात्मा हूँ, मध्य=संसार से भी परे होने से परमशिव हूँ, और मायातीत होने से परमज्योति हूँ, अतः मैं अविनाशी हूँ।। ७।।

नानारूपव्यतीतोऽहं चिदाकारोऽहमच्युतः।
सुखरूपस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः।। ८।।

अन्वय—अहम्, नानारूपव्यतीतः, अस्मि, अहम्, चिदाकारः, अस्मि, अत एव, अच्युतः, अस्मि, अहम्, सुखरूपस्वरूपः, अस्मि, अतः, अहम्, एव, अव्ययः, अस्मि।

अर्थ—मैं विनाशशील नानारूपों से परे हूँ, चैतन्यरूप होने से मैं अविकारी हूँ। निरतिशय सुखरूप तथा निजात्मस्वरूप मैं हूँ, इसीलिए मैं अविनाशी हूँ।।८।।

मायातत्कार्यदेहादि मम नास्त्येव सर्वदा।
स्वप्रकाशैकरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः।। ९।।

अन्वय—मायातत्कार्यदेहादि, मम, नास्ति, एव, अहम्, सर्वदा, स्वप्रकाशैकरूपः, अस्मि, अतः, अहम्, अव्ययः, एव, अस्मि।

अर्थ—माया और माया के कार्य जो देहादि हैं, वे मेरे नहीं हैं, अर्थात् उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, मैं तो सर्वदा स्वयंप्रकाशरूप हूँ, इसीलिए मैं अविनाशी हूँ।। ९।।

गुणत्रयव्यतीतोऽहं ब्रह्मादीनां च साक्ष्यहम्।
अनन्तानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः।। १०।।

अन्वय—अहम्, गुणत्रयव्यतीतः, अस्मि, अहम्, ब्रह्मादीनाम्, च, साक्षी, अस्मि, अहम्, अनन्तानन्दरूपः, अस्मि, अतः, अहम्, एव, अव्ययः, अस्मि।

अर्थ—मैं सत्त्व, रज व तम, इन तीनों गुणों से परे हूँ, मैं ब्रह्मादि देवों का

भी साक्षी हूँ, मैं अनन्त आनन्द स्वरूप हूँ, अतः मैं ही अविनाशी हूँ।। १०।।

अन्तर्यामिस्वरूपोऽहं कूटस्थः सर्वगोऽस्म्यहम्।
परमात्मस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः।। ११।।

अन्वय—अहम्, अन्तर्यामिस्वरूपः, कूटस्थः, सर्वगः, (च) अस्मि, तथा, च, अहम्, परमात्मस्वरूपः, अस्मि, अतः, अहम्, एव, अव्ययः, अस्मि।

अर्थ—मैं अन्तर्यामी, कूटस्थ तथा सर्वत्र व्यापक हूँ, और परमात्मारूप भी मैं हूँ, अतः मैं अव्यय हूँ।। ११।।

निष्कलोऽहं निष्क्रियोऽहं सर्वात्माऽऽद्यः सनातनः।
अपरोक्षस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः।। १२।।

अन्वय—अहम्, निष्कलः, अस्मि, अहम्, निष्क्रियः, सर्वात्मा, आद्यः, सनातनः, च, अस्मि, अहम्, अपरोक्षस्वरूपः, अस्मि, अतः, अहम्, एव, अव्ययः, अस्मि।

अर्थ—मैं निरंश या निरुपाधिक हूँ, मैं निष्क्रिय, सर्वात्मा, सबसे पूर्व भी वर्तमान व सनातन हूँ, मैं प्रत्यक्‌चैतन्यस्वरूप हूँ, अतः मैं अव्यय हूँ।। १२।।

द्वन्द्वादिसाक्षिरूपोऽहमचलोऽहं सनातनः।
सर्वसाक्षिस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः।। १३।।

अन्वय—अहम्, द्वन्द्वादिसाक्षिरूपः, अस्मि, अहम्, अचलः, अस्मि, अहम्, सनातनः, अस्मि, अहम्, सर्वसाक्षिरूपः, अस्मि, अहम्, एव, अव्ययः, अस्मि।

अर्थ—मैं ही इस सारे द्वन्द्वादि द्वैत प्रपञ्च का साक्षी हूँ (शीत उष्ण, सुख-दुःख आदि जोड़े द्वन्द्व हैं। इनका साक्षी हूँ और अन्य भी जगत् का साक्षी हूँ)। मैं अचल, तथा सनातन हूँ, और सर्वसाक्षीस्वरूप होने से मैं ही अव्यय हूँ।। १३।।

प्रज्ञानघन एवाहं विज्ञानघन एव च।
अकर्त्ताऽहमभोक्ताऽहमहमेवाहमव्ययः।। १४।।

अन्वय—अहम्, एव, प्रज्ञानघनः, अस्मि, अहम्, एव, विज्ञाघनः, अस्मि, अहम्, अकर्त्ता, अभोक्ता, च, अस्मि, अतः, अहम्, एव, अव्ययः, अस्मि।

अर्थ—मैं ही प्रज्ञानघन व विज्ञानघनरूप आनन्दस्वरूप वाला हूँ (इन शब्दों से वेदादि में आत्मा का स्वरूप वर्णित है। सुस्पष्ट ज्ञान को प्रज्ञान और अपरोक्ष को विज्ञान समझ सकते हैं।) मैं अकर्ता—कुछ न करने वाला हूँ तथा

अभोक्ता, किसी भी पदार्थ का भोग न करने वाला हूँ (कर्ता भोक्ता तो यह अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य, चिदाभास ही है) अतः मैं अव्यय हूँ।। १४।।

निराधारस्वरूपोऽहं सर्वाधारोऽहमेव च।
आप्तकामस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः।। १५।।

अन्वय—अहम्, सर्वाधारस्वरूपः, अपि, स्वयम्, निराधारस्वरूपः, च, अस्मि, (सर्वनियामकत्वेन सर्वाधिष्ठानत्वेन च, विरोधपरिहारः) अहम्, आप्तकामस्वरूपः, अस्मि, अतः, अहम्, अव्ययः, अस्मि।

अर्थ—मैं सबका आधार (अधिष्ठान) होता हुआ भी स्वयं निराधार हूँ, अर्थात् ब्रह्म ही सबका जब नियामक व सर्वाधार है, तो फिर उसके आधार के लिए किसी पदार्थान्तर की आवश्यकता नहीं है। मैं आप्तकाम व पूर्णकाम हूँ, अतः मैं अव्यय हूँ।। १५।।

तापत्रयविनिर्मुक्तो देहत्रयविलक्षणः।
अवस्थात्रयसाक्ष्यस्मि चाहमेवाहमव्ययः।। १६।।

अन्वय—अहम्, तापत्रयविनिर्मुक्तः, अस्मि (आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकतापानां त्रयाद्रहितइत्यर्थः) तथा, देहत्रयविलक्षणः, अस्मि, (कारणसूक्ष्मस्थूलेभ्य इत्यर्थः) अहम्, अवस्थात्रयसाक्षी, च, अस्मि, (जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तीनामित्यर्थः) अहम्, एव, अव्ययः, अस्मि।

अर्थ—मैं तीनों प्रकार के तापों (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक) से मुक्त हूँ, तथा तीनों प्रकार के देहों (कारण, सूक्ष्म, स्थूल) से भी विलक्षण हूँ, और मैं तीनों अवस्थाओं (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति) का साक्षी हूँ, अतः मैं ही अव्यय हूँ।। १६।।

दृग्दृश्यौ द्वौ पदार्थौ स्तः परस्परविलक्षणौ।
दृग् ब्रह्म दृश्यं मायेति सर्ववेदान्तडिण्डिमः।। १७।।

अन्वय—दृग्दृश्यौ, परस्परविलक्षणौ, द्वौ, पदार्थौ, स्तः, तत्र, दृग् ब्रह्म, (भवति), दृश्यम्, च, माया, (भवति) इति, सर्ववेदान्तडिण्डिमः, अस्ति।

अर्थ—इस संसार में परस्पर विलक्षण दृक् व दृश्य दो ही पदार्थ हैं, इनमें दृक् अर्थात् ज्ञानरूप ब्रह्म है, और दृश्य, दिखलाई देने वाला यह सारा प्रपञ्च माया है, यही सर्व-वेदान्त के सिद्धान्त का डिण्डिम घोष है।। १७।।

अहं साक्षीति यो विद्याद् विविच्यैवं पुनः पुनः।
स एव मुक्तः सन् विद्वानिति वेदान्तडिण्डिमः।। १८।।

अन्वय—यः, अहम्, साक्षी, इति, एवम्, पुनः, पुनः, विविच्य, विद्यात्,

सः, विद्वान्, सन्, मुक्तः, एव, अस्ति, इति, सर्ववेदान्तडिण्डिमः, अस्ति।

अर्थ—जो 'मैं साक्षी हूँ' इस बात को बार-बार विचार कर जाने, वह ज्ञानवान् होता हुआ मुक्त हो जाता है, ऐसा सर्व वेदान्त सिद्धान्त है।। १८।।

घटकुड्यादिकं सर्वं मृत्तिकामात्रमेव च।
तद्वद् ब्रह्म जगत्सर्वमिति वेदान्तडिण्डिमः।। १९।।

अन्वय—यद्वत्, सर्वम्, घटकुड्यादिकम्, मृत्तिकामात्रम्, एव, च, अस्ति, तद्वत्, इदम्, सर्वम्, जगत्, ब्रह्म, एव, अस्ति, इति, वेदान्तडिण्डिमः, अस्ति।

अर्थ—जैसे मिट्टी का घड़ा और मिट्टी की दीवार आदि सब (मृत्कारणक होने से) मिट्टीमात्र हैं, उसी प्रकार यह सारा जगत्, भी (ब्रह्मकारणक होने से) ब्रह्म ही है, ऐसा वेदान्त का सिद्धान्त है।। १९।।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।
अनेन वेद्यं सच्छास्त्रमिति वेदान्तडिण्डिमः।। २०।।

अन्वय—ब्रह्म, सत्यम्, अस्ति, जगत्, मिथ्या, अस्ति, जीवः, ब्रह्म, एव, अस्ति, अपरः, (तदतिरिक्तो द्वितीयः) न, अस्ति, अनेन, (जीवेन) सच्छास्त्रम्, वेद्यम्, इति, वेदान्तडिण्डिमः, अस्ति।

अर्थ—ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है, यह जगत् मिथ्या है। जीव ब्रह्म ही है, कोई अतिरिक्त द्वितीय तत्त्व नहीं है। जीव को सत् शास्त्र का अभ्यास करना चाहिए, यही वेदान्त का मत है।। २०।।

अन्तर्ज्योति र्बहिर्ज्योतिः प्रत्यग्ज्योतिः परात्परः।
ज्योतिर्ज्योतिः स्वयंज्योतिरात्मज्योतिः शिवोऽस्म्यहम्।। २१।।

अन्वय—परात्परः, अहम्, अन्तर्ज्योतिः, बहिर्ज्योतिः, प्रत्यक्ज्योतिः, तथा, ज्योतिर्ज्योतिः, स्वयंज्योतिः, शिवः, अस्मि।

अर्थ—परात्पर (सभी तत्त्वों से पर) मैं अन्दर व बाहर तथा प्रत्यक् प्रकाशवाला हूँ, मैं सूर्य नक्षत्रादि प्रकाशों का भी प्रकाश हूँ, अतः मैं स्वयं-प्रकाश शिव हूँ।। २१।।

ब्रह्मानुचिन्तनम्

अहमेव परं ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययम्।
इति स्यान्निश्चितो मुक्तो बद्ध एवान्यथा भवेत्।। १।।

अन्वय—अहम्, वासुदेवाख्यम्, अव्ययम्, परम्, ब्रह्म, एव, अस्मि, इति, निश्चितः, मुक्तः, स्यात्, अन्यथा, (तु) बद्धः, एव, भवेत्।

अर्थ—मैं वासुदेव नामक, अव्यय, परब्रह्म ही हूँ, इस प्रकार का जिसका निर्णय है, वह तो मुक्त है, अन्यथा बद्ध ही समझना चाहिए।। १।।

अहमेव परं ब्रह्म निश्चितं चित्त चिन्त्यताम्।
चिद्रूपत्वादसङ्गत्वादबाध्यत्वात्प्रयत्नतः।। २।।

अन्वय—हे चित्त! अहम्, चिद्रूपत्वात्, असङ्गत्वात्, अबाध्यत्वात्, च, परम्, ब्रह्म एव, इति, निश्चितम्, प्रयत्नतः, चिन्त्यताम्।

अर्थ—हे चित्त! मैं चित्-रूप अर्थात् चैतन्यमय, असङ्ग, किसी प्रकार की भी आसक्ति से शून्य, और त्रिकालाबाधित होने से परब्रह्म ही हूँ, इस निश्चित बात को प्रयत्नपूर्वक विचारते रहो।। २।।

अहमेव परं ब्रह्म न चाहं ब्रह्मणः पृथक्।
इत्येवं समुपासीत ब्राह्मणो ब्रह्मणि स्थितः।। ३।।

अन्वय—ब्राह्मणः, ब्रह्मणि, स्थितः, सन्, अहम्, च, ब्रह्मणः, पृथक् न, अस्मि, अपि तु अहम्, परम्, ब्रह्म, एव, अस्मि, इति, एवम्, समुपासीत।

अर्थ—ब्राह्मण को चाहिए कि वह ब्रह्मनिष्ठ होता हुआ, मैं ब्रह्म से पृथक् नहीं हूँ, अपितु परब्रह्म ही हूँ—ऐसा विचार करे।। ३।।

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं चैतन्यं च निरन्तरम्।
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा कथं वर्णाश्रमी भवेत्।। ४।।

अन्वय—यत्, सर्वोपाधिविनिर्मुक्तम्, निरन्तरम्, च, चैतन्यम्, अस्ति, अहम्, तद्, एव, ब्रह्म, अस्मि, इति, ज्ञात्वा, (नरः) पुनः, कथम्, वर्णाश्रमी, भवेत्।

अर्थ—जो समस्त उपाधियों से रहित, शाश्वत चैतन्य है, मैं वही ब्रह्म हूँ, ऐसा जानकर, मनुष्य फिर किसी वर्ण और आश्रम का आश्रय क्यों लेगा?।।४।।

अहं ब्रह्मास्मि यो वेद स सर्वं भवति त्विदम्।
नाभूत्या ईशते देवास्तेषामात्मा भवेद्धि सः।। ५।।

अन्वय—यः, अहम्, ब्रह्म, अस्मि, इति, वेद, सः, तु, इदम्, सर्वम्, हि (यतः) सः, तेषाम्, आत्मा, भवेत् (अतः) देवाः, अभूत्या, न, ईशते।

अर्थ—जो 'मैं ब्रह्म हूँ' यह जानता है वह तो यह सब कुछ हो जाता है (अर्थात् चराचर जगत् का वही आत्मा हो जाता है)। क्योंकि वह देवताओं का भी आत्मा हो चुकता है इसलिये वे आत्मज्ञ के वैभव का विरोध करने में

असमर्थ हो जाते हैं।। ५।।

अन्योऽसावहमन्योऽस्मीत्युपास्ते योऽन्यदेवताम्।
न स वेद नरो ब्रह्म स देवानां यथा पशुः।। ६।।

अन्वय–यः, असौ (ईश्वरः) अन्यः, अस्ति, अहम्, (जीवः) अन्यः, अस्मि, इति (कृत्वा) अन्यदेवताम्, उपास्ते, सः, नरः, ब्रह्म, न, वेद, सः, देवानाम्, मध्ये, (तथा भवति) यथा पशुः, (नराणां मध्ये) भवति।

अर्थ–जो मनुष्य वह ब्रह्म अन्य है, और मैं अन्य हूँ, यह समझकर स्वयं से अलग मानकर देव की आराधना करता है, वह मनुष्य वस्तुतः ब्रह्म के विषय में नहीं जानता है, वह तो देवताओं के मध्य पशु के समान है, अर्थात् इस संसार के जननमरण क्लेश में पड़ा ही रहता है।। ६।।

अहमात्मा न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान्।। ७।।

अन्वय–अहम्, आत्मा, अस्मि, अन्यः, न, अस्मि, अहम्, ब्रह्म, एव, अस्मि, शोकभाक्, (संसारी) न अस्मि, अहम्, सच्चिदानन्दरूपः, अस्मि, तथा, च, अहम्, नित्यमुक्तस्वभाववान्, अस्मि।

अर्थ–मैं आत्मा हूँ, आत्मा से अतिरिक्त अनात्म-पदार्थ नहीं हूँ, अतः मैं ब्रह्म ही हूँ, न कि शोक-मोहादि धर्म वाला कोई और, 'मैं' सत्, चित्, आनन्दरूप वाला और नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला हूँ।। ७।।

आत्मानं सततं ब्रह्म संभाव्य विहरन्ति ये।
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोत्था न चापदः।। ८।।

अन्वय–ये (मानवाः) आत्मानम्, ब्रह्म, इति, सम्भाव्य, सततम्, विहरन्ति, तेषाम्, किञ्चित्, अपि, दुष्कृतम्, न, भवति, दुष्कृतोत्थाः, आपदः, च, न, भवन्ति।

अर्थ–जो मानव आत्मा को ही ब्रह्म मानकर हमेशा विचरण करते हैं, उन्हें कुछ भी पाप नहीं लगता है, और पाप से उत्पन्न जो आपत्तियाँ हैं, वे भी नहीं आती हैं।। ८।।

आत्मानं सततं ब्रह्म सम्भाव्य विहरेत् सुखम्।
क्षणं ब्रह्माहमस्मीति यः कुर्यादात्मचिन्तनम्।। ९।।
तन्महापातकं हन्ति तमः सूर्योदयो यथा।

अन्वय–आत्मानम्, ब्रह्म, इति, सम्भाव्य, सुखम्, (यथा स्यात् तथा) सततम्, विहरेत्, यः, क्षणम्, अहम्, ब्रह्म, अस्मि, इति, आत्मचिन्तनम्,

कुर्यात्, तत्, (चिन्तनम्) सूर्योदयः, यथा, तमः, हन्ति, तथा, महापातकम्, हन्ति।

अर्थ—मनुष्य को चाहिए कि वह हमेशा आत्मा को ही ब्रह्म मानकर सुखपूर्वक निरन्तर विचरण करे। जो मनुष्य एक क्षण भी यदि 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार से आत्मचिन्तन करता है, उसका वह आत्मचिन्तन, सूर्योदय जैसे अन्धकार का नाश करता है, उसी प्रकार पाप का नाश करता है।। ६।।

अज्ञानाद् ब्रह्मणो जातमाकाशं बुद्‌बुदोपमम्।। १०।।
आकाशाद् वायुरुत्पन्नो वायोस्तेजस्ततः पयः।
अद्भ्यश्च पृथिवी जाता ततो व्रीहियवादिकम्।। ११।।

अन्वय—ब्रह्मणः, अज्ञानात्, (मायाशबलिताद् ब्रह्मण इत्यर्थः) बुद्‌बुदोपमम्, आकाशम्, जातम्, आकाशात्, वायुः, उत्पन्नः, वायोः, तेजः, उत्पन्नम्, ततः, पयः, उत्पन्नम्, अद्भ्यः, च, पृथिवी, जाता, ततः, व्रीहियवादिकम्, जातमित्यर्थः।

अर्थ—मायासहित ब्रह्म से जलबुद्‌बुद के समान आकाश उत्पन्न हुआ, (आकाश की उपमा जलबुद्‌बुद से इसलिए दी है, कि जिसे नैय्यायिक नित्य मान बैठा है, उसे वेदान्ती जल के बुलबुलों की तरह अनित्य मानते हैं)। आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल, और जल से पृथिवी उत्पन्न हुई, तदनन्तर पृथिवी से धान यव आदि अनाज वनस्पति आदि घास उत्पन्न हुए।।११।।

पृथिव्यप्सु पयो वह्नौ वह्नि र्वायौ नभस्यसौ।
नभोऽप्यव्याकृते तच्च शुद्धे शुद्धोऽस्म्यहं हरिः।। १२।।

अन्वय—(प्रलयसमये) पृथिवी, अप्सु, (लीयते) पयः, वह्नौ, वह्निः, वायौ, असौ (वायुः) नभसि, नभः, अव्याकृते, (प्रकृतौ) तच्च, अव्याकृतम्, शुद्धे (लीयते) अतः, अहम्, शुद्धः, हरिः, अस्मि।

अर्थ—प्रलयकाल में, पृथिवी जल में लीन होती है, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, और आकाश अव्याकृत प्रकृति में लीन होता है, यह प्रकृति परमात्मा में लीन हो जाती है, मैं नित्य शुद्ध मुक्त परमात्मा हूँ।। १२।।

अहं विष्णुरहं विष्णुरहं विष्णुरहं हरिः।
कर्तृभोक्त्रादिकं सर्वं तदविद्योत्थमेव च ।। १३।।

अन्वय—अहम्, विष्णुः, अस्मि (वेवेष्टि सृष्ट्यादिना व्याप्नोति जगदिति) अहम्, विष्णुः, (स्थितिरूपेण व्याप्तः) अहम्, विष्णुः, (आत्मनि संहरति अतः,) अहम्, हरिः, (परमात्मा, अस्मि,) सर्वम्, कर्तृभोक्त्रादिकम्, तु, तदविद्योत्थम्, एव, चास्ति।

अर्थ—मैं विष्णुं (व्यापक) हूँ, विष्णु (ईश्वर) हूँ, विष्णु (जीवस्वरूप) हूँ। मैं हरि (स्वयं में सबको उपसंहृत करने वाला) हूँ। कर्ता-भोक्ता (प्रमाता) आदि सब उस मेरी अविद्या से उत्पन्न हुआ है।।१३।।

अच्युतोऽहमनन्तोऽहं गोविन्दोऽहमहं हरिः।
आनन्दोऽहमशेषोऽहमजोऽहममृतोस्म्यहम्।। १४।।

अन्वय—अहम्, अच्युतः, अस्मि, अहम् अनन्तः, अहम्, गोविन्दः, अहम्, हरिः, अहम्, आनन्दः, अहम्, अशेषः, अहम्, अजः, अहम्, अमृतः, अस्मि।

अर्थ—मैं ही अच्युत अनन्त, गोविन्द, हरि, आनन्द, अशेष (सर्वरूप) अज (जन्मरहित) और अमृत हूँ।। १५।।

नित्योऽहं निर्विकल्पोऽहं निराकारोऽहमव्ययः।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं पञ्चकोशातिगोऽस्म्यहम्।। १५।।

अन्वय—अहम्, नित्यः, अहम्, निर्विकल्पः, अहम्, निराकारः, अहम्, अव्ययः, अहम्, सच्चिदानन्दरूपः, अहम्, पञ्चकोशातिगः, च, अस्मि।

अर्थ—मैं नित्य, निर्विकल्प, निराकार, अव्यय, सत्, चित्, आनन्दरूप तथा अन्नमयादि पञ्चकोशों से भी परे, परमात्मा हूँ।। १५।।

अकर्ताऽहमभोक्ताऽहमसङ्गः परमेश्वरः।
सदा मत्सन्निधानेन चेष्टते सर्वमिन्द्रियम्।। १६।।

अन्वय—अहम्, अकर्ता, अस्मि, अहम्, अभोक्ता, अस्मि, अहम्, असङ्गः, परमेश्वरः, अस्मि, मत्सन्निधानेन, सर्वम्, इन्द्रियम्, सदा, चेष्टते।

अर्थ—मैं अकर्ता, अभोक्ता, असङ्ग, तथा परमेश्वर हूँ, मेरे सान्निध्य में ही सारी इन्द्रियाँ अपना-अपना व्यापार करती रहती हैं।। १६।।

आदिमध्यान्तमुक्तोऽहं न बद्धोऽहं कदाचन।
स्वभावनिर्मलः शुद्धः स एवाहं न संशयः।। १७।।

अन्वय—अहम्, आदिमध्यान्तमुक्तः, अस्मि, कदाचन, अपि, बद्धः न, अस्मि, अतः, सः, अहम्, स्वभावनिर्मलः, शुद्धः, एव, अत्र कोऽपि,

संशयः, न अस्ति।

अर्थ—मैं आदि मध्य व अन्त में भी मुक्त ही हूँ। मैं कभी भी बद्ध (बन्धनयुक्त) नहीं हूँ, अतः मैं स्वभावतः स्वच्छ व शुद्ध ही हूँ, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।। १७।।

ब्रह्मैवाहं न संसारी मुक्तोऽहमिति भावयेत्।
अशक्नुवन् भावयितुं वाक्यमेतत् सदाभ्यसेत्।। १८।।

अन्वय—अहम्, ब्रह्म, एव, न, संसारी, अतः, अहम्, मुक्तः, अस्मि, इति, (सदा) भावयेत्, (एतत्सर्वम्) भावयितुम्, (यदि) अशक्नुवन्, (तदा) एतत्, वाक्यम्, सदा, अभ्यसेत्।

अर्थ—मैं ब्रह्म ही हूँ, संसारी नहीं हूँ, अतः मैं मुक्त हूँ—हमेशा ऐसी ही भावना करे। यदि इस प्रकार की भावना करने में असमर्थ होय तो फिर इस अर्थ के बोधक पूर्वोक्त वाक्य का हमेशा अभ्यास करे।। १८।।

यदभ्यासेन तद्भावो भवेद् भ्रमरकीटवत्।
अत्रापहाय सन्देहमभ्यसेत् कृतनिश्चयः।। १९।।

अन्वय—यदभ्यासेन, भ्रमरकीटवत्, तद्भावः, भवेत् तत्र, सन्देहम्, अपहाय, कृतनिश्चयः, अभ्यसेत्।

अर्थ—पूर्वोक्त 'ब्रह्मैवाहम्' इत्यादि वाक्य के अभ्यास से उसी तरह ब्रह्मता हो जाती है जिस तरह भ्रमर की गूँज सुनकर कीट भी भ्रमर हो जाता है। इस बारे में बिना किसी सन्देह के दृढ निश्चय से पूर्वोक्त वाक्य का ही अभ्यास करे।। १९।।

ध्यानयोगेन मासैकाद् ब्रह्महत्यां व्यपोहति।
संवत्सरं सदाभ्यासात् सिद्ध्यष्टकमवाप्नुयात्।। २०।।

अन्वय—मासैकात्, ध्यानयोगेन, ब्रह्महत्याम्, व्यपोहति, संवत्सरम्, सदा अभ्यासात्, सिद्ध्यष्टकम्, अवाप्नुयात्।

अर्थ—एक महीने के ध्यान से, ब्रह्महत्यारूप पाप दूर हो जाता है, एक वर्ष तक लगातार अभ्यास करने से आठों प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।। २०।।

यावज्जीवं सदाऽभ्यासाज्जीवन्मुक्तो भवेद्यतिः।
नाऽहं देहो न च प्राणो नेन्द्रियाणि तथैव च।। २१।।

अन्वय—यावत्-जीवम्, सदाभ्यासात्, यतिः, जीवन्मुक्तः, भवेत्, अहम्, देहः, न, अस्मि, प्राणः, न, च, अस्मि, तथा, इन्द्रियाणि, च, न, एव

अस्मि।

अर्थ—यदि यतनशील यति पुर्वोक्त वाक्य का जीवन भर अभ्यास करे, तो जीवन्मुक्त हो जाय। मैं न तो देह हूँ, न प्राण हूँ, और न ही मैं इन्द्रिय वर्ग हूँ।। २१।।

न मनोऽहं न बुद्धिश्च नैव चित्तमहंकृतिः।
नाहं पृथिवी न सलिलं न च वह्निस्तथाऽनिलः।। २२।।

अन्वय—अहम्, मनः, न, अस्मि, बुद्धिः, न, चित्तम्, न, अहंकृतिः, च, न, एव, अस्मि, तथा अहम्, पृथिवी, सलिलम्, वह्निः, तथा, अनिलः, च, न, अस्मि।

अर्थ—मैं न तो मन हूँ, न बुद्धि, न चित्त, और अहंकार भी मैं नहीं हूँ। मैं पृथिवी, जल, अग्नि तथा वायु भी नहीं हूँ।। २२।।

न चाकाशो न शब्दश्च न च स्पर्शस्तथा रसः।
नाहं गन्धो न रूपं च न मायाऽहं न संसृतिः।। २३।।

अन्वय—अहम्, आकाशः, न, शब्दः, च, न, स्पर्शः, च, न, तथा, रसः, च, न, गन्धः, न, रूपम्, च, न, अहम्, माया, न, संसृतिः, च, न, अस्मि।

अर्थ—मैं आकाश, शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध व रूप भी नहीं हूँ, और न मैं माया व मायानिर्मित संसार ही हूँ।। २३।।

सदा साक्षिस्वरूपत्वाच्छिव एवास्मि केवलः।
मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।। २४।।

अन्वय—अहम्, सदा, साक्षिस्वरूपत्वात्, केवलः, शिवः, एव, अस्मि, मयि, एव, सकलम्, (इदम्) जातम्, मयि, एव, सर्वम्, प्रतिष्ठितम्, अस्ति।

अर्थ—सर्वदा साक्षिरूप होने से मैं केवल शिव ही हूँ, मेरे से ही यह समस्त संसार उत्पन्न हुआ है, और मेरे में ही प्रतिष्ठित भी है।। २४।।

मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्मास्म्यहमद्वयम्।
सर्वज्ञोऽहमनन्तोऽहं सर्वेशः सर्वशक्तिमान्।। २५।।

अन्वय—मयि, सर्वम्, (इदम्) लयम्, याति, अतः, अहम्, तत्, अद्वयम्, ब्रह्म, अस्मि, अहम् सर्वज्ञः, अस्मि, अहम्, अनन्तः, सर्वेशः सर्वशक्तिमान्, च, अस्मि।

अर्थ—अन्त में यह सारा जगत् मेरे में ही लीन हो जाता है, मैं ही वह अद्वैत ब्रह्म हूँ, इसीलिए मैं सर्वज्ञ, अनन्त, सबका शासन-कर्ता और सर्वशक्तिमान्

हूँ।। २५।।

आनन्दः सत्यबोधोऽहमिति ब्रह्मानुचिन्तनम्।
अयं प्रपञ्चो मिथ्यैव सत्यं ब्रह्माहमव्ययम्।। २६।।

अन्वय—अहम्, आनन्दः, सत्यबोधः, च, अस्मि, अयम्, प्रपञ्चः मिथ्या, अस्ति, अव्ययम्, अहम्, ब्रह्म, एव, सत्यम्, अस्मि, इति (एवं चिन्तनमेव) ब्रह्मानुचिन्तनम्, भवति।

अर्थ—मैं आनन्द व सत्यबोध रूप हूँ, यह दिखलाई देने वाला सारा प्रपञ्च तो मिथ्या है, अविनाशी मैं ब्रह्म ही एकमात्र सत्य हूँ—इस प्रकार का चिन्तन ही ब्रह्मानुचिन्तन कहा जाता है।। २६।।

अत्र प्रमाणं वेदान्ता गुरवोऽनुभवस्तथा।
ब्रह्मैवाहं न संसारी न चाहं ब्रह्मणः पृथक्।। २७।।

अन्वय—अत्र, वेदान्ताः, गुरवः तथा, अनुभवः, प्रमाणम्, अस्ति, अतः, अहम्, ब्रह्म एव, संसारी, न, अस्मि, अहम्, ब्रह्मणः, पृथक्, अपि, न, च, अस्मि।

अर्थ—ब्रह्म की सत्यता तथा जगत् के मिथ्यात्व में वेदान्त (उपनिषदादि ग्रन्थ) गुरुलोग, तथा अपना अनुभव ही प्रमाण हैं। अतः मैं ब्रह्म ही हूँ, संसारी नहीं, क्योंकि ब्रह्म से मेरी कोई पृथक् सत्ता नहीं है।। २७।।

नाहं देहो न मे देहः केवलोऽहं सनातनः।
एकमेवाद्वितीयं वै ब्रह्मणो नेह किञ्चन।। २८।।

अन्वय—अहम्, देहः, न, न, च, मे (मम) देहः, अस्ति, अहम्, (तु) केवलः, सनातनः, एकम्, अद्वितीयम्, वै, अस्मि, यतो, हि, ब्रह्मणः, पृथक्, इह, किञ्चन, न, अस्ति (नेह नानास्तीति श्रुतेः)।

अर्थ—मैं न तो देह हूँ, और न देह से मेरा कोई सम्बन्ध ही है, मैं तो केवल (निरञ्जन) सनातन, एक व अद्वितीय हूँ, इसलिए मुझसे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, श्रुति का भी यही कहना है—'नेह नानास्ति किञ्चन' इत्यादि।। २८।।

हृदयकमलमध्ये दीपवद् वेदसारं
प्रणवमयमतर्क्यं योगिभि र्ध्यानगम्यम्।
हरिगुरुशिवयोगं सर्वभूतस्थमेकं
सकृदपि मनसा वै चिन्तयेद्यः स मुक्तः।। २९।।

अन्वय—हृदयकमलमध्ये, दीपवत् (प्रकाशकम्) वेदसारम्, अतर्क्यम्,

योगिभिः, एव, ध्यानगम्यम्, हरिगुरुशिवयोगम्, सर्वभूतस्थम्, एकम्, (इदम्) प्रणवमयम्, (प्रणवरूपं परमात्मानम्) यः, सकृत्, अपि, मनसा, चिन्तयेत्, चेत्, सः वै (निश्चयेन) मुक्तः, स्यात्।

अर्थ—हृदयरूपी कमल के मध्य में दीपक के समान प्रकाशक, सभी वेदों का सारभूत, अतर्क्य (जिसके विषय में इदमित्थंतया कोई तर्क नहीं किया जा सकता है), केवल जो योगियों के ही ध्यान का विषय है, जिसका सम्बन्ध भगवान् विष्णु गुरु तथा भगवान् शंकर के साथ है, व्यापक रूप से जो सभी प्राणियों में विराजमान होते हुए भी एक है, ऐसे प्रणवरूप परमात्मा का यदि कोई मनुष्य एक बार भी विशुद्ध मन से ध्यान कर लेता है, तो वह अवश्य मुक्त हो जाता है।। २६।।

मनीषा-पञ्चकम्

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु स्फुटतरा या संविदुज्जृम्भते
या ब्रह्मादिपिपीलिकान्ततनुषु प्रोता जगत्साक्षिणी।
सैवाहं न च दृश्यवस्त्विति दृढप्रज्ञाऽपि यस्यास्ति चेत्
चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम।।१।।

अन्वय—या, संवित्, (प्रत्यक् चैतन्यम्) जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु, (अवस्थात्रयेषु) स्फुटतरा, उज्जृम्भते, या, ब्रह्मादिपिपीलिकान्ततनुषु, प्रोता, (सती) जगत्साक्षिणी, वर्तते, अहम्, अपि, सा, एव, अहम्, दृश्यवस्तु, न, च, अस्मि, इति, यस्य, दृढप्रज्ञा, अस्ति, चेत्, सः, चाण्डालः, अस्तु, द्विजः, तु (वा) अस्तु, (मम) गुरुः, अस्ति, इति, एषा, मम, मनीषा, अस्ति।

अर्थ—जो संवित्, प्रत्यक्-चैतन्य, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में स्पष्ट रूप से देदीप्यमान है, जो (चैतन्य) ब्रह्मादि से लेकर चींटी पर्यन्त सभी शरीरों में ओतप्रोत (व्याप्त) होता हुआ संसार का साक्षी है, मैं भी वही चैतन्य हूँ, मैं कोई दृश्यवस्तु नहीं हूँ, यह जिसका दृढ विचार है, वह चाण्डाल हो अथवा ब्राह्मण हो, सबका गुरु है, यही मेरा विचार है।। १।।

ब्रह्मैवाहमिदं जगच्च सकलं चिन्मात्रविस्तारितं
सर्वं चैतदविद्यया त्रिगुणयाऽशेषं मया कल्पितम्।

इत्थं यस्य दृढा मतिः सुखतरे नित्ये परे निर्मले
चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम।।२।।

अन्वय—अहम्, ब्रह्म, एव, अस्मि (तथा) इदम्, सकलम्, जगत्, च, चिन्मात्रविस्तारिम्, अस्ति, एतत्, सर्वम्, मया, त्रिगुणया, अविद्यया, कल्पितम्,। नित्ये, निर्मले, सुखतरे, परे, यस्य इत्थम्, दृढा मतिः, अस्ति, सः, चाण्डालः, अस्तु, तु (अथवा) द्विजः, अस्तु, गुरुः, अस्ति, इति, एषा, मम, मनीषा, अस्ति।

अर्थ—मैं ब्रह्म ही हूँ, तथा यह दृश्यमान सारा संसार भी चिन्मय है, क्योंकि मैंने इसे त्रिगुणात्मिका माया से नित्य निर्मल निरतिशय सुख स्वरूप उस पर-चैतन्य में कल्पित किया है, अतः कल्पित वस्तु की अधिष्ठान के अतिरिक्त कोई सत्ता न होने से यह समस्त संसार भी चिन्मय ही है, इस प्रकार का जिसका आत्म-विषयक दृढ निश्चय है, वह भले ही चाण्डाल हो या ब्राह्मण हो, सबका गुरु है, ऐसा मेरा विचार है।। २।।

शश्वन्नश्वरमेव विश्वमखिलं निश्चित्य वाचा गुरो-
र्नित्यं ब्रह्म निरन्तरं विमृशता निर्व्याजशान्तात्मना।
भूतं भावि च दुष्कृतं प्रदहता संविन्मये पावके
प्रारब्धाय समर्पितं स्ववपुरित्येषा मनीषा मम।। ३।।

अन्वय—गुरोः, वाचा, अखिलम्, विश्वम्, शश्वत्, नश्वरम्, एव, निश्चित्य, निर्व्याजशान्तात्मना, निरन्तरम्, नित्यम्, ब्रह्म, विमृशता, संविन्मये, पावके, भूतम्, भावि, च, दुष्कृतम्, प्रदहता (मया) इदम्, स्ववपुः प्रारब्धाय, समर्पितम्, इति, एषा, मम मनीषा,।

अर्थ—गुरु जी के उपदेश से, इस समस्त विश्व को प्रतिक्षण विनाशशील समझकर, निर्मल व शान्त चित्त से निरन्तर नित्य ब्रह्म का ध्यान करते हुए ज्ञानमय अग्नि में अपने सञ्चित व क्रियमाण (अतीत व अनागत) पुण्यपापादि कर्मों को भस्म करते हुए, अब इस शरीर को भी अवशिष्ट-प्रारब्ध कर्मों के भोगने के लिए समर्पित कर दिया है; यह मेरा निश्चय है।। ३।।

या तिर्यङ्नरदेवताभिरहमित्यन्तः स्फुटा गृह्यते
यद्भासा हृदयाक्षदेहविषया भान्ति स्वतोऽचेतनाः।
तां भास्यैः पिहितार्कमण्डलनिभां स्फूर्तिं सदा भावयन्
योगी निर्वृतमानसो हि गुरुरित्येषा मनीषा मम।। ४।।

अन्वय—या, (संवित्) तिर्यङ्नरदेवताभिः, अन्तः, अहम्, इति, स्फुटा,

गृह्यते, यद्भासा, हृदयाक्षदेहविषयाः, स्वतः, अचेतनाः, अपि, भान्ति, भास्यैः, (मेघादिपदार्थविशेषैः) पिहितार्कमण्डलनिभाम्, ताम्, स्फूर्तिम्, सदा, भावयन्, निर्वृतमानसः, योगी, हि, गुरुः, अस्ति, इति, एषा, मम, मनीषा, अस्ति।

अर्थ—जिस संवित् (चैतन्य) को पशु पक्षी नर व देवता लोग अपने अन्तःकरण में (अहमाकार) 'मैं' इस रूप से ग्रहण करते हैं, जिसकी प्रभा से अन्तःकरण इन्द्रियाँ, देह व विषय स्वतः अचेतन होते हुए भी चेतन की तरह मालूम पड़ते हैं, मेघों से जिस प्रकार सूर्यमण्डल आच्छादित रहता है, इसी प्रकार जो संवित् मलिनसत्त्वप्रधान प्रकृति से आच्छादित है, उसी स्फूर्तिरूप संवित् से जिसका मानस संतुष्ट है, ऐसा योगी सबका गुरु है, यही मेरा विचार है।। ४।।

यत्सौख्याम्बुधिलेशलेशत इमे शक्रादयो निर्वृता
यच्चित्ते नितरां प्रशान्तकलने लब्ध्वा मुनिर्निर्वृतः।
यस्मिन्नित्यसुखाम्बुधौ गलितधी र्ब्रह्मैव न ब्रह्मवित्
यः कश्चित्स सुरेन्द्रवन्दितपदो नूनं मनीषा मम।। ५।।

अन्वय—यत्सौख्याम्बुधिलेशलेशतः, इमे, शक्रादयः, निर्वृताः, नितराम्, प्रशान्तकलने, चित्ते, यत्, लब्ध्वा, मुनिः, निर्वृतः, भवति, नित्यसुखाम्बुधौ, यस्मिन् गलितधीः, ब्रह्मवित्, न, अपि तु, ब्रह्म, एव, भवति, सः, यः, कश्चित्, अपि, नूनम्, सुरेन्द्रवन्दितपदः, भवति, इति, मम, मनीषा, अस्ति।

अर्थ—जिस (संवित्) के अगाध आनन्द सागर के एक कण-परिमित=छोटी-सी आनन्द की मात्रा से ये इन्द्रादि देवता निरतिशय सुख का अनुभव करते हैं, अपने अत्यन्त शान्त वृत्तिरहित चित्त में जिसका ध्यान कर मुनि मोक्षानन्द को प्राप्त करता है, नित्य निरतिशय सुख-सागर रूप जिस चैतन्य में लीन हुआ साधक ब्रह्मज्ञानी ही नहीं अपितु ब्रह्मरूप ही हो जाता है, ऐसा व्यक्ति, वह चाहे कोई भी होय, निश्चित ही इन्द्र से भी पूजित है, ऐसा मेरा विचार है।। ५।।

माया-पञ्चकम्

निरुपमनित्यनिरंशकेऽप्यखण्डे, मयि चिति सर्वविकल्पनादिशून्ये।
घटयति जगदीशजीवभेदं, त्वघटितघटनापटीयसी माया।। १।।

अन्वय–अघटितघटनापटीयसी, माया, (एव) निरुपमनित्यनिरंशके, अखण्डे, सर्वविकल्पनादिशून्ये, अपि, मयि, चिति, जगदीशजीवभेदम्, घटयति।

अर्थ–अपूर्व रचना में चतुर माया (अर्थात् असम्भव को भी सम्भव दिखा देने वाली) ही, निरुपम, नित्य, निरवयव, अखण्ड, सभी प्रकार की उपाधियों से भी शून्य, अर्थात् निरञ्जन रूप 'मैं' जो शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसे मुझ में भी जीव व ईश्वर के रूप में विभाग की रेखा खींच देती है। जब शुद्धसत्त्व-प्रधान होकर मेरे सन्निकट रहती है तब तो ईश्वर का रूप धारण करा देती है, और जब मलिनसत्त्व-प्रधान होकर मेरे पास रहती है, तब जीव का रूप धारण करा देती है। इस प्रकार अपने शुद्धाशुद्धरूपों के परिवर्तन से अखण्ड चैतन्यरूप मुझ में भी विलक्षण भेद उत्पन्न कर देती है।। १।।

श्रुतिशतनिगमान्तशोधकानप्यहह धनादिनिदर्शनेन सद्यः।
कलुषयति चतुष्पदाद्यभिन्नानघटितघटनापटीयसी माया।। २।।

अन्वय–अहह! (आश्चर्य) अघटितघटनापटीयसी, माया, श्रुतिशतनिगमान्तशोधकान्, अपि, धनादिनिदर्शनेन, चतुष्पदाद्यभिन्नान्, (विधाय), सद्यः, कलुषयति।

अर्थ–आश्चर्य है कि विलक्षण रचना वाली यह माया, वेद-वेदान्तादि समस्त शास्त्रों के पारङ्गत, विद्वानों को भी, माया का ही अपना एक अत्याकर्षक अंश जो धन है, उसका लालच देकर, चौपाये अर्थात् पशुवत् बनाकर शीघ्र ही कलुषित कर देती है! (महाकवि बाण ने भी इस बात को अपने शब्दों में इस प्रकार कहा है 'धनमिव न कस्यचिन्नाकाङ्क्षणीयम्' अर्थात् धन सभी के लिए आकर्षण का केन्द्र है, क्योंकि यह माया का एक प्रबल अंश है)।।२।।

सुखचिदखण्डविबोधमद्वितीयं, वियदनलादिविनिर्मिते नियोज्य।
भ्रमयति भवसागरे नितान्तं, त्वघटितघटनापटीयसी माया।। ३।।

अन्वय–अघटितघटनापटीयसी, माया, तु, सुखचिदखण्डविबोधम्, अद्वितीयम्, वियदनलादिविनिर्मिते, भवसागरे, नियोज्य, नितान्तम्, भ्रमयति।

अर्थ–असम्भव वस्तु के निर्माण में निपुण यह माया, सत् चित् आनन्द व ज्ञानमय अद्वितीय, इस आत्मा को भी, आकाशादि पञ्चमहाभूतों से विनिर्मित, इस भवसागर में, लाकर, हमेशा घुमाती रहती है।। ३।।

अपगतगुणवर्णजातिभेदे, सुखचिति विप्रविडाद्यहंकृतिं च।
स्फुटयति सुतदारगेहमोहं, त्वघटितघटनापटीयसी माया।। ४।।

अन्वय–अघटितघटनापटीयसी, इयम्, माया, अपगतगुणवर्णजातिभेदे, सुखचिति, अपि, विप्रविडाद्यहंकृतिम्, सुतदारगेहमोहम्, च, स्फुटयति।

अर्थ–अपूर्व-रचना-निपुण यह माया, गुण (सौशील्यादि) वर्ण (ब्राह्मणादि) जाति (गौड आदि) के भेद से शून्य, आनन्दमय चैतन्य में भी, विप्र, वैश्यादि के अहंकार को, तथा पुत्र कलत्र गृहादि के मोह को भी प्रकट कर देती है।। ४।।

विधिहरिहरभेदमप्यखण्डे, बत विरचय्य बुधानपि प्रकामम्।
भ्रमयति हरिहरविभेदभावान् अघटितघटनापटीयसी माया।। ५।।

अन्वय–बत, अघटितघटनापटीयसी, (इयम्) माया, अखण्डे, अपि, (चैतन्ये) विधिहरिहरभेदम्, विरचय्य, हरिहरविभेदभावान्, बुधान्, अपि, प्रकामम्, भ्रमयति।

अर्थ–बड़े खेद की बात है, कि अभूतपूर्वरचना में चतुर यह माया, अखण्ड सच्चिदानन्द में भी अपने रज सत्त्व व तम गुणों के भेद से उत्पत्ति स्थिति व प्रलय रूप कार्य के लिए विधि हरि व हर का भेदरूप में निर्माण कर, वैष्णव व शैव की भेदभावना में अभिनिविष्ट चित्त वाले विद्वानों को भी निरन्तर चक्कर में डाल देती है (अर्थात् अद्वैत सत्य न समझे लोग शास्त्रादि जानकर भी भेद को सत्य समझते हैं यह माया का प्रभाव है क्योंकि है भेद मिथ्या।)।। ५।।

यतिपञ्चकम्

वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तो, भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः।
विशोकवन्तः करुणैकवन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः।। १।।

अन्वय–ये, वेदान्तवाक्येषु, सदा, रमन्तः, भिक्षान्नमात्रेण, च, तुष्टिमन्तः, सन्ति, तथा, विशोकवन्तः, करुणैकवन्तः, च, सन्ति, ते, कौपीनवन्तः, (अपि) खलु (निश्चयेन) भाग्यवन्तः, सन्ति।

अर्थ–जो (साधु) निरन्तर वेदान्त वाक्यों का चिन्तन करते रहते हैं, केवल भिक्षामात्र से संतुष्ट रहते हैं, ऐसे शोकमोह से रहित करुणावरुणालय कौपीनधारी जो साधु हैं, वे निश्चित ही भाग्यशाली हैं।। १।।

मूलं तरोः केवलमाश्रयन्तः पाणिद्वयं भोक्तुममत्रयन्तः।
कन्थामिव श्रीमपि कुत्सयन्तः, कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः।। २।।

अन्वय—ये च (साधवः स्वनिवासाय) केवलम्, तरोः, मूलम्, एव, आश्रयन्तः, सन्ति, भोक्तुम्, च, पाणिद्वयम्, अमत्रयन्तः, सन्ति, कन्थामिव, श्रीम्, अपि, कुत्सयन्तः, सन्ति, ते, खलु, कौपीनवन्तः, भाग्यवन्तः, सन्ति।

अर्थ—जो लोग अपने निवास के लिए केवल वृक्ष के मूल का आश्रय लेते हैं, भोजन के लिये बर्तन के रूप में केवल अपने दोनों हाथ रखते हैं, कन्था गुदड़ी की तरह जो सम्पत्ति से भी स्नेह नहीं करते, ऐसे कौपीनधारी सन्त निश्चित ही भाग्यशाली हैं।। २।।

देहादिभावं परिमार्जयन्तः, आत्मानमात्मन्यवलोकयन्तः।
नान्तं न मध्यं न बहिः स्मरन्तः, कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः।।३।।

अन्वय—ये, च, देहादिभावम्, परिमार्जयन्तः, सन्तः, आत्मनि, आत्मानम्, एव, केवलम्, अवलोकयन्तः, सन्ति, तथा, न, अन्तम्, न, मध्यम्, न च, बहिः, स्मरन्तः, सन्ति, ते, कौपीनवन्तः, खलु, भाग्यवन्तः, सन्ति।

अर्थ—जो लोग देहादि के अभिमान को हटाते रहते हैं, जीवात्मा में भी केवल परमात्मा का ही दर्शन करते हैं, तथा इस संसार की मध्यस्थिति व अन्तस्थिति का कोई विचार नहीं करते हैं और न ही आत्मा से बाह्य किसी विषय का स्मरण करते हैं, ऐसे कौपीनधारी सन्त निश्चित ही भाग्यशाली हैं।।३।।

स्वानन्दभावे परितुष्टिमन्तः, संशान्तसर्वेन्द्रियदृष्टिमन्तः।
अहर्निशं ब्रह्मणि ये रमन्तः, कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः।। ४।।

अन्वय—ये, च, स्वानन्दभावे, परितुष्टिमन्तः, सन्ति, संशान्त-सर्वेन्द्रियदृष्टिमन्तः, अहर्निशम्, ब्रह्मणि, एव, रमन्तः, ते, कौपीनवन्तः, खलु, भाग्यवन्तः, सन्ति।

अर्थ—जो लोग केवल परमानन्द में ही सन्तुष्ट हैं, शम-दमादिसाधन-सम्पत्तियों से जिनकी इन्द्रियाँ शान्त हैं, तथा दृष्टि निर्मल हो चुकी है, अतः दिन-रात जो केवल परब्रह्म में ही रमण करते हैं, वे कौपीनधारी सन्त निश्चित ही भाग्यशाली हैं।। ४।।

पञ्चाक्षरं पावनमुच्चरन्तः, पतिं पशूनां हृदि भावयन्तः।

भिक्षाशना दिक्षु परिभ्रमन्तः, कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः।। ५।।

अन्वय–ये, च, (तपस्विनः) पावनम्, पञ्चाक्षरम्, ('नमः शिवाय' इति,) उच्चरन्तः, सन्तः, पशूनाम्, पतिम्, हृदि, भावयन्तः, भिक्षाशनाः, सन्तः, दिक्षु, परिभ्रमन्तः, सन्ति, ते, कौपीनवन्तः, खलु, भाग्यवन्तः, सन्ति।

अर्थ–जो तपोधन पवित्र पञ्चाक्षरी मन्त्र ('नमः शिवाय') का उच्चारण करते हुए, हृदय में पशुपति भगवान् शंकर का ध्यान करते हैं, तथा केवल भिक्षामात्र भोजन से संतुष्ट होकर जो दिशाओं में परिभ्रमण करते हैं, वे कौपीनधारी साधु निश्चित ही भाग्यशाली हैं।। ५।।

सदाचारानुसन्धानम्

सच्चिदानन्दकन्दाय जगदङ्कुरहेतवे।

सदोदिताय पूर्णाय नमोऽनन्ताय विष्णवे।। १।।

अन्वय–सच्चिदानन्दकन्दाय, जगदङ्कुरहेतवे, सदोदिताय, पूर्णाय, अनन्ताय, विष्णवे, नमः (अस्तु)।

अर्थ–सत्, चित् व आनन्द के मूल उत्सरूप, जगत् रूपी अङ्कुर के निमित्त कारण, हमेशा स्फुट भासने वाले पूर्ण, और अनन्त श्री विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ।। १।।

सर्ववेदान्तसिद्धान्तै ग्रंथितं निर्मलं शिवं।

सदाचारं प्रवक्ष्यामि योगिनां ज्ञानसिद्धये।। २।।

अन्वय–अहम्, योगिनाम्, ज्ञानसिद्धये, सर्ववेदान्तसिद्धान्तैः, ग्रथितम्, निर्मलम्, शिवम्, सदाचारम्, प्रवक्ष्यामि।

अर्थ–मैं योगियों को ज्ञान की सिद्धि के लिए, सर्ववेदान्तसिद्धान्तों से समन्वित, निर्मल व कल्याणकारक सदाचार सिद्धान्त का प्रवचन करता हूँ।।२।।

प्रातः स्मरामि देवस्य सवितु भर्ग आत्मनः।

वरेण्यं तद्धियो यो नश्चिदानन्दे प्रचोदयात्।। ३।।

अन्वय–अहम्, देवस्य, सवितुः, आत्मनः, तत्, वरेण्यम्, भर्गः, प्रातः,

स्मरामि, यः, (देवः) नः, (अस्माकम्) धियः, चिदानन्दे, प्रचोदयात् ।।

अर्थ—मैं प्रातः दिव्य स्वरूप वाले सूर्य के समान प्रकाशात्मक आत्मा के उस श्रेष्ठ तेज का स्मरण करता हूँ, जो हमारी बुद्धि को चिदानन्द की ओर प्रेरित करता है।। ३।।

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु।
यदेकं केवलं ज्ञानं तदेवास्मि परं बृहत्।। ४।।

अन्वय—यत्, जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु, अन्वयव्यतिरेकाभ्याम् एकम्, केवलम्, ज्ञानम्, (ज्ञानरूपमेवावशिष्टं भवति) तत्, बृहत्, एव, अहम्, अस्मि।

अर्थ—जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति आदि दशाएँ आती-जाती रहने पर भी जो इन सब में हमेशा बना रहता है वह अकेला और विषय-सम्बन्ध से रहित व्यापक ज्ञान मैं हूँ।। ४।।

ज्ञानाज्ञानविलासोऽयं ज्ञानाज्ज्ञाने च शाम्यति।
ज्ञानाज्ञाने परित्यज्य ज्ञानमेवावशिष्यते।। ५।।

अन्वय—अयम्, ज्ञानाज्ञानविलासः, ज्ञानात् (वृत्तिरूपज्ञानविशेषात्) ज्ञाने (परमानन्दस्वरूपे) शाम्यति, (ते) ज्ञानाज्ञाने, (वृत्तिरूपज्ञानसहित-मज्ञानमित्यर्थः) परित्यज्य, (पर्यवसाने) ज्ञानम्, एव, केवलम्, अवशिष्यते।

अर्थ—यह (संसार) ज्ञानाज्ञान का विलास है, अर्थात् इस संसार रूपी रङ्गमंच में कथावस्तु के रूप में वर्णनीय तो केवल दो ही वस्तु हैं—एक ज्ञान है, दूसरा अज्ञान है। बस इन दो ही वस्तुओं का यह सारा खेल है। जब हमारी बुद्धिवृत्ति विवेकपूर्ण, अर्थात् सद्सत् विषय को पहचानने में समर्थ हो जाती है, तब यह खेल भी समाप्त हो जाता है, अर्थात् प्रपञ्च ज्ञान में ही लीन हो जाता है। अतः बुद्धिवृत्ति रूप ज्ञान तथा अज्ञान को यदि छोड़ दिया जाय तो फिर केवल सच्चिदानन्दरूप ज्ञान ही शेष रह जायेगा।। ५।।

अत्यन्तमलिनो देहो देही चात्यन्तनिर्मलः।
असङ्गोऽहमिति ज्ञात्वा शौचमेतत् प्रचक्षते।। ६।।

अन्वय—अयम्, देहः, अत्यन्तमलिनः, अस्ति, अहम्, देही, अत्यन्त-निर्मलः, असङ्गः, च, अस्मि, इति ज्ञात्वा, एतत् (ज्ञानमेव बुधाः) 'शौचम्' इति प्रचक्षते।

अर्थ—यह देह काम क्रोधादि दोषों से अत्यन्त मलिन है, पर मैं देही,

अत्यन्त निर्मल तथा असङ्ग हूँ, इस प्रकार के ज्ञान को ही शौच (शुद्धता) कहते हैं।। ६।।

मन्मनो मीनवन्नित्यं क्रीडत्यानन्दवारिधौ।
सुस्नातस्तेन पूतात्मा सम्यग्विज्ञानवारिणा।। ७।।

अन्वय–मन्मनः, मीनवत्, नित्यम्, आनन्दवारिधौ, क्रीडति, तेन, सम्यग्विज्ञानवारिणा, सुस्नातः, सन्, पूतात्मा, अस्ति।

अर्थ–मेरा मन मछली की तरह हमेशा आनन्द रूपी समुद्र में गोता लगाता रहता है, उस सुन्दर व स्वच्छ विज्ञान रूपी जल से स्नान करके पवित्र हो गया है।। ७।।

अथाघमर्षणं कुर्यात् प्राणापाननिरोधतः।
मनः पूर्णे समाधाय मग्नकुम्भो यथार्णवे।। ८।।

अन्वय–अथ (स्नानानन्तरम्) अर्णवे, मग्नकुम्भो, यथा (तथा) पूर्णे, मनः, समाधाय, प्राणापाननिरोधतः, अघमर्षणम्, कुर्यात्।

अर्थ–अब स्नान के बाद, समुद्र में निमग्न कुम्भ की तरह मन को पूर्ण ब्रह्म परमात्मा में स्थिर करके, नासापुटों के द्वारा प्राणापानादि वायुओं का निरोध करके अघमर्षण अर्थात् पापक्षय रूप प्राणायाम करे।। ८।।

लयविक्षेपयोः सन्धौ मनस्तत्र निरामिषम्।
स संधिः साधितो येन स मुक्तो नात्र संशयः।। ६।।

अन्वय–तत्र, लयविक्षेपयोः, सन्धौ, मनः, निरामिषम्, (भवति)। सः (एतादृशः) सन्धिः येन, साधितः, सः, मुक्तः, अत्र, संशयः, न, अस्ति।

अर्थ–उस पूर्ण ब्रह्म विषयक समाधि में अर्थात् प्राणायाम पूर्वक जो परब्रह्म पर एकाग्रता है, उसमें लय व विक्षेप की सन्धि अवस्था में मन अनात्म-विषयों से रहित हो जाता है। ऐसी संधि की अवस्था जिसने सिद्ध कर ली वह मुक्त ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।। ६।।

सर्वत्र प्राणिनां देहे जपो भवति सर्वदा।
हंसः सोऽहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैर्विमुच्यते।। १०।।

अन्वय–सर्वत्र, प्राणिनाम्, देहे, सर्वदा, 'हंसः सोऽहम्' इति, जपः, भवति, एवम्, ज्ञात्वा (नरः) सर्वबन्धैः, विमुच्यते।

अर्थ–सर्वत्र प्राणियों के शरीर में (श्वास-प्रश्वास द्वारा) सर्वदा 'हसः सोऽहम्' इत्याकारक जप होता रहता है, इस प्रकार अपने को भी 'मैं वही हंस हूँ' यह

जानकर मनुष्य सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है।। १०।।

तर्पणं स्वसुखेनैव स्वेन्द्रियाणां प्रतर्पणम्।
मनसा मन आलोक्य स्वयमात्मा प्रकाशते।। ११।।

अन्वय—स्वसुखेन, स्वेन्द्रियाणाम्, प्रतर्पणम्, एव, तर्पणम्, भवति, मनसा, मनः, आलोक्य, स्वयम्, आत्मा, प्रकाशते।

अर्थ—आत्म-सुख से इन्द्रियों को सुखी करना ही तर्पण करना है। मन से ही अर्थात् अन्तःकरण की स्वच्छ वृत्ति से मन अर्थात् आत्मा को देखकर खुद आत्मा भासता रहता है।। ११।।

आत्मनि स्वप्रकाशाग्नौ चित्तमेकाहुतिं क्षिपेत्।
अग्निहोत्री स विज्ञेयश्चेतरे नामधारकाः।। १२।।

अन्वय—यदा, स्वप्रकाशाग्नौ, आत्मनि, चित्तम्, एकाहुतिम्, क्षिपेत्, तदा, सः, अग्निहोत्री, विज्ञेयः इतरे, (होतारस्तु केवलम्) नामधारकाः, सन्ति।

अर्थ—जब (साधक) स्वयंप्रकाश अग्नि रूप आत्मा में अपने चित्तवृत्तिरूप एक अहुति का समर्पण करता है, तभी वह 'अग्निहोत्री' कहा जाता है, अन्यथा जो लौकिक अग्नि में तिलाज्यादि हवन करते हैं, वे तो केवल अग्निहोत्र नामधारी हैं।। १२।।

देहो देवालयः प्रोक्तो देही देवो निरञ्जनः।
अर्चितः सर्वभावेन स्वानुभूत्या विराजते।। १३।।

अन्वय—देहः, देवालयः, प्रोक्तः, देही (आत्मा) च, निरञ्जनः, देवः, अस्ति, सः, (देवः) सर्वभावेन, (अहं देव एव नान्योऽस्मीति भावेन) अर्चितः, सन्, स्वानुभूत्या, विराजते।

अर्थ—यह शरीर ही मन्दिर है, और इसमें प्रतिष्ठित जो आत्मा है, वही इष्टदेव है। इस प्रकार सर्वतोभावेन ('देवो भूत्वा देवान् यजेत' इस नियम से 'मैं भी वही आत्मदेव हूँ' यह समझकर) जो पूजा करता है, वही अपनी सच्ची अनुभूति से देदीप्यमान होता है।। १३।।

मौनं स्वाध्ययनं ध्यानं ध्येयब्रह्मानुचिन्तनम्।
ज्ञानेनेति तयोः सम्यङ् निषेधात्तत्त्वदर्शनम्।। १४।।

अन्वय—मौनम्, एव, स्वाध्ययनम्, (स्वाध्यायः) अस्ति, ध्येय-ब्रह्मानुचिन्तनम्, एव, ध्यानम्, अस्ति, सम्यक्, ज्ञानेन, तयोः (ध्यान-ध्येययोरित्यर्थः) निषेधात्, तत्त्वदर्शनम्, भवति।

अर्थ–साधक के लिए मौन ही स्वाध्याय है, और ध्येय ब्रह्म का अनुचिन्तन ही ध्यान है। सम्यक् ज्ञान के द्वारा जब ध्यान व ध्येय का परित्याग कर दिया जाता है, तब साधक को तत्त्व-दर्शन होता है, अर्थात् मुक्त हो जाता है।।१४।।

अतीतानागतं किंचिन्न स्मरामि न चिन्तये।
रागद्वेषौ विना प्राप्तं भुञ्जाम्यत्र शुभाशुभम्।। १५।।

अन्वय–किञ्चित्, अपि, अतीतानागतम्, (वस्तु) न, स्मरामि, न, च, चिन्तये, अपि, तु, अत्र, रागद्वेषौ, विना, प्राप्तम्, शुभाशुभम्, भुञ्जामि।

अर्थ–मैं अतीत (भूत) व भविष्यत् वस्तु का कुछ भी स्मरण नहीं करता हूँ, न चिन्तन ही करता हूँ, अपितु वर्तमान समय में देहयात्रामात्र के निर्वाह के लिए, प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त हुए शुभाशुभ विषयों का रागद्वेष के बिना, अर्थात् आसक्ति-रहित होकर, भोग कर रहा हूँ।। १५।।

देहाभ्यासो हि संन्यासो नैव काषायवाससा।
नाहं देहोऽहमात्मेति निश्चयो न्यासलक्षणम्।। १६।।

अन्वय–देहाभ्यासः, हि, संन्यासः, भवति, काषायवाससा, एव, संन्यासः, न, भवति। अहम्, देहः, न, अहम्, आत्मा, इति, निश्चयः, एव, न्यासलक्षणम्, (संन्यासलक्षणम्) अस्ति।

अर्थ–देहाभ्यास (देहों का अभितः =सर्वथा, आस=प्रक्षेप, फैंकना) संन्यास है, काषाय (गेरूए) वस्त्र पहन लेना ही संन्यास नहीं है। 'मैं देह नहीं हूँ बल्कि आत्मा हूँ', इस प्रकार का दृढ निश्चय ही संन्यास है।। १६।।

अभयं सर्वभूतानां दानमाहु र्मनीषिणः।
निजानन्दे स्पृहा नान्ये वैराग्यस्यावधिर्मता।। १७।।

अन्वय–सर्वभूतानाम् (कृते) अभयम्, (अभयदानम्) एव, मनीषिणः, (उत्तमम्) दानम्, आहुः, (केवलम्) निजानन्दे, एव, स्पृहा, अन्ये, विषये, न, (स्पृहाभाव एव) वैराग्यस्य, अवधिः, मता।

अर्थ–मनीषियों का कहना है कि प्राणिमात्र को अभयदान देना ही उत्तम दान है। अन्य लौकिक विषयों को छोड़कर केवल निजानन्द में ही स्पृहा रखना परम वैराग्य है।। १७।।

वेदान्तश्रवणं कुर्याद् मननं चोपपत्तिभिः।
योगेनाभ्यसनं नित्यं ततो दर्शनमात्मनः।। १८।।

अन्वय–नित्यम्, वेदान्तश्रवणम्, कुर्यात्, उपपत्तिभिः, (तस्य) मननम्, कुर्याद्, पुनः, योगेन, (योगाभ्याससचिवेन मनसा, स्वच्छचित्तेनेत्यर्थः)

अभ्यसनम्, (निदिध्यासनम्) कुर्यात्, ततः, आत्मनः, दर्शनम्, भवति।

अर्थ—नित्यप्रति वेदान्त का श्रवण करना चाहिए, और युक्तिपूर्वक उसका मनन भी करना चाहिए, तदनन्तर एकाग्रतापूर्वक उसका निदिध्यासन करना चाहिए तब आत्मदर्शन होता हैं। (यही श्रुति भी कहती है, 'आत्मा वाऽरे श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः')।। १८।।

शब्दशक्तेरचिन्त्यत्वाच्छब्दादेवापरोक्षधीः।
प्रसुप्तः पुरुषो यद्वच्छब्देनैवावबुद्ध्यते।। १६।।

अन्वय—शब्दशक्तेः, अचिन्त्यत्वात्, शब्दात्, एव, अपरोक्षधीः, भवति, यद्वत्, प्रसुप्तः, पुरुषः, शब्देन, एव, अवबुद्ध्यते।

अर्थ—शब्द-शक्ति की कोई अचिन्त्य महिमा है अतः शब्दप्रमाण से ही प्रत्यक्ष वस्तु का अपरोक्ष ज्ञान हो जाता है जैसे, दशमस्त्वमसि इत्यादि वाक्यों में। जिस प्रकार सोया हुआ पुरुष शब्द से ही जागता है, उसी प्रकार मोह निद्रा में सोया हुआ पुरुष भी वेदान्तादि वाक्य रूप शब्द से ही प्रबुद्ध होता है।। १६।।

आत्मानात्मविवेकेन ज्ञानं भवति निश्चलम्।
गुरुणा बोधितः शिष्यः शब्दब्रह्मातिवर्तते।। २०।।

अन्वय—आत्मानात्मविवेकेन, निश्चलम्, ज्ञानम्, भवति। गुरुणा, बोधितः, शिष्यः, शब्दब्रह्मातिवर्तते।

अर्थ—आत्मा और अनात्मा के विवेक ज्ञान (भेदज्ञान) के द्वारा पदार्थ-शोधन होने पर आत्मविषयक ज्ञान अत्यन्त दृढ हो जाता है। गुरु से उपदिष्ट शिष्य शब्दब्रह्म से परे हो जाता है (अर्थात् ज्ञान हो चुकने पर वेदरूप शब्दब्रह्म का वह विधेय नहीं रह जाता।)।।२०।।

न त्वं देहो नेन्द्रियाणि न प्राणो न मनो न धीः।
विकारित्वाद्विनाशित्वाद् दृश्यत्वाच्च घटो यथा।। २१।।

अन्वय—विकारित्वात्, विनाशित्वात्, दृश्यत्वात्, च, यथा, घटः, आत्मा, न भवति, तथा, त्वम्, देहः, न, इन्द्रियाणि, न, प्राणः, अपि, न, मनः, च, न, धीः, अपि, च, न, (असीत्यर्थः)।

अर्थ—जैसे विकारयुक्त, विनाशशील व दृश्य होने से घट आत्मा नहीं है, वैसे ही ये देहेन्द्रिय प्राण मन व बुद्धि भी सब विकारी, विनाशशील और ज्ञेय होने से आत्मा नहीं हो सकते हैं। (जब विकारित्वादि हेतुओं से उक्त देहेन्द्रियादियों में सर्वथा आत्मत्वाभाव है, तब त्वम् पदवाच्य जो आत्मा है, वह भी देहेन्द्रियादि नहीं है।)।। २१।।

विशुद्धं केवलं ज्ञानं निर्विशेषं निरञ्जनम्।
यदेकं परमानन्दं तत्त्वमस्यद्वयं परम्।। २२।।

अन्वय–यत्, केवलम्, निर्विशेषम्, निरञ्जनम्, विशुद्धम्, एकम्, अद्वयम्, परमानन्दम्, परम्, ज्ञानम्, अस्ति, तत्, एव, त्वम्, असि।

अर्थ–जो (तत्त्व) निर्विशेष, निरञ्जन (निर्दोष), विशुद्ध, केवल (एकरस) ज्ञानरूप, एक, अद्वितीय, (स्वगत सजातीय विजातीय भेदशून्य) परमानन्द और पर है, वही तुम भी हो (यद्यपि तत्पदवाच्य परोक्षत्व-सर्वज्ञत्वादि-विशिष्ट चैतन्य है, और त्वम्पदवाच्य अपरोक्षत्वाल्पज्ञत्वादि विशिष्ट चैतन्य है, तथापि भागत्यागलक्षणा द्वारा विरुद्ध परोक्षत्व-अल्पज्ञत्वादि अंशों के त्याग देने से तथा अविरुद्ध चैतन्यांश को ग्रहण कर लेने से तत् व त्वम् पदों का लक्ष्यार्थ अखण्ड चैतन्य मात्र होता है, अतः 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' यह सिद्धान्त भी चरितार्थ होता है)।। २२।।

शव्दस्याद्यन्तयोः सिद्धं मनसोऽपि तथैव च।
मध्ये साक्षितया नित्यं तदेव त्वं भ्रमं जहि।। २३।।

अन्वय–शब्दस्य, मनसः, च, आद्यन्तयोः, तथा, मध्ये, साक्षितया, सिद्धं, (यद्) नित्यं, तद्, एव, त्वम् भ्रमं जहि।

अर्थ–शब्द से उपलक्षित अखिल प्रपञ्च की उत्पत्ति व संहार एवं मध्य अर्थात् स्थिति का साक्षी होने से सिद्ध जो नित्य ब्रह्म वही तुम हो। इस बारे में भ्रम छोड़ो।। २३।।

स्थूलवैराजयोरैक्यं सूक्ष्महैरण्यगर्भयोः।
अज्ञानमाययोरैक्यं प्रत्यग्विज्ञानपूर्णयोः।। २४।।

अन्वय–स्थूल-वैराजयोः, ऐक्यम्, भवति, सूक्ष्म-हैरण्यगर्भयोः, ऐक्यम्, अस्ति, अज्ञानमाययोः, ऐक्यं, अस्ति. प्रत्यग्विज्ञानपूर्णयोः, अपि, ऐक्यम्, अस्ति।

अर्थ–स्थूल प्रपञ्च की व्यष्टि और उसकी समष्टि विराज में एकता है, सूक्ष्म प्रपञ्च की व्यष्टि तथा उसकी समष्टि हिरण्यगर्भ, में एकता है, अज्ञान की व्यष्टि तथा उसकी समष्टिभूत माया में एकता है, जीव तथा परिपूर्ण ब्रह्म में भी एकता है।। २४।।

चिन्मात्रैकरसे विष्णौ ब्रह्मात्मैक्यस्वरूपके।
भ्रमेणैव जगज्जातं रज्ज्वां सर्पभ्रमो यथा।। २५।।

अन्वय–ब्रह्मात्मैक्यस्वरूपके, चिन्मात्रैकरसे, विष्णौ, इदम्, जगत्,

भ्रमेण, एव, जातम्, यथा, रज्ज्वाम्, सर्पभ्रमः, भवति।

अर्थ—ब्रह्म ही है एकमात्र स्वरूप जिसका ऐसे एकरस चैतन्य स्वरूप वाले भगवान् में जो यह प्रपञ्चरूप जगत् दिखलाई देता है, इसमें एकमात्र कारण भ्रम ही है, जैसे रस्सी में भ्रम से सर्प की प्रतीति होती है।। २५।।

तार्किकाणां तु जीवेशौ वाच्यावेतौ विदुर्बुधाः।

लक्ष्यौ च सांख्ययोगाभ्यां वेदान्तैरेकता तयोः।। २६।।

अन्वय—तार्किकाणाम्, तु, एतौ, जीवेशौ, (त्वन्तत्पदयोः) वाच्यौ, स्तः, इति (यतो हि जीवात्मपरमात्मनो र्भेदस्तत्र प्रदर्शितः) सांख्ययोगाभ्याम्, पुनः, एतौ, जीवेशौ, लक्ष्यौ, (लक्षणावृत्त्या गम्यौ, तत्रापि पुरुषबहुत्वादि भेदादित्यर्थः। परन्तु) वेदान्तैः, तयोः, (तत्त्वंपदवाच्ययोः, जीवेशयोः,) एकता, (प्रदर्शिता, इति) बुधाः, विदुः।

अर्थ—नैय्यायिक जिन्हें जीव व ईश्वर मानते हैं वे त्वम् और तत् पदों के वाच्यार्थ हैं। सांख्य-योगी जिन्हें जीव-ईश्वर मानते हैं वे इन पदों के लक्ष्य अर्थ हैं। वेदान्तों द्वारा जीव-ईश्वर की एकता बतायी गयी है। ऐसा विद्वान् समझते हैं।। २६।।

कार्यकारणवाच्यांशौ जीवेशौ यौ जहच्च तौ।

अजहच्च तयो र्लक्ष्यौ चिदंशावेकरूपिणौ।। २७।।

अन्वय—यौ, कार्यकारणवाच्यांशौ, जीवेशौ, स्तः, तौ (जीवेशौ) जहत्, च, तयोः, (त्वन्तत्पदयोः) लक्ष्यौ एकरूपिणौ, चिदंशौ, अजहत्, च (वेदान्तैरेकतोच्यत इति पूर्वेण सम्बन्धः)।

अर्थ—कार्योपाधिक जीव और कारणोपाधिक ईश्वर—ये त्वम् और तत् शब्दों के अर्थों के वाच्य अंश हैं तथा दोनों में समानरूप से विद्यमान चेतन दोनों शब्दों के अर्थों में लक्ष्य अंश हैं। वेदान्तवाक्य वाच्य अंश छोड़कर लक्ष्य अंश ग्रहण कर लक्ष्यों की एकता बताते हैं।। २८।।

कर्मशास्त्रे कुतो ज्ञानं तर्के नैवास्ति निश्चयः।

सांख्ययोगौ भिदापन्नौ शाब्दिकाः शब्दतत्पराः।। २८।।

अन्वय—कर्मशास्त्रे, (पूर्वमीमांसायामित्यर्थः) ज्ञानम्, (आत्मज्ञानमित्यर्थः) कुतः (तत्र विहितनिषिद्धादिकर्मणामेव प्राधान्येन प्रतिपादनात्)। तर्के (न्यायशास्त्रे) निश्चयः, नैव, अस्ति (तर्काप्रतिष्ठानादिति)। सांख्ययोगौ, पुनः, भिदापन्नो, (भेदाभिनिवेशिनौ स्तः)। शाब्दिकाः, शब्दतत्पराः, (केवलं शब्दसाधुत्वमात्रान्वेषिणः सन्ति)।

अर्थ–कर्मशास्त्र अर्थात् पूर्वमीमांसा वेदवाक्यों के केवल विधिनिषेधादि के तात्पर्य के व्याख्यान में संलग्न है, न कि विशुद्ध आत्मतत्त्व के प्रतिपादन में, इसलिए वहाँ आत्मा का ज्ञान होना असंभव है। तर्कशास्त्र (न्यायदर्शन) तर्कप्रधान होने से किसी वास्तविक निर्णय पर नहीं पहुँच सकता है, क्योंकि केवल तर्क की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। यदि एक व्यक्ति किसी प्रकार का तर्क करता है तो दूसरा उससे भी प्रबल तर्क कर सकता है, अतः केवल कोरे तर्क से किसी बात का निर्णय नहीं होता है। यद्यपि सांख्य- योग शास्त्रों ने आत्मा के विषय में तर्क के बल पर काफी विचार किया है, तथापि वे भी पुरुष बहुत्ववाद के कारण द्वैतवादी ही हैं अतः अद्वैत आत्मा से अनभिज्ञ हैं। शाब्दिक, वैय्याकरण, शब्द ब्रह्म को मानने वाले भी, केवल शब्द साधुत्व मात्र के जञ्जाल में मग्न हैं, वे भी आत्मविषयक कोई वास्तविक निर्णय पर नहीं पहुँचे हैं।। २८।।

अन्ये पाखण्डिनः सर्वे ज्ञानवार्ता सुदुर्लभा।
एकं वेदान्तविज्ञानं स्वानुभूत्या विराजते।। २९।।

अन्वय–अन्ये (कौलाचार-वामाचार-पाशुपत-शाक्त-पाञ्चरात्रादि-दार्शनिका इत्यर्थः) सर्वे, पाखण्डिनः, सन्ति, (एषु च सर्वेषु) ज्ञानवार्ता सुदुर्लभा, अस्ति, अस्मिन् विषये, केवलम्, एकम्, वेदान्तविज्ञानम्, एव स्वानुभूत्या, विराजते, (स्वानुभवप्रमाणमुपस्थाप्य परमार्थं प्रतिपादयतीत्यर्थः)।

अर्थ–पूर्व वर्णित दर्शनों से अतिरिक्त जो कौलाचार, वामाचार, पाशुपत, शाक्त, पाञ्चरात्रादि सम्प्रदाय हैं, वे पाखण्डी हैं, आडम्बरपूर्ण क्रिया-कलापों के प्रदर्शन में निपुण हैं, इन मतों में सिवाय वितण्डा के और कोई वास्तविक अर्थ नहीं है, अतः इस विषय में परमार्थ सत् का प्रतिपादन करने वाला दर्शन केवल एक वेदान्त दर्शन ही है।। २९।।

अहं ममेत्ययं बन्धो ममाहं नेति मुक्तता।
बन्धो मोक्षो गुणै र्भाति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।। ३०।।

अन्वय–अहम्, (देहेन्द्रियादिषु, अहंबुद्धिः) तथा, मम, (सांसारिकेषु तत्तदनात्मवस्तुषु ममत्वबुद्धिः) इति, अयम्, एव, बन्धः अहम्, न, (देहेन्द्रियादिः) मम, न, (=नैतेषु सम्बन्धः) इति, मुक्तता। बन्धो-मोक्षः, (च) गुणैः (सत्त्वादिभिः) भाति, इमे गुणाः, प्रकृति सम्भवाः, सन्ति।

अर्थ—'मैं' और 'मेरा' यही असली बन्धन है, अर्थात् देहेन्द्रियादि जो अनात्म पदार्थ हैं, उनमें 'ये मैं हूँ' इस प्रकार का ज्ञान तथा अन्य के सुखदुःखादि का अपने से सम्बन्ध जोड़ लेना, या अनात्म पदार्थों में ममत्व रखना—यही मुख्य बन्ध है। 'मैं देहेन्द्रियादि से पृथक् हूँ, और ये सुख दुःखादि भी मेरे नहीं हैं, न इन अनात्म पदार्थों के साथ मेरा कोई सम्बन्ध ही है'—इस प्रकार का ज्ञान होना ही मुक्तता या मोक्ष है। वस्तुतः यह बन्ध-मोक्ष तो केवल गुणों का खेल है, ये गुण मायिक हैं, आत्मा तो सदैव मुक्त है।।३०।।

ज्ञानमेकं सदा भाति सर्वावस्थासु निर्मलम्।
मन्दभाग्या न जानन्ति स्वरूपं केवलं बृहत्।। ३१।।

अन्वय—सर्वावस्थासु, एकम्, निर्मलम्, ज्ञानम्, (एव) भाति (परन्तु) मन्दभाग्याः (तस्य ज्ञानस्य) केवलम्, बृहत्, स्वरूपम्, न, जानन्ति।

अर्थ—जाग्रदादि सभी अवस्थाओं मे केवल एक निर्मल ज्ञान की ही प्रतीति होती है, परन्तु भाग्यहीन मन्दमति लोग उस ज्ञान के इस व्यापक स्वरूप को नहीं जानते हैं।। ३१।।

संकल्पसाक्षि यज्ज्ञानं सर्वलोकैकजीवनम्।
तदेवास्मीति यो वेद स मुक्तो नात्र संशयः।। ३२।।

अन्वय—सर्वलोकैकजीवनम्, यत्, ज्ञानम्, संकल्पसाक्षि, (संकल्पात्मकस्य मनसो वृत्तेः साक्षीत्यर्थः) तत्, (ज्ञानम्) एव, अहम्, अस्मीति, यः, वेद, सः, मुक्तः, अस्ति, अत्र, संशयः, न।

अर्थ—समस्त लोकों का जीवन-स्वरूप जो ज्ञान, संकल्पात्मक मन की वृत्तियों का भी साक्षी है, वही मैं हूँ, इस प्रकार जो जानता है, वह मुक्त ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं।। ३२।।

प्रमाता च प्रमाणं च प्रमेयं प्रमितिस्तथा।
यस्य भासाऽवभासन्ते मानं भासाय तस्य किम्।। ३३।।

अन्वय—प्रमाता (अन्तःकरणावच्छिन्नं चैतन्यम्), प्रमाणम् (चक्षुरादीन्द्रियवृत्त्यवच्छिन्नं चैतन्यम्), प्रमेयम् (विषयावच्छिन्नम् चैतन्यम्) तथा प्रमितिः (प्रमायथार्थज्ञानमित्यर्थः) यस्य, भासा, (एते) अवभासन्ते, तस्य (चैतन्यस्य) भासाय, मानम्, (प्रमाणम्) किम्, (न किमपीत्यर्थः)।

अर्थ—प्रमाता (जीव), चक्षु आदि इन्द्रियाँ अथवा इन्द्रिय वृत्ति के अर्थाकार परिणामरूप प्रत्यक्षादि प्रमाण और तत्तत् प्रमाणों से होने वाली जो प्रमायें

(यर्थाथ ज्ञान) हैं, ये सब जिस (तुरीय) चैतन्य से प्रकाशित होते हैं, भला उस चैतन्य को प्रकाशित करने के लिए फिर किसी प्रमाण की क्या आवश्यकता? ।।३३।।

अर्थाकारा भवेद् वृत्तिः फलेनार्थः प्रकाशते।
अर्थज्ञानं विजानाति स एवार्थः परः स्मृतः।। ३४।।

अन्वय–(प्रत्यक्षस्थले) यदा, वृत्तिः, अर्थाकारा, भवेत्, तदा, फलेन (फलचैतन्येन) अर्थः, प्रकाशते, अर्थज्ञानम्, विजानाति, सः, एव, परः, अर्थः, स्मृतः।

अर्थ–प्रत्यक्ष स्थल में जब हमारी अन्तःकरण की वृत्ति इन्द्रिय प्रणालिका द्वारा विषय देश में जाती है, तो उस विषयाकार से आकारित हो जाती है, अर्थात् जैसा अर्थ (विषय) रहता है, वैसा अन्तःकरण वृत्ति का भी आकार हो जाता है। तब अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित चैतन्यरूप फल से विषय भास जाता है। विषय को और उसके ज्ञान को जो जानता है वही परमार्थ है, साक्षी है।। ३४।।

वृत्तिव्याप्यत्वमेवास्तु फलव्याप्तिः कथं भवेत्।
स्वप्रकाशस्वरूपत्वात् सिद्धत्वाच्च चिदात्मनः।। ३५।।

अन्वय–चिदात्मनः, स्वप्रकाशस्वरूपत्वात्, सिद्धत्वात् (च) वृत्तिव्याप्यत्वम्, एव, अस्तु, फलव्याप्तिः, कथम्, भवेत्।

अर्थ–चिद्रूप आत्मा क्योंकि स्वरूप से स्वप्रकाश है एवं नित्य उपस्थित अपरिवर्तनीय तत्त्व है इसलिये वह वृत्ति से व्याप्त अर्थात् वृत्ति का विषय तो होता है पर फल से व्याप्त नहीं अर्थात् चिदाभास से स्फुरित नहीं होता है क्योंकि मुख्य प्रकाश कभी गौण प्रकाश से प्रकाशित नहीं हो सकता। ।३५।।

चित्तं चैतन्यमात्रेण संयोगाच्चेतना भवेत्।
अर्थादर्थान्तरे वृत्तिर्गन्तुं चलति चान्तरे।। ३६।।

अन्वय–चैतन्यमात्रेण, (सह) संयोगात्, चित्तम्, चेतना, (चेतनावत्) भवेत्, वृत्तिः, अर्थात्, अर्थान्तरे, गन्तुम्, अन्तरे, चलति।

अर्थ–चैतन्यमात्र के साथ संयोग होने से जड चित्त भी चेतनवत् हो जाता है अर्थात् शरीर में व्याप्त चेतना चैतन्ययुक्त चित्त ही है। चित्तवृत्ति एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ को ग्रहण करने के लिए अन्दर ही अन्दर चलती है।। ३६।।

निराधारा निर्विकारा या दशा सोन्मनी स्मृता।
चित्तं चिदिति जानीयात् तकाररहितं यदा।। ३७।।

अन्वय—या, निराधारा, निर्विकारा, दशा, भवति, सा, दशा, उन्मनी, स्मृता। यदा, चित्तम्, तकाररहितम्, तदा चित्, इति, जानीयात्,।

अर्थ—जो, निराधार (निरालम्ब, निर्विकल्पक अवस्था) तथा निर्विकार (निरञ्जन, निरस्त-समस्तोपाधिभूत) दशा है, वह उन्मनी दशा कहलाती है। जब चित्त, अन्तिम तकार से रहित होता है तब केवल चित् (चिन्मात्र) हो जाता है।। ३७।।

तकारो विषयाध्यासो जपारागो यथा मणौ।
ज्ञेयवस्तुपरित्यागाज्ज्ञानं तिष्ठति केवलम्।। ३८।।

अन्वय—यथा, मणौ, (स्फटिकमणौ) जपारागः, (अध्यस्त इत्यर्थः) तथा, चिति, अपि, चित्तस्य, यः, तकारः अस्ति, सः, विषयाध्यासः, अस्ति। (तकार-रूप) ज्ञेयवस्तु परित्यागात्, केवलम्, ज्ञानम्, एव, तिष्ठति।

अर्थ—जिस प्रकार स्वच्छ स्फटिक मणि के सन्निधि में स्थित जपाकुसुम की लालिमा से स्फटिकमणि लाल है, यह व्यवहार होता है, उसी प्रकार सर्वथा स्वच्छ चित् (चैतन्य) में भी विषयाध्यासरूप तकार का अध्यास, होने से चैतन्य भी चित्त मालूम पड़ता है। चित्त में से ज्ञेयवस्तु को यदि अलग कर दिया जाय तो केवल चित्, ज्ञान ही अवशिष्ट रहेगा। (तात्पर्य है कि उपाधि-तादात्म्य हटाने पर चिन्मात्ररूप से स्थिति घट जाती है, 'चिदाभास ही मैं हूँ, ऐसा जीवभाव नहीं रहता।। ३८।।

त्रिपुटी क्षीणतामेति ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।
मनोमात्रमिदं सर्वं तन्मनो ज्ञानमात्रकम्।। ३६।।

अन्वय—इदम्, सर्वम्, जगत्, मनोमांत्रम्, (मनोविलासविजृम्भित-मित्यर्थः) अस्ति, यदा, मनः, ज्ञानमात्रकम्, भवति, तदा, त्रिपुटी, (ज्ञातृज्ञानज्ञेयरूपेयं त्रिपुटी) क्षीणताम्, (निष्प्रयोजनमित्यर्थः) एति, (नरः) ब्रह्मनिर्वाणम्, ऋच्छति।

अर्थ—यह समस्त संसार केवल मन की उपज है, अर्थात् हमारे मन की कल्पनाओं का ही एक सञ्चित कोश है। जब कल्पक मन ही ज्ञान में लीन हो जाता है, तब फिर ज्ञाता, ज्ञान व ज्ञेय रूप इस त्रिपुटी का कोई मतलब ही नहीं रह जाता है। ऐसी दशा में साधक ब्रह्म-निर्वाण, मोक्ष को प्राप्त करता है।। ३६।।

अज्ञानं भ्रम इत्याहु र्विज्ञानं परमं पदम्।
अज्ञानं चान्यथाज्ञानं मायामेतां वदन्ति ते।। ४०।।

अन्वय–(विद्वांसः) अज्ञानम्, भ्रमः, इति, आहुः, विज्ञानम्, परमम्, पदम्, आहुः, इदम्, अज्ञानम्, एव, अन्यथाज्ञानम्, च, अस्ति, अतः, ते (विद्वांसः) एताम्, मायाम्, वदन्ति।

अर्थ–विद्वान् लोग अज्ञान को ही भ्रम कहते हैं, और विज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान को ही परम पद मोक्ष कहते हैं। वे विद्वान् इस माया को ही अन्यथा ज्ञान (विपरीत ज्ञान, अयथार्थ ज्ञान) और अज्ञान कहते हैं।। ४०।।

ईश्वरं मायिनं विद्यान्मायातीतं निरञ्जनम्।
सदानन्दे चिदाकाशे माया मेघस्तडिन्मतिः।। ४१।।

अन्वय–ईश्वरम्, मायिनम्, (विशुद्धसत्त्वप्रधानं चैतन्यमित्यर्थः) विद्यात्, निरञ्जनम्, मायातीतम्, विद्यात्, (निरवच्छिन्नमित्यर्थः) अस्मिन्, सदानन्दे चिदाकाशे, माया, मेघरूपा, तडित्, मतिरूपा, वर्तते।

अर्थ–विशुद्ध-सत्त्वप्रधान माया से अवच्छिन्न चैतन्य को ही ईश्वर कहते हैं, अतः वह मायी है, क्योंकि माया हमेशा ईश्वर के वश में है, जबकि जीव माया के वश में है। इस त्रिगुणात्मिका माया से परे जो विशुद्ध चैतन्य है, उसी को निरञ्जन समझना चाहिए सर्वदा आनन्दमय यह जो चैतन्यरूप आकाश है, इसमें माया मेघ के समान है, और बुद्धि बिजली के समान है।। ४१।।

अहंता गर्जनं तत्र धारासारा हि वृत्तयः।
महामोहान्धकारेऽस्मिन् देवो वर्षति लीलया।। ४२।।

अन्वय–तत्र, (मायामेघाच्छादिते चिदाकाशे) अहंता (अहंकारः) एव, गर्जनम्, अस्ति, वृत्तयः, एव धारासाराः, सन्ति, अस्मिन्, महामोहान्धकारे, (अज्ञानान्धकाराच्छन्नायां निशायामित्यर्थः) देवः, (ईश्वरः) लीलया, वर्षति।

अर्थ–इस माया मेघ से आच्छादित चिदाकाश में, अहंकार ही गर्जन है, चित्तवृत्तियाँ ही, धारापूर्वक वृष्टि है या मूसलाधार वृष्टि है। इस प्रकार इस महामोह रूप अज्ञानान्धकार से व्याप्त निशा में (ईश्वर) देव लीलापूर्वक वृष्टि कर रहा है।। ४२।।

तस्या वृष्टे र्विरामाय प्रबोधैकसमीरणः।
ज्ञानं दृग्दृश्ययोर्भानं विज्ञानं दृश्यशून्यता।। ४३।।

अन्वय–तस्याः (अनर्थशतसंकुलायाः) वृष्टेः, विरामाय, प्रबोधैकसमीरणः, प्रचलति, ततः, दृग्दृश्ययोः, यत्, भानम्, भवति, तत्, ज्ञानम्, उच्यते, यदा, च, विवेकज्ञानात्, दृश्यशून्यता, भवति, तदा, तत्, विज्ञानम् (मोक्षज्ञानम्) कथ्यते।

अर्थ—उस अनर्थ-समुदाय को वर्षाने वाली वृष्टि के विराम के लिए, वहाँ प्रबोध रूपी वायु बहता है, जिसमें दृक्-आत्मा से दृश्य-अनात्मा का विवेक ज्ञान हो जाता है, इस विवेकज्ञान द्वारा जो दृश्य की शून्यता है, वही विज्ञान या मोक्षप्रद ज्ञान है।। ४३।।

एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानाऽस्ति किंचन।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयो र्ज्ञानं तज्ज्ञानं ज्ञानमुच्यते।। ४४।।

अन्वय—इह, (पूर्वोक्तस्य दृश्यस्य शून्यत्वाद्धेतोरात्मनि) किंचन, नाना, नास्ति, अपि, तु, एकम्, एव, अद्वयम्, ब्रह्म (अस्ति) इत्थम्, क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः, (विषये) यत्, ज्ञानम्, अस्ति, (अद्वयज्ञानमित्यर्थः) तत्, ज्ञानम्, एव, वस्तुतः, ज्ञानम्, उच्यते।

अर्थ—इस प्रकार क्योंकि दृश्य मिथ्या है इसलिये आत्मा में द्वैतात्मक वस्तु नहीं है, अपितु परमार्थतः केवल एक अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ अर्थात् उपाधि और उसके अधिष्ठान का जो ज्ञान है, वस्तुतः वही आत्मविषयक ज्ञान है।। ४४।।

विज्ञानं चोभयोरैक्यं क्षेत्रज्ञपरमात्मनोः।
परोक्षं शास्त्रजं ज्ञानं विज्ञानं चात्मदर्शनम्।। ४५।।

अन्वय—उभयोः, क्षेत्रज्ञपरमात्मनोः, ऐक्यम्, विज्ञानम्, (उच्यते), शास्त्रजम्, ज्ञानम्, परोक्षम्, (भवति, परन्तु) विज्ञानम्, च (तु) आत्मदर्शनम् (स्वात्मसाक्षात्कारात्मकमित्यर्थः) भवति।

अर्थ—क्षेत्रज्ञ और परमात्मा की एकता का नाम विज्ञान है। शास्त्र से होने वाला यह जीव-ब्रह्म विषयक अद्वैत ज्ञान परोक्ष ज्ञान कहा जाता है, आत्मसाक्षात्कार रूप अद्वैतात्मक दर्शन विज्ञान कहलाता है।। ४५।।

आत्मनो ब्रह्मणः सम्यगुपाधिद्वयवर्जितम्।
त्वमर्थविषयं ज्ञानं विज्ञानं तत्पदाश्रयम्।। ४६।।

अन्वय—आत्मनः, ब्रह्मणः, (च), सम्यग्, उपाधिद्वयवर्जितम्, त्वमर्थ-विषयम्, तत्पदाश्रयम्, ज्ञानम्, (एव) विज्ञानम् (उच्यते)।

अर्थ—भलीभाँति दोनों उपाधियों से रहित जो आत्मा और ब्रह्म का त्वम्पदार्थ व तत्पदार्थों के अभेद को विषय करने वाला ज्ञान वही विज्ञान कहा जा रहा है। ('तत्त्वमसि' से प्रारंभिक बोध ब्रह्मप्रकारक व जीवविशेष्यक होता है, विशिष्ट ज्ञान में विरोध भासने पर लक्षणा से अखण्डार्थ का पता चलता है, उसे विज्ञान कह रहे हैं। इसके लिये जीव-ईश्वर की उपाधियाँ

पूर्णतः त्यागनी आवश्यक हो जाती हैं।)।। ४६।।

पदयोरैक्यबोधस्तु ज्ञानविज्ञानसंज्ञितम्।
आत्मानात्मविवेकं च ज्ञानमाहु र्मनीषिणः।। ४७।।

अन्वय—पदयोः, (तत्त्वंपदयोः) ऐक्यबोधः, (लक्षणावृत्तिद्वारा अखण्ड-चैतन्यार्थप्रतिपत्तिः) ज्ञानविज्ञानसंज्ञितम् (अस्ति) आत्मानात्मविवेकम्, मनीषिणः, ज्ञानम्, आहुः।

अर्थ—तत् और त्वम् पदों का लक्षणावृत्ति द्वारा जो अखण्ड चैतन्यार्थ है, उसी के अनुभव को 'ज्ञानविज्ञान' तथा 'आत्मानात्मविवेक' को ज्ञान कहते हैं।। ४७।।

अज्ञानं चान्यथा लोके विज्ञानं तन्मयं जगत्।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां सर्वत्रैकं प्रपश्यति।। ४८।।
यत्तत्तु वृत्तिजं ज्ञानं विज्ञानं ज्ञानमात्रकम्।
अज्ञानध्वंसकं ज्ञानं विज्ञानं चोभयात्मकम्।। ४६।।

अन्वय—लोके (यद्) अन्यथा (ज्ञानमास्ते तद्) अज्ञानम् (आहुः)। तन्मयं जगद् (यदनुभूयते तद्) विज्ञानम् (आहुः)। अन्वयव्यतिरेकाभ्यां सर्वत्र एकं यत् प्रपश्यति तद् वृत्तिजम् ज्ञानम्। ज्ञानमात्रकम् विज्ञानम् ज्ञानम् एव अज्ञानध्वंसकम्। विज्ञानम् च (=तु) उभयात्मकम्।

अर्थ—विवेकज्ञान व अखण्ड ज्ञान से अतिरिक्त लोक में जो अन्यान्य प्रकार के ज्ञान होते हैं वे विद्वानों की दृष्टि में अज्ञान ही हैं। जगत् ब्रह्ममय है ऐसा अनुभव विज्ञान है। अन्वय-व्यतिरेक के सहारे सब चराचर उपाधियों में एक परमात्मा को देखने वाला वृत्तिजन्य ज्ञान है। ज्ञातृ-ज्ञानादि भेदों से असम्बद्ध केवल ज्ञान का नाम विज्ञान है। ज्ञान अर्थात् वृत्तिजन्य ज्ञान अज्ञान का नाशक है, विज्ञान तो (वृत्तिसम्बद्ध होकर) अज्ञान को नष्ट भी करता है एवं (बिना वृत्तिसम्बन्ध के) अज्ञान को प्रकाशित भी करता रहता है।। ४८।। ४६।।

ज्ञानविज्ञाननिष्ठोऽयं तत्सद्ब्रह्मणि चार्पणम्।
भोक्ता सत्त्वगुणः शुद्धो, भोगानां साधनं रजः।। ५०।।

अन्वय—यदा, अयम्, (जीवः) ज्ञानविज्ञाननिष्ठः, भवति, तदा, तत्सद्ब्रह्मणि, अर्पणम्, भवति। अयम्, शुद्धः, सत्त्वगुणः (शुद्धसत्त्व-प्रधानान्तःकरणयुक्तं चैतन्यमित्यर्थः) भोक्ता, भवति। भोगानाम्, साधनम्, रजः, (रजोगुणप्रधानान्तःकरणादीनीन्द्रियाणीत्यर्थः) भवति।

अर्थ—जब यह चिदाभास जीव, ज्ञान-विज्ञान-निष्ठ होता है, तो फिर सच्चिदानन्द परमात्मा में ही अपने को अर्पण कर देता है, अपने स्वरूप में ही स्थित हो जाता है। (सारे कर्म की समाप्ति पर कर्म को ब्रह्मार्पण किया जाता है, तत्स्थानीय ज्ञान-विज्ञान में स्थित होना है।) शुद्ध सत्त्वप्रधान अन्तःकरण-युक्त चैतन्य ही भोक्ता है, और रजोगुण प्रधान अन्तःकरण (एवं इन्द्रियाँ) भोग का साधन हैं।। ५०।।

भोग्यं तमोगुणः प्राहुरात्मा चैषां प्रकाशकः।
ब्रह्माध्ययनसंयुक्तो ब्रह्मचर्यरतः सदा।। ५१।।
सर्वं ब्रह्मेति यो वेद ब्रह्मचारी स उच्यते।

अन्वय—तमोगुणः (तमोगुणप्रधानं पदार्थजातम्) भोग्यम्, आहुः। एषाम्, (पूर्वोक्तानां सर्वेषाम्) च, प्रकाशकः, आत्मा, अस्ति, यः, च, ब्रह्मा-ध्ययनसंयुक्तः (वेदाध्ययनतत्पर इत्यर्थः) सदा, ब्रह्मचर्यरतः (वशेन्द्रियश्च) भवेत्, सर्वम्, ब्रह्म, इति, वेद, सः, ब्रह्मचारी उच्यते।

अर्थ—ये तमोगुणप्रधान जो पदार्थ हैं, वे ही जीवात्माओं के भोग्य (भोग के विषय) हैं, ऐसा विद्वानों का कहना है। आत्मा, इन सबका (भोक्ता, भोगसाधन तथा भोग्य का) प्रकाशक है। जो वेदाध्ययन तत्पर है, गुरुकुल में रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का भी पालन करता है, तथा जानता है कि सभी कुछ ब्रह्म है, उसे ब्रह्मचारी कहते हैं।। ५१।।

गृहस्थो गुणमध्यस्थः शरीरं गृहमुच्यते।। ५२।।
गुणाः कुर्वन्ति कर्माणि नाहं कर्तेति बुद्धिमान्।
किमुग्रैश्च तपोभिः स्याद् यस्य ज्ञानमयं तपः।। ५३।।
हर्षामर्षविनिर्मुक्तो वानप्रस्थः स उच्यते।

अन्वय—गुणमध्यस्थः गृहस्थः, भवति, यतो हि, शरीरम्, गृहम्, उच्यते, (गृहे (शरीरे) तिष्ठति, आत्मत्वेन तत्र आस्थां करोतीति गृहस्थ इति। वानप्रस्थं निरूपयति—यः,) बुद्धिमान्, 'गुणाः, कर्माणि, कुर्वन्ति, अहम् (आत्मा) तु, कर्ता, न' इति, जानाति, अतः, उग्रैः, तपोभिः (कष्टकारकैरित्यर्थः) मे किम्, स्यात्! (न, किमपीत्यर्थः एवम्) यस्य, (विरक्तस्य, केवलम्) ज्ञानमयम्, तपः, (भवति) सः, हर्षामर्षविनिर्मुक्तः वानप्रस्थः उच्यते।

अर्थ—जिसका सारा व्यवहार इन सत्त्व रज व तम, तीनों गुणों को लेकर होता है, और शरीर पर ही आत्मबुद्धि रखता है, अर्थात् सुखदुःखादि जो देह

के धर्म हैं, उनका आत्मा में आरोप करता है, उसे गृहस्थ कहते हैं। गृह, घर, शरीर है, उसी को व्यवहार में सब कुछ मान कर जो जीवन यात्रा करता है, वह गृहस्थ है।

अब वानप्रस्थ का वर्णन करते हैं—'ये जितने भी सांसारिक कर्म हैं, इन्हें तो ये गुण अथवा गुणोपलक्षित प्रकृति ही करती है, अतः व्यर्थ शरीर को कष्ट देने वाले उग्र तप से क्या लाभ? ज्ञानमय तप ही श्रेष्ठ है'—जिस बुद्धिमान् को इस प्रकार का ज्ञान है, वह गृहातीत या गुणातीत वानप्रस्थ है उसमें हर्ष व असहिष्णुता नहीं होते हैं।। ५२।। ५३।।

स गृही यो गृहातीतः, शरीरं गृहमुच्यते।। ५४।।

अन्वय—यः, गृहातीतः, अस्ति, सः, गृही, यतो हि, शरीरम्, गृहम्, उच्यते।

अर्थ—शरीर घर कहलाता है। वास्तव में गृहस्थ होना उसी का सफल है जो घर से (शरीर से) अतीत अर्थात् अस्पृष्ट हो चुका है।। ५४।।

सदाचारमिमं नित्यं येऽनुसंदधते बुधाः।
संसारसागराच्छीघ्रं ते मुक्ता नात्र संशयः।। ५५।।

अन्वय—ये, बुधाः, इमम्, सदाचारम्, नित्यम्, अनुसंदधते, ते, शीघ्रम्, संसारसागरात्, मुक्ताः, भवन्ति, अत्र, संशयः, न, अस्ति।

अर्थ—जो विद्वान् इस 'सदाचारानुसन्धान' नामक स्तोत्र का नित्य प्रति, अनुशीलन करते हैं, वे शीघ्र ही इस संसार-सागर से मुक्त हो जाते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है।। ५५।।

स्वरूपानुसन्धानाष्टकम्

तपोयज्ञदानादिभिः शुद्धबुद्धि र्विरक्तो नृपादेः पदे तुच्छबुद्ध्या।
परित्यज्य सर्वं यदाप्नोति तत्त्वं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि।। १।।

अन्वय—तपोयज्ञदानादिभिः, शुद्धबुद्धिः, (कश्चित् साधकः) नृपादेः, पदे, अपि, तुच्छबुद्ध्या, विरक्तः, सन्, सर्वम्, परित्यज्य, यत्, नित्यम्, परम्, ब्रह्म, तत्त्वम्, आप्नोति, तत्, एव, अहम्, अस्मि।

अर्थ—तप, यज्ञ व दानादि से निर्मलमति (कोई साधक), तुच्छ समझकर नृपादि पदों से भी विरक्त हुआ, सब कुछ छोड़कर, जिस नित्य, निरतिशय

श्रेष्ठ, ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त करता है, वही आत्मा तत्त्व हूँ।। १।।

दयालुं गुरुं ब्रह्मनिष्ठं प्रशान्तं समाराध्य मत्या विचार्य स्वरूपम्।
यदाप्नोति तत्त्वं निदिध्यास्य विद्वान्परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि।। २।।

अन्वय—दयालुम्, प्रशान्तम्, ब्रह्मनिष्ठम्, गुरुम्, समाराध्य, (ततः श्रवणं कृत्वेत्यर्थः) पुनः, मत्या, स्वरूपम्, विचार्य, (तद्विषये मननञ्च विधाय) ततः, निदिध्यास्य (निदिध्यासनम्, कृत्वा) विद्वान्, यत्, तत्त्वम्, आप्नोति, तत्, एव, नित्यम्, परम्, ब्रह्म, तत्त्वम्, अहम्, अस्मि।

अर्थ—सर्वप्रथम दयालु, शान्त, ब्रह्मनिष्ठ गुरु की आराधना करके, अर्थात् इस प्रकार के गुरु के मुखारविन्द से आत्मविषयक श्रवण करके, तदनन्तर बुद्धिपूर्वक बड़े ऊहापोह के साथ उसका मनन करके, तत्पश्चात् तद्विषयक निदिध्यासन करके, ज्ञानवान् जिस तत्त्व को प्राप्त करता है वही नित्य परब्रह्म तत्त्व मैं हूँ।। २।।

यदानन्दरूपं प्रकाशस्वरूपं निरस्तप्रपञ्चं परिच्छेदहीनम्।
'अहं ब्रह्म' वृत्त्यैकगम्यं तुरीयं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि।। ३।।

अन्वय—यत्, (यत्तत्त्वम्) आनन्दरूपं, प्रकाशस्वरूपम्, निरस्तप्रपञ्चम्, परिच्छेदहीनम्, अहंब्रह्मवृत्त्यैकगम्यम्, तुरीयम्, अस्मि तत्, एकं, नित्यम्, परम्, ब्रह्म, अहम्, अस्मि।

अर्थ—जो तत्त्व आनन्दरूप, प्रकाशस्वरूप, सांसारिक प्रपञ्च से शून्य और निस्सीम है, केवल 'अहं ब्रह्म' 'मैं ब्रह्म हूँ'—इसी बुद्धिवृत्ति से जानने योग्य है, वही नित्य परब्रह्म मैं हूँ।। ३।।

यदज्ञानतो भाति विश्वं समस्तं विनष्टं च सद्यो यदात्मप्रबोधे।
मनोवागतीतं विशुद्धं विमुक्तं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि।। ४।।

अन्वय—यदज्ञानतः, समस्तम्, विश्वम्, भाति, यदात्मप्रबोधे, च, सद्यः, विनष्टम्, भवति, यत्, तत्त्वम्, मनोवागतीतम्, अस्ति, तत्, एव, नित्यम्, विशुद्धम्, विमुक्तम्, परम्, ब्रह्म, अहम्, अस्मि।

अर्थ—जिस आत्मा के अज्ञान के कारण, समस्त विश्व की प्रतीति होती है, और उसी आत्मा का जब सम्यक् ज्ञान हो जाता है, तो फिर शीघ्र ही यह प्रपञ्च भी नष्ट हो जाता है। इस प्रकार जो तत्त्व मन व वाणी से भी परे है, वही नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप, परब्रह्म मैं ही हूँ।। ४।।

निषेधे कृते नेति नेतीति वाक्यैः समाधिस्थितानां यदाभाति पूर्णम्।
अवस्थात्रयातीतमद्वैतमेकं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि।। ५।।

अन्वय–यस्य, आत्मनः, विषये 'नेति-नेति' इति, उपनिषद्वाक्यैः, निखिलजागतिकानां पदार्थानाम्, निषेधे, कृते, सति समाधिस्थितानाम्, यत्, पूर्णम्, आभाति, तत्, एव, अवस्थात्रयातीतम्, अद्वैतम्, एकम्, नित्यम्, परम्, ब्रह्म, अहम्, अस्मि।

अर्थ–जिस आत्मा के विषय में उपनिषद् वाक्य विधि-मुख से वर्णन करने में असमर्थ होते हुए, 'नेति-नेति' पदों द्वारा समस्त प्रपञ्च का निषेध करते हैं, अतः जो तत्त्व लौकिक भाषा का विषय न होता हुआ, केवल समाधिस्थ योगी लोगों के द्वारा ही पूर्णरूप से जाना जा सकता है; इस प्रकार जो तत्त्व तीनों अवस्थाओं (जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति) से परे, अद्वैत, एक, नित्य, परब्रह्म स्वरूप है, वही (तत्त्व) 'मैं' हूँ।। ५।।

यदानन्दलेशैः समानन्दि विश्वं यदाभानसत्त्वे तदाभाति सर्वम्।
यदालोकने रूपमन्यत्समस्तं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि।। ६।।

अन्वय–यदानन्दलेशैः, समानन्दि विश्वम्, अस्ति, यदाभानसत्त्वे, सति, तत्, सर्वम्, आभाति, यदालोकने, सति, अन्यत्, समस्तम्, रूपम्, आलोकितम्, भवति, तत्, एव, नित्यम्, परम्, ब्रह्म, अहम्, अस्मि।

अर्थ–जिस परमात्मा के आनन्द के कणमात्र से यह सारा विश्व आनन्दित हो रहा है, जिसकी प्रतीति से सब कुछ प्रतीत होता है, जिसके साक्षात्कार से अन्य समस्त नामरूपात्मक जगत् का साक्षात्कार हो जाता है, वही नित्य परब्रह्म मैं हूँ।। ६।।

अनन्तं विभुं निर्विकल्पं निरीहं शिवं सङ्गहीनं यदोंकारगम्यम्।
निराकारमत्युज्ज्वलं मृत्युहीनं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि।। ७।।

अन्वय–यत्, (तत्त्वम्) ओंकारगम्यम्, अस्ति, अनन्तम्, विभुम्, निर्विकल्पम्, निरीहम्, शिवम्, सङ्गहीनम्, मृत्युहीनम्, निराकारम्, अत्युज्ज्वलम्, च, अस्ति, तत्, एव, नित्यम्, परम्, ब्रह्म अहम्, अस्मि।

अर्थ–जो तत्त्व, ओंकार-गम्य है, (अर्थात् ओंकार जिसका वाचक है, और ओंकार का जो वाच्य (अर्थ) है, जैसा कि 'योगसूत्र' में भी लिखा है 'तस्य वाचकः प्रणवः' इत्यादि), जो अनन्त, विभु (व्यापक) निर्विकल्प (निर्विशेष) निरीह, (निष्काम) शिव (कल्याणस्वरूप), सङ्गहीन, मृत्युहीन, निराकार तथा अत्यन्त उज्ज्वलरूप है, वही नित्य परब्रह्म मैं हूँ।। ७।।

यदाऽऽनन्दसिन्धौ निमग्नः पुमान् स्यादविद्याविलासः समस्तप्रपञ्चः।
तदा न स्फुरत्यद्भुतं यन्निमित्तं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि।। ८।।

अन्वय—पुमान् यदा आनन्दसिन्धौ, निमग्नः, स्यात्, तदा, अविद्याविलासः, समस्तप्रपञ्चः, न, स्फुरति (एतद्) अद्भुतं, यन्निमित्तं (भवति) तद्, एव, नित्यम्, परम्, ब्रह्म, अहम्, अस्मि।

अर्थ—पुरुष जब आनन्द सागर परमात्मा में डूब जाता है तब अज्ञान का विस्तार यह सारा जगद्विस्तार प्रतीत होना समाप्त हो जाता। ऐसी आश्चर्यमय स्थिति जिसके कारण प्राप्त होती है वह नित्य परब्रह्म मैं हूँ।। ८।।

स्वरूपानुसन्धानरूपां स्तुतिं यः पठेदादराद् भक्तिभावो मनुष्यः।
श्रृणोतीह वा नित्यमुद्युक्तचित्तो भवेद् विष्णुरत्रैव वेदप्रमाणात्।। ९।।

अन्वय—यः, भक्तिभावः, मनुष्यः, स्वरूपानुसन्धानरूपाम्, इमाम्, स्तुतिम्, आदरात्, पठेत्, वा (अथवा) नित्यम् उद्युक्तचित्तः, सन्, इह, श्रृणोति, ततः, सः, अत्र, एव, वेदप्रमाणात्, विष्णुः, भवेत्।

अर्थ—जो मनुष्य भक्तिभावना से युक्त होकर 'स्वरूपानुसन्धान' रूप इस स्तुति का आदरपूर्वक पाठ करता है, अथवा नित्य प्रति उत्साहपूर्ण चित्त से इसको सुनता है, वह इसी जन्म में विष्णु भगवान् की तरह ऐश्वर्य-सम्पन्न तथा मान्य हो जाता है, वेद भी इसमें प्रमाण हैं।। ९।।

मार्गबन्धुशिवस्तुतिः

शंभो महादेव देव, शिव शंभो महादेव देवेश शंभो
शंभो महादेव देव।।
पादावनम्रत्रकिरीटं, फालनेत्रार्चिषा दग्धपञ्चेषुकीटम्।
शूलाहताराातिकूटं, शुद्धमर्धेन्दुचूडं भजे मार्गबन्धुम्।। १।।

अन्वय—पादावनम्रत्रकिरीटम्, फालनेत्रार्चिषा, दग्धपञ्चेषुकीटम्, शूलाहतारातिकूटम्, अर्धेन्दुचूडम्, शुद्धम्, मार्गबन्धुम्, (मार्गबन्धुनामकम्, महादेवम्,) अहम्, भजे।

अर्थ—जिनके चरणों में प्रणाम करने के लिए देवताओं के मुकुट विनम्र हो रहे हैं, और भाल-स्थित तृतीय नेत्र की ज्वाला से जिन्होंने कामरूपी कीट को भस्म कर दिया है, अपने आयुध (त्रिशूल) से जिन्होंने शत्रुसमुदाय का संहार कर दिया, बाल चन्द्र को बनाया है शिरोभूषण जिन्होंने, ऐसे विशुद्ध मार्गबन्धु नामक महादेव का मैं भजन करता हूँ।। १।।

अङ्गे विराजद्भुजङ्गम् अभ्रगङ्गातरङ्गाभिरामोत्तमाङ्गम्।
ओंकारवाटीकुरङ्गं सिद्धसंसेवितांघ्रिं भजे मार्गबन्धुम्।। २।।

अन्वय–अङ्गे, विराजद्भुजङ्गम्, अभ्रगङ्गातरङ्गाभिरामोत्तमाङ्गम्, ओंकारवाटीकुरङ्गम्, सिद्धसंसेवितांघ्रिम्, मार्गबन्धुम्, भजे।

अर्थ–सर्पराज वासुकि जिनके गले में सुशोभित है, और आकाशगङ्गा की तरङ्गों से जिनका सिर सुन्दर मालूम पड़ता है, जो स्वयं ओंकार रूपी वाटिका के हिरण हैं, सिद्ध यक्ष गन्धर्वादि जिनके चरणकमलों की सेवा कर रहे हैं, ऐसे मार्गबन्धु नामक महादेव का मैं भजन करता हूँ।। २।।

नित्यं चिदानन्दरूपं निह्नुताशेषलोकेशवैरिप्रतापम्।
कार्तस्वरागेन्द्रचापं कृत्तिवासं भजे दिव्यसन्मार्गबन्धुम्।। ३।।

अन्वय–नित्यम्, चिदानन्दरूपम्, निह्नुताशेषलोकेशवैरिप्रतापम्, कार्तस्वरागेन्द्रचापम्, कृत्तिवासम्, दिव्यसन्मार्गबन्धुम्, भजे।

अर्थ–जो नित्य व चिदानन्दरूप हैं, समस्त लोकेशों के (देवो के) शत्रुओं के प्रताप को भी जिन्होंने मिटा दिया, सुमेरु पर्वत का धनुष बनाने वाले, गजचर्म को पहनने वाले, दिव्य सन्मार्ग में बन्धु के समान जो मार्गबन्धु महादेव हैं, मैं उनका भजन करता हूँ।। ३।।

कन्दर्पदर्पघ्नमीशं कालकण्ठं महेशं महाव्योमकेशम्।
कुन्दाभदन्तं सुरेशं कोटिसूर्यप्रकाशं भजे मार्गबन्धुम्।। ४।।

अन्वय–कन्दर्पदर्पघ्नम्, (ईशम्) कालकण्ठम्, (महेशम्) महाव्योमकेशम्, कुन्दाभदन्तम्, सुरेशम्, कोटिसूर्यप्रकाशम्, मार्गबन्धुम्, महेशम्, ईशम्, (अहम्) भजे।

अर्थ–कन्दर्प के दर्प का नाश करने वाले, गले में विष धारण किए हुए, महाकाश रूपी केश वाले, कुन्द पुष्प के समान स्वच्छ दन्त वाले, देवों के भी देव, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश वाले जो मार्गबन्धु नामक महादेव हैं, मैं उनका भजन करता हूँ।। ४।।

मन्दारभूतेरुदारं मन्दरागेन्द्रसारं महागौर्यदूरम्।
सिन्धोरदूरप्रचारं सिन्धुराजातिधीरं भजे मार्गबन्धुम्।। ५।।

अन्वय–मन्दारभूतेः, (अपि) उदारम्, मन्दरागेन्द्रसारम्, महागौर्यदूरम्, सिन्धोरदूरप्रचारम्, सिन्धुराजातिधीरम्, मार्गबन्धुम्, भजे।

अर्थ–मन्दार पुष्पों और भस्म से जो अति सुन्दर हैं, मन्दराचल के समान दृढ व बलवान्, हमेशा पार्वती जी के सान्निध्य में विराजमान, चारों समुद्रों

पर्यन्त जिनके यश व प्रभाव का प्रचार है, जो समुद्र के समान अतिधैर्यशाली हैं, ऐसे मार्गबन्धु नामक महादेव का मैं भजन करता हूँ।। ५।।

अप्पय्ययज्वेन्द्रगीतं स्तोत्ररत्नं पठेद्यस्तु भक्त्या प्रयाणे।
तस्यार्थसिद्धिं विधत्ते मार्गमध्येऽभयं चाशुतोषो महेशः।। ६।।

अन्वय—यः, (मनुष्यः) प्रयाणे, अप्पय्ययज्वेन्द्रगीतम्, इदम्, स्तोत्ररत्नम्, भक्त्या, पठेत्, आशुतोषः, महेशः, तस्य, मार्गमध्ये अभयम्, अर्थसिद्धिम्, च, विधत्ते।

अर्थ—जो मनुष्य प्रस्थान वेला में श्री अप्पय्य यज्वेन्द्र (दीक्षित) के द्वारा गाये गये इस स्तोत्ररत्न का पाठ करता है, आशुतोष भगवान् महेश (महादेव) उसके लिए मार्ग में अभय प्रदान करते हैं, और कार्यार्थसिद्धि को भी प्रदान करते हैं।। ६।।

आत्मार्पणस्तुतिः

कस्ते बोद्धुं प्रभवति परं देवदेव प्रभावं
यस्मादित्थं विविधरचना सृष्टिरेषा बभूव।
भक्तिग्राह्यस्त्वमिह तदपि त्वामहं भक्तिमात्रात्
स्तोतुं वाञ्छाम्यतिमहदिदं साहसं मे सहस्व।। १।।

अन्वय—हे देवदेव! (देवानामपि देव, तत्संबुद्धौ) ते (तव) परम्, प्रभावम्, कः, बोद्धुम्, प्रभवति? यस्मात् (त्वत्सकाशात्) इत्थम्, विविध-रचना, एषा, सृष्टिः, बभूव, तदपि, इह, त्वम्, भक्तिग्राह्यः, असि, अहम्, त्वाम्, भक्तिमात्रात्, स्तोतुम्, वाञ्छामि, अतः, मे (मम) इदम्, महत्, साहसम्, सहस्व।

अर्थ—हे देवों के देव! महादेव! आपके इस परम प्रभाव को जानने में कौन समर्थ है? अर्थात् कोई भी आपके प्रकृष्ट प्रभाव को जानने में समर्थ नहीं है। क्योंकि आपसे ही तो यह विचित्र रचना वाली सृष्टि हुई है। फिर भी इस संसार में आप भक्ति के द्वारा प्राप्त हो सकते हो, इसीलिए मैं केवल भक्तिपूर्वक आपकी स्तुति करना चाहता हूँ, अतः आप मेरे इस अति-साहस को क्षमा करें।। १।।

क्षित्यादीनामवयववतां निश्चितं जन्म तावत्
तन्नास्त्येव क्वचन कलितं कर्त्रधिष्ठानहीनम्।

नाधिष्ठातुं प्रभवति जडो नाप्यनीशश्च भाव-
स्तस्मादाद्यस्त्वमसि जगतां नाथ जाने विधाता।। २।।

अन्वय–हे जगतां नाथ! अवयववताम्, क्षित्यादीनाम्, जन्म, तावत्, निश्चितम्, क्वचन, कर्त्रधिष्ठानहीनम्, नास्ति, एव, तत् कलितम्। जडः (पदार्थः) अनीशः, भावः, च (वा) अधिष्ठातुम्, न प्रभवति। तस्मात्, त्वम्, जगताम्, आद्यः, जगताम्, विधाता, च, असि, (इति, अहम्, निश्चितम्,) जाने।

अर्थ–हे संसार के स्वामी! अवयव वाले पृथ्वी आदि जितने भी पदार्थ हैं, उन सबका जन्म हुआ ही है। यह सारा संसार किसी कर्ता और अधिष्ठान के बिना अर्थात् निमित्त व उपादान के बिना नहीं हो सकता है। जड पदार्थ (चेतन की सहायता के बिना स्वयं अपने आप) और अनीश भाव अर्थात् जीव जगत् के निमित्त व उपादान होने में अक्षम हैं। इसलिये आप ही इस संसार के आदिकारण और विधाता है, इस बात को मैं निश्चित रूप से जानता हूँ।।२।।

इन्द्रं मित्रं वरुणमनिलं पद्ममजं विष्णुमीशं
प्राहुस्ते ते परमशिव ते मायया मोहितास्त्वाम्।
एतैः सार्धं सकलमपि यच्छक्तिलेशे समाप्तं
स त्वं देवः श्रुतिषु विदितः शंभुरित्यादिदेवः।। ३।।

अन्वय–हे परमशिव! ते मायया, मोहिताः, ते, (मुनयो देवा वा श्रुतिषु, पुराणेषु वा) त्वाम्, (एव) इन्द्रम्, मित्रम्, वरुणम्, अनिलम्, पद्मजम्, विष्णुम्, ईशम्, च, प्राहुः, एतैः सार्धम्, सकलम्, अपि, यच्छक्तिलेशे, समाप्तम्, भवति, स, देवः, त्वम्, श्रुतिषु, शम्भुः, इति, आदिदेवः, (इति च) विदितः।

अर्थ–हे परमशिव! आपकी ही माया से मोहत हुए, मुनिजन, या देवता लोग, आपको ही (तत्तत् गुणों के विचित्र परिणाम को धारण करने वाले रूपों के अनुरोध से इन्द्र, मित्र (सूर्य), वरुण, वायु, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, आदि नामों से पुकारते हैं। (तात्पर्य यह है कि परम चैतन्य शिव ही तत्तत् गुणों की उपाधि से ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि व्यपदेश को प्राप्त करते हैं।) इन देवताओं समेत जितना भी यह संसार है वह सारा जिसकी शक्ति के एक अंश में ही समाया हुआ है वही देव आप हैं जो वेदों में शम्भु व आदिदेव बताये गये हैं।। ३।।

आनन्दाब्धेः कमपि च घनीभावमास्थाय रूपं
शक्त्या सार्धं परममुमया शाश्वतं भोगमिच्छन्।
अध्वातीते शुचिदिवसकृत्कोटिदीपे कपर्दिन्
आद्ये स्थाने विहरसि सदा सेव्यमानो गणेशैः।। ४।।

अन्वय—हे कपर्दिन्! (त्वम्) आनन्दाब्धेः, कमपि, घनीभावम्, रूपम्, आस्थाय, उमया, शक्त्या, सार्धम्, परमम्, शाश्वतम्, भोगम्, इच्छन्, अध्वातीते, शुचिदिवसकृत्कोटिदीपे, आद्ये, स्थाने, गणेशैः, सेव्यमानः, सदा, विहरसि।

अर्थ—हे शिव! आप, आनन्द सागर के किसी विलक्षण सौन्दर्ययुक्त घनीभूत रूप को ग्रहणकर, उमारूप शक्ति के साथ, परमोत्कृष्ट शाश्वत भोग की इच्छा से, लोकोत्तीर्ण, स्वच्छ दिवस का निर्माण करने वाले करोड़ों सूर्य रूपी दीपों से प्रकाशित आद्य स्थान (शिवलोक) में, प्रमुखगणों से सेवित होते हुए निरन्तर विहार करते हो।। ४।।

त्वं वेदान्तै र्विविधमहिमा गीयसे विश्वनेत-
स्त्वं विप्राद्यैर्वरद निखिलैरिज्यसे कर्मभिः स्वैः।
त्वं दृष्टानुश्रविकविषयानन्दमात्रावितृष्णै-
रन्तर्ग्रन्थिप्रविलयकृते चिन्त्यसे योगिवृन्दैः।। ५।।

अन्वय—हे विश्वनेतः! विविधमहिमा, त्वम्, वेदान्तैः, गीयसे, हे वरद! त्वम्, विप्राद्यैः निखिलैः, स्वैः कर्मभिः, इज्यसे, त्वम्, दृष्टानुश्रविकविषया-नन्दमात्रावितृष्णैः, योगिवृन्दैः, अन्तर्ग्रन्थिप्रविलयकृते, चिन्त्यसे।

अर्थ—हे विश्वनायक! वेदान्त में अनेक प्रकार से आपकी महिमाओं का गान किया गया है। हे वरद! ब्राह्मणादियों के द्वारा जो अपने-अपने वर्णानुसार यागादि कर्म किये जाते हैं उन कर्मों के द्वारा वे आपकी ही पूजा करते हैं। लौकिक व वैदिक उपायों से प्राप्त होने वाले जितने भी विषयानन्द हैं, उनमें विरक्त योगिवृन्द के द्वारा, अपने अन्तःकरण की चिदचिद्ग्रन्थि को दूर करने के लिए ही आपका चिन्तन (ध्यान) किया जाता है।। ५।।

ध्यायन्तस्त्वां कतिचन भवं दुस्तरं निस्तरन्ति
त्वत्पादाब्जं विधिवदितरे नित्यमाराधयन्तः।
अन्ये वर्णाश्रमविधिरताः पालयन्तस्त्वदाज्ञां
सर्वं हित्वा भवजलनिधावेष मज्जामि घोरे ।। ६।।

अन्वय—हे भव! कतिचन (भक्ताः) त्वाम्, ध्यायन्तः, दुस्तरम्, भवम्,

निस्तरन्ति, इतरे, (च) नित्यम्, विधिवत्, त्वत्पादाब्जम्, आराधयन्तः, (सन्तः) दुस्तरम्, भवम्, निस्तरन्ति, अन्ये, (केचन) वर्णाश्रमविधिरताः, त्वदाज्ञाम्, पालयन्तः, दुस्तरम्, भवम्, निस्तरन्ति, परन्तु, एषः, अहन्तु, पुर्वोक्तम्, सर्वम्, हित्वा, घोरे, भवजलनिधौ, मज्जामि।

अर्थ—हे भव! कुछ भक्त केवल आपका ध्यान करते हुए, इस भयंकर भवसागर को पार कर जाते हैं, कुछ लोग नित्य विधिवत् आपके चरणकमलों की आराधना करते हुए दुस्तर इस भवसागर को तैरते हैं, तथा अन्य भक्तजन, वर्णाश्रम-धर्म-परायण होते हुए आपकी आज्ञा का पालन करते हुए भवसागर को पार करते हैं, परन्तु यह मैं तो पूर्वोक्त सभी नियमधर्मों का आचरण न करता हुआ आपकी सेवा से विमुख होकर, इस भवसागर में डूब रहा हूँ।। ६।।

उत्पद्यापि स्मरहर महत्युत्तमानां कुलेस्मि-
न्नास्वाद्य त्वन्महिमजलधे रप्यहं शीकराणून्।
त्वत्पादार्चाविमुखहृदयश्चापलादिन्द्रियाणां
व्यग्रस्तुच्छेष्वहह जननं व्यर्थयाम्येष पापः।। ७।।

अन्वय—हे स्मरहर उत्तमानाम्, अस्मिन्, महति, कुले, उत्पद्य, अपि, अहम्, त्वन्महिमजलधेः, शीकराणून् अपि, आस्वाद्य, त्वत्पादार्चा-विमुखहृदयः, (सन्) इन्द्रियाणाम्, चापलात्, (हेतोः) तुच्छेषु, (विषयेषु) व्यग्रः, (सन्) अहह (इति खेदे) एषः, पापः, अहम्, जननम्, व्यर्थयामि।

अर्थ—हे स्मरहर! शम्भो! उत्तम कुल में उत्पन्न होकर भी आपके महिमा रूपी समुद्र के जलकणों का आस्वादन करके भी आपके चरणकमलों की पूजा से विमुख होकर, केवल इन्द्रियों की चञ्चलता के परवश होकर तुच्छ विषयवासनाओं के आस्वादन में ही व्यग्र हुआ मैं अभागा, अहह अपने जीवन को व्यर्थ कर रहा हूँ।। ७।।

अर्कद्रोणप्रभृतिकुसुमैरर्चनं ते विधेयं
प्राप्यं तेन स्मरहर फलं मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः।
एतज्जानन्नपि शिव शिव व्यर्थयन् कालमात्म-
न्नात्मद्रोही करणविवशो भूयसाऽधः पतामि।। ८।।

अन्वय—हे स्मरहर! अर्कद्रोणप्रभृतिकुसुमैः, (यदि) ते, अर्चनम्, विधेयम्, भवेत्, तदा, तेन, (अर्चनेन) मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः, फलम्, प्राप्यम्, भवेत्, शिव, शिव, हे आत्मन्! एतत्सर्वम्, जानन्, अपि, अहम्, आत्मनः, कालम्,

व्यर्थयन्, आत्मद्रोही, करणविवशः, सन्, भूयसा, अधः पतामि।

अर्थ—हे शम्भो! यदि आँक द्रोणादि पुष्पों से आपकी पूजा की जाय, तो निश्चित ही मोक्षरूपी साम्राज्यलक्ष्मी फल को प्राप्त किया जा सकता है। मुझे बहुत आश्चर्य व खेद है कि यह सब कुछ जानते हुए भी मैं अपने समय को व्यर्थ गँवा रहा हूँ, उपलब्ध समय को भगवान् शंकर की अर्चना में न लगाकर, व्यर्थ ही गँवा देना, एक प्रकार का आत्मघात करना है, या आत्मद्रोह करना है। इस प्रकार के आत्मद्रोह से विवश हुआ मैं बार-बार अधोगति की ओर ही जा रहा हूँ।। ८।।

किं वा कुर्वे विषमविषयस्वैरिणा वैरिणाहं
बद्धः स्वामिन् वपुषि हृदयग्रन्थिना सार्धमस्मिन्।
उक्ष्णा दर्पज्वरभरजुषा साकमेकत्र नद्धः
श्राम्यन् वत्सः स्मरहर युगे धावता किं करोतु।। ९।।

अन्वय—हे स्वामिन्! विषमविषयस्वैरिणा, वैरिणा, हृदयग्रन्थिना, सार्धम्, अहम्, अस्मिन्, वपुषि, बद्धः, अस्मि, अतः, किम्, कुर्वे, (न किमपि कर्तुं समर्थ इत्यर्थः)। हे स्मरहर! (यथा) एकत्र, च, धावता, दर्पज्वरभरजुषा, उक्ष्णा, साकम्, श्राम्यन्, वत्सः, (वत्सरूपः, जीवः) युगे, नद्धः, अस्ति, वराकः, किम्, करोतु।

अर्थ—हे स्वामिन्! विषम संख्या वाले अर्थात् रूप, रस, गन्ध शब्द, स्पर्शादि जो पाँच विषय हैं, उनमें स्वच्छन्द विहरणशील अतएव शत्रुरूप अज्ञानान्धकार से ग्रस्त यह अन्तःकरण (हृदय) मेरे इस शरीर से बँधा हुआ है, अर्थात् मेरा (अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य, जीव का) सम्बन्ध इस हृदय से है और इस हृदय का सम्बन्ध इन्द्रियादि विशिष्ट शरीर से। और ये इन्द्रियाँ जब शब्द स्पर्शादि विषय-प्रदेश में विहरण करती हैं तो न चाहते हुए भी बलात् हृदय तथा जीव को भी उस विषय प्रदेश में ले जाती हैं। न तो इन्द्रियाँ अपने विषयों से नाता तोड़ेंगी, न हृदय इन्द्रियों से अपना सम्बन्ध-विच्छेद करेगा, और ना ही जीव, चिदाभास, हृदय से अपना लगाव बन्द करेगा। अतः यही सब विवशता को देखकर साधक का कहना है कि यह हृदयग्रन्थि तो इस शरीर से बँधी ही हुई है, इसमें मैं क्या कर सकता हूँ! अर्थात् आपकी कृपा के बिना इस देहेन्द्रियादि विशिष्ट ग्रन्थि से अलग तो हो नहीं सकता हूँ। एक तो यह लाचारी है, और दूसरी बात यह है कि विषय प्रदेश में बड़ी तीव्र गति से दौड़ने वाले इस अहंकार रूपी जवान वैल के साथ एक बछड़े के समान यह

जीव दौड़ते-दौड़ते थक जाता है, इस अवस्था में यह क्या करे? जैसे किसी प्रौढ वृषभ के साथ कोई बछड़ा जुये में जोत दिया जाय, वह बछड़ा उस बैल की बराबरी करते करते थक जाता है, ठीक यही बात जीवात्मा की है; यह भी अहंकार के साथ विषय प्रदेश में दौड़ते-दौड़ते थक गया है, या ऊब गया है, अतः उधर चलने में असमर्थ अनिच्छुक है, पर क्या करे, बेचारे को अनिच्छा से भी चलना पड़ रहा है अतएव साधना नहीं कर पा रहा।। ६।।

नाहं रोद्धुं करणनिचयं दुर्नयं पारयामि
स्मारं स्मारं जनिपथरुजं नाथ सीदामि भीत्या।
किं वा कुर्वे किमुचितमिह क्वाद्य गच्छामि हन्त
त्वत्पादाब्जप्रपतनमृते नैव पश्याम्युपायम्।। १०।।

अन्वय—हे नाथ! अहम्, दुर्नयम्, करणनिचयम्, रोद्धुम्, न, पारयामि (पुनश्च) जनिपथरुजम्, स्मारम्, स्मारम्, भीत्या, सीदामि, हन्त, इति (खेदे) किम्, कुर्वे, इह (अस्यां दशायाम्) किम्, वा, उचितम्, अस्ति, अद्य, क्व, गच्छामि, त्वत्पादाब्जप्रपतनम्, ऋते, (कमपि अपरम्) उपायम्, न, एव, पश्यामि।

अर्थ—हे नाथ! मैं, दुर्नीति में प्रसक्त, या असन्मार्ग की ओर अभिमुख अपने इन्द्रिय-वर्ग को रोकने में असमर्थ हूँ। पुनश्च जनन-मरण रूपी रोग से ग्रस्त इस संसार का बार-बार स्मरण कर, संसारभय से भी मैं दुःखी हो रहा हूँ। बड़े कष्ट की बात है। इस अवस्था में, मैं क्या करुँ, कहाँ जाऊँ, क्या उचित होगा? इस असमंजस-पूर्ण स्थिति में सिवाय आपके चणकमलों की शरण के, और कोई भी उपाय नजर नहीं आता है।। १०।।

उल्लंघ्याज्ञामुडुपतिकलाचूड ते विश्ववन्द्य
त्यक्ताचारः पशुवदधुना मुक्तलज्जश्चरामि।
एवं नानाविधभवततिप्राप्तदीर्घापराधः
क्लेशाम्भोधिं कथमहमृते त्वत्प्रसादात्तरेयम्।। ११।।

अन्वय—हे उडुपतिकलाचूड! हे विश्ववन्द्य! ते (तव) आज्ञाम्, उल्लंघ्य, त्यक्ताचारः, अत एव, मुक्तलज्जः, अधुना, अहम्, पशुवत्, चरामि, एवम्, नानाविधभवततिप्राप्तदीर्घापराधः, अहम्, त्वत्प्रसादात्, ऋते, कथम्, क्लेशाम्भोधिम्, तरेयम्।

अर्थ—हे चन्द्रशेखर! हे विश्ववन्द्य! आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर, शास्त्रीय आचार-विचार को छोड़कर, निर्लज्ज मैं इस समय पशुओं की तरह

अपना जीवन बिता रहा हूँ। (वेदादि शास्त्र ही भगवान् की आज्ञा हैं, उनके उपदेशों का जो उल्लंघन करेगा, अर्थात् मनमाना आचरण करेगा, उसके जीवन में और पशु के जीवन में फर्क ही क्या रहा?) इस प्रकार जन्म जन्मान्तरों के जनन-मरणरूपी नाना अपराधों की परम्परा से पीडित, मैं आपके अनुग्रहरूपी प्रसाद के बिना, इस दुःखसागर से पार कैसे हो सकता हूँ?।। ११।।

क्षाम्यस्येवं त्वमिह करुणासागरः कृत्स्नमागः
संसारोत्थं गिरिश सभयप्रार्थनादैन्यमात्रात्।
यद्यप्येवं प्रतिकलमहं व्यक्तमागःसहस्रं
कुर्वन् मूकः कथमिव तथा निस्त्रपः प्रार्थयेयम्।। १२।।

अन्वय—हे गिरिश! इह त्वम्, करुणासागरः, असि, अतः, सभयप्रार्थनादैन्यमात्रात्, संसारोत्थम्, कृत्स्नम्, आगः, एवम्, क्षाम्यसि, यद्यपि, एवम्, तथापि अहम्, प्रतिकलम्, व्यक्तम्, आगःसहस्रम्, कुर्वन्, अपि, मूकः, अस्मि (अतः) निस्त्रपः, सन्, अहम्, त्वाम्, कथम्, प्रार्थयेयम्।

अर्थ—हे गिरीश! आप ही एकमात्र करुणावरुणालय हैं, इसीलिए, डरकर प्रार्थना करने वालों की दीनता को देखने मात्र से ही, उनके सारे सांसारिक पापजन्य-अपराधों को क्षमा कर देते हैं। ऐसा होने पर भी मैं खुल्लम-खुल्ला प्रतिक्षण नानाविध अपराधों को करता हुआ भी मौन (मूक) हूँ, अर्थात् अपने किये हुए अपराधों को आपके सामने न रखकर उनके लिए किसी प्रकार की क्षमा-याचना भी नहीं कर रहा हूँ (अथवा मौनभाव से अपने अपराधों को छिपा रहा हूँ)। अत एव निर्लज्ज मैं किस प्रकार आपसे प्रार्थना करूँ?।। १२।।

सर्वं क्षेप्तुं प्रभवति जनः संसृतिप्राप्तमाग-
श्चेतः श्वासप्रशमसमये त्वत्पदाब्जे निधाय।
तस्मिन् काले यदि मम मनो नाथ दोषत्रयार्तं
प्रज्ञाहीनं पुरहर भवेत् तत्कथं मे घटेत।। १३।।

अन्वय—हे नाथ! जनः, श्वासप्रशमसमये, चेतः, त्वत्पदाब्जे, निधाय, संसृतिप्राप्तम्, सर्वम्, आगः, क्षेप्तुम्, प्रभवति, परन्तु, हे त्रिपुरहर! यदि, (कदाचित्) तस्मिन् काले, (श्वासप्रशमसमये) मम, मनः, दोषत्रयार्तम्, (अतएव) प्रज्ञाहीनम्, भवेत्, चेत्, (तर्हि) मे, तत्, (पूर्वोक्तम्, आगःक्षेपणम्) कथम्, घटेत, (न कथमपीत्यर्थः)। (अत्र

त्रिपुरहर! इति सम्बोधनं साभिप्रायं प्रतिभाति, यतो हि त्वम्, यदि पुरत्रयस्य शरीरत्रयस्य हरणे समर्थोऽसि चेत्, तदा मम चेतसः दोषत्रयस्याऽपि हरणे तव कियान् परिश्रम इत्यर्थः)।

अर्थ—हे नाथ! मनुष्य (भक्तजन) अपने प्राणों के प्रस्थान की वेला में, अपने मन को आपके चरणकमलों में समर्पण कर, इस संसार चक्र से प्राप्त जितना भी पाप है, उसे दूर करने में समर्थ हो सकता है, परन्तु त्रिपुरहर! यदि कदाचित् उस समय यह चित्त, वातकफपित्त-रूप तीन दोषों से ग्रस्त होकर विवेकहीन हो जाय, तो फिर आपके चरणकमलों की शरण न लेकर, इधर-उधर ही भटकता रहेगा। ऐसी स्थिति में अपनी अभीष्ट बात कैसे बनेगी? यह भी आप विचार लें। (अर्थात् जब आप त्रिपुरहर अर्थात् तीनों पुरों को या त्रिविध—कारण, सूक्ष्म व स्थूल—शरीर तक का हरण कर सकते हैं तो फिर मेरे चित्त के केवल ऊपरी सतह तक आये हुए उन दोषों का क्या हरण नहीं कर सकोगे? इस प्रकार भगवान् के लिए यह सोपालम्भ सम्बोधन है।)। १३।।

प्राणोत्क्रान्तिव्यतिकरदलत्सन्धिबन्धे शरीरे
प्रेमावेशप्रसरदमिताक्रन्दिते बन्धुवर्गे।
अन्तः प्रज्ञामपि शिव भजन्नन्तरायैरनन्तै-
राविद्धोऽहं त्वयि कथमिमामर्पयिष्यामि बुद्धिम्।। १४।।

अन्वय—हे शिव! शरीरे, प्राणोत्क्रान्तिव्यतिकरदलत्सन्धिबन्धे, सति, बन्धुवर्गे च, प्रेमावेशप्रसरदमिताक्रन्दिते, सति, (एतादृशे मोहावर्ते समुपस्थिते सतीत्यर्थः) अतः, अनन्तैः, अन्तरायैः, आविद्धः, अन्तः, प्रज्ञाम्, भजन्नपि, अहम्, तदा, इमाम्, (मोहसंकटाकीर्णामित्यर्थः) बुद्धिम्, त्वयि, कथम्, अर्पयिष्यामि? वदेत्यर्थः।

अर्थ—हे शिव! इस भवलीला के महाप्रस्थान की उस अन्तिम वेला में, जबकि प्राणों के उत्क्रमण के प्रसङ्ग से इस शरीर के सभी सन्धिबन्ध जर्जरित हो जायेंगे, और मेरे भाई-बान्धवादि संसार-सुलभ मोह-ममता के आवेश में आकर करुण क्रन्दन कर रहे होंगे, उस समय अनेक संकटों से घिरा हुआ मैं अन्तश्चेतना को (अर्थात् हृदय में आवश्यक कर्त्तव्य के ज्ञान को) धारण करता हुआ भी, बतलाइये, आपके चरणारविन्दों में अथवा आपके दिव्य स्वरूप में अपनी बुद्धि को कैसे अर्पण कर सकता हूँ?।। १४।।

अद्यैव त्वत्पदनलिनयोरर्पयाम्यन्तरात्म-
न्नात्मानं मे सह परिकरैरद्रिकन्याधिनाथ।

नाहं बोद्धुं शिव तव पदं न क्रिया योगचर्याः
कर्तुं शक्नोम्यनितरगतिः केवलं त्वां प्रपद्ये।। १५।।

अन्वय—हे अन्तरात्मन्! अहम्, मे (मम) परिकरैः सह, अद्य, एव, आत्मानम्, त्वत्पदनलिनयोः, अर्पयामि, हे अद्रिकन्याधिनाथ! हे शिव! अनितरगतिः, अहम्, तव, पदम्, बोद्धुम् न, समर्थः, न, च, काश्चित्, क्रियाः, योगचर्याः, वा, कर्तुम्, शक्नोमि, अतः, केवलम्, त्वाम्, प्रपद्ये।

अर्थ—हे अन्तरात्मन्! मैं अपने परिकर (कुटुम्ब व भाई बान्धवों) के साथ आज ही अपने को आपके चरणकमलों में समर्पित कर देता हूँ। हे पार्वतीनाथ! हे शिव! मैं आपके शैवपद की गरिमा को भी नहीं जानता हूँ; और न किसी विशिष्ट क्रिया या योगचर्या को ही करने में समर्थ हूँ अतः अनन्य शरण होता हुआ केवल आप में ही अपने को समर्पित कर रहा हूँ।। १५।।

यः स्रष्टारं निखिलजगतां निर्ममे पूर्वमीश-
स्तस्मै वेदानदित सकलान् यश्च साकं पुराणैः।
तं त्वामाद्यं गुरुमहमसावात्मबुद्धिप्रकाशं
संसारार्तः शरणमधुना पार्वतीशं प्रपद्ये।। १६।।

अन्वय—यः, ईशः, पूर्वम्, निखिलजगताम्, स्रष्टारम्, निर्ममे, यः, च, (ईशः) पुराणैः, साकम्, सकलान् वेदान्, तस्मै, अदित, तम्, आत्मबुद्धिप्रकाशम्, आद्यम्, गुरुम्, पार्वतीशम्, त्वाम्, असौ, अहम्, अधुना, संसारार्तः, सन्, शरणम्, प्रपद्ये।

अर्थ—जिस ईश्वर ने सृष्टि से पूर्व, समस्त जगत् के स्रष्टा प्रजापति का निर्माण किया, और जिसने पुराणों के साथ-साथ समस्त वेदों का उपदेश उसके लिए किया, वही आत्मज्ञान रूपी प्रकाश वाले, आदिगुरु, पार्वतीपति, आप हैं; सम्प्रति मैं सांसारिक दुःखों से सन्तप्त होकर, आप की ही शरण में आया हूँ।। १६।।

ब्रह्मादीन् यः स्मरहर पशून् मोहपाशेन बद्ध्वा
सर्वानेकश्चिदचिदधिकः कारयित्वात्मकृत्यम्।
यश्चैतेषु स्वपदशरणान् विद्यया मोचयित्वा
सान्द्रानन्दं गमयति परं धाम तं त्वां प्रपद्ये।। १७।।

अन्वय—हे स्मरहर! यः, चिदचिदधिकः, (चिदचिद्भ्यां विलक्षणः सन् अथवा जडचेतनयोः सर्वत्र व्याप्तः सन्) एकः, अपि, ब्रह्मादीन्, सर्वान्, पशून्, मोहपाशेन, बद्ध्वा (तैर्ब्रह्मादिभिः) आत्मकृत्यम्, कारयित्वा,

यः, च, एतेषु, (पशुरूपेषु जीवेषु) स्वपदशरणान्, विद्यया, मोचयित्वा, (तान्) सान्द्रानन्दम्, परम्, धाम, गमयति, तम्, (तादृशम्,) त्वाम्, (अहम्,) शरणम्, प्रपद्ये।

अर्थ—हे स्मरहर! जो, जड व चेतन में व्याप्त होता हुआ भी उन दोनों से विलक्षण, अकेला ही, ब्रह्मा विष्णु आदि सभी देव व मनुष्य रूपी पशुओं को मायाजाल में बाँधकर, उन ब्रह्मादि के द्वारा सर्ग-स्थिति-संहार रूप अपना काम करवा कर, फिर अपने शरण में आये हुए, उन्हीं में से किन्हीं को विद्या द्वारा मुक्त कराकर, आनन्दमय परमधाम में पहुँचा देता है, ऐसे आत्मतत्त्वरूप आपकी ही शरण में आता हूँ।।१७।।

भक्ताग्र्याणां कथमपि परै र्योऽचिकित्स्याममर्त्यैः
संसाराख्यां शमयति रुजं स्वात्मबोधौषधेन।
तं सर्वाधीश्वर भवमहादीर्घतीव्रामयेन
क्लिष्टोऽहं त्वां वरद शरणं यामि संसारवैद्यम्।। १८।।

अन्वय—हे सर्वाधीश्वर! हे वरद! (यः) परैः, अमर्त्यैः, अपि, कथमपि, अचिकित्स्याम्, भक्ताग्र्याणाम्, संसाराख्याम्, रुजम्, यः, स्वात्मबोधौषधेन, शमयति, तम्, त्वाम्, संसारवैद्यम्, सम्प्रति, भवमहादीर्घतीव्रामयेन, क्लिष्टः, अहम्, शरणम्, यामि।

अर्थ—हे सर्वाधीश्वर! हे वरद! बड़े-बड़े श्रेष्ठ देवता लोग मुश्किल से जिस रोग की चिकित्सा नहीं कर सकते हैं, श्रेष्ठ भक्तों के उसी भवरोग का आप आत्मज्ञानरूप औषधि से शमन कर देते हैं। इसी लम्बे एवं तीव्र भवरोग से मैं भी पीडित हूँ, आप सारे संसार के वैद्य हैं, अतः मैं आपकी ही शरण में आता हूँ।। १८।।

ध्यातो यत्नाद् विजितकरणै र्योगिभि र्यो विमृग्य-
स्तेभ्यः प्राणोत्क्रमणसमये संन्निधायात्मनैव।
तद्व्याचष्टे भवभयहरं तारकं ब्रह्म देव-
स्तं सेवेऽहं गिरिश सततं ब्रह्मविद्यागुरुं त्वाम्।। १९।।

अन्वय—हे गिरिश! यत्नात्, विजितकरणैः, योगिभिः, विमृग्यः, अस्ति (यः) ध्यातः, सः, देवः, (तेषाम्) प्राणोत्क्रमणसमये, आत्मना, एव, सन्निधाय, तेभ्यः, तत्, भवभयहरम्, तारकम्, ब्रह्म, व्याचष्टे, अतः, अहम्, अपि, तम्, (तादृशमित्यर्थः) ब्रह्मविद्यागुरुम्, त्वाम्, सततम्, सेवे।

अर्थ—हे गिरीश! प्रयत्नपूर्वक अपनी इन्द्रियों को वश में करके जिन

योगियों ने बहुत छानबीन कर अर्थात् विवेपूर्वक जिस तत्त्व का ध्यान किया, बाद में उनके प्राणों के प्रस्थान के समय, उस (तत्त्वरूप) देव ने स्वयं उनके सन्निकट आकर, भवभीति को दूर करने वाला तारक ब्रह्म (मन्त्र) उनको दिया, इस प्रकार अन्तिम समय में तारक ब्रह्म मन्त्र देने वाले आप ही हैं, अतः ब्रह्मविद्या के गुरु आपका मैं निरन्तर ध्यान करता हूँ।। १६।।

दासोऽस्मीति त्वयि शिव मया नित्यसिद्धं निवेद्यं
जानास्येतत् त्वमपि यदहं निर्गतिः संभ्रमामि।
नास्त्येवान्यन्मम किमपि ते नाथ विज्ञापनीयं
कारुण्यान्मे शरणवरणं दीनवृत्ते गृहाण।। २०।।

अन्वय—हे शिव! अहम्, (तव) दासः, अस्मि, इति कृत्वा, त्वयि, मया, यत्, निवेद्यम्, अस्ति, तत्तु, नित्यसिद्धम्, अस्ति, अन्यच्च, एतत्, त्वम्, जानासि, एव, यत्, अहम्, साम्प्रतम्, निर्गतिः (निःशरणःसन् यत्र तत्र,) सम्भ्रमामि, हे नाथ! मम, किमपि, अन्यत्, ते, विज्ञापनीयम्, नास्ति, एव, (केवलम् एतत्प्रार्थये यत्, त्वम्,) कारुण्यात्, दीनवृत्तेः, मे शरणवरणम्, गृहाण।

अर्थ—हे शिव! जब मैं आपका दास हूँ, तो फिर यह तो निसर्ग-सिद्ध है कि मैं आपसे कुछ निवेदन करुँ। आप तो यह जानते ही हैं, कि आजकल मैं निःशरण होकर इधर-उधर भटक रहा हूँ। मेरा आपसे और कोई भारी निवेदन भी नहीं है, सिर्फ इतना ही है कि दीनहीन मेरी आप शरण की शर्त ले लो, अर्थात् इस बात को आप संकल्प पूर्वक स्वीकार कर लो कि आप मेरी हर तरह से रक्षा करेंगे।। २०।।

ब्रह्मोपेन्द्रप्रभृतिभिरपि स्वेप्सितप्रार्थनाय
स्वामिन्नग्रे चिरमवसरस्तोषयद्भिः प्रतीक्ष्यः।
द्रागेव त्वां यदिह शरणं प्रार्थये कीटकल्प-
स्तद्विश्वाधीश्वर तव कृपामेव विश्वस्य दीनः।। २१।।

अन्वय—हे स्वामिन्! स्वेप्सितप्रार्थनाय, त्वाम्, तोषयद्भिः, ब्रह्मोपेन्द्रप्रभृतिभिः, अपि, अग्रे, अवसरः, चिरम्, प्रतीक्ष्यः, (अस्ति)। हे विश्वाधीश्वर! यत्, इह, कीटकल्पः, (अत एव) दीनः, (त्वयि) विश्वस्य (विश्वासं कृत्वा) त्वाम्, द्राक्, एव, तव, कृपाम्, एव प्रार्थये, तद् (उचितम्, इति शेषः, अग्रे अवसराभावात्, ब्रह्मादीनान्तु अग्रेऽपि अवसरः, सुलभः, अतस्तेषां प्रतीक्षा तु नानुचितेत्यर्थः)। अथवा—

ब्रह्मादिभिरपि तवाग्रे प्रार्थनायावसरश्चिरं प्रतीक्ष्यो, न झटिति मिलति, एवं सत्यपि अहं द्रागेव शरणं यत् प्रार्थये तत् तव दीने कृपामेव विश्वस्य— इति योजना।

अर्थ—हे स्वामिन्! अपने-अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए, ब्रह्मा विष्णु आदि देवता जो आपको, अनेक प्रकार की स्तुति व नति के द्वारा प्रसन्न कर रहे हैं, उनके लिए तो आगे भी बहुत समय तक अवसर है, कृपया आप उन्हें प्रतीक्षा करने दीजिए, क्योंकि वे समर्थ तथा समृद्धिशाली देवता हैं, उन्हें प्रतीक्षा सह्य है। मैं तो कृमितुल्य, अत एव दीन हूँ, इस समय तो किसी प्रकार से आपकी शरण में आ पड़ा हूँ, आप पर मेरा विश्वास भी है, अतः, कृपा करके आप मेरे ऊपर शीघ्र ही अनुग्रह करें, क्योंकि आगे फिर मुझे ऐसा अवसर मुश्किल से ही मिलेगा। अथवा, बड़े-बड़े देवताओं को भी आपके संमुख प्रार्थना करने का अवसर बहुत इन्तजार के बाद ही मिलता है। ऐसे में मैं जो यह प्रार्थना कर रहा हूँ कि शीघ्र मुझे शरण दें, यह आपकी प्रसिद्ध कृपा के ही भरोसे से कर पा रहा हूँ। आप कृपालु होने से कीड़े-से दीन मेरी विनती अवश्य सुन लेंगे।। २१।।

कर्मज्ञानप्रचयमखिलं दुष्करं नाथ पश्यन्
पापासक्तं हृदयमपि चापारयन् संन्निरोद्धुम्।
संसाराख्ये पुरहर महत्यन्धकूपे विषीदन्
हस्तालम्बप्रपतनमिदं प्राप्य ते निर्भयोऽस्मि।। २२।।

अन्वय—हे नाथ! अखिलम्, कर्मज्ञानप्रचयम्, दुष्करम्, पश्यन्, पापासक्तम्, इदम्, हृदयम्, अपि, च, सन्निरोद्धुम्, अपारयन्, (अहम्) सम्प्रति, संसाराख्ये, महति, अन्धकूपे, विषीदन्, अस्मि, हे पुरहर! (विषमेऽस्मिन् समयेऽपि) ते, (तव) इदम्, हस्तालम्बप्रपतनम्, प्राप्य, निर्भयः, अस्मि।

अर्थ—हे नाथ! कर्म, ज्ञान व भक्ति आदि समस्त कृत्य-वर्ग के अनुष्ठान को कठिन समझकर, और अपने पापासक्त हृदय को भी पापाचरण से रोकने में असमर्थ होता हुआ, मैं इस संसाररूपी भयानक अँधेरे कुए में गिरकर दुःखी हो रहा हूँ, परन्तु हे पुरहर! इस विषम परिस्थिति में भी आपके हाथ का सहारा प्राप्त कर निर्भय हूँ। (यह संसारान्धकूप ऐसा था कि जहाँ मुझे कोई भी नहीं देख सकता था। एक तो अन्धेरे कुँये में देखना मुश्किल, फिर किसी प्रकार देख भी ले, तो इतने गम्भीर कुँयें से उद्धार करना और भी

मुश्किल है, पर आपने तो इस जगह भी मेरे उद्धार के लिए सहारे स्वरूप अपना हाथ गिरा दिया, अतः मैं अब भय से रहित हूँ; 'प्रपतनम्' इस पद का यही स्वारस्य है)।। २२।।

त्वामेवैकं हतजनिपथे पान्थमस्मिन् प्रपञ्चे
मत्वा जन्मप्रलयजलधे र्बिभ्यतः पारशून्यात्।
यत्ते धन्याः सुरवर मुखं दक्षिणं संश्रयन्ति
क्लिष्टं घोरे चिरमिह भवे तेन मां पाहि नित्यम्।। २३।।

अन्वय—हे सुरवर! हतजनिपथे अस्मिन् प्रपञ्चे, त्वाम्, एकम् एव पान्थम् मत्त्वा, पारशून्यात् जन्मप्रचयजलधेः बिभ्यतः धन्याः यद् दक्षिणं मुखं संश्रयन्ति, इह घोरे भवे चिरं क्लिष्टं मां तेन नित्यं पाहि।

अर्थ—हे देवोत्तम! अत्यन्त कष्टप्रद जन्मादि मार्ग वाले इस संसार में एक आपको ही मार्ग-सहायक समझकर धन्य लोग अनन्त जन्मरूप अपार समुद्र से डरते हुए आपके जिस दक्षिण-दिशा की ओर स्थित मुख की शरण लेते हैं, इस दुःखद संसार में अनादि काल से क्लेश पा रहे मेरी उस मुख से सदा रक्षा कीजिये। (भगवान् का दक्षिणामूर्ति रूप ज्ञान देकर रक्षा करता है यह शास्त्रप्रसिद्ध है।)।। २३।।

एकोऽसि त्वं शिव जनिमतामीश्वरो बन्धमुक्त्योः
क्लेशांगारावलिषु लुठतः का गतिस्त्वां विना मे।
तस्मादस्मिन्निह पशुपते घोरजन्मप्रवाहे
खिन्नं दैन्याकरमतिभयं मां भजस्व प्रपन्नम्।। २४।।

अन्वय—हे शिव!, त्वम्, एव, एकः, जनिमताम्, बन्धमुक्त्योः ईश्वरः, असि, क्लेशांगारावलिषु, लुठतः, मे (मम) त्वाम्, विना, का गतिः, अस्ति? तस्मात्, हे पशुपते! अस्मिन्, घोरजन्मप्रवाहे, इह (संसारे) त्वाम्, शरणम्, प्रपन्नम्, खिन्नम्, दैन्याकरम्, अतिभयम्, माम्, भजस्व।

अर्थ—हे शिव! आप ही एकमात्र इन सांसारिक प्राणियों के बंध व मोक्ष के ईश्वर हो, सांसारिक क्लेशरूप अंगारों की शय्या में लोटने वाले मेरे लिए सिवाय आपके और शरण ही कौन है? इसलिए हे पशुपते! आपके शरण में आये हुए, पीडित एवं दीनता के घर व अतिभयभीत मेरी, आप रक्षा करें।। २४।।

यो देवानां प्रथममशुभद्रावको भक्तिभाजां
पूर्वं विश्वाधिक शतधृतिं जायमानं महर्षिः।

दृष्ट्याऽपश्यत् सकलजगतीसृष्टिसामर्थ्यदात्र्या
स त्वं ग्रन्थिप्रविलयकृते विद्यया योजयास्मान्।। २५।।

अन्वय—हे विश्वाधिक! भक्तिभाजाम् अशुभद्रावकः यः, महर्षिः, पूर्वम्, देवानाम्, प्रथमम्, जायमानम्, शतधृतिम्, सकलजगतीसृष्टिसामर्थ्य-दात्र्या, दृष्ट्या, अपश्यत्, सः, त्वम्, ग्रन्थिप्रविलयकृते, विद्यया, अस्मान् योजय।

अर्थ—हे विश्वाधिक (विश्वविलक्षण)! भक्तों का अशुभ दूर करने वाले जो (आप) महान् ऋषि, देवताओं में सर्वप्रथम उत्पन्न होते ब्रह्मा जी को, समस्त जगत्सर्जन के सामर्थ्य से पूर्ण दृष्टि से देखते हैं (अर्थात् ब्रह्मा जी को जगत्सर्जन सामर्थ्य प्रदान करते हैं), वही आप, हम लोगों के हृदयनिष्ठ अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिये, हमें विद्या प्रदान करें।। २५।।

यद्याकाशं शुभद मनुजाश्चर्मवद् वेष्टयेयु-
र्दुःखस्यान्तं तदपि पुरुषस्त्वामविज्ञाय नैति।
विज्ञानं च त्वयि शिव ऋते त्वत्प्रसादान्न लभ्यं
तद्दुःखार्तः कमिह शरणं यामि देवं त्वदन्यम्।। २६।।

अन्वय—हे शुभद! मनुजाः, यदि, आकाशम्, चर्मवत्, वेष्टयेयुः, (यद्यपि निराकारस्याकाशस्य चर्मणा वेष्टनमशक्यमस्ति तथापि तादृशं मानवाशक्यं कार्यं कदाचित् कृत्वाऽपीत्यर्थः) पुरुषः तदपि, त्वाम्, अविज्ञाय, दुःखस्य अन्तम्, न, एति, हे शिव! च, त्वयि, विज्ञानम्, त्वत्प्रसादात्, ऋते, न, लभ्यम्, तत्, दुःखार्तः, अहम्, इह, त्वदन्यम्, कम्, देवम्, शरणम्, यामि।

अर्थ—हे कल्याणकारक! यदि मनुष्य आकाश को चमड़े की तरह लपेट भी ले, तो भी आपके स्वरूप को जाने बिना दुःख के पार नहीं जा सकता है। (तात्पर्य है कि निराकार तथा परम महत् परिमाण वाले आकाश का चर्म जैसे वेष्टन ही सर्वप्रथम असम्भव है, फिर भी अतिसाहसवश कदाचित् यह कार्य कर भी लें, तो भी बिना आपके स्वरूप के साक्षात्कार किये इस दुःखसागर संसार से पार नहीं हो सकते हैं।) अतः सांसारिक सन्तापों से सन्तप्त हुआ मैं आपको छोड़कर अन्य किस देवता की शरण में जाऊँ, अर्थात् अब मैं तो केवल आपकी ही शरण में हूँ।। २६।।

किं गूढार्थैरकृतकवचोगुम्फनैः किं पुराणै-
स्तन्त्राद्यै र्वा पुरुषमतिभिर्दुर्निरूप्यैकमत्यैः।

किं वा शास्त्रैरफलकलहोल्लासमात्रप्रधानै-
र्विद्या विद्येश्वर कृतधियां केवलं त्वत्प्रसादात्।। २७।।

अन्वय–विद्येश्वर! गूढार्थैः अकृतकवचोगुम्फनैः किम्? पुरुषमतिभिः दुर्निरूप्यैकमत्यैः पुराणैः तन्त्राद्यैः किम्, वा? अफलकलहोल्लासमात्र-प्रधानैः शास्त्रैः किं वा? कृतधियां केवलं त्वत्प्रसादाद् विद्या (भवेत्)।

अर्थ–हे विद्येश्वर! जो किसी के द्वारा बनाये नहीं गये ऐसे वाक्यविन्यासरूप गम्भीरार्थक वेदों से हमें क्या करना है! और मनुष्यों की सामान्य बुद्धि के द्वारा, जिनका अपना कोई एक सिद्धान्त निश्चित न हो सके ऐसे तन्त्र आगम व पुराणों से भी हमारा कोई मतलब नहीं। निरर्थक वादविवादरूप कोलाहल-प्रचुर कलह ही जिनमें प्रधान हो, ऐसे शास्त्रार्थों से भी हमे कोई लाभ नहीं। प्रणीतात्माओं के लिए (अर्थात् अध्यात्मज्ञान में जिनकी मति स्वच्छ प्राञ्जल हो रही है, उनके लिए) तो आपके प्रसाद से ही विद्या प्राप्त हो जाती है।।२७।।

पापिष्ठोऽहं विषयचपलः सन्ततद्रोहशाली
कार्पण्यैकस्थिरनिवसतिः पुण्यगन्धानभिज्ञः।
यद्यप्येवं तदपि शरणं त्वत्पदाब्जं प्रपन्नं
नैनं दीनं स्मरहर तवोपेक्षितुं नाथ युक्तम्।। २८।।

अन्वय–हे स्मरहर! अहम्, पापिष्ठः, विषयचपलः, सन्ततद्रोहशाली, कार्पण्यैकस्थिरनिवसतिः, पुण्यगन्धानभिज्ञः, अस्मि, हे नाथ! यद्यपि, अहम्, एवम्, अस्मि, तदपि (तथापि) त्वत्पदाब्जम्, शरणम्, प्रपन्नम्, एनम्, दीनम्, उपेक्षितुम्, तव, न, युक्तम्।

अर्थ–हे स्मरहर! मैं अत्यन्त पापी, विषय-लोलुप, स्वभावतः द्रोहशील, कृपणता का एकमात्र आश्रय, तथा पुण्य के तो गन्ध से भी परिचित नहीं हूँ। हे नाथ! यह सब कुछ होते हुए भी, अब मैं केवल आपके चरणकमलों की ही शरण में हूँ, अतः अब शरण में आये हुए इस दीन की उपेक्षा करना आपके लिये उचित नहीं है।। २८।।

आलोच्यैवं मयि यदि भवान्नाथ दोषाननन्ता-
नस्मत्पादाश्रयणपदवीं नार्हतीति क्षिपेन्माम्।
अद्यैवेमं शरणविरहाद् विद्धि भीत्यैव नष्टं
ग्रामो गृह्णात्यहिततनयं किं नु मात्रा निरस्तम्।। २९।।

अन्वय–हे नाथ! मयि, एवम्, अनन्तान्, दोषान्, आलोच्य, अयम्,

अस्मत्पादाश्रयणपदवीम्, न, अर्हति, इति, (कृत्वा) यदि भवान्, माम्, क्षिपेत् (तर्हि) शरणविरहात्, इमम्, जनम्, अद्य, एव, भीत्या, नष्टम्, विद्धि, मात्रा, निरस्तम्, अहिततनयम्, ग्रामः नु गृह्णाति, किम्? (एवं त्वत्त्यक्तस्य मे शरणमसम्भवीत्यर्थः)।

अर्थ—हे नाथ! मुझ में अनन्त दोषों को देखकर, यह समझकर कि यह मेरे चरणकमलों की शरण के योग्य नहीं है, यदि आप मुझे अपने से दूर रक्खेंगे, तो आपके शरण के विरह से आप इस (सेवक) जन को आज ही भय से नष्ट हुआ समझिये। क्या किसी कारणवश माता के द्वारा उपेक्षित बदचलन बालक को गाँव में कोई भी सहारा देता है? (सर्वाधिक स्नेह वाली माँ ने भी जिसे छोड़ दिया उसे अन्य सहारा दुर्लभ है। माँ की जगह आप हैं। आप ही मुझे दूर कर देंगे तो अन्य कोई शरण मुझे नहीं मिलेगी इसमें क्या कहना!।। २९।।

क्षन्तव्यं वा निखिलमपि मे भूतभावि व्यलीकं
दुर्व्यापारप्रवणमथवा शिक्षणीयं मनो मे।
नत्वेवार्त्या निरतिशयया त्वत्पदाब्जं प्रपन्नं
त्वद्विन्यस्ताखिलभरममुं युक्तमीश प्रहातुम्।। ३०।।

अन्वय—हे ईश! (वा) मे (मम) निखिलम्, अपि, भूतभावि व्यलीकम्, क्षन्तव्यम्, अथवा, दुर्व्यापारप्रवणम्, मे, मनः, शिक्षणीयम्, तु, (परन्तु) निरतिशयया, आर्त्या, त्वत्पदाब्जम्, प्रपन्नम्, त्वद्विन्यस्ताखिलभरम्, अमुम्, (जनम्) प्रहातुम, न, एव, युक्तम्, अस्ति।

अर्थ—हे ईश! या तो आप मेरे भूत, भविष्यत् व वर्तमान में दिखलाई देने वाले जितने भी दोष हैं, उन्हें क्षमा कर दो, अथवा दुर्व्यसनों की ओर प्रवृत्त मेरे इस मन को ही कुछ समझा दो, परन्तु असह्य पीडा से पीडित होकर जब मैं आपकी शरण में आ गया हूँ, तो फिर इस अवस्था में, इस जन को एकाएक छोड़ देना भी उचित नहीं है, क्योंकि अब मैं अपने जीवन का सारा भार आपके ऊपर छोड़ चुका हूँ।। ३०।।

सर्वज्ञस्त्वं निरवधिकृपासागरः पूर्णशक्तिः
कस्मादेनं गणयसि न मामापदब्धौ निमग्नम्।
एकं पापात्मकमपि रुजा सर्वतोऽत्यन्तदीनं
जन्तुं यद्युद्धरसि शिव कस्तावतातिप्रसङ्गः।। ३१।।

अन्वय—हे शिव! त्वम्, सर्वज्ञः, निरवधिकृपासागरः, पूर्णशक्तिः, च,

असि, एवं, भूत्वाऽपि, त्वम्, आपदब्धौ, निमग्नम्, एनम्, माम्, कस्मात्, न, गणयसि, हे शिव! यदि, रुजा, सर्वतः, अत्यन्तदीनम्, पापात्मकम्, एकम्, अपि, जन्तुम्, उद्धरसि, चेत्, तावता, तव, कः, अतिप्रसङ्गः, भवेत्।

अर्थ—हे शिव! आप सर्वज्ञ, निस्सीम कृपासागर तथा पूर्णशक्ति से सम्पन्न हो, यह सब कुछ होते हुए भी, विपत्सागर में डूबे हुए मुझे आप क्यों नहीं देखते हैं, अर्थात् आप मेरा उद्धार करने के लिए जब सर्वथा समर्थ हैं, तो फिर इस प्रकार विपत्ति में निमग्न मेरा उद्धार आप क्यों नहीं करते? भवरोग से सर्वथादीन किसी पापी प्राणी का यदि आप उद्धार कर देंगे, तो फिर आपका कुछ बिगड़ जायेगा क्या? या आपको कोई दोष लग जायेगा क्या?।। ३१।।

अत्यन्तार्तिव्यथितमगतिं देव मामुद्धरेति
क्षुण्णो मार्गस्तव बत पुरा केन वाऽनाथनाथ।
कामालम्वे बत तदधिकां प्रार्थनारीतिमन्यां
त्रायस्वैनं सपदि कृपया वस्तुतत्त्वं विचिन्त्य।। ३२।।

अन्वय—हे देव! अत्यन्तार्तिव्यथितम्, अत एव, अगतिम्, माम्, उद्धर, इति (कथनन्तु पिष्टपेषणप्रायम्) बत, पुरा, (प्राक्कालादेव एष आपदुद्धरणात्मकः) मार्गः, तु, तव, क्षुण्णः (चिराभ्यस्त इत्यर्थः) इति, केन, न, ज्ञायते? बत, (खेदे) तदधिकाम्, अन्याम्, (पूर्वोक्तादपराम्) काम्, वा, प्रार्थनारीतिम्, आलम्बे (यया त्वं प्रसीदसीत्यर्थः) अतः हे अनाथनाथ! वस्तुतत्त्वम्, विचिन्त्य, कृपया, सपदि, एनम्, दीनम्, वराकम्, त्रायस्व।

अर्थ—हे देव! मैं इस भवपीडा से अत्यन्त पीडित हूँ, अशरण हूँ, अतः आप मेरा उद्धार करें—यह कहना तो एक तरह से पुनरुक्ति या पिष्टपेषण ही है, क्योंकि प्राचीनकाल से ही दीनों का उद्धार करने की आपकी आदत है; अर्थात् यह दीनोद्धरण रूप व्रत तो आपका चिराभ्यस्त है, इसे कौन नहीं जानता है? बात यह है कि मैं पूर्वोक्त 'मेरा उद्धार कीजिए' इस सीधी-सादी प्रार्थना से कोई विशिष्ट वक्रोक्ति या व्यङ्ग्यपूर्ण वचन भी नहीं जानता हूँ, जिससे कि आप प्रभावित हो सकें। अतः हे अनाथनाथ! अशरण-शरण! वास्तविकता को देखते हुए, कृपा करके शीघ्र ही इस दीन की रक्षा कीजिए।।३२।।

एतावन्तं भ्रमणनिचयं प्रापितोऽयं वराकः
श्रान्तः स्वामिन्नगतिरधुना मोचनीयस्त्वयाहम्।
कृत्याकृत्यव्यपगतमतिर्दीनशाखामृगोऽयं
सन्ताड्यैनं दशनविवृतिं पश्यतस्ते फलं किम्।। ३३।।

अन्वय—हे स्वामिन्! अयम्, वराकः, एतावन्तम्, (कालम् यावत्, त्वयैव) भ्रमणनिचयम्, प्रापितः, अस्ति, अधुना, अहम्, श्रान्तः, अत एव, अगतिः, (गमनासमर्थः) चास्मि, अतः, त्वया, मोचनीयः। अयम्, दीनशाखामृगः, तु, कृत्याकृत्यव्यपगतमतिः, अस्ति, एनम्, सन्ताड्य, दशनविवृतिम् पश्यतः, ते किम्, फलम्, अस्ति।

अर्थ—हे स्वामिन्! आपके द्वारा ही अथवा आपकी माया से ही यह (जीव) बेचारा इतने समय तक घूमता ही रहा, अब मैं (जीव) इस संसार में घूमते-घूमते थक गया हूँ, अतः भटकने में भी असमर्थ हूँ, इसलिए अब आपको मुझे इस भवबन्धन से अवश्य छुड़ा लेना चाहिए। क्या करना, क्या नहीं करना—इस बारे में नासमझ मैं दुःखी बन्दर हूँ, मुझे मारकर मेरे फैले हुए दाँत देखकर आपको क्या फल (मजा) मिल जाता है? (बंदर नचाने वाले तो अपनी जीविका चलाने के लिये ऐसी क्रूरता करते हैं कि बंदर को पीटकर उससे अभिनय कराते हैं, पर आपके लिये यह शोभा नहीं देता।)।। ३३।।

माता तातः सुत इति समाबाध्य मां मोहपाशै-
रापात्यैवं भवजलनिधौ हा किमीश त्वयाप्तम्।
एतावन्तं समयमियतीमार्तिमापादितेऽस्मिन्
कल्याणी ते किमिति न कृपा कापि मे भाग्यरेखा।। ३४।।

अन्वय—हा ईश! (हेति दैन्ये, आश्चर्ये वा) माता, तातः, सुतः, इति, सम्बन्धविशेषैः, मोहपाशैः, माम्, समाबाध्य, एवम्, भवजलनिधौ, आपात्य (वद) त्वया, किम्, आप्तम्, (न किमपीत्यर्थः)। एतावन्तम्, समयम्, (यावत्) इयतीम्, आर्तिम्, आपादिते, अस्मिन्, जने, ते (तव) किमिति, कल्याणी, कृपा, न (भवतीत्यर्थः)? (सम्भवतः, त्वत्कृपाभावे) कापि मे भाग्यरेखा, (एव, हेतुः, अस्ति, या खलु भवत्कृपासन्निधावपि स्वकीयं वैलक्षण्यं न जहाति, रूपान्तरं नैतीत्यर्थः)।

अर्थ—हा ईश! इस संसार के, 'माता पिता, पुत्र' इत्यादि नाते रूपी मोह पाश में मुझे बाँधकर, इस भवसागर में मुझे गिराकर बताईए आपको क्या

मिला? अर्थात् आपका भी इसमें खास कोई लाभ तो है नहीं। फिर इतने लम्बे अरसे तक भवरोग से इस ब्रेचारे (जीव) को पीडित कर देने पर भी, अब, आपकी इस पर कल्याणकारिणी कृपा क्यों नहीं होती है? मालूम पड़ता है कि यह सब करतूत, मेरी सुदृढ दुर्भाग्यरेखा की ही है, जिस पर आपकी कृपा की छाया भी नहीं फटकने पाती है! ('स ईशो यद्वशे माया, स जीवो यस्तयार्दितः' इस वेदान्त-सिद्धान्त के अनुसार तो जब भाग्यरेखा भी माया के अन्तर्गत है, तब फिर उसे उलटने या अन्यथा करने में आप सर्वथा समर्थ ही हैं। यह होते हुए भी या तो आप मेरी उपेक्षा कर रहे हैं, अथवा माया की विलक्षणता या अनिर्वचनीयता से आप खुद भी प्रभावित हैं! यह भगवान् के प्रति भक्त का मीठा उपालम्भ भी है, जो भाग्यरेखा सम्बन्धी 'कापि' इस पद से अभिव्यक्त होता है)।। ३४।।

भुङ्क्षे गुप्तं बत सुखनिधिं तात साधारणं त्वं
भिक्षावृत्तिं परमभिनयन् मायया मां विभज्य।
मर्यादायाः सकलजगतां नायकः स्थापकस्त्वं
युक्तं किं तद् वद विभजनं योजय स्वात्मना माम्।। ३५।।

अन्वय—हे तात! (स्वामिन्) बत (इति खेदे) त्वम्, परम्, भिक्षावृत्तिम्, अभिनयन्, मायया, माम्, विभज्य, साधारणम्, सुखनिधिम्, गुप्तम्, (यथास्यात्तथा) यत् भुङ्क्षे (तन्नोचितमित्यर्थः) यतो हि, त्वम्, सकलजगताम्, मर्यादायाः, स्थापकः, नायकः, च, असि, तत्, वद, (मायाद्वारा मम) विभजनम्, किम्, युक्तम्, अस्ति? (कदापि नेत्यर्थः)। अतः, माम्, स्वात्मना, योजय (तव मम च परस्परं विभागो नोचित इत्यर्थः)।

अर्थ—हे तात! बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि, एक ओर तो आप भिक्षावृत्ति का अभिनय कर रहे हैं, और दूसरी ओर मेरे को माया के परदे के द्वारा अलग करके, आत्मविषयक सामान्य सुख का चुपचाप उपभोग कर रहे हैं! अर्थात् जो सुख या वस्तु सर्वसामान्य है, उसका एक ओर पर्दा लगाकर, चुपचाप सटक जाना उचित नहीं है, उसमें भी जो पूरे परिवार का स्वामी है, उसे तो परिवार के सदस्यों से इस प्रकार का पर्दा करना और भी अनुचित है। इस संसार की मर्यादाओं के आप संस्थापक तथा उन्नायक हैं, साथ ही साथ इस परिवार संस्था के संरक्षक भी हैं, तब स्वयं आपका अपने ही परिवार में भेदभाव (पार्टीशन) करना क्या उचित है? यह तो 'रक्षको यत्र भक्षकः' वाली नीति हुई! अतः इस माया के पर्दे को उठाकर आप हमें भी अपने में

मिलाइए।। ३५।।

न त्वा जन्मप्रचयजलधेरुद्धरामीति चेद्धी-
रास्तां तन्मे भवतु च जनिर्यत्र कुत्रापि जातौ।
त्वद्भक्तानामनितरसुखैः पादधूलीकिशोरै-
रारब्धं मे भवतु भगवन् भावि सर्वं शरीरम्।। ३६।।

अन्वय—हे भगवन्! त्वा (त्वाम्) जन्मप्रचयजलधेः न, उद्धरामि, इति, (ते) धीः अस्ति, चेत्, तर्हि, तत्, आस्ताम्, तावत्, मे, यत्र, कुत्रापि, जातौ, जनिः, भवतु, नाम, परन्तु, तत्, भावि, सर्वम्, शरीरम्, त्वद्भक्तानाम्, अनितरसुखैः, पादधूलीकिशोरैः, आरब्धम्, भवतु।

अर्थ—हे भगवन्! 'इस जन्ममरण रूप संसार से मैं तुम्हारा उद्धार नहीं करूँगा' यदि ऐसा ही आपका निश्चय हो तो, फिर रहने दीजिए। आप मेरे लिए कुछ भी प्रयास मत कीजिए। जिस किसी जाति या वर्ण में मेरा जन्म होय, तो कोई हर्ज नहीं, पर इतना ध्यान अवश्य रहे कि, अगले जन्मों में होने वाले मेरे शरीर का निर्माण, केवल आपके भक्तों के निरतिशय सुखरूप, चरणधूली के कणरूप परमाणुओं से ही होय।। ३६।।

कीटा नागास्तरव इति वा किं न सन्ति स्थलेषु
त्वत्पादाम्भोरुहपरिमलोद्वाहिमन्दानिलेषु।
तेष्वेकं वा सृज पुनरिमं नाथ दीनार्तिहारिन्
आतोषान्मां मृड भव महांगारनद्यां लुठन्तम्।। ३७।।

अन्वय—हे नाथ! हे दीनार्तिहारिन्! हे मृड! त्वत्पादाम्भोरुह-परिमलोद्-वाहिमन्दानिलेषु, स्थलेषु (ये) कीटाः, नागाः, तरवः, इति, वा (अन्येऽपि, केचन नदीपर्वतादयः सन्ति चेत्) तेषु मध्ये, भवमहाङ्गारनद्यां, लुठन्तम्, इमम्, माम्, आ तोषात्, एकम्, वा, सृज।

अर्थ—हे नाथ! हे दीनों के दुःख को दूर करने वाले! हे सबको सुख देने वाले शिव! आपके चरण-कमलों के सुगन्ध को वहन करने वाले, मन्द सुगन्ध शीतल समीर युक्त जो प्रदेश हैं, उनमें कीड़े मकोड़े, हाथी, व्याघ्र और अनेक प्रकार के पेड़ पौधे नहीं हैं क्या? जब तक आपको सन्तोष न हो, तब तक आप इन्हीं में से किसी एक योनि में मुझे जन्म प्रदान करें। मैं तो यहाँ संसार में नाना प्रकार के विषय रूपी अंगारों की जलती हुई नदी में लोट रहा हूँ।।३७।।

काले कण्ठस्फुरदसुकलालेशसत्तावलोक-
व्यग्रोदग्रव्यसनिसकलस्निग्धरुद्धोपकण्ठे।

अन्तस्तोदैरवधिरहितामार्तिमापद्यमानेऽ
प्यंघ्रिद्वन्द्वे तव निविशतामन्तरात्मन् ममात्मा।। ३८।।

अन्वय—हे अन्तरात्मन्! मम, अयम्, आत्मा, कण्ठस्फुरदसुकला-लेशसत्तावलोकव्यग्रोदग्रव्यसनिसकलस्निधरुद्धोपकण्ठे, सति, तथा च अन्तः, तोदैः, अवधिरहिताम्, आर्तिम्, आपद्यमाने, काले, तव, अंघ्रिद्वन्द्वे, निविशताम्।

अर्थ—हे अन्तरात्मन्! बस मैं तो इतना ही चाहता हूँ कि, महाप्रस्थानवेला में जब मेरे प्राण, हृदय से उत्क्रमण करते-करते कण्ठ प्रदेश तक पहुँच जायें, और मेरे जीवन की इस अन्तिम घड़ी को देखते हुए, मेरे स्निग्ध प्रिय मित्रजन, इस विपत्ति से व्यग्र होकर, रो-रोकर अपना गला सुखा दें, साथ ही साथ अन्दर ही अन्दर अन्तःकरण को यमराज अपने चाबुक से पीट-पीट कर असह्य कष्ट पहुँचा रहा हो, उस समय, इतनी मेहरबानी आप जरूर करें कि, मेरा चित्त आपके चरणद्वन्द्वों में लगा रहे।। ३८।।

अन्तर्बाष्पाकुलितनयनानन्तरङ्गानपश्यन्
अग्रे घोषं रुदितबहुलं कातराणामशृण्वन्।
अत्युत्क्रान्तिश्रममगणयन्नन्तकाले कपर्दिन्
अंघ्रिद्वन्द्वे तव निविशतामन्तरात्मन् ममात्मा।। ३९।।

अन्वय—हे अन्तरात्मन्! हे कपर्दिन्! (यदा) अन्तर्बाष्पाकुलितनयनान्, अन्तरङ्गान्, (सुहृदः) अपश्यन्, कातराणाम्, रुदितबहुलम्, घोषम्, अग्रे, अशृण्वन्, अन्तकाले (प्राणप्रयाणोत्सवे निश्चेतनतया) अत्युत्क्रान्तिश्रमम्, अगणयन् (अहम् भूयासम्, तदा, तादृशे घोरमोहसंकटादिसंकीर्णेऽपि काले) मम, अयम्, आत्मा, (चित्तमन्तःकरणं वा) तव अंघ्रिद्वन्द्वे, निविशताम्।

अर्थ—हे अन्तरात्मन्! हे शिव! उस समय जबकि मेरी मृत्यु के दुःख से आँसू गिराने वाले खास अपने ही अन्तरङ्ग जनों को मैं न देख सकूँ, मोह से दुःखी एवं भयभीत लोगों के करुण क्रन्दन को भी जब मैं न सुन सकूँ, औरों की तो बात ही नहीं, खुद अपनी ही प्राणोत्क्रमण सम्बन्धिनी आन्तरिक पीडा को भी निश्चेतनतया न जान सकूँ, अर्थात् इस प्रकार के प्राणप्रयाणोत्सव के घने मोह व संकटान्धकार से आच्छादित विकट व विषम समय में, इतनी कृपा अवश्य करना कि, मेरा चित्त आपके चरण युगल में लगा रहे।। ३९।।

चारुस्मेराननसरसिजं चन्द्ररेखावतंसं
फुल्लन्मल्लीकुसुमकलिकादामसौभाग्यचोरम्।
अन्तः पश्याम्यचलसुतया रत्नपीठे निषण्णं
लोकातीतं सततविशदं रूपमप्राकृतं ते।। ४०।।

अन्वय—हे विभो! अहम्, ते, (तव) अचलसुतया, (सह) रत्नपीठे, निषण्णम्, फुल्लन्मल्लीकुसुमकलिकादामसौभाग्यचोरम्, चन्द्ररेखावतंसम्, चारुस्मेराननसरसिजम्, पश्यामि, तथा च, अन्तः, ते, लोकातीतम्, सततविशदम्, अप्राकृतम्, रूपम्, अपि, च, पश्यामि।

अर्थ—हे प्रभो! पार्वती जी के साथ रत्नमय पीढे पर बैठे हुए आपके, खिले हुए मल्लीपुष्प की कलिकाओं की माला के सौन्दर्य को भी मात करने वाले, चन्द्रकला से विभूषित, सुन्दर मुसकान युक्त मुखकमल को देख रहा हूँ, साथ अपने अन्तःकरण में, आपके लोकोत्तर व निसर्ग निर्मल, उस दिव्य रूप का भी साक्षात्कार कर रहा हूँ।। ४०।।

स्वप्ने वापि स्वरसविकसद्दिव्यपङ्केरुहाभं
पश्येयं किं तव पशुपते पादयुग्मं कदाचित्।
क्वाहं पापः क्व तव चरणालोकभाग्यं तथापि
प्रत्याशां मे घटयति पुनर्विश्रुता तेऽनुकम्पा।। ४१।।

अन्वय—हे पशुपते! अहम्, स्वप्ने, अपि, वा, स्वरसविकसद्दिव्य-पङ्केरुहाभम्, तव, पादयुग्मम्, पश्येयम्, किम्? तव, चरणालोकभाग्यम्, क्व, पापः, अहम्, च, क्व, (द्वौ क्वशब्दौ महदन्तरं सूचयतः) तथापि, ते, पुनः, विश्रुता, अनुकम्पा, मे (मम) प्रत्याशाम्, घटयति।

अर्थ—हे पशुपते! क्या मैं स्वप्न में भी, स्वभावतः खिलते हुए दिव्य कमल की आभा के समान आपके चरणयुगल को देख सकता हूँ? यह तो बहुत ही मुश्किल है। कहाँ तो परम सौभाग्य से दर्शनीय आपके चरणयुगल, और कहाँ परम पापी मैं, अर्थात् आपके चरणयुगलों में और मेरे में बहुत अन्तर है। फिर भी आपकी विश्व-विश्रुत जो अनुकम्पा है, वह मुझे दिलासा दे रही है।। ४१।।

भिक्षावृत्तिं चर पितृवने भूतसंघैस्सहेदं
विज्ञातं ते चरितमखिलं विप्रलिप्सोः कपालिन्।
आवैकुण्ठद्रुहिणमखिलप्राणिनामीश्वरस्त्वं
नाथ स्वप्नेप्यहमिह न ते पादपद्मं त्यजामि।। ४२।।

अन्वय–हे कपालिन्! त्वम्, भूतसंघैः, सह, पितृवने, भिक्षावृत्तिम्, चर, तथापि, विप्रलिप्सोः, ते, इदम्, अखिलम्, चरितम्, मम, विज्ञातम्, अस्ति, यतो हि, हे नाथ! त्वम्, आवैकुण्ठद्रुहिणम्, यावत्, अखिलप्राणिनाम्, ईश्वरः, असि, अहम् (पुनः) स्वप्ने, अपि, इह, ते, पादपद्मम्, न, त्यजामि।

अर्थ–हे कपालिन्! आप (भले ही) भूतगणों के साथ श्मशान स्थलों में भिक्षावृत्ति के लिए विचरण कीजिए (क्योंकि कपाली का श्मशानादि स्थलों की भिक्षा करना उचित ही है) किन्तु भ्रम में डालने वाले आपका यह सारा चरित मुझे मालूम है। आप वैकुण्ठ से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सभी चराचर प्राणियों के ईश्वर हैं, यह भी मुझे मालूम है, अतः मैं स्वप्न में भी आपके चरणकमलों को नहीं छोड़ूँगा।। ४२।।

आलेपनं भसितमावसथः श्मशान-
मस्थीनि ते सततमाभरणानि सन्तु।
निह्नोतुमीश सकलश्रुतिपारसिद्ध-
मैश्वर्यमम्बुजभवोऽपि च न क्षमस्ते।। ४३।।

अन्वय–हे ईश! ते, भसितम्, आलेपनम्, आवसथः, श्मशानम्, अस्थीनि च, आभरणानि, सततम्, सन्तु, परन्तु, सकलश्रुतिपारसिद्धम्, यत्, ते (तव) ऐश्वर्यम्, अस्ति, तत्, निह्नोतुम्, अम्बुजभवः, अपि, न, क्षमः, अस्ति।

अर्थ–हे ईश! आपका भस्म का आलेपन (अङ्गराग), श्मशान में निवास हड्डियों के गहने भले ही हों, परन्तु सारे वेदों द्वारा प्रकाशित आपके वर्णनातीत ऐश्वर्य को ब्रह्मा जी भी छिपा नहीं सकते हैं।।४३।।

विविधमपि गुणौघं वेदयन्त्वर्थवादाः
परिमितविभवानां पामराणां सुराणाम्।
तनुहिमकरमौले तावता त्वत्परत्वे
कति कति जगदीशाः कल्पिता नो भवेयुः।। ४४।।

अन्वय–हे तनुहिमकरमौले! अर्थवादाः पामराणां परिमितविभवानां सुराणां विविधम् अपि गुणौघं वेदयन्तु, तावता त्वत्परत्वे कल्पिताः कति कति जगदीशाः नो भवेयुः।

अर्थ–हे बालचन्द्रशेखर! वेदादि में आये प्रशंसापरक वचन, पापयुक्त एवं सीमित ऐश्वर्य वाले देवताओं के नाना प्रकार के गुणसमूहों का वर्णन भले ही करें, इतने मात्र से उन्हें आप से श्रेष्ठ यदि मान लिया जाये तो जगत् के

कितने ईश्वर नहीं हो जायेंगे? (अर्थात् अनेक ईश्वर स्वीकारने होंगे जो शास्त्र व युक्ति से विरुद्ध है अतः शिव से अतिरिक्त अन्य ईश्वर अमान्य है।)।।४४।।

विहर पितृवने वा विश्वपारे पुरे वा
रजतगिरितटे वा रत्नसानुस्थले वा।
दिश भवदुपकण्ठं देहि मे भृत्यभावं
परमशिव तव श्रीपादुकावाहकानाम्।। ४५।।

अन्वय—हे परमशिव! त्वम्, पितृवने वा, विहर, विश्वपारे, पुरे, वा, विहर, रजतगिरितटे, वा, विहर, अथवा, रत्नसानुस्थले, वा, विहर, परन्तु, मे तव, श्रीपादुकावाहकानाम्, भृत्यभावम्, देहि, भवदुपकण्ठम्, च, दिश।

अर्थ—परमशिव! आप चाहे श्मशान में भ्रमण करें, या शिवलोक में निवास करें, कैलास पर्वत में विहार करें, चाहे सुरलोक में आनन्द करें, परन्तु मेरे लिए तो आप अपने सेवकगणों की दासता को प्रदान करें, तथा अपना भी सान्निध्य प्रदान करें। (अर्थात् मैं तो आपका दासानुदास बनकर भी आपके समीप में रहना चाहता हूँ।)।। ४५।।

बलमबलममीषां बल्वजानां विचिन्त्य
कथमपि शिव कालक्षेपमात्रप्रधानैः।
निखिलमपि रहस्यं नाथ निष्कृष्य साक्षात्
सरसिजभवमुख्यैः साधितं नः प्रमाणम्।। ४६।।

अन्वय—शिव! नाथ! अमीषाम्, बल्वजानाम्, बलम्, अबलम्, कथमपि, कालक्षेपमात्रप्रधानैः, विचिन्त्यम्, निखिलम्, अपि, रहस्यम्, साक्षात्, सरसिजभवमुख्यैः, निष्कृष्य, साधितं (यत्तदेव) नः प्रमाणम्।

अर्थ—हे शिव! हे नाथ! इन दुर्बल देवताओं में कौन अधिक बली है व कौन कम बली है इसका किसी तरह विचार किया तो जा सकता है लेकिन ऐसे तर्कादि से जो सारहीन हैं, केवल समय बिताने के उपाय हैं। स्वयं ब्रह्मा जी आदि ने सारा ही रहस्य शास्त्रों से निचोड़ कर उपस्थित किया है (कि समस्त बल पर आपका ही एकाधिकार है) और वही निर्णय हमारे लिये अबाध्य है।। ४६।।

न किंचिन्मे चेतः समभिलषणीयं त्रिभुवने
सुखं वा दुःखं वा मम भवतु यद् भावि भगवन्।
समुन्मीलत्पाथोरुहकुहरसौभाग्यमुषि ते
पदद्वन्द्वे चेतः परिचयमुपेयान्मम सदा।। ४७।।

अन्वय—हे भगवन्! मम, यद् भावि (भाग्याधीनम् तत्,) सुखम्, वा, दुःखम्, वा, (तत्) भवतु, नाम (यतो हि प्रारब्धस्य भोगादेव क्षयः) त्रिभुवने, मे किञ्चित्, चेतःसमभिलषणीयम्, न। (केवलमिदमेव कामये, यत्,) मम, चेतः, सदा, ते, समुन्मीलत्पाथोरुहकुहरसौभाग्यमुषि, पदद्वंद्वे, परिचयम्, उपेयात्, (इति)।

अर्थ—हे भगवन्! मेरे भाग्य में चाहे सुख हो अथवा दुःख हो, उसका तो भोग मुझे करना ही है, क्योंकि प्रारब्ध कर्मों का तो भोग से ही क्षय होता है। इतना जरूर है कि अब आपकी कृपा को छोड़कर तीनों लोकों में भी मेरे लिए कोई वस्तु अभिलषणीय नहीं रह गयी है, अर्थात् आपकी कृपा में जितना आकर्षण है, वैसा तो तीनों लोकों की किसी भी वस्तु में नहीं दीखता है, इसलिए हे प्रभो! मेरी तो अन्तिम सबसे बड़ी अभिलाषा यही है कि, अब मेरा चित्त, खिलते हुए कमलों के कोश के सौन्दर्य को भी मात करने वाले, आपके चरणयुगलों में हमेशा संलग्न रहे।। ४७।।

उदरभरणमात्रं साध्यमुद्दिश्य नीचे-
ष्वसकृदुपनिबद्धामाहितोच्छिष्टभावाम्।
अहमिह नुतिभङ्गीमर्पयित्वोपहारं
तव चरणसरोजे तात जातोऽपराधी।। ४८।।

अन्वय—हे तात! केवलम्, उदरभरणमात्रम्, साध्यम्, उद्दिश्य, नीचेषु, असकृत्, उपनिबद्धाम्, आहितोच्छिष्टभावाम्, नुतिभङ्गीम्, उपहारम्, (उपहाररूपेण) अर्पयित्वा, अहम्, इह, तव, चरणसरोजे, अपराधी, जातः, अस्मि।

अर्थ—हे तात! सिर्फ पेट भरने के प्रयोजन के उद्देश्य से नीच मनुष्यों के सम्मुख बार-बार उनकी प्रशंसा कर जिसे जूठा बना दिया था उसी स्तुति-प्रकार को आपके चरणकमल में भेंट चढ़ाकर अब मैं अपराधी बन गया हूँ। (जिस वाणी से नीच लोगों की प्रशंसा की वह उनके द्वारा भोग ली गयी अतः जूठी हो गयी। जूठी चीज भगवान् को अर्पित करना अपराध है। तात्पर्य है कि अपनी वाणी से प्रशंसा केवल भगवान् की करना चाहिये, अन्यों की नहीं।)।।४८।।

सर्वं सदाशिव सहस्व ममापराधं
मग्नं समुद्धर महत्यमुमापदब्धौ।
सर्वात्मना तव पदाम्बुजमेव दीनः
स्वामिन्ननन्यशरणः शरणं प्रपद्ये।। ४९।।

अन्वय—हे सदाशिव! मम, सर्वम्, अपराधम्, सहस्व, महति, आपदब्धौ, निमग्नम्, अमुम् (जनम्) समुद्धर, हे स्वामिन्! अनन्यशरणः, दीनः, अहम्, सर्वात्मना, तव, पदाम्बुजम्, एव, शरणम्, प्रपद्ये।

अर्थ—हे सदाशिव! मेरे सारे अपराधों को आप क्षमा कर दें, और बहुत बड़े विपत्तिसागर में डूबे हुए मेरा आप उद्धार कर दें। हे स्वामिन्! अनन्यशरण व दीन मैं अब हर प्रकार से आपके चरणकमलों की ही शरण में हूँ।। ४६।।

आत्मार्पणस्तुतिरियं भगवन्निबद्धा
यद्यप्यनन्यमनसा न मया तथापि।
वाचापि केवलमयं शरणं वृणीते
दीनो वराक इति रक्ष कृपानिधे माम्।। ५०।।

अन्वय—हे भगवन्! यद्यपि, अनन्यमनसा, मया, इयम्, आत्मार्पणस्तुतिः, न, निबद्धा, तथापि, हे कृपानिधे! 'अयं दीनः, वराकः, केवलं, वाचा, अपि, शरणं, वृणीते,' इति माम्, रक्ष।

अर्थ—हे भगवन्! यद्यपि एकाग्रचित्त से मैंने इस 'आत्मार्पणस्तुति' का प्रणयन नहीं किया है, फिर भी हे कृपानिधान! 'यह बेचारा असहाय सिर्फ वाणी से भी मुझे अपना रक्षक चुन रहा है' यह समझकर आप मुझे भवसागर में डूबने से बचाइये।। ५०।।

श्रीसदाशिवब्रह्मेन्द्र-कीर्तनमाला

क्रीडति वनमाली

।। सिन्दुभैरविरागे आदितालेन गीयते।।

पल्लवि

क्रीडति वनमाली गोष्ठे
क्रीडति वनमाली

चरणम्

१. प्रह्लादपराशरपरिपाली
पवनात्मजजाम्बवदनुकूली ।। क्री.।।

२. पद्माकुचपरिरम्भणशाली
पट्टुशरशासितमालिसुमाली ।। क्री.।।
३. परमहंसवर कुसुमसुमाली
प्रणवपयोरुहगर्भकपाली ।। क्री.।।

भज रे गोपालम्

।। हिन्दोळरागे आदितालेन गीयते।।

पल्लवि

भज रे गोपालं मानस,
भज रे गोपालम्

अनुपल्लवि

भज गोपालं भजितकुचेलम्
त्रिजगन्मूलं दितिसुतकालम्।। भज.।।

चरणम्

१. आगमसारं योगविचारम्
भोगशरीरं भुवनाधारम् ।। भज.।।
२. कदनकठोरं कलुषविदूरम्
मदनकुमारं मधुसंहारम् ।। भज.।।
३. नतमन्दारं नन्दकिशोरम्'
हतचाणूरं हंसविहारम् ।। भज.।।

भज रे यदुनाथम्

।। पीलुरागे आदितालेन गीयते।।

पल्लवि

भज रे यदुनाथम् मानस,
भज रे यदुनाथम्

चरणम्

१. गोपवधूपरिरम्भणलोलम्
गोपकिशोरकमद्भुतलीलम् ।। भज.।।
२. कपटाङ्गीकृतमानुषवेषम्
कपटनाट्यकृतकृत्लुसुवेषम् ।। भज.।।
३. परमहंसहृत्तत्त्वस्वरूपम्
प्रणवपयोधरप्रणवस्वरूपम् ।। भज.।।

स्मर वारं वारम्

।। कापि रागे आदितालेन गीयते।।

पल्लवि

स्मर वारं वारम्, चेतः
स्मर नन्दकुमारम्

चरणम्

१. घोषकुटीरपयोघृतचोरम्
गोकुलवृन्दावनसंचारम् ।। स्मर.।।
२. वेणुरवामृतपानकठोरम्
विश्वस्थितिलयहेतुविहारम् ।। स्मर.।।
३. परमहंसहृत्पञ्जरकीरम्
पटुतरधेनुकबकसंहारम् ।। स्मर.।।

ब्रूहि मुकुन्देति

।। कुरंजी रागे आदितालेन गीयते।।

पल्लवि

ब्रूहि मुकुन्देति रसने,

चरणम्

१. केशव माधव गोविन्देति
कृष्णानन्द सदानन्देति ।। ब्रू.।।
२. राधारमण हरे रामेति
राजीवाक्ष घनश्यामेति ।। ब्रू.।।
३. गरुडगमन नन्दकहस्तेति
खण्डितदशकन्धरमस्तेति ।। ब्रू.।।
४. अक्रूरप्रिय चक्रधरेति
हंसनिरञ्जन कंसहरेति ।। ब्रू.।।

गायति वनमाली

।। रंजनि रागे आदितालेन गीयते।।

पल्लवि

गायति वनमाली मधुरं
गायति वनमाली

अनुपल्लवि

पुष्पसुगन्धिसुमलयसमीरे
मुनिजनसेवित यमुनातीरे।। गा.।।

चरणम्

१. कूजितशुकपिकमुखखगकुञ्जे
कुटिलालकबहुनीरदपुञ्जे ।। गा.।।
२. तुलसीदामविभूषणहारी
जलजभवस्तुतसद्गुणशौरी ।। गा.।।
३. परमहंसहृदयोत्सवकारी
परिपूरितमुरलीरवधारी ।। गा.।।

मानस संचर

।। कुरंजी रागे आदितालेन गीयते।।

पल्लवि

मानस संचर रे ब्रह्मणि,
मानस संचर रे

चरणम्

१. श्रीरमणीकुचदुर्गविहारे
सेवकजनमन्दिरमन्दारे ।। मा.।।
२. मदशिखिपिञ्छालंकृतचिकुरे
महनीयकपोलविजितमुकुरे ।। मा.।।
३. परमहंसमुखचन्द्रचकोरे
परिपूरितमुरलीरवधारे ।। मा.।।

भज रे रघुवीरं

।। जोन्पुरी रागे आदितालेन गीयते।।

पल्लवि

भज रे रघुवीरं मानस,
भज रे बहुधीरम्

अनुपल्लवि

अम्बुदडिम्भविडंबनगात्रम्
अम्बुदवाहननन्दनदात्रम्।। भज.।।

चरणम्

१. कुशिकसुतार्पितकार्मुकवेदम्
वशिष्ठहृदयांबुजभास्करपादम् ।। भज.।।

२. कुण्डलमण्डनमण्डितवर्णम्
कुण्डलिमञ्चकमद्भुतवर्णम् ।। भज.।।
३. दण्डितसुन्दसुतादिकवीरम्
मण्डितमनुकुलमाश्रयशौरिम् ।। भज.।।
४. परमहंसमखिलागमवेद्यम्
परमवेदमकुटीप्रतिपाद्यम् ।। भज.।।

चेतः श्रीरामम्

।। केदार गौल रागे आदितालेन गीयते।।

पल्लवि

चेतः श्री रामं चिन्तय
जीमूतश्यामम्

अनुपल्लवि

अङ्गीकृततुम्बुरुसंगीतम्
हनुमद्गवयगवाक्षसमेतम् ।। चेतः.।।

चरणम्

१. नवरत्नस्थापितकोटीरम्
नवतुलसीदलकल्पितहारम् ।। चेतः.।।
२. परमहंसहृद्गोपुरदीपम्
चरणदलितमुनितरुणीशापम् ।। चेतः.।।

खेलति मम हृदये

।। अठाणा रागे आदितालेन गीयते।।

पल्लवि

खेलति मम हृदये रामः,
खेलति मम हृदये

अनुपल्लवि

मोहमहार्णवतारककारी
रागद्वेषमुखासुरमारी ।। खे.।।

चरणम्

१. शान्तिविदेहसुतासहचारी
दहरायोध्यानगरविहारी ।। खे.।।
२. परमहंससाम्राज्योद्धारी
सत्यज्ञानानन्दशरीरी ।। खे.।।

पिब रे रामरसम्

।। यमुनाकल्याणि रागे आदितालेन गीयते ।।

पल्लवि

पिब रे रामरसं रसने,
पिब रे रामरसम्

चरणम्

१. दूरीकृतपातकसंसर्गम्
पूरितनानाविधफलवर्गम् ।। पिब.।।
२. जननमरणभयशोकविदूरम्
सकलशास्त्रनिगमागमसारम् ।। पिब.।।
३. परिपालितसरसिजगर्भाण्डम्
परमपवित्रीकृतपाषण्डम् ।। पिब.।।
४. शुद्धपरमहंसाश्रमगीतम्
शुकशौनककौशिकमुखपीतम् ।। पिब.।।

प्रति वारं वारम्

।। तिलङ्ग रागे आदितालेन गीयते।।

पल्लवि

प्रतिवारं वारं मानस,
भज रे रघुवीरम्।। प्रति.।।

चरणम्

१. कालांभोधर-कान्तशरीरम्
कौशिकशुकशौनकपरिवारम् ।। प्रति.।।
२. कौसल्यादशरथसुकुमारम्
कलिकल्मषभयगहनकुठारम् ।। प्रति.।।
३. परमहंसहृत्पद्मविहारम्
प्रतिहतदशमुखबलविस्तारम् ।। प्रति.।।

जयतुङ्गतरङ्गे

।। कुन्तलवराली रागे आदितालेन गीयते।।

पल्लवि

जय तुङ्गतरङ्गे गङ्गे
जय तुङ्गतरङ्गे

अनुपल्लवि

कमलभवाण्डकरण्डपवित्रे
बहुविधबन्धच्छेदलवित्रे।। जय.।।

चरणम्

१. दूरीकृतजनपापसमूहे
पूरितकच्छपगुच्छग्राहे ।। जय.।।
२. परमहंसगुरुभणितचरित्रे
ब्रह्मविष्णुशंकरनुतिपात्रे ।। जय.।।

स्थिरता न हि न हि

।। पुन्नागवराळीरागे आदितालेन गीयते।।

पल्लवि

स्थिरता न हि न हि रे मानस,
स्थिरता न हि न हि रे।।

चरणम्

१. तापत्रयसागरमग्नानाम्
दर्पाहंकारबिलग्नानाम् ।। स्थि.।।
२. विषयपाशवेष्टितचित्तानाम्
विपरीतज्ञानविमत्तानाम् ।। स्थि.।।
३. परमहंसयोगविरुद्धानाम्
बहुचञ्चलतरसुखसिद्धानाम् ।। स्थि.।।

खेलति पिण्डाण्डे

।। शुद्धधन्याशी रागे आदितालेन गीयते।।

पल्लवि

खेलति पिण्डाण्डे भगवान्
खेलति पिण्डाण्डे

अनुपल्लवि

हंसः सोऽहं हंसः सोऽहम्
हंसः सोऽहं सोऽहमिति।। खे.।।

चरणम्

१. परमात्माऽहं परिपूर्णोऽहम्
ब्रह्मैवाहमहं ब्रह्मेति ।। खे.।।
२. त्वक्चक्षुः श्रुतिजिह्वाघ्राणे
पञ्चविधप्राणोपस्थाने ।। खे.।।

३. शब्दस्पर्शरसादिकमात्रे
साञ्चिकराजसतामससमित्रे ।। खे.।।
४. बुद्धिमनश्चित्ताहंकारे
भूजलतेजोगगनसमीरे ।। खे.।।
५. परमहंसरूपेण विहर्ता
ब्रह्मविष्णुरुद्रादिककर्ता ।। खे.।।

तद्वज्जीवत्वम्

।। कीरवाणि रागे आदिताळेन गीयते।।

पल्लवि

तद्वज्जीवत्वम् ब्रह्मणि,
तद्वज्जीवत्वम्

अनुपल्लवि

यद्वत्तोये चन्द्रद्वित्वम्
यद्वन्मुकुरे प्रतिबिम्बत्वम्।। तद्वत्.।।

चरणम्

१. स्थाणौ यद्वन्नररूपत्वम्
भानुकरे यद्वत्तोयत्वम् ।। तद्वत्.।।
२. शुक्तौ यद्वद्रजतमयत्वम्
रज्जौ यद्वत्फणिदेहत्वम् ।। तद्वत्.।।
३. परमहंस गुरुणाऽद्वयविद्या
भणिता धिक्कृतमायाविद्या ।। तद्वत्.।।

न हि रे न हि

।। सारङ्ग रागे आदिताळेन गीयते।।

पल्लवि

न हि रे न हि शङ्का
काचिन्न हि रे न हि शङ्का

अनुपल्लवि

अजमक्षरमद्वैतमनन्तम्
ध्यायन्ति ब्रह्म परं शान्तम् ।। न हि. ।।

चरणम्

१. ये त्यजन्ति बहुतरपरितापम्
ये भजन्ति सच्चित्सुखरूपम् ।। न हि. ।।
२. परमहंसगुरुभणितं गीतम्
ये पठन्ति निगमार्थसमेतम् ।। न हि. ।।

चिन्ता नास्ति किल

।। सहाना रागे आदिताळेन गीयते ।।

पल्लवि

चिन्ता नास्ति किल तेषाम्
चिन्ता नास्ति किल

चरणम्

१. शमदमकरुणासंपूर्णानाम्
साधुसमागमसंकीर्णानाम् ।। चिन्ता. ।।
२. कालत्रयजितकंदर्पाणाम्
खण्डितसर्वेन्द्रियदर्पाणाम् ।। चिन्ता. ।।
३. परमहंसगुरुपदचित्तानाम्
ब्रह्मानन्दामृतमत्तानाम् ।। चिन्ता. ।।

सर्वं ब्रह्ममयम्

।। जंजूटि रागे आदिताळेन गीयते ।।

पल्लवि

सर्वं ब्रह्ममयं रे रे,
सर्वं ब्रह्ममयम्

चरणम्

१. किं वचनीयम् किमवचनीयम्
किं रचनीयं किमरचनीयम् ।। सर्वम्.।।
२. किं पठनीयं किमपठनीयम्
किं भजनीयं किमभजनीयम् ।। सर्वम्.।।
३. किं बोद्धव्यं किमबोद्धव्यम्
किं भोक्तव्यं किमभोक्तव्यम् ।। सर्वम्.।।
४. सर्वत्र सदा हंसध्यानम्
कर्तव्यं भो मुक्तिनिदानम् ।। सर्वम्.।।

ब्रह्मैवाहं किल

।। नाथनामक्रिया रागे आदिताळेन गीयते।।

पल्लवि

ब्रह्मैवाहं किल सद्गुरुकृपया,
ब्रह्मैवाहं किल

चरणम्

१. ब्रह्मैवाहं किल गुरुकृपया
चिन्मयबोधानन्दघनं तत् ।। ब्र.।।
२. श्रुत्यन्तैकनिरूपितमतुलम्
सत्यसुखाम्बुधिसमरसमनघम् ।। ब्र ।।
३. कर्माकर्मविकर्मविदूरम्
निर्मलसंविदखण्डमपारम् ।। ब्र.।।
४. निरवधिसत्तास्पदपदमजरम्
निरुपममहिमनि निहितमनीहम् ।। ब्र.।।
५. आशापाशविनाशनचतुरम्
कोशपञ्चकातीतमनन्तम् ।। ब्र.।।

६. कारणकारणमेकमनेकम्
कालकालकलिदोषविहीनम् ।। ब्र.।।

७. अप्रमेयपदमखिलाधारं
निष्प्रपञ्चनिजनिष्क्रियरूपम् ।। ब्र.।।

८. स्वप्रकाशशिवमद्वयमभयम्
निष्प्रतर्क्यमनपायमकायम् ।। ब्र.।।

पूर्ण बोधोऽहम्

।। कल्याणि रागे आदिताळेन गीयते ।।

पल्लवि

पूर्णबोधोऽहं सदानन्द
पूर्णबोधोऽहम्

अनुपल्लवि

वर्णाश्रमाचारकर्मातिदूरोऽहम्
स्वर्णवदखिलविकारगतोऽहम् ।। पूर्ण.।।

चरणम्

१. प्रत्यगात्माऽहं प्रविततसत्यघनोऽहम्
श्रुत्यन्तशतकोटिप्रकटितब्रह्माऽहम्
नित्योऽहमभयोऽहमद्वितीयोऽहम् ।। पूर्ण.।।

२. साक्षिमात्रोऽहं प्रगलितपक्षपातोऽहम्
मोक्षस्वरूपोऽहमोंकारगम्योऽहम्
सूक्ष्मोऽहमनघोऽहमद्भुतात्माऽहम् ।। पूर्ण.।।

३. स्वप्रकाशोऽहं विभुरहम् निष्प्रपञ्चोऽहम्
अप्रमेयोऽहमचलोऽहमकलोऽहं
निष्प्रतर्क्याखण्डैकरसोऽहम् ।। पूर्ण.।।

४. अजनिर्ममोऽहं बुधजनभजनीयोऽहम्
अजरोऽहममरोऽहममृतस्वरूपोऽहम्
निजपूर्णमहिमनि निहितमहितोऽहम् ।। पूर्ण.।।

५. निरवयवोऽहं निरुपमनिष्कलङ्कोऽहं
परमशिवेन्द्रश्रीगुरुसोमसमुदित–
निरवधिनिर्वाणसुखसागरोऽहम् ।। पूर्ण.।।

आनन्द पूर्णबोधोऽहम्

।। खरहरप्रिया रागे आदिताळेन गीयते।।

पल्लवि

आनन्दपूर्णबोधोऽहम् सततमानन्द-
पूर्णबोधोऽहम्

अनुपल्लवि

प्रत्यगद्वैतसारोऽहं सकलश्रुत्यन्ततन्त्रविदितोऽहम्
अमृतोऽहं मत्यनन्तरभावितोऽहम् ।
विदितनित्यनिष्कलरूपनिर्गुणपदोऽहम् ।। आ.।।

चरणम्

१. साक्षिचिन्मात्रगात्रोऽहं परममोक्ष-
साम्राज्याधिपोऽहममृतोऽहम् पक्षपातातिदूरोऽहमधिकसूक्ष्मोऽहमनवधिक
सुखसागरोऽहम् ।। आ.।।

२. स्वप्रकाशैकसारोऽहं सदहमप्र-
पञ्चात्मभावोऽहमभयोऽहं
निष्प्रतर्क्योऽहममरोऽहम्
चिदहमप्रमेयाख्यमूर्तिरिवाहम् ।। आ.।।

आनन्दपूर्णबोधोऽहं सच्चिदानन्द

।। शंकराभरणरागे मिश्रतालेन गीयते ।।

आनन्दपूर्णबोधोऽहं, सच्चिदानन्दपूर्णबोधोऽहं, शिवोऽहम् ।

१. सर्वात्मचरोऽहं, परिनिर्वाण- निर्गुणनिखिलात्मकोऽहम्
गीर्वाणवर्यानतोऽहम्
कामगर्वनिर्वापणधीरतरोऽहम् ।। आनन्द. ।।

२. सत्यस्वरूपाऽपरोऽहं
वरश्रुत्यन्त-बोधित-सुखसागरोऽहम्
प्रत्यगभिन्नपरोऽहं
शुद्धमन्तरहितमायातीतोऽहम् ।। आनन्द. ।।

३. अवबोधरससागरोऽहं
व्योमपवनादिपञ्चभूतातिदूरोऽहम्
कविवर-संसेव्योऽहं
घोरभवसिन्धु-तारक-परमसूक्ष्मोऽहम् ।। आनन्द. ।।

४. बाधितगुणकलनोऽहं
बुधशोधित-समरस-परमात्माऽहम्
साधनजातातीतोऽहं
निरुपाधिकनिःसीम-भूमानन्दोऽहम् ।। आनन्द. ।।

५. निरवयवोऽहमजोऽहं
निरुपममहिमनि निहितमहितोऽहम्
निरवधिसत्त्वघनोऽहं
धीरपरमशिवेन्द्र-श्रीगुरुबोधितोऽहम् ।। आनन्द. ।।